॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

भाषाभाष्य

(प्रथम खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

संशोधनकर्ता

श्री आचार्य भद्रसेनजी

प्रकाशक

आर्य्य साहित्य मण्डल लि०, अजमेर

तृतीयावृत्ति ५०० | सं० २००८ वि० | मूल्य ६) रुपये

ऋग्वेद के प्रथम खण्ड की भूमिका

(तृतीय-संस्करण)

वेद शब्द पर विचार

'वेद' शब्द दो प्रकार का है, एक आद्युदात्त 'वेद', दूसरा अन्तोदात्त वेद। पाणिनि ने उञ्छादि (६ । १ । १६०) और वृषादि (६।१।२०३) दो गणो मे वेद शब्द पढा है। इनमें से उञ्छादि-पठित करण अर्थ मे 'वेद' अन्तोदात्त है, और वृपादि गण का शेष सब अर्थों मे आद्युदात्त है।

आद्युदात्त 'वेद' शब्द वेद अर्थ मे ऋग्वेद में एक स्थान पर भी नहीं आया। १४ स्थानों पर 'वेदः' पद है परन्तु वह सर्वत्र 'धनवाची' 'वेदस्' शब्द है। अथर्ववेद मे 'वेद' दो वार केवल 'वेद' (ज्ञानमय, मन्त्रमय वस्तु) अर्थ में आया है। जैसे—

(१) एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पृष्टः शचीपते ।

अथर्व० ७ । ५१ । १ ॥

(२) ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥
वेद आस्तरणं ब्रह्मोपवर्हणम् ॥

अथर्व० १५ । ३ । ७ ॥

इन दोनों स्थलों पर ही ऋक्, साम, यजु आदि का भी प्रसङ्ग है। इसी प्रकार यजुर्वेद मे एक स्थान पर है।

वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः ।

यजु० १९ । ७८ ॥

वेदों में अनेक स्थलों पर वेद वाचक वाक्, गीः, वर्चस् आदि शब्दों का प्रयोग है।

'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति

'वेद' शब्द की प्राचीन विद्वानों ने अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति की है। जैसे—

१ वेदेन वै देवा असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त। तद् वेदस्य वेदत्वम्॥ तै० सं० १।४।२०॥

वेद से देवों ने असुरों का प्राप्य धन प्राप्त किया, यही वेद को 'वेद' कहने का निमित्त है।

(२) वेदिर्देवेभ्यो निलायत तां वेदेनान्वविन्दन्।
वेदेन विविदुः वेदिं पृथिवीम्॥ तै० ब्रा० ३।३।९।६९॥

देवों से वेदि छिप गई। उसको वेद से प्राप्त किया।

(३) आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दति, इत्य ायुर्वेदः॥
सुश्रुत सू० १।१४॥

(४) आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः॥ चरक सू० ३०।२०॥

इन्हीं सब आशयों को लेकर बाद के भाष्यकारों ने भी 'वेद' की अनेक व्युत्पत्तियां लिखी हैं। जैसे—श्री स्वामी दयानन्द ऋग्वेद भाष्य-भूमिका में—विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति, अथवा 'विन्दन्ते लभन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्य विद्या यैर्येषु वा ते वेदाः।'

इस प्रकार 'विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, विद विचारणे' आदि चार धातुओं से करण और अधिकरण अर्थ में प्रत्यय करके 'वेद' शब्द सिद्ध किया है।

चारों वेदों का एक साथ आविर्भाव

चारों वेदों मे से सबसे प्रथम ऋग्वेद गिना जाता है। ऋग्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों मे कौन वेद प्रथम उत्पन्न हुआ यह प्रश्न करना निरर्थक है। वेद ज्ञान नित्य है। क्योंकि उस ज्ञान का आश्रय परमेश्वर नित्य है। हमारे बोल-चाल के व्यवहार मे ऋग्वेद के नाम को प्रायः प्रथम कहते हैं इससे ऋग्वेद का प्राथम्य है। वैदिक साहित्य में जहां कहीं भी वेदों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वहां चारो वेदो का एक साथ ही उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे पुरुष सूक्त मे—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥
ऋ० १०। ९०। ९॥ यजु० ३१। ७॥

यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
अथर्व० १०। ७। २०॥

स्तोम आत्मा छन्दांसि अंगानि यजूंषि नाम। साम तनूः०,
यजु० १२। ४॥

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः॥ ६॥
वेद आस्तरणं ब्रह्म उपवर्हणम्। साम आसद उद्गीथ उपाश्रयः॥ ७॥
अथर्व० १५। ३। ६॥

कालाद् ऋचः समभवन् यजुः कालादजायत।
अथर्व० १९। ५९। ३॥

उक्त सब उदाहरणों में सर्वहुत् यज्ञ, सुपर्ण, काल, स्कम्भ ये सब वेद-प्रतिपादित पदार्थ कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं, प्रत्युत सभी परमेश्वर के नाम है। तब उस परम ज्ञानमय परमेश्वर के बीच में ओत-

प्रोत इन वेदों की परस्पर अर्वाचीनता और प्राचीनता की विध बैठाना बड़ा हास्यजनक है। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और जीवों को भी उत्पन्न किया, और साथ ही उनके लिये ज्ञानमय वेदों का भी प्रकाश किया।

वेद कैसे प्रकट हुए ?

वेद मन्त्र कैसे प्रकट हुए ? यह प्रश्न सभी विद्वानों ने अपने अपने ढंग से सरल किया है। वेदों को अनादि काल का ईश्वरीय ज्ञान मानने वालों ने ऋषियों को वेदमन्त्रों का कर्त्ता नहीं माना, प्रत्युत मन्त्रों का द्रष्टा स्वीकार किया है। जैसा निरुक्त में यास्काचार्य ने लिखा है कि—

साक्षात्-कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्-कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। निरु० अ० १। ६। ४॥

ऋषियों ने धर्म को साक्षात् किया। उन्होंने दूसरे लोगों को, जिन्होंने कि मन्त्रों को साक्षात् नहीं किया था, उपदेश द्वारा मन्त्र प्रदान किये।

सबसे प्रथम किसने साक्षात् किया ?

ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। श० ११। अ० ५॥

अग्नि, वायु और आदित्य तपस्या युक्त इन तीनों से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों प्रकट हुए। इसी का मनु ने अनुवाद किया है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्-यजुः-साम-लक्षणम्॥

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि इनसे सनातन 'त्रय' अर्थात् ऋग्, यजुः, साम इनका दोहन किया अर्थात् इनको उनसे प्राप्त किया। ये अग्नि आदि जड़ पदार्थ नहीं, प्रत्युत लक्षण से वे सजीव पुरुष हैं। क्योंकि पुरुषों को ही ज्ञान होना सम्भव है, जड़ों को नहीं।

शांखायन श्रौत सूत्र में ऋग्वेद के सम्बन्ध में सबसे प्रथम प्रवक्ता 'अग्नि' को ही स्वीकार किया है।

नमो अग्नय उपदेष्ट्रे, नमो वायव उपश्रोत्रे, नम आदित्यायानुख्यात्रे।

इस संकल्प में अग्नि को उपदेष्टा, वायु को उपश्रोता और आदित्य को अनुख्याता स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सम्प्रदाय-परम्परा से ऋग्वेद का प्रथम उपदेष्टा अग्नि है।

क्या ऋषि मन्त्रों को रचनेवाले हैं ?

प्रथम आक्षेप

वेद पर ऐतिहासिक आपत्तियें तब आती हैं जब ऋषियों को वेद-मन्त्रों का कर्त्ता मान लिया जाता है। इसलिये प्रथम इसी पर कुछ विचार करना चाहिये कि क्या जिन ऋषियों का मन्त्रों के साथ नाम लिखा मिलता है, वे उसके द्रष्टा हैं या कर्त्ता हैं।

मन्त्रकृत्, मन्त्रकार आदि शब्दों का प्रयोग

(१) चारों वेदों मे (ऋ० ९। ११४। २) मे केवल एक स्थान पर 'मन्त्रकृत्' शब्द का प्रयोग है। यथा.—

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधांपतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।
ऋ० ९। ११४। २॥

इसी प्रकार—

शिशुर्वा अङ्गिरसां मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत्। तां० ब्रा० १३। ३। २४॥

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रपतिभ्यो मा मामृषयो मन्त्र-कृतो मन्त्रपतयः परादुः। माऽहम् ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम्॥ तै० आ० ४। १। १॥

मन्त्रकृतो वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतो वृणीत इति विज्ञायते ॥ आप० श्रौ० २४ । ५ । ६ ॥

तान् एोवाच काद्रवेयः सर्प ऋषिर्मन्त्रकृत् ॥ ऐ० ब्रा० ६।१।

अथ येषामु ह मन्त्रकृतो न स्युः स पुरोहितप्रवरास्ते प्रवृणीरन् ॥ आप० श्रौ० २४ । १० । १३ ॥

इत ऊर्ध्वान्मन्त्रकृतोऽध्वर्युर्वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतोवृणीत इति विज्ञायते ॥ सत्या० श्रौ० २ । १ । ३ ॥

दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः ॥ मा० गृ० सू० १।८।२॥

दक्षिणतस्तिष्ठन् मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायैकाञ्जलिं पूरयेत्॥ गो० गृ० सू० २ । ४ । १० ॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ पाणिनि अ० ३ । २ । ८९ ॥ कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ॥

इन उद्धरणों में 'मन्त्रकृत्' शब्द का प्रयोग आया है।

इन उद्धरणों में ऋषि शब्द के साहचर्य से 'कृत्' का अर्थ द्रष्टा ही है।

स्वयं आचार्य सायण को यह बात खटकी कि जब वेद अपौरुषेय हैं तो 'मन्त्रकृत्' अर्थात् मन्त्र बनाने वाले कैसे हैं ? सायण ने ऋषि शब्द के साहचर्य से स्पष्टार्थ कर दिया है कि—

यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्त्तारो न सन्ति तथापि कल्पादावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते ॥ तै० आ० सा० भा० ४ । १ । १ ॥

अपौरुषेय वेद में मन्त्रों के बनाने वाले नहीं होते तो भी कल्प के आदि में, ईश्वर के अनुग्रह से, मन्त्रों के पाने वाले 'मन्त्रकृत्' कहाते हैं। इसमें सायणने 'कल्प के आदि में' यह शर्त्त व्यर्थ ही लगाई है। मन्त्रों का लाभ करना और उनका अर्थ दर्शन करना आगे भी हो सकता है। ईश्वर के अनुग्रह के अतिरिक्त गुरु के अनुग्रह से भी मन्त्रों का लाभ या

दर्शन होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में सायण ने अपना अभिप्राय ठीक प्रकार से खोल दिया है।

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः॥

ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों को देखने वाला 'मन्त्रकृत्' है। 'करोति' धातु का यहां अर्थ देखना है। मन्त्र का दर्शन अर्थात् मन्त्रार्थ का साक्षात्कार करने वाला 'मन्त्रकृत्' है। परन्तु इस शब्द का अर्थ-विस्तार और भी अधिक है। सुवर्ण आदि उपपद लगकर 'कृ' धातु से बने अन्य प्रयोगों पर भी दृष्टि करनी चाहिये। सुवर्णकार, चर्मकार, लोहकार आदि शब्दों से सुवर्ण, चर्म, लोह आदि के नाना विकृत पदार्थ बनाने वाले पुरुष ही सुवर्णकार (सुनार), चर्मकार (चमार) और लोहकार (लोहार) कहाते हैं। ठीक उसी प्रकार 'मन्त्रकार' शब्द का भी अर्थ मन्त्र बनाने वाला नहीं, प्रत्युत मन्त्र के विकार अर्थात् विविध रूप उत्पन्न करके उन द्वारा कल्पोक्त यज्ञादि विधान करने में कुशल पुरुष ही 'मन्त्रकृत' या 'मन्त्रकार' शब्द से कहा जाता है। वही 'मन्त्रवान्' ब्राह्मण भी कहा गया है।

वैदिक साहित्य मे ऋषि आदि शब्द का प्रयोग बिलकुल उसी अर्थ में होता रहा है जिस अर्थ में अर्वाचीन साहित्य में 'आचार्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। गुरु या आचार्य के अर्थ मे 'मन्त्रकृत्' शब्द का भी प्रयोग होता रहा है।

महर्षि दयानन्द ने भी, ऋषि शब्द का वैदिक प्रयोग, विद्वान् गुरु शिष्यों मे ही होता हुआ बतलाया है। जैसे ऋग्वेद मण्डल १।सू० १।मत्र २।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति॥

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि—

"विद्या को पढे हुए, अद्य के और पुराने मन्त्रार्थ देखने वाले, अध्यापक, तर्क, कारण पदार्थों में विद्यमान प्राण ये 'पूर्व ऋषि' का अर्थ

है। निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की इसी में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्रदृष्टियां होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि—न्यून या अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसा के योग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों मे नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको बड़े पुरुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक ठीक प्रकार साक्षात् हो जाते हैं।"

"जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म और विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं, छल रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने के लिये भौतिक अग्नि आदि के गुणों को जान कर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी 'ऋषि' शब्द से ग्रहण किये जाते हैं।"

'नूतन ऋषि' वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य पदार्थों में स्थित प्राण हैं। फलतः महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पंक्तियों को योरोपियन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है, उसमें प्रत्येक मण्डलद्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्। वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। इत्यादि ॥

अर्थात् गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा। गाथिन विश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा। वामदेव गौतम ने चौथा मण्डल देखा। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा। सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा।

इत्यादि सर्वत्र 'दृश्' धातु का ही प्रयोग है । किसी स्थान पर भी ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कात्यायन ने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि का प्रयोग नही किया ।

जिस प्रकार लोक मे 'राजकृत' आदि शब्दों का प्रयोग राजा को नियत करने अर्थ मे हैं । इसी प्रकार वेदमन्त्रों को नियत रूप से स्थिर, सुरक्षित रखने वाले विद्वान् 'मन्त्रकृत्' थे ।

दूसरा आक्षेप

विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रो पर लिखा मिलता है वे ही मन्त्रो के रचने वाले हैं । आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों का नाम 'मन्त्रद्रष्टा' रख दिया है । उनही की बनाई स्तुतियो का संग्रह करके पीछे से 'ऋग्वेद' बना है ।

उत्तर—बहुत से वेदमन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं । जैसे गोपथ मे लिखा है—

> तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत् । एवात्वामिन्द्र वज्रिन्० (ऋ० ४ । १९) तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत ॥ गो० ब्रा० ६ । १ ॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा । इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र (ऋ० ४ । १९) पहले विद्यमान थे, उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया । और फिर वामदेव ने पुनः उनको ही देखा । दो ऋषि एक ही सूक्त-मन्त्रों के कर्ता नहीं हो सकते । दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का सकेत है । उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी 'सम्पात मन्त्र' हुआ । वह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव का ऋषि,

है। निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की दृष्टी में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्रदृष्टियां होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि—न्यून या अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसा के योग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों में नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको यथेष्ट पुरुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक ठीक प्रकार साक्षात् हो जाते हैं।"

"जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म और विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं, छल रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने के लिये भौतिक अग्नि आदि के गुणों को जान कर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी 'ऋषि' शब्द से ग्रहण किये जाते हैं।"

'नूतन ऋषि' वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य पदार्थों में स्थित प्राण हैं। फलतः महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पंक्तियों को योरोपियन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है, उसमें प्रत्येक मण्डलद्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्। गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत्। वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत्। बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत्। सप्तमं मण्डलं वसिष्ठोऽपश्यत्। इत्यादि ॥

अर्थात् गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा। गाथिन विश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा। वामदेव गौतम ने चौथा मण्डल देखा। बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा। सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा।

इत्यादि सर्वत्र 'दृश्' धातु का ही प्रयोग है । किसी स्थान पर भी ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कात्यायन ने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि का प्रयोग नहीं किया ।

जिस प्रकार लोक मे 'राजकृत' आदि शब्दों का प्रयोग राजा को नियत करने अर्थ मे हैं । इसी प्रकार वेदमन्त्रों को नियत रूप से स्थिर, सुरक्षित रखने वाले विद्वान् 'मन्त्रकृत्' थे ।

दूसरा आक्षेप

विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रो पर लिखा मिलता है वे ही मन्त्रो के रचने वाले हैं । आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों का नाम 'मन्त्रद्रष्टा' रख दिया है । उनही की बनाई स्तुतियो का संग्रह करके पीछे से 'ऋग्वेद' बना है ।

उत्तर—बहुत से वेदमन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं । जैसे गोपथ मे लिखा है—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत् । एवात्वामिन्द्र वज्रिन्० (ऋ० ४ । १९) . तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत ॥ गो० ब्रा० ६ । १ ॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा । इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र (ऋ० ४ । १९) पहले विद्यमान थे, उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया । और फिर वामदेव ने पुनः उनको ही देखा । दो ऋषि एक ही सूक्त-मन्त्रों के कर्ता नहीं हो सकते । दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का संकेत है । उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी 'सम्पात मन्त्र' हुआ । यह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव का ऋषि,

वेदमन्त्रद्रष्टा होने का कारण है। अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के देखने वाले ऋषियों को ब्राह्मण ग्रन्थों से देख कर ही मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय किया है।

प्राचीन विद्वानों के मन्तव्यानुसार ऋषियों का आप्त होना भी इसी आधार पर था कि वे वेदमन्त्रों के भीतर सत्य धर्मों का साक्षात् करके सत्यार्थों का प्रवचन करते थे। जैसा कि गोतम-प्रणीत न्याय-दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन ने लिखा है—

आप्ताः खलु साक्षात्-कृतधर्माः। न्याय० १।१।७॥ य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च। न्याय० २।१।६७॥

धर्म का साक्षात् करने वाले आप्त हैं। वे आप्त ही वेदार्थों के देखने और प्रवचन करने वाले होते हैं।

वेद में ऐसे सूक्त हैं जिनके दो दो (ऋ० ८।१४) तीन तीन, पाच पाच (ऋ० १।१००) ऋषि हैं। एक सूक्त (ऋ० ९।६६) के सौ ऋषि हैं। अनुक्रमणी के सूत्रों में 'वा' का लिखना संदेहजनक नहीं है, प्रत्युत पूर्व कहे ऋषि की अनुवृत्ति को दिखाता है। अर्थात् प्रयोग काल में किसी भी एक ऋषि का स्मरण होना चाहिये।

तीसरा आक्षेप

मन्त्रों में भी इन कर्ता ऋषियों के नामों का उल्लेख है जैसा प्रायः कवि लोग अपना संकेत नाम देते हैं।

उत्तर—यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। अर्वाचीन सोरठे आदि में कवि का नाम अनर्थक, असम्बद्ध सा रहता है। वेद के सूक्तों में वे पद जो ऋषि नाम हैं विशेष अभिप्राय को लिये होते हैं। यदि उनका वास्तविक अर्थ लुप्त कर दिया जाय तो वेद-मन्त्र का सत्यार्थ समझ में नहीं आ सकता। सत्य बात तो यह है कि द्रष्टा ऋषि का नाम भी उन विशेष पदों के कारण ही पड़ा है। ऋजिश्वा, वृषागिर, भयमान आदि

वेद के रहस्य भरे शब्दों वाली ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि भी उपचार से उन्हीं नामों से पुकारे गये। ऐसा ही एक दृष्टान्त हमने अथर्ववेद भाषाभाष्य चौथे खण्ड की भूमिका में दर्शाया है। वहां कुन्ताप सूक्तों के द्रष्टा ऋषि 'एतश' हैं। यह नाम उनका सूक्त के प्रथम पद 'एता अश्वा०' इन दो पदों का विकृत रूप है।

चौथा आक्षेप

वेदमन्त्रों में मन्त्र, ब्रह्म, स्तोम आदि बनाने की सूचना प्राप्त होती है।

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।

ऋ० ५। १। १२॥

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।

ऋ० ५। २९। १५॥

अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।

ऋ० ४। १७। २१॥

उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व। ऋ० ४। ३। १५॥

आ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः॥

ऋ० १। १७७। ५॥

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माणि० ॥ ऋ० १। ६३। ९॥

इन सभी स्थानों पर नये ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्र बनाये जाकर इष्ट-देव को अर्पित किये गये प्रतीत होते हैं।

उत्तर—थोड़ा सा भी विचार करें तो आक्षेप-कर्त्ता भ्रम में प्रतीत होते हैं। वे 'अकारि' आदि प्रयोगों को भूत काल का कैसे मान लेते हैं? वेद में जितने भी लकार प्रयुक्त हैं उनके लिये काल का कोई अवधारण नहीं। वेद में केवल लकारों को देखकर काल का निर्णय करना बड़ी

गहरी भूल है। धातुसम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्-लङ्लिटः ॥३।४।६॥ इस सूत्रसे सब कालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं। ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं। धातुसम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की बिना अपेक्षा किये वर्त्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा। इस प्रकार से 'अकारि ते इन्द्र गोतमेभिः' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र! गोतमों ने तेरी स्तुति की। ऐसा अर्थ यह वेद के व्याकरण को समझ कर किया जाता है। साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि 'गोतम' का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें और इन्द्र का अर्थ कोई कल्पित देव ही लिया जावे। जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेदमन्त्र है क्या उसी रीति से 'गोतम' का अर्थ विद्वान् जन और 'इन्द्र' का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें। यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध में कालों की अपेक्षा विना किये ही हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां वहां इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये। ऐसा न करने से निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे।

ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति

शौनकीय चरण-व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है।

(१) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति।

१ ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) ऐतरेय ब्राह्मण और (४) ऐतरेयारण्यक, (५) शांखायन और (६) माण्डूक, (७) कौषीतकि-ब्राह्मण और (८) कौषीतकि-आरण्यक । अथवा वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन ये ८ भेद कहाते हैं ।

(२) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं । ऋग्वेद के ये चार पाद अनुबन्ध-चतुष्टय के समान हैं । केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है । उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है । उसका अध्येता शिष्य 'चर्चक' कहाता है । श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना 'श्रवणीयपार' कहाता है । इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है ।

(३) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम् ।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड, ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं । जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको 'क्रमपार' कहते हैं । संहितानुसार पद पाठ 'क्रमपद' कहाता है । अग्निम् ईळे । ईळे अग्निम् । अग्निम् ईळे । ईळे पुरोहितम् । पुरोहितम् ईळे० इत्यादि क्रम से पारायण करना 'क्रमजटा' कहाती है । इसी प्रकार अग्निमीळे, ईळेऽग्निम् । अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेऽग्निमीळे पुरोहितम् । इस प्रकार 'क्रमदण्ड' कहा जाता है । जटा, माला, शिखा आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने के उपकारक होने से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं । उनको अनावश्यक विस्तार होने से यहां नहीं लिखते ।

सकती भूल है। धातुसम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्-लङ्लिटः ॥३।४।६॥ इस सूत्र से सब कालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं। ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं। धातुसम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की बिना अपेक्षा किये वर्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा। इस प्रकार से 'अकारि ते इन्द्र गोतमेभिः' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र! गोतमों ने तेरी स्तुति की। ऐसा अर्थ तब वेद के व्याकरण को समाप्त कर दिया जाता है। साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि 'गोतम' का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें और इन्द्र का अर्थ कोई कल्पित देव ही लिया जावे। जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेदमन्त्र है क्या इसी रीति से 'गोतम' का अर्थ विद्वान् जन और 'इन्द्र' का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें। यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध से कालों की अपेक्षा बिना किये ही हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां वहां इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये। ऐसा न करने से निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे।

ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति

शौनकीय चरण-व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है।

(१) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ* स्थानानि भवन्ति।

---

* ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) ऐतरेय ब्राह्मण और (४) ऐतरेयारण्यक, (५) शांखायन और (६) माण्डूक, (७) कौषीतकि-ब्राह्मण और (८) कौषीतकि-आरण्यक। अथवा वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन ये ८ भेद कहाते हैं।

(२) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं। ऋग्वेद के ये चार पाद अनुबन्ध-चतुष्टय के समान हैं। केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है। उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है। उसका अध्येता शिष्य 'चर्चक' कहाता है। श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना 'श्रवणीयपार' कहाता है। इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है।

(३) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम्।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड, ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं। जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको 'क्रमपार' कहते हैं। संहितानुसार पद पाठ 'क्रमपद' कहाता है। अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे। ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् ईळे० इत्यादि क्रम से पारायण करना 'क्रमजटा' कहाती है। इसी प्रकार अग्निमीळे, ईळेऽग्निम्। अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेऽग्निमीळे पुरोहितम्। इस प्रकार 'क्रमदण्ड' कहा जाता है। जटा, माला, शिखा आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने के उपकारक होने से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं। उनको अनावश्यक विस्तार होने से यहां नहीं लिखते।

क्या एक वेद के चार वेद बनाये गये ?

वायुपुराण में लिखा है —

"युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण मन्त्र जीर्ण हो गये हैं। सब कुछ न्यून होता चला जा रहा है। थोड़ा सा रह गया है। कृतयुग की अपेक्षा दस हजार मन्त्र भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करते हैं। वेद का नाश हो जाने से यज्ञ और वेद आदि सब नष्ट हो जायेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' (१ लाख मन्त्र) था उससे दस गुना यज्ञ (कर्मकाण्डयोग) था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।"

विष्णुपुराण (३ । ४) में लिखा है कि—

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये व्यासजी के नाम पर जैसी कल्पना सूझी, वैसा कर दिया। इसी प्रकार पहले एक लक्ष मन्त्रों का होना और युग-दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि स्वयम्भू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है, फिर उनके लोप हो जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल-कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई हैं और वे मनमाना, ऊटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ़ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र विचित्र कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चारों वेदों की सत्ता का वर्णन है।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४।३५।६ ॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ॥
अथर्व० १९ । ९ । १२ ॥

इस पर सायण ने लिखा है—वेदाः साङ्गाश्चत्वारः ।

वेद मे स्पष्ट है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः० ॥ ऋ० ४।५८।३॥

कठ ब्राह्मण व निरुक्त में अर्थ किया है 'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः ।

अतएव ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है:—

'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को वेदव्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है । क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ।'

इसके अतिरिक्त हमारा इतिहास भी सब कालों मे चारों वेदों की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है, जैसे—

महाभारत द्रोणपर्व । अ० ५१ ॥

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः०'

आदिपर्व मे, दुष्यन्त के वर्णन में, वेदों की पृथक् पृथक् संहिताओं का वर्णन किया है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः । ..
अथर्ववेदप्रवराः पूर्वयाज्ञिक-संमताः ।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते । इत्यादि ॥

सम्भव है व्यास ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया हो, वे ब्राह्मणग्रन्थों व संहितादि के पाठभेद का खूब विचार कर के अपने शिष्यों को को पढ़ाया हो । इससे वह अपने काल का 'चतुर्वेद-व्यास' प्रसिद्ध हुआ हो ।

क्या एक वेद के चार वेद बनाये गये ?

वायुपुराण में लिखा है—

"युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण स्वल्प वीर्य हो गये हैं। सब कुछ न्यून होता चला जा रहा है। थोड़ा सा रह गया है। कृतयुग की अपेक्षा दस हजार मन्त्र भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करने हैं। वेद का नाश हो जाने से यज्ञ और देव आदि सब नष्ट हो जावेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' (१ लाख मन्त्र) था उससे दस गुना यज्ञ (कर्मकाण्डप्रयोग) था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।"

विष्णुपुराण (३ । ६) में लिखा है कि—

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये व्यासजी के नाम पर जैसी कल्पना सूझी, वैसा कर दिया। इसी प्रकार पहले एक लक्षमन्त्रों का होना और युग-दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि स्वयम्भू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है, फिर उनके लोप हो जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल-कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई हैं और वे मनमाना, ऊटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ़ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र विचित्र कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चारों वेदों की सत्ता का वर्णन है।

यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः ॥ ऋ० ४।३५।६ ॥
ब्रह्म प्रजापतिर्धाता वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः ॥
अथर्व० १९ । ९ । १२ ॥

इस पर सायण ने लिखा है—वेदाः साङ्गाश्चत्वारः ।

वेद मे स्पष्ट है—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः० ॥ ऋ० ४।५८।३॥

कठ ब्राह्मण व निरुक्त में अर्थ किया है 'चत्वारि शृङ्गा इति वेदा वा एतुदुक्ताः ।

अतएव ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है:—

'जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को वेदव्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है । क्योंकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे ।'

इसके अतिरिक्त हमारा इतिहास भी सब कालों मे चारों वेदों की पृथक् सत्ता को स्वीकार करता है, जैसे—

महाभारत द्रोणपर्व । अ० ५१ ॥

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीताः०'

आदिपर्व मे, दुष्यन्त के वर्णन में, वेदों की पृथक् पृथक् संहिताओं का वर्णन किया है—

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः ।
अथर्ववेदप्रवराः पूर्वयाज्ञिक-संमताः ।
संहितामीरयन्ति स्म पदक्रमयुतां तु ते । इत्यादि ॥

सम्भव है व्यास ने वैदिक साहित्य को व्यवस्थित रूप दिया हो, वे ब्राह्मणग्रन्थों व संहितादि के पाठभेद का खूब विचार कर के अपने शिष्यो को को पढ़ाया हो । इससे वह अपने काल का 'चतुर्वेद-व्यास' प्रसिद्ध हुआ हो ।

ऋग्वेद की २१ शाखाएं

पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है:—

एकविंशतिधा वाह्वृच्यम् ॥

'वाह्वृच् अर्थात् ऋग्वेद की २१ शाखाएं हैं। प्रपञ्च हृदय के 'वेद प्रकरण' में साम और वाह्वृच् की १२। १२ अवशिष्ट शाखा गिनाई हैं। जैसे—

ऐतरेय-वाष्कल-कौपीतकी-जानन्ति वाहवि-गौतम-शाकल्य-बाभ्रव्य-पैङ्ग-मुद्गल-शौनकशाखाः—

परन्तु चरणव्यूहकार महिदास ने शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन और माण्डूकेय ये पांच प्रकार की शाखाएं बतलाई हैं। वस्तुतः ये पांच 'चरण' है।

प्रथम चरण—शाकल शाखाएं

(१) मुद्गल शाखा—वेदमित्र शाकल्य के पांच शिष्य हुए मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शौशिरि, इनमें प्रथम मुद्गल का नाम 'बृहद्देवता' में शौनक ने स्मरण किया है—

मन्यते शाकपूणिस्तु भार्म्यश्वश्चैव मुद्गलः ॥ अ० ४ । ४६ ॥
मुद्गलः शाकपूणिश्च आचार्यः शाकटायनः ॥ अ० ९ । ९० ॥

यह मुद्गल सम्भवतः शाकल्य का शिष्य रहा। इसके पिता का नाम भृम्यश्व होगा।

मुद्गलानामाङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति। तार्क्ष्यं हैके ब्रुवते अतीत्याङ्गिरस-तार्क्ष्य-भार्म्यश्व-मौद्गल्येति ॥

इस लेख से प्रतीत होता है कि भृम्यश्व के सन्तान मुद्गल ही ऋग्वेद के चरणकार थे, वे अर्थद्रष्टा होने से ऋषि हैं, और उनका आम्नाय 'ऋग्वेद' मुद्गल-शाखा थी। आङ्गिरस उनके त्रिप्रवर में से एक है। इस एक दृष्टान्त से एक गुत्थी यह भी सुलझती प्रतीत होती है कि शाखा व

चरण ऋग्वेदाम्नाय के अति प्राचीन काल से रहे होंगे, पैल के शिष्यों के नाम से उनका शाखा मानना कुछ असंगत होगा।

(२) गालव शाखा—की संहिता अप्राप्त है। यह पांचाल देश (रोहेलखण्ड के समीप) का वासी था। इसका दूसरा नाम बाभ्रव्य था। कामसूत्र में इसको बाभ्रव्य पाञ्चाल कहा गया है। ऋग्वेद के क्रम-पाठ का निर्माता यही था। चरक में कही ऋषि-सभा में 'गालव' विद्यमान हैं। युधिष्ठिर की दिव्य धर्मसभा में 'गालव' उपस्थित थे। यही बाभ्रव्य गोत्री पांचाल देश के महामन्त्री पद पर रहे है। जैसे—मत्स्य पुराण में दक्षिण पञ्चाल के राजा ब्रह्मदत्त का मन्त्री सुबालक बाभ्रव्य था। बाभ्रव्य को ही मत्स्य में ऋग्वेद का क्रमपाठ-कर्त्ता माना है। इस सम्प्रदाय का आम्नाय पूर्वकाल से ही पृथक् रहा और यज्ञादि कर्मकाण्ड में भी इनका अन्य देशीय आचार्यों से मतभेद रहा है। जैसे ऐतरेय (५। ३) में महाव्रताध्ययन के पाठ समाप्त करने में चातुकर्ण्य और गालव का मतभेद दर्शाया है।

(३) शालीय शाखा—तीसरी शालीय शाखा है। वैयाकरणों ने आश्वलायनादि के साथ इस शाखा को भी स्थान दिया है।

(४) वात्स्य शाखा—चतुर्थ शाखा 'वात्स्य' है। गोत्रचरणाद्वुञ् (पा० ४। २। १०४) पर पातंजलि ने 'वात्सकम्' उदाहरण देकर इसका चरण स्वीकार किया है।

उवट ने ऋक्प्रातिशाख्य का भाष्य करते हुए भूमिका में लिखा है—

चम्पायां न्यवसत् पूर्वं वत्सानां कुलमृद्धिमत्।
यस्मिन् द्विजवरा जाताः बाह्वृचाः पारमोत्तमाः॥
देवमित्र इति ख्यातस्तस्मिञ्जातो महामतिः।
स वै पारिषदे श्रेष्ठः सुतस्तस्य महात्मनः॥
नाम्ना तु विष्णुमित्र. स 'कुमार' इति शब्द्यते।

अर्थात्—चम्पा में वत्सों का सम्पन्न कुल था जिसमें बाह्वृच् ब्राह्मण उत्पन्न हुए। उनमें देवमित्र पार्षदों का श्रेष्ठ विद्वान् था, वह 'कुमार', 'विष्णुमित्र' आदि नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(५) शैशिरि शाखा—पाँचवीं शाखा 'शैशिरि' शाखा है। अनुवाकानुक्रमणी में स्पष्ट है।

ऋग्वेदे शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम्।
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तै शृणुत शाकलाः॥

यहाँ शाकल के शिष्यों को शैशिरि संहिता के सूक्त अनुवाकादि का उपदेश किया है।

ऋक् प्रातिशाख्य के प्रारम्भ श्लोकों से विदित होता है कि यह पार्षद सूत्र शैशिरियों से ही लिया है। जिसका शाकलों को उपदेश किया है। जैसा लिखा है—

छन्दोः ज्ञानमाकारं भूतज्ञानं
छंदसो व्याप्तिं स्वर्गामृतत्वप्राप्तिम्।
अस्य ज्ञानार्थमिदमुत्तरत्र
वक्ष्ये शास्त्रमखिलं शैशिरीये॥

आचार्य व्याडि ने विकृतिवल्ली में शैशिरीय शाखा की ही विकृति दर्शाई है।

शैशिरीये समाम्नाये व्याडिनैव महर्षिणा।
जटाद्या विकृतीरष्टौ लक्ष्यन्ते नातिविस्तरम्॥

सायण भाष्य भी प्रायः शैशिरीय शाखा पर ही है। शिशिर आचार्य चन्द्रवंशी राजा शुनहोत्र के कुल मे राजा शल का पौत्र व आर्ष्टिषेण का पुत्र था।

यह आर्ष्टिषेण स्वयं याज्ञिक रहा, ऐसा इतिहास मे स्पष्ट है।

(५) पांचवां शाखा 'शाकल' है।

पतंजलि मुनि ने व्याकरण-महाभाष्य में लिखा है—

शाकल्यस्य संहितामनु प्रावर्षत् । शाकल्येन सुकृतां संहितामनु निशम्य देवः प्रावर्षत् ॥

शाकल्य संहिता का पाठ सुन कर मेघ वरसा।

कात्यायन सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में—

'अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके'

द्वितीय चरण—बाष्कल शाखाएं

(१) द्वितीय चरण की प्रथम शाखा बाष्कल है।

दिति पुत्र हिरण्यकशिपु का एक पुत्र 'बाष्फल' था। भगदत्त चीन का राजा उसी का अवतार कहा गया है। परन्तु कदाचित् यह संहिता-कार न था। ब्रह्माण्ड पुराण मे लिखा है—

चतस्त्रः संहिताः कृत्वा वाष्कलो द्विजसत्तमः।
शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हि तान्।
वोध्यां तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्।
पाराशर्री तृतीयां तु याज्ञवल्क्य (जातूकर्ण्य) मथापराम्।

इस आचार्य से यह चरण शिष्यानुसार अनेक शाखाओं मे बंटा।

पाणिनि ने—कपिबोधादाङ्गिरसे। ४। १। १०७॥ आंगिरस बोध के पुत्र को 'बौध्य' कहा है। महाभारत मे राजा नहुष के पुत्र ययाति के काल में 'बौध्य' ऋषि का पता चलता है। (महा० शा० प० १७६। ५७) यह वेद का पदकार रहा है।

(२) द्वितीय शाखा—'माठर' या 'अग्निमाठर' है। बृहद्देवता (८। ८४। ८५) के श्लोको में माठर और बाष्कलों का मतभेद दर्शाया है। सम्भवतः पाठ भ्रष्ट होने से ८४ श्लोक मे बौध्य का मत है।

(३) तृतीय शाखा—पराशर की है। कुमारिल ने 'अरुण परा-शर' के शाखा-ब्राह्मण का उल्लेख किया है। पा० ४। २। ६० पर

व्याकरण महाभाष्य पतंजलि ने "पाराशरकल्पिकः" उदाहरण दिया है। पाराशर शाखा के कल्प, ब्राह्मण अवश्य विद्यमान थे।

(४) जातुकर्ण्य शाखा बाष्कलों की चतुर्थ शाखा है। शांखायन श्रौत सूत्रों में काशिराज, विदेहराज, कोशलराज आदि के पुरोहित 'जल' या 'जड' जातुकर्ण्य का पुरोहित होने का उल्लेख किया है।

वायु पुराण में लिखा है कि व्यासदेव ने जातुकर्ण्य से वेदाध्ययन व धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था।

बृहदारण्यक वंश-ब्राह्मण में लिखा है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

इस प्रकार शाकलों के समान ही बाष्कल आम्नाय था। इनमें सूक्तों का क्रम भेद था, वेद 'ऋग्वेद' दोनों का एक ही था। इनमें से कुछ सूक्तों की न्यूनाधिकता भी थी। जिसका उल्लेख महीदास ऐतरेय ने चरण-व्यूह परिशिष्ट में दर्शाया है।

तृतीय चरण—आश्वलायन शाखाएं

प्रश्न उपनिषद् में पिप्पलाद ऋषि के पास कौसल्य आश्वलायन शिष्य होकर आया। बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक की सभा में ऋग्वेदज्ञ 'अश्वल' होता ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न लिये, इसके शिष्य व पुत्र आश्वलायन कहे गये। चरक संहिता की प्रोक्त ऋषिसभा में आश्वलायन थे। बौद्ध मज्झिम सूत्र (२ । ५ । ३) में आश्वलायन ब्राह्मण का नाम आया है। ये सभी शाखाकार हो नहीं सकते, हां शाखाकार अवश्य प्रथम अश्वल गोत्री हो। आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र मिलते हैं। बीकानेर पञ्जाब यूनिवर्सिटी आदि के पुस्तकालयों में इस शाखा की संहिता के अंशो के पदपाठ मिलते हैं। कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थालय में 'आश्वलायन ब्राह्मण' नाम से एक पुस्तक है। वह ऐतरेय ब्राह्मण से भिन्न नहीं है। दोनों शाखाओं का एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। इसी प्रकार देवस्वामी, देवत्रात आदि आश्वलायन श्रौत-

सूत्र के भाष्यकारों ने बाष्कल, शाकल आदि सब शाखाओं का एक ब्राह्मण ऐतरेय और सबका एक सूत्र आश्वलायन ही माना है। इससे सम्बद्ध अन्य शाखाओं का पृथक् ज्ञान नहीं है।

चतुर्थ चरण—शांखायन शाखाएं

इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र मिलते हैं। शांखायन संहिता में भी कुछ मन्त्रों का अन्यों से भेद होना संभव है जिनका इसके कल्प में प्रतीक पाठ है अन्यों में सकल पाठ है। इसी से इस साखा की संहिता सिद्ध है। शांखायनों के चार भेद हैं।

(१) शांखायन शाखा—कौषीतकि शाखा शांखायनों का ही एक अवान्तर भेद है। शांखायन शाखा के अनेक ग्रन्थ और उन पर भाष्य भी हैं। जैसे शांखायन श्रौतसूत्र पर आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त के पुत्र और अग्नि स्वामी ने भाष्य किये हैं। इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मदत्त भी कोई आचार्य हुए। शायद यही वरदत्त के पुत्र हों।

'शांखायन' शाखा के मूल पुरुष 'शंख' ऋषि होंगे। कापिष्ठल कठ शाखा में 'कौष्य शंख' को स्मरण किया है।

एतद्ध वा उवाच शंखः कौष्यः (अ० ३४)। उवाच दिवा-जातः शाकायन्यः शंखं कौष्यम्। (अ० ३५। १) इत्यादि।

महाभारत अनुशासन पर्व में (अ० २००) राजा ब्रह्मदत्त पाञ्चाल का शंख को बहुत दान देने का वर्णन है। शंख और लिखित दो भाई देवल के पुत्र थे (महाभारत आदि पर्व ६०। २५)। स्कन्द पुराण में इनके पिता का नाम शांडिल्य दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में सुयज्ञ शांखायन का नाम लिखा है। आ० श्रौ० सू० भाष्यकार ने इसी 'सुयज्ञ' को श्रौतसूत्रकार माना है।

(२) कौषीतकि शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और गृह्यसूत्र मिलता है। यह शाखा शांखायन चरण के अन्तर्गत ही उपशाखा प्रतीत

व्याकरण महाभाष्य पतंजलि ने "पाराशरकल्पिकः" उदाहरण दिया है। पाराशर शाखा के कल्प, ब्राह्मण अवश्य विद्यमान थे।

(४) जातुकर्ण्य शाखा बाष्कलों की चतुर्थ शाखा है। शांखायन श्रौत सूत्रों मे काशिराज, विदेहराज, कोशलराज आदि के पुरोहित 'जल' या 'जड' जातुकर्ण्य का पुरोहित होने का उल्लेख किया है।

वायु पुराण मे लिखा है कि व्यासदेव ने जातुकर्ण्य से वेदाध्ययन व धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था।

बृहदारण्यक वंश-ब्राह्मण मे लिखा है—पाराशर्यो जातूकर्ण्यात्।

इस प्रकार शाकलों के समान ही बाष्कल आम्नाय था। इनमे सूक्तो का क्रम भेद था, वेद 'ऋग्वेद' दोनो का एक ही था। इनमे से कुछ सूक्तों की न्यूनाधिकता भी थी। जिसका उल्लेख महीदास ऐतरेय ने चरण-व्यूह परिशिष्ट मे दर्शाया है।

तृतीय चरण—आश्वलायन शाखाएं

प्रश्न उपनिषद् मे पिप्पलाद ऋषि के पास कौसल्य आश्वलायन शिष्य होकर आया। बृहदारण्यक उपनिषद् मे जनक की सभा मे ऋग्वेदज्ञ 'अश्वल' होता ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न किये, इसके शिष्य व पुत्र आश्वलायन कहे गये। चरक संहिता की प्रोक्त ऋषिसभा मे आश्वलायन थे। बौद्ध मज्झिम सूत्र (२ । ५ । ३) मे आश्वलायन ब्राह्मण का नाम आया है। ये सभी शाखाकार हो नहीं सकते, हां शाखाकार अवश्य प्रथम अश्वल गोत्री हो। आश्वलायन शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र मिलते हैं। बीकानेर पंजाब यूनिवर्सिटी आदि के पुस्तकालयों में इस शाखा की संहिता के अंशों के पदपाठ मिलते हैं। कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के ग्रन्थालय मे 'आश्वलायन ब्राह्मण' नाम से एक पुस्तक है। वह ऐतरेय ब्राह्मण से भिन्न नहीं है। दोनो शाखाओं का एक ब्राह्मण प्रतीत होता है। इसी प्रकार देवस्वामी, देवत्रात आदि आश्वलायन श्रौत-

सूत्र के भाष्यकारो ने बाष्कल, शाकल आदि सब शाखाओ का एक ब्राह्मण ऐतरेय और सबका एक सूत्र आश्वलायन ही माना है। इससे सम्बद्ध अन्य शाखाओ का पृथक् ज्ञान नही है।

चतुर्थ चरण—शांखायन शाखाएं

इस शाखा के ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र मिलते हैं। शांखायन संहिता मे भी कुछ मन्त्रो का अन्यो से भेद होना संभव है जिनका इसके कल्प मे प्रतीक पाठ है अन्यो मे सकल पाठ है। इसी से इस साखा की सहिता सिद्ध है। शाखायनो के चार भेद है।

(१) शांखायन शाखा—कौपीतकि शाखा शांखायनो का ही एक अवान्तर भेद है। शाखायन शाखा के अनेक ग्रन्थ और उन पर भाष्य भी हैं। जैसे शाखायन श्रौतसूत्र पर आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त के पुत्र और अग्नि स्वामी ने भाष्य किये हैं। इसी सम्प्रदाय के ब्रह्मदत्त भी कोई आचार्य हुए। शायद यही वरदत्त के पुत्र हो।

'शांखायन' शाखा के मूल पुरुष 'शख' ऋषि होगे। कापिष्ठल कठ शाखा मे 'कौष्य शंख' को स्मरण किया है।

एतद्ध वा उवाव शंखः कौष्यः (अ० ३४)। उवाच दिवा-जातः शाकायन्यः शंखं कौष्यम्। (अ० ३५। १) इत्यादि।

महाभारत अनुशासन पर्व मे (अ० २००) राजा ब्रह्मदत्त पाञ्चाल का शख को बहुत दान देने का वर्णन है। शंख और लिखित दो भाई देवल के पुत्र थे (महाभारत आदि पर्व ६०। २५)। स्कन्द पुराण मे इनके पिता का नाम शांडिल्य दिया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे सुयज्ञ शांखायन का नाम लिखा है। आ० श्रौ० सू० भाष्यकार ने इसी 'सुयज्ञ' को श्रौतसूत्रकार माना है।

(२) कौषीतकि शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और गृह्यसूत्र मिलता है। यह शाखा शाखायन चरण के अन्तर्गत ही उपशाखा प्रतीत

होती है। 'कौषीतकि के पिता 'कुषीतक' थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहोड़ (ल) कौषीतकि का नाम आता है। महाभारत वनपर्व (अ० १३४।८) में कहोल को उद्दालक का शिष्य लिखा है। कहोल के पुत्र अष्टावक्र थे और उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु थे। वे परस्पर स्वयं मामा-बहनोई थे। उद्दालक ने अपनी कन्या कहोल को व्याह दी थी। वे दोनों बहुत बड़े वेदज्ञ ब्रह्मवेत्ता थे।

(३) महाकौषीतकि शाखा—आनर्त्तीय ब्रह्मदत्त ने शांखायन श्रौतसूत्र के अन्तिम तीन अध्याय महाकौषीतकि से लिये बतलाया है।

(४) शाम्बव्य शाखा—जैमिनीय श्रौतसूत्र भाष्य में भवत्रात ने शाम्बव्य के कल्प का उल्लेख किया है, २४ पटलों में उसने यज्ञ तक कहा है। शाम्बव्य गृहस्थकारिका में शाम्बव्य को सूत्रकार माना है। इसके पांच अध्याय के गृह्यसूत्र की सूचना दी है। महाभारत आश्रम-वासिक पर्व (अ० १०) में—

साम्बाख्यो बह्वृचो राजन् वक्तुं समुपचक्रिरे।

सम्भवतः 'शांबाख्य' न हो, 'शाम्बव्य' बह्वृच का नाम है। यह ऋग्वेद और अर्थ-शास्त्र (नीतिशास्त्र) का बड़ा विद्वान् था। उसने धृत-राष्ट्र को उपदेश किया। वह अवश्य शाम्बव्य-शाखी ब्राह्मण होगा।

पञ्चम चरण—माण्डूकेय शाखाएं

ऋग्वेदीय शाखाओं का पांचवां चरण 'माण्डूकेय' है। बृहद्देवता का आम्नाय माण्डूकेय है। इस आम्नाय में भी कुछ सूक्त अन्यों से विशेष थे। जैसे 'ब्रह्म जज्ञानं०' सूक्त उस आम्नाय में पठित था। सूक्त क्रम में कहीं भेद है। मण्डूक का पुत्र माण्डूकेय था। इसको शाखायन आरण्यक में 'शूरवीर' नाम से कहा है। उसके पुत्र ह्रस्व, मध्यम व ज्येष्ठ (या दीर्घ) थे। मध्यम की माता का नाम 'प्रातिबोधी' था। वह मगध का निवासी था। गोत्र नाम मातृनाम से भी चलते थे। बृहदारण्यक के

अन्तिम गुरु-वंश मे माण्डुकायनीपुत्र को माण्डूकीपुत्र का शिष्य कहा है। बृहद्देवता मे माण्डूकेय के ३७ सूक्त शाकलो से विशेष दिये हैं। इसी चरण मे सब से अधिक ऋचा होने से यथार्थ बह्वृच माण्डूकेय आम्नाय ही था। 'बह्वृच' आम्नाय भी पृथक् कोई रहा। जिसका उल्लेख माध्यन्दिन शतपथ ११।५।१।१ में किया है। इसमे भी सूक्त ऋचाओं मे यत्किञ्चित् भेद था, क्योंकि पुरुष सूक्त (१०।९५) मे बह्वृच १५ ऋचा पढ़ते हैं, वर्त्तमान शाकल शाखा मे १८ मन्त्र हैं। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र मे बह्वृच ब्राह्मण के उल्लेख उद्धृत हैं, जो ऐतरेय, कौषीतकि आदि में उपलब्ध नही हैं। आदित्यदर्शन ने कठ गृह्य के भाष्य में बह्वृच सूत्र लिखा है जो आश्वलायन, शांखायन गृह्यों में नही है, प्रतीत होता है कि बह्वृच सूत्र भी पृथक् ही था। कुमारिल ने (तन्त्र वार्त्तिक १।३।११) में बह्वृचों का वासिष्ठ सूत्र उल्लेख किया है। वाजसनेयियो के लिये शंख लिखितोक्त सूत्र की व्यवस्था ही है। प्रतीत होता है कि बह्वृच आम्नाय पृथक् एक चरण है जिसके अन्तर्गत अनेक शाखा होंगी। भागवत (१।४) में शौनक को 'बह्वृच' कहा है। पूर्व महाभारत मे शाम्बव्य को बह्वृच कहा है। सम्भवतः शौनक का बृहद्देवता वा ऋक्-प्रातिशाख्य बह्वृच शाखा का हो, अन्य सब ऋग्वेदियों ने इसे समान रूप से अपनाया हो।

चरण-व्यूह के ये पांच चरण इस प्रकार वर्णित हो गये, पुराणकारों ने शाकपूणि और बाष्कलि भारद्वाज ये दो विभाग और कहे हैं, उनका भी उल्लेख यहां अप्रासंगिक नहीं है।

(६) शाकपूणि विभाग—ब्रह्माण्ड पुराण (अ० १।३४) में लिखा है कि—

(१) माण्डूकेय शाखा की शाकपूणि ने तीन शाखाएं कीं, और निरुक्त बनाया। उसके ४ शिष्य थे, पैल, इक्षलक, शतयलाक और गज।

ब्रह्माण्ड पुराण के ये नाम बहुत सन्दिग्ध हैं। ये पैल, इक्षलिक न होकर शायद 'पैङ्गय, शैलालक' प्रतीत होते हैं। बृहद्देवता (१ । २४) में पैङ्गय मधुक का मत लिखा गया है। शतपथादि में इसका मत मिलता है। शतपथ की वंश-परम्परा में भी 'मधुक पैङ्गय को याज्ञवल्क्य का शिष्य कहा है।

(२) औद्दालकि शाखा—उद्दालक गोतम कुल का था, यह अरुण का पुत्र था। गोतम शाखा को आरुणेय शाखा कहा गया है। आरुणेय ब्राह्मण भी प्रसिद्ध है।

(३) शैलालक शाखा—पाणिनि ने अ० ४। पा० ३। सू० ११० में शैलालक की ओर संकेत किया है।

(४) शतबलाक्ष—पुराणों में इस नाम के भ्रष्ट रूप श्वेतबालाक या व्यलीक आदि हैं। निरुक्त ने 'श्वेतबलाक्ष मौद्गल्य' का उल्लेख किया है, वह निरुक्तकार भी हुआ।

(५) चतुर्थ शिष्य—शाकपूणि का चतुर्थ शिष्य कौन था, गज था वा कोई और, नहीं कहा जा सकता।

मीमांसा के शाबर भाष्य (१ । ३ । ११) में शबर स्वामी ने एक कल्प 'हास्तिक' लिखा है।

(६) वाष्कलि भारद्वाज—के सम्बन्ध में—ब्रह्माण्ड पुराण में जो नाम लिखे हैं उनमें—

त्वायनीय के स्थान में आपनाय, नन्दायनीय, कालाभूति, वालायनि आदि पाठ मिलते हैं। 'पन्नगारि' सम्भवतः शुद्ध है, पाणिनि ने (२ । ४ । ६१) में इसको प्राच्य देश का विद्वान् माना है। तृतीय नाम आर्जव है। जिसके भ्रष्ट पाठ कथाजव, तथाजप, कासार आदि पाठ हैं।

ऋग्वेदीय अन्य शाखाएं

कुछ शाखाएं पूर्व लिखित चरणो के अन्तर्गत नहीं है जैसे—

(१) ऐतरेय शाखा—इस शाखा का ब्राह्मण और आरण्यक उपलब्ध हैं, आश्वलायन गृह्य सूत्र की टीका मे प० हरदत्त ने लिखा है—

"ऐतरेयिणां च वचनं भवादिसर्वत्रसमानम् ।"

प्रतीत होता है कि इनके श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्रादि भी होगे । ऐतरेय मे अनेक मन्त्र-प्रतीक ऐसी है जो वर्तमान ऋग्वेद मे उपलब्ध नही है ।

(२) वासिष्ठ शाखा—ऋग्वेदियो का वासिष्ठ सूत्रो से सम्बन्ध ऊपर कह चुके हैं । वसिष्ठ का पुत्र शक्ति, शक्ति का पुत्र पराशर । पराशर की शाखा पूर्व लिख आये हैं । इसी परंपरा से व्यासदेव के पास ऋग्वेद आया होगा । चरण व्यूह मे वासिष्ठो की पद सख्या का भेद बतलाया है, 'चतुर्दश वासिष्ठानाम्' जिस पर टीका मे महीदास ने लिखा है कि वासिष्ठ गोत्रियो की सहिता में 'इन्द्रोतिभिः०' वर्ग के ७१ पद नही हैं । इसी प्रकार के भेद से यह भिन्न शाखा प्रतीत होती है ।

(३) सुलभ शाखा—सौलभ ब्राह्मण उपलब्ध है । इस सम्बन्ध मे और कुछ विदित नहीं है । 'सुलभा' नाम की राजकन्या बडी विदुषी थी, उसका सम्बन्ध इससे था या नहीं, नहीं कह सकते ।

(४) शौनक शाखा—'प्रपंच-हृदय' मे एक शौनक शाखा का उल्लेख है । इसका ऋग्वेदीय शौनकीय सूत्र भी उल्लिखित है । नेमिषारण्य-वासी शौनक 'बह्वृचसिंह' कहाते थे । बृहद्देवता और ऋक्-प्रातिशाख्य शौनक नाम से ही है । अथर्ववेदीय शौनक शाखा मे जो ऋग्वेदीय सूक्त मिलते हैं उनका क्या सम्बन्ध ऋग्वेद से या ऋग्वेदीय शौनक शाखा से है, नहीं कहा जा सकता ।

इस प्रकार हमने २७ शाखाओं के नाम लिखे हैं । ६ नाम

या तो अन्य किन्हीं शाखाओं में अन्तर्गणित करके २१ शाखा मान लेनी चाहियें।

इनके अतिरिक्त पाणिनि ने पाष्ठिक स्वरप्रकरण में 'कार्त कौजपादि गण' का पाठ किया है। जिसमें अनेक शाखाकारों का उल्लेख है। जैसे—

सावर्णि-माण्डुकेय, पैल श्यापर्णेय, कपि-श्यापर्णेय, शैतिकाक्ष-पांचालेय, कटुक-वार्चालेय, शाकल-शुनक, शाकल-सणक, सणक-बाभ्रव, आर्चाभिमौद्गल, बाभ्रव शालंकायन, बाभ्रव-दानच्युत, कठ कालाप, कौथुम-लौकाक्ष, मौदपैप्पलाद, सौश्रुत-पार्थव।

इन द्वन्द्व समस्त पदों में प्रायः समान समान कोटि के पदों का द्वन्द्वसमास है अर्थात् सौश्रुत-पार्थव, ये दोनों आयुर्वेद के दो सम्प्रदाय प्रतीत होते हैं, मौद पैप्पलाद ये दो अथर्ववेदीय आम्नाय हैं, कौथुम-लौकाक्ष सामवेदी दो सम्प्रदाय हैं। शेष जितने द्वन्द्व नाम हैं सबमें एक एक पूर्व परिचित ऋग्वेदीय सम्प्रदाय स्पष्ट है, अवश्य उसके साथ पठित दूसरा भी ऋग्वेदीय सम्प्रदाय ही है, ऐसा निश्चय होता है। जैसे 'माण्डूकेय' के साथ 'सावर्णि' है। सावर्णि मनु का कोई ऋग्वेदीय आम्नाय होगा, ऐसा प्रतीत होता है, मानव गृह्यसूत्र मिलता है। श्रौतश्रूत्र भी सम्भव है, और आम्नाय भी सम्भव है। 'कपि-श्यापर्णेय' द्वन्द्व पद में 'कपि', 'कापेय' को पाणिनि ने 'बोध्य' आङ्गिरस के साथ पढ़ा है। कापेय को पौराणिकों ने 'शापेय' कहा है।

'श्यापर्ण' आम्नायविदों का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के (अ० ३५) में आया है, वे प्रसिद्ध याज्ञिक थे, परन्तु उनकी उस समय मान-मर्यादा कुछ कम हो गई थी।

'शैतिकाक्ष-पांचालेय' में पांचालेय और बाभ्रव्य एक हैं, इनके साथ 'शैतिकाक्ष' सम्प्रदाय अनुसंधान का विषय है। 'कटुक-वार्चालेय' दोनों ही अभी अपरिचित से हैं। 'शाकल-शुनक' द्वन्द्व में दोनों ऋग्वेदीय

सम्प्रदाय हैं, शाकल शाखा का वर्णन ऊपर किया है, शौनकीयों के बृहद्देवता और ऋक्-प्रातिशाख्य हैं।

'शाकल-सणक' और सणक 'बाभ्रव' मे 'सणक' शब्द अपरिचित है, सनत्कुमार के भ्राता 'सनक' ऋषि का वर्णन पुराण मे है, यदि यह ऋग्वेद आम्नाय प्रवर्त्तक हुए तो यह एक गौरव की बात होगी। 'आर्चाभि मौद्‌गल' द्वन्द्व मे 'मौद्‌गल' के सम्बन्ध मे पूर्व लिख आये हैं। आर्चाभि आम्नाय का वर्णन निरुक्त में यास्क ने किया है। 'आर्चभ्याम्नाये' (निरु०) 'आर्चाभियो का अन्यत्र कई स्थलों पर उल्लेख है। 'बाभ्रवशालंकायन' मे बाभ्रव पांचाल का पूर्व वर्णन कर दिया है, 'शालंकायन' इतिहास प्रसिद्ध गोत्र रहा है, इस गोत्र के महामन्त्री रहे हैं। तो भी ऋग्वेदीय आम्नायो मे सालंकायन अनुसन्धान के योग्य है। इसी प्रकार 'बाभ्रव-दानच्युत' पद मे 'दानच्युत' आम्नाय खोज की अपेक्षा करता है।

शाखा-प्रवर्त्तक ऋषियों और शाखाओ का अनुसन्धान कर हम नीचे ऋग्वेदीय शाखाओ का अवधारण करते हैं—

१. शाकल, २. वाष्कल, ३. आश्वलायन, ४. शांखायन, ५. माण्डूकेय [माण्डूकायन], ६. साध्यायन [शाट्यायन], ७. औदुम्बर, ८. ऐतरेय, ९. कौषीतकी, १० शाकपूणि, ११. यास्क, १२. मुद्‌गल, १३. वात्स्य [वात्स्यासन],१४. शैशिरीय, १५. बाभ्रवीय, १६. पाञ्चगारि, १७, राथीतर, १८ वलाक (वालाकिः), १९. इन्द्रप्रमति (बासिष्ठ), २०. पैल, २१. अग्निमाठर, २२. जातुकर्ण्य, २२. गार्ग्य, इनमें से मुख्य मुख्य २१ शाखाओ का प्राय. उल्लेख होता है।

वर्त्तमान शाकल शाखा

वर्त्तमान में जो ऋग्वेद संहिताएं प्रचलित हैं उनमे से एक बम्बई मे छपी है, दूसरी मॉक्समूलर द्वारा सपादित है। दोनो के सूक्तक्रमों मे भेद हैं। पं० उमेशचन्द्र विद्यारत्न के कथनानुसार मुम्बई प्रकाशित

ऋक्संहिता आश्वलायन और मॅक्समूलर प्रकाशित वाष्कल शाखा है, ङ्गदेश में भी आश्वलायन शाखा का विशेष प्रचार है। वहां ऋग्वेद शाखाध्यायी विद्वानों को प्राप्त ताम्रलिपि दान-पत्र प्राप्त हुए हैं। परन्तु अधिक लोगों के विचार से प्रचलित वेदसंहिता शाकल शाखा है। इसी ऋग्वेद संहिता को सामान्य रूप से 'शाकल संहिता' वा 'शाकलक' कहते हैं। जैसा—

ऐतरेय ब्राह्मण में शाकल का उल्लेख है। अग्निष्टोम की स्तुति में लिखा है—

स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोमः। तस्य यथैव प्रायणम् तथा उदयनम्। तदेषा अभि यज्ञगाथा गीयते।

यदस्य पूर्वमपरं तदस्य यद्वस्यापरं तद्वस्य पूर्वम्।
अहेरिव हि सर्पणं शाकलस्य न विजानन्ति यतरत् परस्तात्॥

अर्थात् यज्ञक्रतु अग्निष्टोम प्रारम्भ और समाप्ति रहित प्रतीत होता है, जैसे रथचक्र। जैसे रथचक्र में, नहीं कह सकते, कौनसा भाग प्रारम्भ और कौनसा अन्त का है उसी प्रकार अग्निष्टोम यज्ञ का जैसा 'प्रायण' अर्थात् प्रारम्भ की इष्टि है उसी प्रकार 'उदयन' अर्थात् समाप्ति की इष्टि है। इसी ही आशय की यज्ञ सम्बन्ध में एक गाथा अर्थात् श्लोक गाया जाता है, जो ही इसका पूर्व भाग है वही इसका पिछला भाग है। जो इसका पिछला भाग है वही इसका पूर्व भाग है। (अहेः) साप की गति के समान शाकल की गति है, विद्वान् जन नहीं जानते कि उसका कौनसा भाग अगला और कौनसा भाग पिछला है।

आचार्य सायण के मत में शाकल सर्प विशेष का नाम है। शाकल नाम का सांप चलने के समय अपनी पूंछ को मुख से पकड़ कर कुण्डल सा बन जाता है, उस समय उसकी पूछ और मुख नहीं पहचाना जाता। इसी प्रकार का यह यज्ञ है।

अन्य विद्वान्* इस स्थान पर शाकल का अर्थ सर्प विशेष न जान कर शाकल प्रोक्त ऋग्वेद या शाकल्य की शिक्षा, सूत्र आदि मानते हैं और अहि का अर्थ सूर्य, मेघ आदि मानते हैं। हमें इस स्थान पर सायण का कथन युक्तिसगत प्रतीत होता है। और श्लेपवृत्ति से यहों शाकल्य-प्रोक्त यज्ञ कर्मकाण्ड भी प्रतीत होता है, इसमे भी सदेह नही।

पाणिनि सूत्र शाकलाद्वा (पा० ४ । २ । १२८) से भी 'शाकल' ऐसा शिद्ध होता है। शाकल शास्त्र, शाकल सघ आदि प्रयोग गतार्थ होते हैं। इस स्थान पर महर्षि दयानन्द ने 'शकलात् वा' पाठ माना है। यञन्त शकल शब्द से वैकल्पिक अण् करके 'शाकल, शाकलक' दो प्रयोग साधते हैं। दूसरे वैयाकरण गर्गाद्यन्तर्गत कण्वादि गण में पढ़े अञन्त शकल शब्द से कण्वादिभ्यो गोत्रे (४ । २ । ११ । १) से अण् करके 'शाकलाः' साधते हैं।

अब प्रश्न यह है कि ऋग्वेद के सर्वानुक्रमणीकार ने जो 'ऋग्वेदाम्नाये शाकलके' यह प्रयोग दिया है इसका क्या अभिप्राय है शाकल्य प्रोक्त ऋग्वेद या कुछ और पदार्थ ?

शकलात्। वा ॥ सूत्र के व्याख्यान से 'शाकल' से शाकल्य का प्रोक्त लक्षण या शास्त्र ही सूचित है। शाकल्य ने कौनसा शास्त्र कहा ? वेदमन्त्र तो नित्य ही हैं। उनको वह क्या रचेगा ? प्रत्युत उस पर पद-पाठादि का उपदेश प्रवचनादि कर सकता है। फलतः शाकल्य ने ऋग्वेद के पदपाठ तथा उच्चारण आदि के जो विशेष नियम निर्धारित किये वही समस्त 'शाकल' या 'शाकलक' कहाया, इसके ही उपचार से ऋग्वेद संहिता भी उसी नाम से कही जाती है। जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

* १ श्री हरिप्रसादजी, २ श्री भगवद्दत्तजी बी० ए०

† महाभाष्य (४ । १ । १८)

तत्राम्नाये सम्यगभ्यासयुक्ते खिलरहिते शाकलके। शाकस्यस्योच्चारणं शाकलकम्।* शाकल्य ने संहिता को नहीं बनाया। प्रत्युत पदपाठ का अन्यों से भिन्न उपदेश किया है। अन्य शाखाप्रवर्त्तकों के पदपाठों और व्याख्यानो से शाकल्यकृत पदपाठ और व्याख्यान अवश्य भिन्न भिन्न रहे हैं, जैसा कि शौनकीय ऋक्-प्रातिशाख्य में भिन्न भिन्न आचार्यों के मतों को दर्शाया है। और वह मतभेद प्रायः पदपाठ और उच्चारण योग्य संहिताध्ययन में है। जैसे—शौनकोक्त ऋग्वेदीय प्रातिशाख्य में—

१. उकारश्चेतिकरणेन युक्तो रक्तोऽपृक्तो द्राघितः शाकलेन।
　　१।१।२६॥

शाकल आचार्य ने 'उ' इस निपात को पदपाठ मे इति के योग में प्रायः अनुस्वारसहित दीर्घ कर दिया है।

संहिता मे है अवेद्विन्द्रं जल्गुलः' (ऋ० १।२८।४)। पदपाठ है अव। इत्। ऊँ इति। इन्द्र। जल्गुलः। यहां 'ऊँ इति' ऐसा पद-शाकल्य सम्मत है। यही बात पाणिनि ने स्वीकार की है उञः ऊँ॥ पा० १।१।८॥ उ को ऊँ आदेश हो शाकल्य के मत में।

२. तत् त्रिमात्रे शाकला दर्शयन्ति।
　　आचार्यशास्त्रापरिलोपहेतवः।१।१।२६।

शाकल्य के शिष्य, आचार्य-शास्त्र की रक्षा के लिये, अन्तिम विप्रुत को सानुस्वार कर देते हैं, जैसे 'नत्वा भीरिव विन्दँती' । ऋ० १०। १४६।१॥

३. क्वचित् स्थितौ चैवमतोऽधिशाकलाः
　　क्रमे स्थितोपस्थितमाचरन्ति।२।५।५॥

संहिता क्रम मे पदपाठ 'स्थिति' कहाती है। पद के पीछे 'इति'

* शाकल्येन दृष्टः शाकल शाकल एव शाकलकः। इति क्वचित्।

लगाना 'उपस्थिति' है। शाकल सम्प्रदाय के विद्वान् क्रम से पढ़े हुए पद-पाठ के साथ ही साथ 'इति' सहित पद भी पढ़ देते हैं।

इत्यादि निदर्शनो से हमने स्पष्ट कर दिया कि ऋग्वेद की शाकल आदि शाखाओं के प्रवर्त्तक पदपाठ आदि के विशेष प्रवक्ता थे। वेद को बनाने या अपने मनमाना वेद-संहिता को विकृत करने वाले नहीं थे। संहिता के पदपाठो मे भिन्न-भिन्न आचार्य के मतों में भेद होना स्वाभाविक है। जैसा कि निरुक्तकार यास्क [निरु० ६। २८] ने शाकलकृत पदपाठ (ऋ० १०। २९। १) का स्वयं खण्डन किया है।

'वनेन वायो न्यधायि चाकन्।' वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमासश्चार्थः।

अर्थात् शाकल्य ने 'वायो' पद का 'वा और यः' ऐसा छेद किया, सो ठीक नहीं है। इसी प्रकार शाकल्य के अतिरिक्त अन्य शाखाप्रवर्त्तको के विषय में जानना चाहिये कि वे वेद की संहिता को बनाने या रूपान्तर करने वाले नहीं थे, प्रत्युत मन्त्र के ऊपर विचार करके पदपाठ, तदनुसार निर्वचन और व्याख्या प्रकट करने वाले और मन्त्रों मे नाना सत्य तत्वों का साक्षात् करने वाले ही ऋषि जन, शाखा प्रवर्त्तक थे। उनके ही उपदिष्ट व्याख्यागत पर्याय शब्दों को पिछले शिष्यो ने संहिता का रूप देकर स्थान स्थान पर पाठभेद कर दिया है। पाठभेद होने के और भी बहुत से कारण हैं जिनमें लेखक का प्रमाद तथा वक्ता और श्रोता जनो का मुखोच्चारण और श्रवण में दोष होना भी बहुत कारण हैं। जहां जहा भी पाठभेद दिखाई देते हैं वहां वहां इस प्रकार के कारणों की खोज होनी चाहिये और शुद्ध वेद-संहिता का स्वरूप निर्धारित कर लेना चाहिये।

श्री महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य मे नाना स्थलों पर प्रायः वेद मन्त्र की संहिता को साम्प्रदायिक पाठ-विकृति से बचाया है। परन्तु वैदिक यन्त्रालय के कर्त्ता-धर्त्ता जन मूल संहिताओं मे महर्षि दयानन्द के

इस स्तुत्य कार्य की रक्षा नहीं कर सके। यह तथ्य मुझे भी बहुत देर बाद पता लगा है, अतः हमारी प्रकाशित मन्त्र-संहिता में भी हम उसका पालन नहीं कर सके। उदाहरणार्थ, वह्वृच-शाखाध्यायी प्रायः ड, ढ को ळ और 'ह्ळ' पढ़ते हैं। परन्तु महर्षि के वेदभाष्य के साथ छपी मन्त्र संहिता में स्थान स्थान पर ढ का ही प्रयोग किया है, ळ, ह्ळ का नहीं। जैसे—प्रोढः समुद्रमव्यथिः० (ऋ० १।१७।१५)। ऐसे तथ्यों पर अभी और अनुशीलन होना चाहिये, तभी शुद्ध वेद की संहिता का स्वरूप प्राप्त होगा, अस्तु।

ऋग्वेद का मन्त्र-परिमाण

यह एक विवादास्पद एवं विचारणीय विषय है। शाखाओं के विवेचन में हमने बतलाया है कि उनमें सूक्तों के क्रम में भेद है, कहीं सूक्तों की मन्त्रसंख्या में भी भेद होना प्रमाणित होता है, कइयों में कोई सूक्त हैं, कोई नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वेद की शाखाओं की मन्त्र-संख्या में भी भेद होगा, सूक्त-संख्या में भी भेद होगा तो पूर्ण ऋग्वेद कितना होना चाहिये? इसका सामान्य समाधान तो यही है कि वेद का स्वतः एक स्थिर परिमाण होना उचित है। उसको किसी ने घटाया बढ़ाया नहीं, गुरु वा आचार्यों ने शिष्यों को उपदेश किया। वे उसको याद कर लेते थे। इस प्रकार स्मृति-शक्ति न्यूनाधिक हो जाने से सूक्तों और मन्त्रों की संख्या का भेद होना सम्भव है। पुराणकारों ने जो स्थान स्थान पर लिखा है कि अमुक ने तीन संहिता कीं, चार संहिता कीं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने संहिता में गड़बड़ कर दी, प्रत्युत उसका अभिप्राय केवल यह है शिष्य-भेद से जो कुछ भेद हो गया, उससे संहिता का शाखा-भेद हो गया अर्थात् शाखा में शिष्य की विशेषता कारण थी, न कि संहिता भेद करने में गुरु की भेदकारिणी विशेष बुद्धि। वस्तुतः वेद तो एक ही था। तब उसका परिमाण भी एक समान सर्वत्र नियत होना आवश्यक है।

इसी सम्बन्ध मे शतपथ ब्राह्मण का वचन है कि—

बृहतीसहस्राण्येतावत्यो हर्चः प्रजापतिसृष्टाः ।

अर्थात् प्रजापति ने ऋचाओं का व्यूहन किया तो १२ सहस्र बृहती परिमाण समस्त ऋचाएं थी । अर्थात् ऋचाओ का पूर्ण परिमाण १२००० × ३६ = ४३२००० अक्षर थे ।

तदनुसार ही अनुवाकानुक्रमणी मे लिखा है—

चत्वारि शतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि ।

अर्थात् ऋचाओ के समस्त अक्षर ४३२००० है और ऋचाओ की संख्या बतलाई है—

ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पंच शतानि च ।
ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥

ऋग्वेद पारायण—पाठ मे कुल १०५८० ऋचा और एक पाद है । यह पारायण समस्त शाखा ऋग्वेद का है । यही पारायण चरण-व्यूहकार ने भी माना है । ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य के प्रारम्भ की भाषा-भूमिका मे ऋग्वेद के कुल मन्त्रों की गणना १०५८९ दी है । साथ ही समस्त मण्डलो की सख्या दी है उनको जोड़ने से संख्या केवल १०५२१ ही आती है । यह भेद किस प्रकार है ?

आर्थर मेकडानल्ड का कथन है कि ऋषि दयानन्द ने ८ वें मण्डल के २० वें सूक्त में २६ के स्थान मे भूल से ३६ मन्त्र गिने है और ९ वें मण्डल मे ११०८ के स्थान मे १०९७ सख्या लिखी है । इस प्रकार ११ कम गिनी है, एक ऋचा का भेद रहता है । अर्थात् कुल मन्त्र १०५२२ होने चाहियें । यदि द्विपदा ऋचाएं १२७ और भी जोड़ ली जायं तो सब मिला कर १०५६९ हो जाती हैं । तब अनुवाकानुक्रमणी ने १०५८० मन्त्र और १ पाद सख्या कैसे लिखी ।

इस सम्बन्ध में पु० मेकडानल्ड की भूल तो यह है कि ऋग्वेद के (५ । २०) सूक्त की संख्याओं को दो बार दुगुना किया। इस प्रकार ४ संख्या कम करने पर मैकडानल्ड की संख्या १०५६५ रह जाती है, अस्तु।

स्वा० दयानन्द सरस्वती के गणित-संख्या १०५२१ में से १४० द्विपदा की आधी ऋचाओं में से (५ । ५४) की दो कम करके ६८ और जोड़ी जावें तो समस्त संख्या १०५२१+६८=१०५८९ हो जाती हैं। इस प्रकार के संख्या-वैषम्य पर अभी बहुत सी बातें विचारणीय हैं, मैं अभी किसी नियत निश्चय पर नहीं हूँ।

कश्यप दृष्ट लुप्त वेद

बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी तथा सायण और स्कन्द स्वामी आदि ने १ । ९९ सूक्त की भाष्य की उत्थानिका में लिखा है कि उक्त सूक्त से आगे १००० सूक्त थे, उनमें क्रम से एक २ मन्त्र बढ़ता जाता था। षड्गुरुशिष्य के लेखानुसार ये ऋचाएं।

ऋचस्तु पंचलक्षा स्युः सैकोनशतपंचकम्।

संख्या में ५००४९९ थीं। स्कन्द के कथनानुसार इनका अध्ययन छूट गया है, अतः ये लुप्त हो गईं। परन्तु इनकी सत्ता सुनी जाती है, देखी नहीं है। इन १००१ सूक्तों का आदि मन्त्र १ ऋचा वाला 'जातवेदसे०' (म० १ । सू० ९९) वेद में विद्यमान है।

यदि इन पांच लक्ष चार सौ उनतीस मन्त्रों को लुप्त वेद मान लें तो एक लक्षात्मक वेद मानने वालों का मन्तव्य भी कट जाता है। परन्तु जिन ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठ करके रक्खा, उन्होंने इस 'काश्यप वेद' की उपेक्षा कर दी हो, ऐसा विदित नहीं होता। अवश्य वे ऋचाएं

वर्तमान वेद का मूलभाग न थीं, प्रत्युत व्याख्यान रूप से थीं। तभी षड्-गुरु-शिष्य ने लिखा है "खिलसूक्तानि चैतानि" ये खिल सूक्त थे। ऋग्वेद के अनेक सूक्त हैं, परन्तु उनको संहिता में स्थान नहीं मिला। इसी लिये उनका अध्ययन छूट गया है। वे मन्त्र उसी प्रकार थे जैसे उपनिषदों, ब्राह्मणों में अनेक ऋचाएं हैं जो मूल संहिता में नहीं पढ़ी जाती हैं।

दाशतयी।

ऋग्वेद संहिता के दश मण्डल होने से इसको 'दाशतयी' कहते हैं। अध्याय, वर्ग, क्रम से इसमें ६४ अध्याय थे और मण्डल-अनुवाक-सूक्त क्रम से दश मण्डल रहे, सब शाखाओं में यह समान विभाग था।

छन्द, ऋषि और देवता

छन्द के विषय में ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त प्रतीत होता है कि—

अक्षराण्येव सर्वत्र निमित्तं बलवत्तरम्।
विद्याद् विप्रतिपन्नानां पादवृत्ताक्षरे ऋचाम्॥
(ऋ० प्राति० १७। ३५॥)

छन्दों के पाद, छन्द और अक्षरों द्वारा यदि परस्पर विप्रतिपत्ति अर्थात् मतभेद उपस्थित हो तो सर्वत्र अक्षरों को ही निमित्त मान कर छन्द निर्णय कर लेना चाहिये। तदनुसार ही ऋषि दयानन्द ने सर्वत्र छन्दों का प्रतिपादन किया है। जहां छन्दों में विविध मत हैं वहां सन्दिग्-युक्त स्थलों में व्यूहादि का विचार करके या पूरणार्थक 'इत्यादि' का निर्देश करके मतान्तर का निर्देश कर दिया है। छन्दोज्ञान के लिये पिंगल तथा ऋक् प्रातिशाख्य में १७ वां पटल उत्तम है।

ऋषि और देवता विषय मे ऋषि दयानन्द का मत है कि जड़ पदार्थं ऋषि नहीं हो सकते, इसलिये संवाद सूक्तों मे नदी आदि जड पदार्थों को ऋषि मानना असंगत है। इसी प्रकार संवाद सूक्तों मे ऐतिहासिक व्यक्ति देवता नहीं हो सकते, वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। इनके अतिरिक्त स्थलों में देवता का इतना मत-भेद नहीं। देवता सम्बन्ध मे आर्यं वेदज्ञों को बृहद्देवता के समान देवता-प्रदर्शक पृथक् एक ग्रन्थ बनाना चाहिये।

प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य में हमने यथासम्भव सरल, सुबोध भाषा में वेदमन्त्र-गत ज्ञान को प्रकट करने का यत्न किया है। इन खण्डों में हम पाठकों की सेवा में वेदमन्त्रों में कल्पित इतिहासों की आलोचना स्थानाभाव से नहीं कर सके। केवल शाखा-भेद आदि की विवेचना कर सके हैं। ऋग्वेद के सम्बन्ध में अभी सहस्रों बातें ज्ञातव्य और विवेचना योग्य है। जिनमें से सबसे मुख्य वेदमन्त्रों मे कल्पित इतिहास है। इसकी विवेचना हम पृथक् ग्रन्थ मे करेंगे। ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान विस्तृत विषय सूची से यथावत् हो जावेगा। भाष्य मे भी स्थान स्थान पर नाना रहस्यों को खोल दिया है, जिसकी सूचना विषय-सूची मे ही दे दी गयी है। पाठक जन वहां ही देखें। ऋग्वेद पर हमें एक सायण भाष्य, दूसरा महर्षि दयानन्दकृत भाष्य के अतिरिक्त स्कन्द स्वामी, व्यंकटमाधव आदि के खण्ड-भाष्य भी देखने को मिले, अंग्रेजी, बंगला और मराठी के अनुवाद भी देखे है। वे सब सायण को नहीं छोड सके। महर्षि दयानन्द ने अपने पदार्थ-भाष्य मे बहुत अधिक कौशल दर्शाया है। जिसको भाषान्तरकार नहीं निभा सका। स्थान स्थान पर वाचक-लुप्तोपमा आदि की सूचनाओं को दृष्टि में रख कर ऋग्वेद का सरल अर्थ तथा उपमा के बल से प्राप्त पक्षान्तरों में नाना प्रकार के श्लेषमूलक अर्थों का चमत्कार देखना आव-

श्यक है, जिसको दर्शाने का थोडा सा यत्न प्रस्तुत आलोक-भाष्य में किया है। इसमें भी कितना ही लेख्य विषय जो मन्त्र के आशय को स्पष्ट करता है, विस्तार-भय से सर्वथा छोड़ दिया गया है।

महर्षि दयानन्द की बनाई 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' मे बहुत से वेद विषयक प्रश्नो को सरल कर दिया है, उनको पुनः दोहराना पिष्ट-पेषण जानकर इस भूमिका मे स्थान नही दिया गया। वे ज्यो के त्यो वहा से ही देख लेने चाहियें।

तृतीय संस्करण

मुझे इस बात का सन्तोष है कि मेरे जीवन-काल मे ऋग्वेद के प्रथमाष्टक के आलोक-भाष्य का तृतीय संस्करण हो गया है। इसकी भूमिका में कुछ अशों की वृद्धि की गई है। नवीन अनुसन्धान व आवश्यक ज्ञातव्य बातें इसमे और जोडी गई हैं। शाखा आदि के सम्बन्ध मे श्री प० भगवद्दत्तजी बी० ए० वैदिक अनुसन्धान-विशेषज्ञ (माडल टाउन, लाहोर) ने वेद-शाखाओं पर 'वैदिक वाङ्मय के इतिहास' के प्रथम भाग में बहुत अच्छा विवेचन किया है। मैं उनसे अनेक अशों में सहमत हूँ। इसलिये मैं उनका विशेष आभारी हूँ। शाखासम्बन्ध में अभी अनेक अंश अस्पष्ट, विवादास्पद और अनिर्धारित हैं। जिनको हमने भूमिका में नहीं दिया, कालान्तर में उनकी सामग्री संकलित की जावेगी।

उस अपार ज्ञानमय प्रभु की परम रहस्यमय वाणी के सहस्रों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक रचनाओ और यज्ञों के रहस्यों का विवरण मुझ सा तुच्छ व्यक्ति क्या कर सकता है? तो भी देवतुल्य विद्वान् जनों की सेवा में जो भी 'पत्र-पुष्प' रूप से निवेदन कर दिया है, हमें आशा है, वे उससे ही प्रसन्न होकर सन्तोष व हर्ष प्रकाश करेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे वेदानुशीलनरूप यज्ञ में सफल करे।

सज्जनों को तो क्या कहूँ । केवल—

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि ।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

प्रथम संस्करण—पौष शुक्ला दशमी, १९८७ वि०
द्वितीय संस्करण—चैत शुक्लाष्टमी, २००० वि०
तृतीय संस्करण—माघ शुक्ला पञ्चमी, सं० २००८ वि०

विद्वानों का अनुचर—
जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ,
आदर्श नगर, अजमेर ।

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)

प्रथमं मण्डलम् । प्रथमोऽष्टकः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सू० [१]—परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा, विद्वान्, भौतिक अग्नि और यज्ञाग्नि का वर्णन । (२) स्तुत्य उपास्य परमेश्वर, पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन । (३) ईश्वर और राजा । (४) व्यापक परमेश्वर और राजा । (५–९) परमेश्वर, ज्ञानी, विद्वान् पुरुष का वर्णन। (पृ० १–६)

सू० [२]—ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुति, आचार्य और भौतिक वायु का वर्णन । (५–६) सूर्य, वायु के समान माता, पिता, गुरु, आचार्य, वायु और इन्द्र का वर्णन । (७–९) मित्र और वरुण नाम के वायु, सूर्य, प्राण, अपान, न्यायाधीश और राजा । (पृ० ७–११) मित्र

सू० [३]—(१–३) अश्वि नाम से रथी और अश्वारोही, जल और अग्नि, सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति, दिन, रात्रि, पृथिवी और अग्नि का वर्णन । पुष्करस्रक् अश्वियों का रहस्य । (४–६) सूर्य के समान राजा के कर्त्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (७–९) विद्वानों और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य । (१०—१२) वेदवाणी का वर्णन । (पृ० ११–१७)

सू० [४]—गौ के दृष्टान्त से विद्वान् पुरुष और परमेश्वर की उपासना । (२–१०) राजा के कर्त्तव्य और परमेश्वर का वर्णन । (पृ० १७–२०)

सू० [५]—ईश्वर का वर्णन, राजा के कर्त्तव्य। (७) पक्षान्तर में जीव का वर्णन। (पृ० २०—२३)

सू० [६]—परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर मे सूर्य, राजा का वर्णन, योगी के योगाभ्यास का वर्णन। (३-४) जीव आत्मा का वर्णन। (पृ० २३-२७)

सू० [७]—परमेश्वर। पक्षान्तर में राजा। (पृ० २८—३१)

सू० [८]—परमेश्वर, राजा, सेनापति। (६) नायक विद्वान् पुरुषो के कर्त्तव्य। (८) पृथ्वी के समान वेद-वाणी का वर्णन। (९) ईश्वर की विभूतियें। (१०) ईश्वर की स्तुति। (पृ० ३१—३४)

सू० [९]—सूर्य के दृष्टान्त से राजा और परमेश्वर का वर्णन। (२) जल तत्व की साधना। राजा के कर्त्तव्य। अध्यात्म समर्पण। राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश। (पृ० ३४—३८)

सू० [१०]—सर्वोपरि स्तुत्य परमेश्वर। (२) सर्वद्रष्टा, सुख-वर्षक, सर्वज्ञ। पक्षान्तर मे आत्मा, सूर्य। (४) गुरु आचार्य के कर्त्तव्य। (५) शिष्य को शिष्टाचार का उपदेश। (६) 'शक्र' शब्द की व्याख्या, (७-८) परम गुरु ईश्वर। सर्ववशीकर्त्ता प्रभु। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। सर्वस्तुत्य परमेश्वर। (११) पक्षान्तर में पञ्च-कोष-युक्त जीव का वर्णन। (पृ० ३८—४४)

सू० [११]—महारथी के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में राजा, सेनापति। (५) आत्मा का वर्णन। (पृ० ४४—४७)

सू० [१२]—जगत् कर्त्ता, सर्वज्ञ, परमेश्वर का अग्नि, दूत, विश्पति आदि नामों से वर्णन। पक्षान्तर में सूर्य, अग्नि, तेजस्वी पुरुष, राजा आदि का वर्णन। (पृ० ४७—५१)

सू० [१३]—परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में विद्वान् जठराग्नि,

भौतिक अग्नि, आत्मा का वर्णन। (५) आत्मा गृहस्थ और राष्ट्र पक्ष का विवरण (६) द्वारो और सेनाओं का वर्णन। (७) दिन और रात्रि के समान स्त्री पुरुष और दो राज्य-सस्थाओं का वर्णन। (८) दो विद्वान्। (९) तीन देवियों का विवरण। (१०) ससार का कर्त्ता विश्वरूप त्वष्टा। (११) ऊखल के दृष्टान्त से वनस्पति नाम से ईश्वर की स्तुति। (१२) यज्ञ। (पृ० ५१–५८)

सू० [१४]—ईश्वरोपासना। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (४–७) वीर विद्वानो और योगियों का वर्णन। (८) वषट् कृति। (९) ईश्वर से ज्ञान और (१०–१२) सुख प्राप्ति। पक्षान्तर में राजा का वर्णन। (पृ० ५८–६४)

सू० [१५] सूर्य के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। वायुओं के दृष्टान्त से वीरों, विद्वानों का वर्णन। (३–६) गृहस्थों के कर्त्तव्य। विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। द्रविणोदस् नाम ऐश्वर्यवान् पुरुषों का वर्णन। (११) राजा रानी, प्राण अपान का वर्णन। (१२) गृहपति की राजा से तुलना। (पृ० ६४—६९)

सू० [१६]—परमेश्वर उपासक, राजा, विद्वान् जन, आत्मा और प्राण गण का वर्णन। (२) सूर्य, चन्द्र के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (३) प्रातः ईश्वर स्मरण। (४) स्वप्रकाश परमात्मा का दर्शन। (५) पिपासित भक्त का ईश्वर को रस रूप से स्मरण। (६) महाशक्तिमान् सर्वधारक प्रभु। (७) शान्तिप्रद। (८) आनन्द-रसमय। (९) काम-पूरक प्रभु। पक्षान्तर में राजा का वर्णन (पृ० ७०–७३)

सू० [१७]—इन्द्र, वरुण, राजा और सेनापति। अध्यात्म में जीव परमेश्वर। पक्षान्तर में अग्नि और जल। (८–९) इन्द्र, वरुण-वायु और जल। (पृ० ७३–७६)

सू० [१८]—ब्रह्मणस्पति वेदज्ञ विद्वान् । आचार्य, परमेश्वर, राजा । (६) सदसस्पति, सभापति । (९) नाराशंस, सर्वस्तुत्य परमेश्वर। (पृ० ७६–८०)

सू० [१९]—अग्नि, विद्वान्, परमेश्वर, राजा, भौतिक अग्नि का वर्णन । (४–९) अग्नि, अग्रणी राजा और मरुत् वीर भटो का वर्णन। (पृ० ८०–८३)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२०]—ऋभुगण, विद्वान् ज्ञानी ईश्वरोपासक जन, शिल्पी जन । (६) देवकृत चमस का वर्णन । (७) इक्कीस प्रकार के रत्नो का धारण । (पृ० ८३–८६)

सू० [२१]—इन्द्र और अग्नि अर्थात् वायु और आग, अग्नि और सूर्य के समान सेनापति और राजा । पक्षान्तर मे परमेश्वर । (६) राज-प्रजावर्ग को सावधान रहने का आदेश । (पृ० ८७–८९)

सू० [२२]—दो अश्वी, स्त्री पुरुष, दो उत्तम अधिकारी, राजा रानी, अग्नि जल, अध्यात्म मे आत्मा, परमात्मा । (५) सविता, जगदुत्पादक परमेश्वर, राजा । (७) चित्र वसु के विभक्ता का स्मरण । सबकी मिलकर स्तुति । राष्ट्रपालक संस्थाओ और गृहपत्नियो की प्राप्ति। (१०) भारती, वेदवाणी । (११) सेना और गृह-पत्नियो के कर्त्तव्य। (१२) इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, तीन शक्तियों का वर्णन । पक्षान्तर में गृहपत्नी का वर्णन । (१३) पृथिवी, शासन और गृहस्थ का वर्णन। (१४) राजा प्रजा का व्यवहार । (१५) पृथ्वी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन । (१६) परमेश्वर, राजा । (१७–२१) विष्णु, परमेश्वर । (पृ० ८९–९८)

सू० [२३]—सोम, जीवगण, वीरजन विद्वानों के कर्त्तव्य । (३) सहस्राक्ष इन्द्र वायु की व्याख्या । (४) मित्र, वरुण, प्राण और अपान की

साधना, मित्र, वरुण या वायु और सूर्य दो अधिकारी। (६) राजा, न्यायाधीश। (७) मरुत्वान् इन्द्र, सेनापति। (८) मरुद्गण वीर पुरुष, इनकी वायु से तुलना। (९) वायु, विद्युत् वृष्टि द्वारा युद्ध वीरों के कर्त्तव्य। (१०) उग्रो का वर्णन। (११) विजयी वीर। (११-१५) राजा का वर्णन। (१६-२७) आप्त पुरुषो, जलों और प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (२४, २५) गुरु शिष्य का वर्णन। (पृ० ९८-१०६)

सू० [२४]—जीव का प्रभु-स्मरण। पुनर्जन्म, ईश्वर से उत्तम ऐश्वर्य की प्रार्थना। (६) सबसे महान् प्रभु। (७) राजा, वरुण, सूर्य, परमेश्वर। राजा के कर्त्तव्य। (१२-१४) शुनः-शेप अर्थात् सुखाभिलाषी मुमुक्षु बद्ध जीव की प्रार्थना। (पृ० १०७-११२)

सू० [२५]—वरुण, परमेश्वर और राजा के प्रति भक्तों और प्रजाओं की प्रार्थना। राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् पुरुष। (पृ०११२-११९)

सू० [२६]—विद्वान् पुरुषों की सेवा। परमेश्वर से प्रार्थना। अग्नि, विद्वान्, राजा, नायक, परमेश्वर। (पृ० ११९-१२२)

सू० [२७]—अग्नि, सम्राट् के कर्त्तव्य। भौतिक अग्नि, परमेश्वर और विद्वान्। पराक्रमी सेनापति, विद्वान् नायक। (१२) विश्पति बृहद्भानु। (१३) सबका यथायोग्य आदर। (पृ० १२३-१२७)

सू० [२८] उलूखल के दृष्टान्त से विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा के कर्त्तव्य। गृहस्थ स्त्री पुरुषो के कर्त्तव्य। सारथि के दृष्टान्त से गृहस्थों के कर्त्तव्य। राजा नायक को उपदेश। (पृ० १२७-१३१)

सू० [२९]—राजा और परमेश्वर से ऐश्वर्यों की प्रार्थना। (८-९) राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १३१-१३३)

सू० [३०]—वीर पुरुषों का सेनापति या नायक से सम्बन्ध। (६) संग्रामार्थ सेनापति की प्रधान पद पर प्रतिष्ठा। (१२) प्रजाओं की

आशाएं। (१४–१५) अक्ष या धुरे के दृष्टान्त से मुख्य पुरुष का कर्त्तव्य। (१६) अक्ष के दृष्टान्त से सेनापति का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर। (१७) अश्वावती शवीरा का रहस्य। सेना द्वारा शत्रु पर आक्रमण। दो अश्वी दो नायक। पक्षान्तर में देह में प्राण-अपान। (२१) दो शिल्पियों के दृष्टान्त से अध्यात्म तत्व। (२०–२०) विभावरी, ईश्वरीय शक्ति। चित्रा, अश्वा और दिवो-दुहिता का रहस्य। (पृ० १३३–१४२)

सू० [३१]—अग्नि, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर से विद्वानो की ज्ञान-प्राप्ति, राजा के राज्य मे विद्वानो के प्रति कर्त्तव्य। (३)ईश्वर का महान् सामर्थ्य। (४) ईश्वर और आचार्य के कर्त्तव्य। (६) पापनाशक प्रभु। (७) मोक्षप्रद, सर्वोत्पादक। पक्षान्तर मे राजा और विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में—देह में स्थित प्रजोत्पादक वीर्य का वर्णन। सर्वैश्वर्यप्रद, ज्ञानप्रद पिता और कवच के समान रक्षक। (१६) शरण्य। (१७) सर्वगुण सम्पन्न। (पृ० १४२–१५४)

सू० [३२]—सूर्य, वायु, विद्युत् और मेघ के वर्णन से वीर सेनापतियों के कर्मों का वर्णन। वृष्टि-विद्या का वर्णन। वृत्र-हनन का रहस्य। (पृ० १५४–१६२)'

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३३]—ज्ञानवर्धक, रक्षक प्रभु की शरणप्राप्ति। पक्षान्तर मे आचार्य, राजा। (३) वीर योद्धा का शत्रु विजय, सेनापति। (१२) शुष्ण और इलीविश का रहस्य। (१३–१५) योद्धा और वृषभ की तुलना। (१६२–१७०)

सू० [३४]—विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (१) परस्पर विवाह, स्वयं वरण। (२) मधुवाह त्रिचक्र रथ का रहस्य। (३–६) स्त्री पुरुष, राजा, मन्त्री, रथी, सारथि का वर्णन। (७) प्रथम विवाहित स्त्री पुरुषों का

प्रथम तीन रात्रि ब्रह्मचर्य पालन। (८) यज्ञ द्वारा वायु शुद्धि का आदेश। (९) त्रिवृत त्रिचक रथ। (१०–१२) स्त्री पुरुषों को उत्तम जल, अन्न, दीर्घ जीवन, ऐश्वर्य प्राप्ति आदि का उपदेश। (१७०-१७७)

सू० [३५]—(१) परमेश्वर का नाना रूपों में स्मरण। (२) सूर्य के दृष्टान्त से सर्वसाक्षी ईश्वर का वर्णन। (३) सूर्य, वायु और वीर के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन। (४) विश्वरूप। (५) सर्व भुवनाधार, सर्वोत्पादक प्रभु। (६) तीन द्यौ का वर्णन। (७–१) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी सुपर्ण रूप से राजा का वर्णन। (१७७–१८३)

सू० [३६]—ईश्वर और राजा का अग्नि रूप से वर्णन। अग्नि, अग्रणी नायक। (३४) विद्वान् ज्ञानी का दूत और होता रूप से वरण। (५) गृहपति और राजा की तुलना। राजा में सब देवांशों की सत्ता। (६) नायक, राजा, परमेश्वर का समान रूप से वर्णन। (७) स्वराट् की उपासना। (८) शत्रुओं का दमन। (९) अग्नि के समान राजा की तेजस्वी स्थिति। (१०–११) राजा को विद्वानों का साहाय्य। (१२) राजा का ऐश्वर्य द्वारा प्रजा को सुखी करने का कर्त्तव्य। (१३) राजा का सर्वोच्चपद। (१४–१९) प्रजाभक्षकों का दमन और दुष्टों से प्रजा की रक्षा। (पृ० १८३–१९१)

सू० [३७]—मरुद्गणों, वीरों, विद्वानों का वर्णन। वायुओं के दृष्टान्त से वीरों का वर्णन। (९) वायुओं के दृष्टान्त से देहगत प्राणों तथा वीरों का वर्णन। (पृ० १९१–१९६)

सू० [३८]—मरुद्-गणों, वीरों, विद्वानों, वैश्यों और प्राणों का वर्णन। (पृ० १९६–२०१)

सू० [३९]—मरुद्-गण, वायुओं, प्राणों, विद्वानों का समान रूप से वर्णन। (६) 'पृषतीः' का रहस्य। (पृ० २०१–२०५)

सू० [४०]—बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्यों का वर्णन। राजा, सभापति और सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) स्त्री का उन्नत पद। (४) कन्यादान, भूमिदान। (५) आचार्य और ईश्वर का ज्ञानोपदेश। (६) वेदाभ्यास का उत्तम फल। (७, ८) वीर राजा का प्रतिष्ठा-पद। (पृ० २०५–२०८)

सू० [४१]—वरुण, मित्र, अर्यमा, आदित्य इन अधिकारियों का वर्णन। (९) चार भय-स्थानों का वर्णन। (पृ० २०९–२१२)

सू० [४२]—पूषा, पृथ्वी के समान प्रजापालक राजा के कर्त्तव्य। नाना प्रकार के दुष्टों का दमन, ऐश्वर्यों का सञ्चय। (पृ० २१२–२१४)

सू० [४३]—रुद्र, मित्र, वरुण इन अधिकारियों का वर्णन। (४) रुद्र, वैद्य, परमेश्वर। (पृ० २१४–२१७)

सू० [४४]—अग्नि, परमेश्वर, राजा, सभाध्यक्ष और विद्वान् का समान रूप से वर्णन। (१२) सिन्धु के दृष्टान्त से वर्णन। (१४) घृतव्रत वरुण के सोम-पान का रहस्य। (पृ० २१७–२२४)

सू० [४५]—प्रमुख विद्वान् और अग्रणी नायक सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० २२४–२२७)

सू० [४६]—स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) अश्वियों की सिन्धु से उत्पत्ति का रहस्य। (७) नदियों के उपयोग का आदेश। शिल्पियों का वर्णन। (१०) ताल और प्रतिक्षेपक द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की विधि। (पृ० २२८–२३३)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४७]—आचार्य, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों और राजा और पुरोहितों तथा विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (९) सूर्यत्वग् रथ का रहस्य। (पृ० २३३–२३६)

सू० [४८]—उषा के वर्णन के साथ कमनीय गुणों से युक्त कन्या और विदुषी स्त्री के गुण और कर्त्तव्य। (१) 'दिवो दुहिता' का रहस्य। (पृ० २३७–२४५)

सू० [४९]—उषा के वर्णन के साथ साथ कान्तिमती कन्या के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० २४५–२४६)

सू० [५०]—सूर्य के दृष्टान्त से उत्तम पति का वर्णन। स्वप्रकाश, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की उपासना। (८) शोचिष्केश का रहस्य। (९) सूर्य के सात अश्वों का रहस्य। (११, १२) सूर्य के द्वारा पाण्डु-रोग का निवारण तथा उसका आध्यात्मिक रहस्य। (पृ० २४६–२५२)

सू० [५१]—इन्द्र, राजा और परमेश्वर का भेद और सूर्य के दृष्टान्त से वर्णन, सेनापति की प्रतिष्ठा। राजा के कर्त्तव्य। वृष्टि-विज्ञान का उपदेश। (१) इन्द्र मेघ। (४) वृत्रवध। (५) [illegible] की रक्षा, पिप्रु का नाश। (६) कुत्स की रक्षा, अतिथि के लिये शम्बर का नाश, अर्बुद का नाश। (७) इन्द्र का वज्र। (८) शाकी इन्द्र। (९) उशना। (१२) शार्यात अनर्वा श्लोक। (१३) वृषणश्व की मेना। (१५) स्वराट् वृषभ इन सबका रहस्य। (पृ० २५२–२६१)

सू० [५२]—बरसते हुए मेघ से सेनापति राजा और परमेश्वर की तुलना और उनके कर्त्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। वृष्टि-विज्ञान (पृ० २६१–२७१)

सू० [५३–५८] परमेश्वर, राजा, सभा और सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। (पृ० २७१–३०२)

सू० [५९]—अग्नि, वैश्वानर नाम से अग्नि, विद्युत् या सूर्य के दृष्टान्त से अग्रणी नायक, सेनापति और राजा के कर्त्तव्यों और परमेश्वर की महिमा का वर्णन। (पृ० ३०२–३०६)

सू० [६०]—वायु के दृष्टान्त से विजिगीषु राजा का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर की स्तुति। (पृ० ३०६–३०९)

सू० [६१]—इन्द्र, परमेश्वर की स्तुति। राजा के गुणों का वर्णन। (६) विद्वान् शिल्पी का कर्तव्य। (७) शत्रु विजय की नीति। (८) गृह पत्नियो के दृष्टान्त से सेनाओ के कर्तव्य। (९) स्वराट् इन्द्र का स्वरूप। (१०) उसके प्रजा और शत्रुओं के प्रति कर्तव्य। (११) प्रजाओ के हाथ मे शासन का देना। (१२) वायु, मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से शत्रु-विजय का उपदेश। (१३) युद्ध विद्या के नित्य अभ्यास का उपदेश, (१४) बलशाली सेनापति का स्वरूप। (१५) इन्द्र का लक्षण। (१६) हारियोजन इन्द्र का रहस्य। (पृ० ३०९–३१८)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६२]—परमेश्वर की स्तुति। बलवान् राजा के कर्तव्य। (२) विद्वानों के कर्तव्य। आंगिरस, विद्वान्। (३) माता पुत्र के दृष्टान्त से सेना के कर्तव्य। मेघ और सूर्य के समान सेनापति का कर्तव्य। सरमा का रहस्य। (४) शत्रु विजय के लिये घोर गर्जनाकारी तोपों का प्रयोग। (५) राष्ट्र की वृद्धि और प्रजा का उपकार। (६) विद्युत् के समान राजा का कर्तव्य। (७) प्राण और सूर्य के समान राजा, सेनापति के कर्तव्य। (८) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुष तथा राजा प्रजा का कर्तव्य। (९) सूर्य के समान पुत्र और राजा के कर्तव्य। (१०) अगुलियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का कर्तव्य। (११) स्त्रियो के समान विद्वानों का कर्तव्य। (१२) ऐश्वर्य-वर्धक राजा। (१३) विद्वान् सुशासक का कर्तव्य। (पृ० ३१८–३२६)

सू० [६३]—राजा, परमेश्वर और आचार्य का वर्णन। (२) राजा के हाथ मे राजदण्ड का समर्पण। (३) शत्रुनाश के उपाय। (४)

दुष्टो का दमन। (५) हतौडे से लोहे के समान, शत्रु के बल को तोड़ने का आदेश। (६) मेघ के समान प्रजारक्षक का कर्त्तव्य। (७) ससाङ्ग राष्ट्रबल से ससाङ्ग शत्रुबल का भेदन। (८) जल और अन्न के समान प्रजा का पोषण। (९) ऐश्वर्यदान। (पृ० ३२६–३३१)

सू० [६४]—विद्वानो का कर्तव्य। (२) दीक्षा द्वारा बलवान् होने का उपदेश। वीर सैनिको और व्रतनिष्ट ब्रह्मचरियो को उपदेश। (३) ब्रह्मचारी रुद्रो और सैनिकों का वर्णन। (५–६) वायुओ के समान रुद्र वीरों का वर्णन। (७) पर्वतो और हस्तियों के समान वीर जन। (८) सिंहों के समान वीर जन। (९–१०) उनके कर्तव्य। (११) रथ के समान वीर पुरुष का वर्णन। मरुतो, वीर भटों का वर्णन। (१२) वेतनों पर सैन्यों की नियुक्ति। विद्वानों और मरुद्गण का वर्णन, रुद्र-सूनु का रहस्य। (१३) वीरों और सेनापति तथा प्राणों और आत्मा का वर्णन। (१४—१५) प्रमुख नायकों की स्थापना। (पृ० ३३१–३४०)

सू० [६५]—अग्नि, परमेश्वर, विद्वान् का वर्णन। (२) आप्त विद्वानो के कतव्य। (३–५) नाना दृष्टान्तो से परमेश्वर, वीर पुरुप, नायक आदि का वर्णन। (पृ० ३४०–३४४)

सू० [६६–६७]—नाना दृष्टान्तो से वीर पुरुप, नायक, राजा अग्नि तथा परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ३४४–३५०)

सू० [६८–६९]—परमेश्वर (२) जीव। आचार्य उत्तम, शासक, सभाध्यक्ष आदि का वर्णन। (पृ० ३५०–३५५)

सू० [७०]—अग्नि के समान भोक्ता राजा, स्वामी, ईश्वर का वर्णन। (पृ० ३५५–३५९)

सू० [७१]—वहिनों और गौओ के समान प्रजाओं का वर्णन। (२) वायु और तोपों के समान वीरो और विद्वानो का वर्णन। (३) वैद्यों के समान स्त्रियों का कर्तव्य। (४) तीव्र वायु के समान वीर

राजा के कर्तव्य । (५–६) योगी, गृहपति, सूर्य और राजा का समान वर्णन । (७) समुद्र के समान आचार्य, राजा और परमेश्वर । (८) गृहपति और राजा का समान वर्णन । (९) शूरवीर और ज्ञानी का वर्णन । (१०) प्रभु, राजा से प्रार्थना । (पृ० ३५९–३६५)

सू० [७२]—विद्वान् का वर्णन । (२) विद्वानों का कर्त्तव्य । (३) ईश्वर और गुरु की उपासना । (४) ईश्वर का साक्षात् करना । पक्षान्तर मे राजा का वर्णन । गुरूपासना और ईश्वरोपासना । शिष्टाचार । (६) परमेश्वर, गुरु, राजा आत्मा का वर्णन । (७) उनके कर्तव्य । (८) सप्त प्राणमय देह और सप्ताङ्ग राज्य । (९) मुमुक्षुत्व का अधिकारी, परमेश्वर का माता के समान वर्णन । (१०) ज्ञानियों और विद्वानों का वर्णन, राज्याभिषेक । (पृ० ३६५–३७१)

सू० [७३]—अग्नि, राजा का वर्णन । उसके सूर्य के समान कर्तव्य । (४) ईश्वर और राजा का आश्रय । (५) धनाढ्यों और ज्ञानवृद्धों के कर्तव्य । (६) नदियों और गौवों के समान ज्ञानैश्वर्यवानों का कर्तव्य । (७) गुरु के अधीन शिष्य का रहना । ईश्वर और उपासक की स्थिति । विरूप रात्रि दिन का रहस्य । शुक्ल कृष्ण का रहस्य । (८) परमेश्वर और मध्यस्थ राजपद । (९–१०) मनुष्यों को उत्तम उपदेश । (पृ० ३७१–३७७)

सू० [७४–७५]—परमेश्वर की स्तुति । राजा और विद्वान् के कर्तव्योपदेश । (पृ० ३७७–३८१)

सू० [७६–७८]—विद्वान् गृहस्थों के कर्तव्य-उपदेश, ईश्वरोपासना । राजा और विद्वानों के कर्तव्य और उनके स्वरूप ईश्वरोपासना । (पृ० ३८१–३८८)

सू० [७९]—पुरुषों और स्त्रियों को उपदेश । वे किस प्रकार के बनें । (२) विद्वान् की गृहपति से तुलना । गृहस्थ के कर्तव्य । मेघादि की उत्पत्ति । (३) वृष्टि के समान गर्भ-निषेक और वीर्य की उत्पत्ति तथा

उसके निषेक और पुरुषोत्पत्ति का विज्ञान। पक्षान्तर में गुरूकरण और ब्रह्मचर्यपालन। (४) परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना। (५–१२) राजा, विद्वान्, परमेश्वर से प्रार्थना। (पृ० ३८८–३९२)

सू० [८०]—स्वराज्य की वृद्धि और उनके उपायो का उपदेश। पक्षान्तर मे ईश्वरोपासना और परमेश्वर के स्वराट् रूप की अर्चना। (पृ० ३९३–३९९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८१]—राजा का नायको के प्रति कर्तव्य। उसके गुणों का वर्णन। पक्षान्तर मे परमेश्वर का वर्णन। (३) ऐश्वर्य-संचय, दो प्रमुखों की स्थापना, अनुग्रह और निग्रह के योग्य मित्र शत्रु का विवेक। (४) ऐश्वर्य वृद्धि, बल संचय का उपदेश। (६) ऐश्वर्य का विभाग, राष्ट्र ऐश्वर्य का प्रजा द्वारा भोग। (पृ० ३९९–४०३)

सू० [८२]—राजा और विज्ञानों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर मे ईश्वर की स्तुति। (४) महारथी का अधिकार। पक्षान्तर में योगी का और अध्यात्म का वर्णन। (५) वीर पुरुष। (पृ० ४०३–४०६)

सू० [८३]—राजा प्रजा पालने के कर्तव्य। (२) स्त्रियो और विद्वानों के कर्त्तव्य। (३) परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन। (४) ब्रह्मचर्य का उत्तम फल। (५) उत्तम आचार्य और शासक की रक्षा मे वृद्धि करना। (६) उत्तम शासक के कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ४०६–४०९)

सू० [८४]—वीर राजा, सेनापति के कर्तव्यों का वर्णन। (४) राज्याभिषेक। (६) सर्वोच्च महारथी पद। सर्वोच्च इन्द्र। (७) सर्व-ईशान। (८) शक्तिमान्। (९) ऐश्वर्यवान्। (१०–१२) प्रजाओं

के कर्तव्य। (१३) सेनापति के कर्तव्य। दधीचि की अस्थियों का रहस्य। (१४) विजिगीषु को उपदेश। अश्व के शिर तथा शर्यणावत् का रहस्य। (१५) दमन और प्रजारञ्जन दोनों का उत्तम परिणाम। (१६) प्रमुख सर्वनियोक्ता नायक के लक्षण। (१७–१८) यथायोग्य का विवेचन। (१९) प्रजारञ्जक राजा। (२०) राजा के सुखदायी ऐश्वर्यों और रक्षा-साधनों की कामना। (पृ० ४०९–४१८)

सू० [८५]—पदाभिषिक्त विद्वानों और वीर पुरुषों का वायु के दृष्टान्त से वर्णन। उनके कर्तव्य। (३–४) उनको मातृभूमि का सेवक होना आवश्यक है। 'पृश्नि-मातरः' का रहस्य। (४५) मरुतों के रथ में 'पृषती' नाम अश्वाओं के जोड़ने का रहस्य। वृष्टि विज्ञान। (६) वेगवान् यान और विशाल भवनों के उपयोग की आज्ञा। बाहुबल से विजय करने का आदेश। (७) वीरों और उसके नायक का सूर्य के समान कर्तव्य। (८) विद्वानों और वीरों का प्राणों के समान कर्तव्य। सूर्य के समान शस्त्रबल धारण करने का उपदेश। (९) त्वष्टा का वज्र बनाने और इन्द्र का उससे वृत्र हनन का रहस्य। (१०) वीरों का अवनत राष्ट्र की उन्नति और शत्रु-नाश का कर्तव्य और वृष्टि रहस्य। (११) प्रजा की रक्षा और शत्रुनाश का कर्तव्य। दानी लोगों का कर्तव्य। वृष्टि-विज्ञान। मरुतों का प्यासे गोतम के लिये कूप उखाड़ लाने की कथा का रहस्य। (१२) त्रिधातु गृह, विद्वानों को दान तथा 'त्रिधातु शर्म' का रहस्य। (पृ०४१८–४२५)

सू० [८६] उत्तम रक्षक और परमेश्वर का वर्णन। विद्वानों, वीर भटों तथा मरुतों का वर्णन। उनके कर्तव्य। अध्यात्म में प्राणों का वर्णन। (पृ० ४२५–४२८)

सू० [८७]—वीर उत्तम नायकों का वर्णन। उनके कर्तव्य। पक्षान्तर में वृष्टि-विद्या और वायुओं का वर्णन। (४२८–४३२)

सू० [८८]—वीर पुरुषों और विद्वानों के कर्तव्यों का उपदेश।

(३) शत्रुनाश । राज्य-समृद्धि के लिये शस्त्रास्त्रो का धारण । (४) वार्कार्या धी का रहस्य । जल विद्या का उपदेश । (५) आक्रमण करने वाले वीरो का वर्णन । अयोदष्ट्र वराहुओं का रहस्य । (पृ० ४३२–४३६)

सू० [८९]—धर्मात्मा विद्वान् पुरुषो के कर्त्तव्यो का वर्णन । (५) परमेश्वर की उपासना, प्रार्थना । (९) पूर्णायु का लाभ । (१०) अदिति के नाना प्रकार । अदिति का रहस्य (४३६–४४१)

सू० [९०]—धर्मात्मा विद्वान् राजा और उसके अधीन वीर जनो और विद्वानों का कर्त्तव्य । (६-८) मधुमती ऋचाएं । (९) शान्ति की कामना । (पृ० ४४१–४४४)

सू० [९१]—परमेश्वर विद्वान्, राजा, सोम का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । प्रजा की कामना । (२–३) श्रेष्ठ राजा वरुण का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (५–२३) उसी का सोम रूप मे वर्णन । पक्षान्तर मे उत्पादक परमेश्वर और विद्वान् का वर्णन । (पृ० ४४५–४५४)

सू० [९२]—उषा के वणन के साथ, उसके दृष्टान्त से उत्तम गृह-पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन । (१०) पुराणी देवी का रहस्य । (११–१५) उत्तम गृहपत्नी का स्वरूप । (१६) प्रिय वर वधू के कर्तव्य । (पृ० ४५४–४६५)

सू० [९३]—उत्तम विद्वान् आचार्य शिक्षकों के कर्त्तव्य । राष्ट्र के दो प्रमुख अधिकारी अग्नि और सोम । भौतिक अग्नि और वायु का वर्णन । (३) दीर्घायु प्राप्त करने का वैज्ञानिक उपाय । (पृ० ४६५–४७०)

सू० [९४]—परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वान् और अग्रणी नायक के प्रति कर्तव्यों का उपदेश । अग्नि का भी वर्णन । (पृ० ४७०–४७९)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [९५]—(१) दो स्त्रियों के दृष्टान्त से दिन रात्रि का, आकाश पृथिवी का और ब्राह्मण, क्षत्र वर्ग का वर्णन । (२) स्त्रियों के पति वरण के दृष्टान्त से प्रधान नायक का वरण । नायक के तीन रूप, अग्नि के तीन रूप, अध्यात्म में आत्मा और परमेश्वर के तीन रूप । (४) सूय के समान राजा की उत्पत्ति, मातृ-गर्भ से प्रजा की उत्पत्ति । (५) गर्भगत बालक की वृद्धि के समान राजा की वृद्धि, उदय तथा सिंह के समान विजय । मेघगत विद्युत् और काष्ठगत अग्नि का वर्णन । (६–७) उभय-पक्ष की सेनाओं के बीच में वीर की स्थिति । (७) उसका पराक्रम, साथ ही सूर्य का जलाकर्षण आदि वर्णन । (८–११) सूर्य के समान राजा का तेजस्वी होना । देवसमिति का निर्माण । (पृ० ४८०–४८८)

सू० [९६]—द्रविणोदा अग्नि, ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन । (४) वायु और अग्नि के समान विद्वानों के कर्त्तव्यों का दर्शन । (५) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों का विद्वानों के धारण-पोषण कार्य । (६) विद्वानों का नायक के प्रति और उसका प्रजाजनों के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० ४८८–४९२)

सू० [९७]—परमेश्वर से पाप नाश कर देने की प्रार्थना । राजा से पाप कर्म करने वाले को दण्डित करने का निवेदन और उसके साथ प्रजा की उन्नति के नाना उपाय । (पृ० ४९२–४९४)

सू० [९८]—सर्वहितकारी परमेश्वर की स्तुति । सर्वहितैषी राजा को अग्नि और सूर्य के दृष्टान्त से उपदेश । (पृ० ४९४–४९६)

सू० [९९]—आचार्य और परमेश्वर के आराधनार्थ ऐश्वर्य प्राप्ति (पृ० ४९६–४९७)

सू० [१००]—वायुगणो के स्वामी सूर्य के समान पृथिवी के सम्राट् का वर्णन । पक्षान्तर मे परमेश्वर की स्तुति । मरुत्वान् इन्द्र का निरूपण । (४) परम विद्वान्, परम सखा, आचार्य भी मरुत्वान् इन्द्र है । वह संग्रामविजय, न्याय प्रकाश, अनुग्रह आदि का कर्त्ता हो । उसके कर्तव्य । (पृ० ४९७–५०५)

सू० [१०१]—आचार्य, विद्वान्, परमेश्वर और राजा और सेनाध्यक्ष का वर्णन । उनके सखित्व, प्रेम और सौहार्द की याचना । (१३) इन्द्र के शिष्यो का रहस्य । (पृ० ५०६–५१२)

सू० [१०२]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर मे राजा और सेनापति का वर्णन । (पृ० ५१२–५१७)

सू० [१०३]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर मे राजा और सेनाध्यक्ष के कर्तव्य । (पृ० ५१८–५२२)

सू० [१०४]—राजा का सिंहासन पर अभिषेक। (२) कर्मानुरूप पुरस्कार ।(३) स्वार्थ और अन्याय से धन हरने की निन्दा । (४) तेजस्वी की सेना-बलों और ऐश्वर्यों से वृद्धि । (५) बुरे राजा में अच्छे होने के भ्रम की सम्भावना । राजा को अपने स्वार्थों में प्रजा के बरबाद न करने का उपदेश । (६–८) प्रजापालन सम्बन्धी राजा के कर्तव्य । (६) राजा की आदर्श प्रतिष्ठा । (पृ० ५२३–५२७)

सू० [१०५]—चन्द्र तथा अन्यान्य आकाशचारी पिंडों के सम्बन्ध में ज्ञान । पक्षान्तर में प्रजानुरञ्जक राजा का वर्णन । (२) वृष्टि जल के आदान-प्रतिदान मे सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुष और प्रजा राजा के कर्तव्यों का वर्णन । (३) प्रजाओं और शिष्यो के राजा और आचार्य के प्रति आवश्यक विनय भाव । (४) ईश्वर विषयक प्रश्न और प्रति-

वचन तथा वेद ज्ञान के पुराने और नये धारण करने वालों का प्रतिपादन। (५) परम मूल और सर्वाश्रय का निरूपण। (६) मूल कारण का अन्वेषण। (७) अमृत जीवात्मा का वर्णन। (८) जीवात्मा को रुलाने वाली व्याधियों को दूर करने की प्रार्थना। (९) युद्धार्थी, वीर पुरुष की केन्द्र मे स्थापना। आप्त्य त्रित का रहस्य। (१०) देहगत प्राणों के समान पांच प्रमुख, पञ्चायत तथा बृहद्-बल वाले पंच तत्वों का वर्णन। (११) नक्षत्रों और चन्द्रमा का वर्णन। (१२) उसी प्रकार ज्ञानियो का परमेश्वर दर्शन। (१३) वेद ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रार्थना। (१४) आचार्य का वेदोपदेश द्वारा जिज्ञासु का भव-कूप मे उद्धार। कूप मे पड़े हुए त्रित की कथा का रहस्य। (१८) वृक और तक्षा के दृष्टान्त से चन्द्र विज्ञान। गुरु शिष्य के कर्तव्य। (१९) आशीः-प्रार्थना। (पृ० ५२७—५३८)

सू० [१०६]—ऐश्वर्य और ज्ञान के दानी धनाढ्यों और विद्वानों के कर्तव्य। (३) सुप्रवाचन पितरों का रहस्य। (४—५) सर्व हितकारी ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष का कर्तव्य। बृहस्पति, मनु, कुत्स, इन्द्र आदि का रहस्य (५३८—५४१)

सू० [१०७]—विद्वान् और शक्तिशाली पुरुषों के कर्तव्य। (पृ० ५४१—५४२)

सू० [१०८]—इन्द्र और अग्नि के समान राजा, अमात्य, प्रकाश-प्रद आचार्य और अध्यात्म मे जीव परमेश्वर का वर्णन। (५—८) क्षत्र, ब्रह्म और स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (९—१०) सभाध्यक्ष, न्यायाध्यक्षों का वर्णन। विद्वानों के कर्तव्य। (पृ० ५४२—५४९)

सू० [१०९]—आचार्य और शिक्षकों के कर्तव्य। पक्षान्तर में बलवान् सेनापति और प्रमुख नायकों के कर्तव्य। (पृ० ५४९—५५३)

सू० [११०]—विद्वानो, शिल्पिजनों तथा वीर पुरुषो के कर्तव्य, उत्तम कोटि के मुमुक्षु जनों के लिये उपदेश। (५) पात्र का रहस्य। (८) ऋभुओ के बनाए गाय बछडे का रहस्य। (पृ० ५५३–५५८)

सू० [१११]—विद्वानो के शिल्पियो के समान कर्तव्य। (पृ० ५५८–५६१)

सू० [११२]—राजा-प्रजा वर्ग, प्रमुख पुरुषो और विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (२) असू धेनु का रहस्य। द्विमाता तरणि, त्रिमन्तु विचक्षण का रहस्य। (५) रेभ और वन्दन का रहस्य। (७) शुचन्ति, पुरुकुत्स, पृश्निगु का रहस्य। (८) भेड़िये के मुख मे पड़ी बटेरी का सत्यार्थ। अश्वियो का सिन्धु को मधुपान करने का रहस्य। (१०) पिप्पला का रहस्य। (११) मधुकोश का रहस्य। (पृ० ५६१–५७३)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [११३]—उषा के दृष्टान्त से नववधू, गृहपत्नी और विदुषी स्त्री के कर्तव्यो का उपदेश। (पृ० ५७३–५८२)

सू० [११४]—विद्वान् राजा तथा उपदेष्टा पुरुष के कर्तव्य। सेनापति का वर्णन। (पृ० ५८२–५८६)

सू० [११५]—परमेश्वर की स्तुति, विद्वान् तेजस्वी पुरुष के कर्तव्य। (५८६–५८९)

सू० [११६]—दो प्रमुख नायको तथा विद्वान् स्त्री पुरुषो के कर्तव्य। (३) तुग्र और भुज्यु की समुद्र-यात्रा का रहस्य। (४) अद्भुत विमान का वर्णन। (५) शतारित्रा नौ। (६) अघाश्व को श्वेत अश्व के खुर से सुरा के सैकडों कुम्भ आदि कल्पनाओं का रहस्य। (१५) विश्पला की लोहे की जाघ का रहस्य। (पृ० ५८९–६०३)

सू० [११७]—विद्वान् प्रमुख नायकों और स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (१७) सौ मेषों का रहस्य, ऋज्राश्व की कथा का रहस्य। (पृ० ६०४—६१७)

सू० [११८—१२०]—विद्वान् प्रमुख नायकों और स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (पृ० ६१८—६३३)

सू० [१२१]—राजा का कर्तव्य। परमेश्वर की स्तुति। (पृ० ६३४—६४४)

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

इति प्रथमोऽष्टकः ॥

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-संहिता

प्रथमोऽष्टकः । प्रथमं मण्डलम् ॥

प्रथमोऽध्यायः । प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्र्य. । नवर्चं सूक्तम् ॥

ओ३म् ॥ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर पक्ष मे—मै यज्ञ, ब्रह्माण्ड सर्ग के धारण करनेवाले, पहले ही समस्त सृष्टि से पूर्व विद्यमान प्रति ऋतु अर्थात् प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति काल मे सृष्टि के घटक पदार्थों को मिलाने हारे, समस्त रमण करने योग्य, पृथिवी आदि लोकों को सर्वोत्तम धारण करनेवाले, देव सब पदार्थों के दाता, द्रष्टा और प्रकाशक, अग्नि, सबसे पूर्व विद्यमान, ज्ञानवान्, प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूं ।

राजा और विद्वान् के पक्ष मे—प्रजापालन रूप यज्ञ अर्थात् प्रजापति के कार्य को वश करनेवाले, सब के समक्ष प्रमाण रूप से स्थित, एव सब के पूर्व धारण करनेवाले, सभा के सदस्यो के प्रेरक, सभापति, रमणीय सब उत्तम गुणो को धारण करनेवाले, रत्न सुवर्णादि के धारण

---

(१) आद्यमण्डलस्था ऋषय शतर्चिनश्चत्रिन्यायेनेति षड्गुरुशिष्य ।

करने वाले अग्नि, अग्रणी, नायक, दानशील, विजयशील राजा, सभापति, सेनापति पुरुष का मैं प्रजाजन आदर सत्कार करता हूँ।

भौतिक पक्ष में—यज्ञ, शिल्पादि के कर्त्ता, पहले से ही छेदन, भेदन आदि गुणों को धारण करने वाले, देव = प्रकाशयुक्त, गति देनेवाले साधनों, यन्त्रों एवं पदार्थों को सुसंगत करनेवाले, रथ आदि यन्त्रों के धारक, किरणों के धारक को मैं प्रेरित करता हूँ, उसका यन्त्रों और यज्ञों में सदुपयोग करूं।

यज्ञाग्नि पक्ष में—यज्ञ के आहुति-ग्रहण करनेवाले, ऋत्विक् के समान प्रति ऋतु यज्ञ करनेवाले, पुरोहित के समान आगे आदर पूर्वक आधान किये गये, प्रकाशयुक्त अग्नि को मैं प्रज्वलित करता हूँ।

'अग्निः'—अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति। अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। अङ्गं नयति सनममानः। अक्नोपनो भवति इति स्थौलाष्ठीविः। न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायते इति शाकपूणिः, इताद्, अक्ताद्, दग्धाद्वा नीतात्।

'ईळे'—ईळिरध्येषणाकर्मा वा।

'देवम्'—देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। 'रत्नधातमम् रमणीयानां धनानां दातृतमम्। इति निरु० ७। १४॥ अग्रणी होने से नायक, सेनापति, राजा, परमेश्वर 'अग्नि' कहाते हैं। यज्ञ में, उपासना में साक्षी रूप रहने से परमात्मा 'अग्नि' है। अंगों को झुका कर आगे आता है इससे विनीत शिष्य नायक और विद्वान 'अग्नि' है। गीला नहीं करता प्रत्युत सुखाता है इससे आग 'अग्नि' है। इण गतौ, अञ्जु म्रक्षणे, दह भस्मीकरणे, णीञ् प्रापणे इन धातुओं के योग से अग्नि शब्द बनता है। इससे गतिमान्, प्रकाशक, तेजस्वी, दाहकारी, परसतापक सभी पदार्थ 'अग्नि' कहे जाते हैं।

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त।
स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥ २ ॥

भा०—वही ज्ञानस्वरूप, सब पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ विद्वानों, मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, विद्वान् अध्यापकों और तर्कों द्वारा और नये अर्थात् वेदार्थों के पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों द्वारा स्तुति, वन्दना, ज्ञान, मनन और अन्वेषण करने योग्य है। वह ही सूर्य के समान ऋतुओं को, आत्मा के समान प्राणों को, भोक्ता के समान भोगों को, आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को इस जगत् में धारण करता, सब को प्राप्त करता है।

आत्मा के पक्ष में—वह आत्मा कारण और कार्यरूप से विद्यमान प्राणों द्वारा अन्वेषण करने योग्य है वह ही प्राप्त विषयों के प्रकाशक इन्द्रियों को धारण करता है।

'ऋषिभिः'—ऋषी गतौ। औणादिक इन्। अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तद् ऋषयोऽभवन् ॥ श० .. ॥ अर्त्तः सनोतेश्चेति षड्गुरुशिष्यः। साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। निरु० १।२०॥ पुरस्तात् मनुष्या वा ऋषिषु उत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्। तस्माद् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहति आर्षं तद् भवति। निरु० १३।१२॥ अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः॥ न्या० सू० १।१।४४॥ प्राणा. ऋषयः। श० ७।२।१।५॥

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त् पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे।
य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—प्रतिदिन मनुष्य ज्ञानवान् परमेश्वर के भजन से पुष्टि द्वारा सुख देने वाले या स्वयं निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने वाले, कीर्त्तिजनक, बहुत अधिक वीर, वीर्यवान, शूरवीरों और विद्वान् पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य, धन सम्‌द्धि को प्राप्त करता है।

राजा के पक्ष में—अग्नि, तेजस्वी राजा के सहारे ही राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए, समृद्ध वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑ ।
स इद् दे॒वेषु॑ गच्छति ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन् ! सब के अग्रणी, सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! तू जिस हिंसा आदि दोषों से रहित, एवं कभी विनष्ट न होने वाले नित्य, यज्ञ, प्रकृति के कारण तत्वों के परस्पर मिलने के सृष्टि, प्रलय आदि व्यवहारों से युक्त अन्तरिक्ष या ब्रह्माण्डमय जगत् सर्ग को सब ओर से और समस्त जल, पृथिवी आदि पदार्थों के भीतर और बाहर भी व्यापक है, वह यज्ञ ही समस्त दिव्य पदार्थों में सर्ग रूप से संयोग, विभाग और विद्वानों में उपासना रूप से होता रहता है।

'अध्वरम्'—अध्वर इति यज्ञ नाम, ध्वरतिहिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः इति निरु० १।२।३॥ अध्वरमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम्। निघ० १।३॥ अध्वानं मार्गं राति ददाति। यद्वा अध्वा मार्गो विद्यतेऽस्मिन्। रो मत्वर्थीयः। ध्वरो हिंसा तदभावो यत्र। अविद्यमानो ध्वरो यस्य सः। अहिंसित इत्यर्थः। देवान् वै यज्ञेन यजमानान् सपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः। ते दुधूर्षन्त एव न शेकुर्धूर्वितुं, ते पराबभूवुः। तस्माद् यज्ञोऽध्वरो नाम। श० १।४।१४॥ अध्वरो वै यज्ञः। श० १।४।१।३८॥ प्राणोऽध्वरः। श० ७।३।१।५॥ रसोऽध्वरः। श० ७।३।१।६॥

राजा के पक्ष में—हे विद्वन् ! जिस अहिंसनीय वीर यज्ञ=प्रजापति के तुम सब प्रकार से आश्रित हो वह यज्ञ=प्रजापालक व्यवस्था या राजा, देव अर्थात् विद्वानों के आधार पर चल रहा है।

अध्यात्म में—अध्वर, यज्ञ नित्य आत्मा है वह देव नाम विषयों में क्रीडाशील प्राणों के आधार पर है। अध्यात्म में अग्नि=जाठर।

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः ।
दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, परमेश्वर, समस्त पदार्थों का दाता, सबको अपने भीतर लेने वाला, सर्वोपरि ज्ञान और कर्म सामर्थ्यवान्

ससार को बनाने हारा, सत् पदार्थों मे व्यापक, सत्यस्वरूप, अद्भुत यश, कीर्त्ति और वेदमय ज्ञानोपदेश करने वालो मे सब से बडा, देव, दाता, सर्वप्रकाशक है। वह विद्वानो और दिव्य गुणो सहित हमे प्राप्त हो।

ज्ञानी पुरुष भी दानशील, मेधावी, क्रियानिष्ठ, सत्यभाषी, कीर्त्तिमान्, बहुश्रुत हो, वह विद्वानो या उत्तम गुणो सहित हमे प्राप्त हो।

'कविक्रतु.'—कवि. क्रान्तदर्शनो भवति। कवतेर्वा। निरु० १२।२।२॥ करोति यो येन वा स क्रतु। दया०।

'सत्यः'—सत्सु तायते। सत्प्रभवं भवति इति वा। निरु० ३। ३॥ तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि 'स-ती-यम्' इति। तद् यत् 'सत्' तदमृतं। अथ यत् 'ती' तन्मर्त्यम्। अथ यद् 'यम्' तेन उभे यच्छति। तदनेन उभे यच्छति तस्माद् 'यम्'। अहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति।

अध्यात्म मे—देह से देहान्तर मे जाने वाला होने से जीव 'अग्नि' है। संकल्प करने और कर्त्ता होने से 'क्रतु'। 'सत्' होने से सत्य, सब प्राणो मे बल और ज्ञानयुक्त होने से 'श्रवस्तम'। अद्भुत होने से 'चित्र' और द्रष्टा होने से 'देव' है। वह प्राणों सहित देह मे आता है। इति प्रथमो वर्गः॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः॥ ६॥

भा०—हे परमेश्वर! सर्वप्रकाशक! जो भी तू सर्वस्वदानशील, आत्मसमर्पक, उपासक के लिये कल्याणकारी सुख और ऐश्वर्य करता है, हे समस्त ब्रह्माण्ड के अंग अग मे व्यापक और प्राणो के भी भीतर व्यापक और अग्नि के समान प्रकाशक! वह सब तेरा ही है। और वह सत् पदार्थों मे सुखप्रद या सद्गुणो से उत्पन्न होने वाला सत्य अथवा इह और पर दोनो लोको मे सुखकर है।

'भद्रम्'—भगेन व्याख्यातम्। भजनीय, भूतानामभिद्रवणीयम्। भवद् रमयतीति वा, भाजनवद्वा। निरु० ४। १॥ यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रं, गृहं भद्र, प्रजा भद्र, पशवो भद्रमिति शाट्यायनिन.॥

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यं ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ! परमेश्वर और विद्वन् ! प्रतिदिन, दिन रात, हम लोग अपनी बुद्धि और क्रिया से भी नम्र भाव धारण करते हुए तुझे प्राप्त होते हैं। विद्वानों के पास नित्य हम ज्ञान प्राप्त करने के लिये जावें और उनका विनय अन्नादि से सत्कार करें। नमः इत्यन्न नाम। निघ०।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् ।
वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑ ॥ ८ ॥

भा०—नित्य पदार्थों के और सत्य अनादि, अनन्त, संसार के प्रवर्तक ज्ञान और नियमव्यवस्था, सर्ग-चक्र एवं कर्मफल के रक्षक, सबके प्रकाशक और स्वयं प्रकाशस्वरूप और अपने सर्व-दुःखहारी सर्व-दमन परमपद या स्वरूप में सदा सब से बड़े हुए, महान् परमेश्वर की शरण में हम प्राप्त हों।

'दम.'—दाम्यन्ति शाम्यन्ति दुःखानि यस्मिन्। अथवा मदयति सुखयति इति मदो वर्णविपर्ययेण दम ।

विद्वान् भी जो श्रेष्ठ कर्मों से प्रकाशमान, ऋत, सत्य ज्ञान, वेद का रक्षक अपने गृह में और दमन व तप जितेन्द्रियता, ऐश्वर्य में बड़ा हो उसका हम सत्संग करें।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व ।
सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! वह आप परमेश्वर और विद्वान् पुरुष पुत्र के प्रति पिता के समान परिपालक हैं। वह तू हमारे लिये पिता के समान ही सुख से प्राप्त होने योग्य, उत्तम और सुख साधनों के उत्तम ज्ञानों को देने वाला होकर हमारे सुख, कल्याण के लिये हो और हमें प्राप्त हो, हमारे बीच में विद्यमान रह। इति द्वितीयो वर्ग. ॥

[२]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ १–३ वायुर्देवता ॥ ४–६ इन्द्रवायू । ७–९ मित्रावरुणौ । गायत्र्यः, १, २ पिपीलिकामध्या निचृद्, ६ निचृद् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वाय॒वा या॑हि दर्शते॒मे सोमा॒ अरं॑कृताः ।
तेषां॑ पाहि श्रु॒धी हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्, वायु के समान प्राणेश्वर ! जीवनप्रद एवं सर्वव्यापक ! हे ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य ! सब को देखनेहारे परमेश्वर ! ये समस्त उत्पन्न पदार्थ आपके रचना-कौशल से उत्तम रीति से सुभूषित हैं, बडे सुन्दर बने हुए हैं। उनको आप पालन करते हो। आप हमारी स्तुति श्रवण करें।

ज्ञानी पुरुष ज्ञान करने और पदार्थों के तत्वों तक पहुंचने से 'वायु' है। ज्ञान को देखने से 'दर्शत' है। उसके कौशल से नाना उत्तम पदार्थ बनते हैं। एवं बहुत से सौम्य गुणों से युक्त शिष्य उसको प्राप्त होते हैं। वह उनकी रक्षा करे और सबको उत्तम ज्ञानोपदेश श्रवण करावे।

भौतिक पक्ष में—गतिमान् होने से 'वायु' है, स्पर्श से देखने योग्य होने से दर्शनीय है, वह सब जगत् के जीवों और वृक्षादि को जल और प्राण से सुशोभित करता है। उनको प्राण द्वारा पालन करता, शब्द का श्रवण करने का साधन है। वह शब्द को देशान्तर तक पहुंचाता है।

'वायुः—वातेर्वेतेवा स्याद् गतिकर्मणः। एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारः। निरु० १०। १-२ ॥ वायुः सोमस्य रक्षिता। वायुमस्य रक्षितारमाह। साहचर्याद् रसहरणाद् वा। निरु० ११।५॥ वेः पुत्रश्चायन् इति वा। कामयमान इति वा। वेति च य इति च चकार शाकल्यः। निरु० ६।५।६॥

वाय॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॒ त्वामच्छा॑ जरि॒तारः॑ ।
सु॒तसो॑मा अह॒र्विदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे शक्तिमन् ! सर्वव्यापक ! ज्ञानवन् ! सोम आदि ओषधियों का सेवन करनेवाले, सोम अर्थात् विद्वान् पुरुषों को उच्चपद प्रदान कर उनका सत्कार करनेवाले और दिन आदि के कालज्ञ, एक दिन में करने योग्य यज्ञ के ज्ञाता विद्वान् एवं अगम्य और अमृत का लाभ करने वाले ब्रह्मवित्, स्तुतिशील, विद्वान् पुरुष तेरी उत्तम स्तुति-वचनों और मन्त्रों से साक्षात् स्तुति करते हैं ।

वायो॒ तव॑ प्रपृ॒ञ्च॒ती धेना॑ जिगाति दा॒शुषे॑ ।
उ॒रू॒ची सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक ईश्वर ! तेरी वेदवाणी उत्कृष्ट अर्थों का ज्ञान कराकर समस्त विद्याओं को सम्पर्क अर्थात् हृदय में प्रकाश करानेवाली होकर दानशील, दूसरों को विद्या देने हारे, विद्याभ्यासी और वेदानुशीलन में आत्मसमर्पण करनेवाले पुरुष को ही प्राप्त होती है । और वह वाणी उत्पन्न पदार्थों के रस या ज्ञान को ग्रहण करनेवाले को बहुत अधिक ज्ञानों, विद्याओं का ज्ञान कराती है ।

इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम् ।
इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥ ४ ॥

भा०—हे इन्द्र ! सूर्य के समान सब अर्थों के प्रकाशक और वायु के समान सब के जीवनप्रद ! तुम दोनों को ये समस्त उत्पन्न ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और क्रियामय यज्ञ और प्राप्त करने योग्य भोग्य पदार्थ, भोक्ता जीवगण भी निश्चय से चाहते हैं और वे तुम्हें ही प्राप्त हैं । तुम तृप्तिकारक अन्नादि उत्तम पदार्थों के सहित हमें प्राप्त हो ।

जैसे सूर्य और पवन जलों को धारण करते हैं वे हमें अन्नादि पदार्थों सहित प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ऐश्वर्य, इनके गुणों के धारक विद्वान्

और बलवान् पुरुषों को चाहते है वे सब उनके ही है। वे ज्ञान और बलो सहित हमे प्राप्त हो।

अथवा—वे पुत्र के समान, आज्ञावशवर्त्ती, जलो के समान सौम्य, शीतल स्वभाव शिष्य और पुत्र और जीवगण सूर्य और पवन के समान ज्ञानप्रद और प्राणप्रद, पिता, माता और गुरु, आचार्य को चाहते हैं। वे ज्ञानो और अन्नो सहित हमे प्राप्त हो।

वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—वायु और इन्द्र का स्वरूप—हे वायो! ज्ञानवन्! और हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! ज्ञानप्रद! सूर्य के समान तेजस्विन्! तुम दोनो उषःकाल मे प्रकट होने वाले, उदयकालिक सूर्य और प्राभातिक वायु के समान तमोनिवारक, सर्वप्रकाशक और प्राणपद और रोगहारक तुम दोनो भी अन्न से युक्त यज्ञक्रियाओ मे अथवा ज्ञान-सम्पादन करनेवाली शिक्षा आदि मे बसने वाले अथवा 'वाज' अर्थात् ज्ञानैश्वर्य को धारण करनेवाली वेदवाणी के धनी होकर प्राप्त शिष्यो और पुत्रो को ज्ञान प्रदान करते हो। वे दोनो आप शीघ्र ही हमे प्राप्त हो। आप लोग हम जिज्ञासुओ को प्राप्त होकर हमे अपना कर उपनयन द्वारा दीक्षित कर शिक्षित करो।

गुरु और आचार्य दोनो वायु और सूर्य के समान हो। वे वेद के धनी होकर पुत्रो और शिष्यों का उपनयन करें, शिष्यो को पढावें, ज्ञानवान् करें। इति तृतीयो वर्ग.॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि_त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

भा०—हे वायो! ज्ञानवन्! हे सर्वप्रकाशक! आप दोनो, हे शिष्यों को गम्भीर विज्ञान मार्ग मे ले चलनेहारे! तुम दोनों सचमुच ऐसी रीति से शीघ्र ही ज्ञान का सम्पादन करा देते हो, इसलिये धारणावती बुद्धि और कर्म द्वारा भली प्रकार सर्वथा 'कृत' अर्थात् निश्चित

बुद्धि वाले दृढ़ निश्चयी, व्रती, कर्म-निष्ठ शिष्य को प्राप्त करो, उसका उपनयन करो ।

जीव और प्राण के पक्ष में—हे इन्द्र जीव और वायो ! प्राण ! दोनों शरीर के उठाने वाले, दोनों धारणा शक्ति से अन्नादि रस को उत्पन्न करते हैं, वे दोनों ही कर्मफल, भोग्य पदार्थ को प्राप्त करते हैं ।

मि॒त्रं हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम् ।
धियं॑ घृ॒ताचीं॒ साध॑न्ता ॥ ७ ॥

भा०—जल के समान, पवित्र करनेवाले, बल से युक्त सूर्य और प्राण के समान सब के स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने वाले और देह के नाशक रोगों को नाश करनेवाले अपान के समान, घातकों के घातक, शत्रुओं के वारक पुरुष को प्राप्त करता हूं । ये दोनों जल को आकर्षण करनेवाले सूर्य के समान ही दोनो 'घृत' अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, बल, जल और तेज को प्राप्त करनेवाली क्रिया शक्ति को सम्पादन करने वाले हो । इनके बलों को पवित्र कार्यों में उपयोग हो, वे यान्त्रिक बल से जल को उत्पन्न व प्राप्त करने के साधन बनें ।

ऋ॒तेन॑ मि॒त्रावरु॑णावृतावृधावृतस्पृशा ।
क्रतुं॑ बृ॒हन्त॑माशाथे ॥ ८ ॥

भा०—सब से स्नेह करने वाला मित्र और सर्वश्रेष्ठ वरुण, न्यायाधीश और राजा दोनों सत्यस्वरूप वेद-ज्ञान से सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले और सत्य परिणाम और सिद्धान्त तक पहुचने वाले दोनों बड़े भारी राष्ट्रूप कर्म, व्यवहार और ज्ञान को भी प्राप्त हो, उसको अपने वश करें ।

मित्र और वरुण, प्राण और अपान, जल के बल से जीवन के वर्धक और प्राणों को प्राप्त होते है वे दोनों ऋत' आत्मा को भी व्याप्त है । सूर्य और वायु दोनो जल मे जीवन और प्राण की वृद्धि करते है । वे महान् 'क्रतु' क्रियामय संसार रूप यज्ञ को व्याप्त है । वे सत्य नियमों से बंधे रहकर जगत् को व्यापते है ।

कुवी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुविजा॒ता उ॑रु॒क्षया॑ ।
दक्षं॑ दधाते अ॒पस॑म् ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी, परम विद्वान् मित्र और वरुण दोनो बहुतो के उपकार के लिये उत्पन्न, बहुत से निवास-स्थानो मे अथवा विशाल निवासस्थानो मे रहनेवाले कर्म और बल धारण करते हैं। वे राष्ट्र के सब कार्यों और अधिकारो को अपने वश करते है।

[३]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ देवता—१—३ अश्विनौ । ४—६ इन्द्र । ७—९ विश्वे देवा । १०—१२ सरस्वती ॥ गायत्र्य ॥ २,४,११ निचृद् । ४,११ पिपीलिकामध्या । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वि॑ना॒ यज्व॑री॒रिषो॒ द्रव॑त्पाणी॒ शुभ॑स्पती ।
पुरु॑भुजा चन॒स्यत॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे शीघ्र जाने वाले रथ और अश्व के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आप दोनो शीघ्र गतिशील हाथो या व्यवहारो वाले, उत्तम गुणो के पालक और बहुत से भोग्य पदार्थों से युक्त होकर बल देने वाले, उत्तम अन्नो को प्राप्त करो।

'इषः चनस्यतम्' यह प्रयोग 'समूलकाषं कषति' के समान जानना चाहिये। जल और अग्नि, रस और प्रकाश, वेग आदि व्यापक गुणो से युक्त होने से 'अश्वी' है। वे दोनो शीघ्र वेग के लिये व्यवहार मे आने से 'द्रवत्पाणी' है। दीप्ति के पालक होने से 'शुभस्पति' है। नाना भोग्य सुखकर पदार्थो को उत्पन्न करते है।

'अश्विनौ'—अथातो द्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमगामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेन अन्यो ज्योतिषा अन्यः। अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः। तत्कावश्विनौ? द्यावापृथिव्यावित्येके। अहो-

रात्राविन्त्येके। सूर्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः। निरु० १०। १, १॥

इमे ह वै द्यावापृथिव्यौ प्रत्यक्षमश्विनौ। इमे हि इदं सर्वमश्नुवाता। पुष्करस्रजौ इत्यग्निरेवास्यै (पृथिव्यै) पुष्करमादित्योऽमुष्यै (दिवे)। श० ४। १। ५। १६॥ श्रोत्रे अश्विनौ। नासिके अश्विनौ। तद्यौ ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्यौ। एतावेवाश्विनौ। श० १२। ९। १२-१४॥ मुख्यौ वा अश्विनौ। श० ४। १। ५। १९॥

द्युस्थान देवगण में अश्वी दोनों मुख्य हैं। एक रस से और दूसरा तेज से जगत् को व्यापता है। इसी से दोनों मुख्य हैं। आचार्य और्णाबाभ के मत में अश्वों, किरणों वाले सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति 'अश्वी' हैं। द्यौ पृथिवी, दिन रात्रि, सूर्य चन्द्र और राजा सभी ये 'अश्वी' कहाते हैं। पृथिवी में अग्नि और द्यौलोक में सूर्य दोनों पुष्टिकारक होने से 'पुष्कर' हैं। उनके धारक द्यौ और पृथिवी दोनों 'पुष्कर-स्रक् अश्वी' हैं। देह में कान, नाक, आंख दोनों जोड़े 'अश्वी' हैं। दो मुख्य पुरुष भी 'अश्वी' कहाते हैं।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः॥ २॥

भा०—हे मुख्य २ अधिकार के भोगने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों बहुत से कर्म करने में कुशल, सब प्रजाओं के नायक हो। आप दोनों शत्रु और प्रति-पक्षियों को दमन करने में समर्थ होकर ज्ञानयुक्त बुद्धि से वाणियों का प्रयोग करो, कहो और सुनो और उत्तम वेदवाणियों का अभ्यास करो।

अग्नि और जल पक्ष से—अग्नि और जल दोनों 'शवीरा' अर्थात् वेग उत्पन्न करनेवाली क्रिया से युक्त होकर बहुत से कर्म करते हैं। वे दृढ़ बल से युक्त होकर उपयोगी नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं। प्राण और अपान दोनों 'पुरु' नाम इन्द्रियों के भीतर कर्म-प्रवर्त्तक हैं। वे दोनों

'शवीरा' अर्थात् अति तीव्र गति वाली ज्ञानशक्ति से नाना श्रोत्रादि स्थानो पर स्थिर होकर नाना वाणियो को ग्रहण करते है ।

दस्रा॑ युवाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आ या॑तं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

भा०—नाना सन्धि विग्रह आदि, सयोग और विभागो से युक्त अभिषिक्त हुए कुशो के समान शत्रुओ को नाश करके ही प्रजाओ के शासन करने मे कुशल हो । इनके बीच मे दुःखो और दु.खदायी शत्रुओ के नाश करने वाले, कभी असत्याचरण न करने वाले आप दोनो नासिका-गत प्राणो के समान दुष्टो को रुलाने वाले वीरो के बीच रहने वाले आप दोनो हमे प्राप्त हो ।

विज्ञान पक्ष मे—मिश्रण और अमिश्रण क्रिया करने मे चतुर विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो को रोगनाशक, सदा सत्यगुण कर्म वाले, प्राण के मार्गों मे गतिशील जल और अग्नि के तत्व प्राप्त हो ।

इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता इ॒मे त्वा॒यवः॑ ।
अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! हे अद्भुत आश्चर्यकारक दीप्तियो वाले ! तू हमे प्राप्त हो । ये उत्पन्न समस्त पदार्थ, ऐश्वर्य तुझे चाहते है । और वे विस्तृत धनसम्पत्तियुक्त, किरणो या तेजो से युक्त पवित्र है । (२) हे राजन् ! ये अभिषिक्त राजगण भी तुझे चाहते है, किरणो के समान तेजस्विनी शक्तियो या प्रजाओ से पवित्र आचारवान् अभिषिक्त है । तू उनको प्राप्त हो । इस प्रकार छोटे छोटे राजा भी अपने मण्डलो की प्रजाओ द्वारा अभिषिक्त हो और वे अपने बीच मे सूर्य के समान महाराजा के अधीन रहे । (३) परमेश्वर पक्ष मे—ये समस्त पदार्थ सूक्ष्म कारण द्रव्यो से बने है, ये सब ईश्वर की सकल्प-कामना से प्रेरित है ।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

भा०—हे इन्द्र सूर्य के समान तेजस्वी और ऐश्वर्यवन् ! तू उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म से प्राप्त होने योग्य है । तू विद्वान् मेधावी पुरुषों से जाना जाता है । तू उत्तम ज्ञानवान्, मेधावी, वेदज्ञ ब्राह्मण पुरुषों को प्राप्त हो ।

ब्रह्म वै ब्राह्मणः । शत० १३ । १ । ५ । ३ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! ईश्वर वीर पुरुष ! अति वेग से जाने वाला वायु जिस प्रकार महान् कर्मों को करता है, उसी प्रकार तू भी वेद के ज्ञानों को या ऐश्वर्यों को प्राप्त हो । हे जलों के रस हरण करने वाली एवं तमोनाशक किरणों से युक्त सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों के स्वामिन् ! तू हमें अपने इस अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में अन्न आदि सञ्चय करने योग्य पदार्थों को धारण करा ।

प्राण के पक्ष में—इन्द्र, प्राणवायु गतिशील होकर हमारे अन्नों के पचाने की शक्ति प्राप्त करे और भोजनादि को धारण करे । शरीर को पुष्ट करे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे समस्त देव अर्थात् विद्वज्जनो ! वीर दानशील एवं युद्ध-विजयी तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग रक्षा करने हारे, तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रेमयुक्त, शत्रुहिंसक, वृद्धिशील, उत्तम पदार्थों के याचक एवं प्रदाता और

७–९–तदेतदेकमेव वैश्वदेवं गायत्रं तृचं दशतयीषु विद्यते । यत्तु किञ्चिद् बहुदेवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते । निरु० १२ । ४० ॥

दूसरों के रक्षक और रक्षण करने योग्य, एवं मनुष्यों को उत्तम व्यवस्था से धारण करने वाले है। आप लोग दानशील, अभयपद होकर दानशील, करप्रद, एवं आत्मसमर्पक के उत्तम पदार्थ, राष्ट्र या प्रस्तुत आदर सत्कार को प्राप्त करने के लिये आओ। विद्वान् आदि योग्य पुरुषों को इसी प्रकार से निमन्त्रण करना चाहिये। 'ओमासः'—अवितारो वावनीया वै मनुष्य-धृत.। निरु० १२।१४॥

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमा ग॑न्त॒ तूर्ण॑यः।
उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य के किरण जिस प्रकार दिनों को प्रकाशित करने के लिये नित्य नियम से आते है, उसी प्रकार हे विद्वान्, ज्ञान-प्रकाश से युक्त पुरुषो! आप लोग मेघों के समान मनुष्यों को जलवृष्टि द्वारा, अन्नादि वृद्धि करने और शुभ कर्मों का उपदेश देने वाले, स्वयं अति शीघ्रता से प्राप्त होने मे समर्थ होकर ज्ञान प्रदान करने के लिये, अथवा अभिषिक्त राजा या समृद्ध राष्ट्र को प्राप्त होओ।

'स्वसराणि'—अहानि भवन्ति। स्वयं सारीणि। अपि वा स्वरादित्यो भवति, स एनानि सारयति। निरु० ४।५॥

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒स्रिध॒ एहि॑मायासो अ॒द्रुहः॑।
मेधं॑ जुषन्त॒ वह्न॑यः ॥ ९ ॥

भा०—समस्त विद्वान् पुरुष अक्षय विज्ञान बल और कोप से युक्त, सब विषयों मे चतुर बुद्धि वाले, किसी के प्रति द्रोह बुद्धि न करनेवाले, अहिंसक, राष्ट्र और समाज के कार्यों को धारण करनेवाले विद्वान् पुरुष यज्ञ, परस्पर के शुभ गुण कर्मों का सत्संग और सेवनीय अन्न का सेवन करें।

'एहिमायासः'—आङ्पूर्वस्य ईहतेश्चेष्टार्थस्य इनि.। एहिः सर्वतो गामिनी माया प्रज्ञायेषां ते। जिनकी बुद्धियां सब तरफ़ यत्नशील हैं वे विद्वान्,

अर्थात् (Proficient in all arts & branches of knowledge) विद्या की सब कलाओं और शाखा प्रशाखाओं में निष्णात ।

वेदवाणी का वर्णन

पा॒व॒का नः॒ सर॑स्वती॒ वाजे॑भिर्वा॒जिनी॑वती ।
य॒ज्ञं व॑ष्टु धि॒याव॑सुः ॥ १० ॥

भा०—बलों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अन्नों से बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि को सिद्ध करनेवाली क्रिया के युक्त, सबको पवित्र करनेवाली, शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान उत्तम ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहनेवाली वेदवाणी और उसको धारण करनेवाले विद्वान् जन परस्पर सग, उत्तम कर्म और ज्ञान से ऐश्वर्य को धारण करनेवाली होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार, विद्याभ्यास और आत्मा और राष्ट्र को प्रकाशित करे ।

चो॒द॒यि॒त्री सू॒नृता॑नां॒ चेत॑न्ती सुमती॒नाम् ।
य॒ज्ञं द॑धे॒ सर॑स्वती ॥ ११ ॥

भा०—उत्तम ज्ञानों से युक्त वेदवाणी, उत्तम सत्य ज्ञानों का उपदेश करनेवाली और उत्तम बुद्धि वाले विद्वान पुरुषों को ज्ञान प्रदान करती हुई उनके यज्ञ, श्रेष्ठ कर्म और देव-उपासना को धारण करती, उसका उपदेश करती है ।

म॒हो अर्णः॒ सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑ ।
धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति ॥ १२ ॥ ८ ॥

भा०—ज्ञानमयी वेदवाणी अपने ज्ञान से ही बड़े भारी ज्ञानसागर का उत्तम रीति से ज्ञान कराती है । और समस्त ज्ञानों और कर्मों को विविध प्रकार से प्रकाशित करती है । जिस प्रकार बहती जलधारा यह सूचना देती है कि उसके निकास में अनन्त जलसागर है उसी प्रकार वेद-

वाणी भी उपदेश परम्परा से बराबर विस्तृत होकर अपने निकाश में स्थित अनन्त ज्ञान और शब्दराशि का ज्ञान कराती है। इति षष्ठो वर्गः॥

इति प्रथमोऽनुवाकः।

[४]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि । इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । ३ विराट् ।
१० निचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—दुग्ध दोहने वाले के लिये उत्तम दूध देने वाली गौ को जिस प्रकार बुलाया जाता है उसी प्रकार हम प्रतिदिन उत्तम, मनोहर, रुचिकर पदार्थों के उत्पन्न करने में चतुर, विद्यावान्, कलाविज्ञ, विद्वान् पुरुष को प्राप्त करें या उत्तम गुणों के उत्पादक परमेश्वर की स्तुति करें। दूध के लिये जैसे नित्य गौ को दोहते हैं उसी प्रकार उत्तम गुण प्राप्त करने के लिये गुणी को, ज्ञान प्राप्ति के लिये आचार्य को, रक्षा के लिये राजा को और शिल्प के लिये शिल्पज्ञ पुरुष को प्राप्त करें और उसकी आराधना करें।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम पदार्थों या राष्ट्रों के रक्षक राजन्! प्रभो! तू हमारे ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों या राज्य-कार्यों को प्राप्त हो। और सोम, ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का सेवन कर। सूर्य जिस प्रकार चक्षु आदि को सामर्थ्य प्रदान करता है उसी प्रकार वह भूमि और ज्ञान-वाणी का प्रदान करता है और धन-ऐश्वर्य और पुरुषार्थवान् पुरुष को तर्पित, तृप्त और आनन्दित करता है।

परमेश्वर जीवों का रक्षक सोमपा है, जीव की उपासनाओं को प्राप्त

हो। वह ऐश्वर्यवान् हृदय को तृप्त करने वाला आनन्दरस रूप और ज्ञान-वाणियों का प्रदाता है।

अथा॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुम॒तीना॑म्।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥

भा०—और हे परमेश्वर, राजन्! तेरे अति समीप प्राप्त, उत्तम ज्ञानयुक्त, श्रेष्ठ, धर्मात्मा पुरुषों के उत्तम उपदेश से हम तेरा ज्ञान करें। तू हमें त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर। हमें प्राप्त हो।

परे॑हि॒ वि॒ग्रमस्तृ॑त॒मिन्द्रं॑ पृच्छा वि॒पश्चि॑तम्।
यस्ते॒ सखि॑भ्य॒ आ वर॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू विशेष विद्वान् ज्ञानी अहिंसक, दयालुस्वभाव के ज्ञान का सञ्चय करने वाले, आत्मज्ञान के साक्षात् करने वाले उस विद्वान्, आप्त, उपदेष्टा पुरुष को पृथक्, एकान्त में प्राप्त हो और उसी से प्रश्न पूछ जो तेरे समान अन्य शिष्य गण को भी उत्तम विज्ञान का उपदेश करता है।

'विग्रः'—विविधं गृणात्यर्थान्, इति देवराजः। विप्र इति मेधाविनाम। निघ० ३। १५॥

उ॒त ब्रु॑वन्तु नो॒ नि॒दो निर॒न्यत॑श्चिदारत।
दधा॑ना॒ इन्द्र॒ इद् दुवः॑ ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—और चाहे हमारे निन्दा करनेवाले जन भी हमें कहें कि दूसरे स्थान में निकल जाओ, तब भी हम लोग उस परमेश्वर में ही नाना स्तुति, परिचर्या करते रहें।

अथवा परमेश्वर की ही परिचर्या करते हुए विद्वान् जन हमें उपदेश करें और हे हमारे निन्दाजनक पुरुषो! तुम अन्यत्र दूर देश में निकल जाओ।

उ॒त नः॑ सु॒भगाँ॑ अ॒रिर्वो॒चेयु॑र्दस्म कृ॒ष्टयः॑।
स्यामेदिन्द्र॑स्य॒ शर्म॑णि ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं और दुष्ट भावों के नाशक इन्द्र ! विद्वन् ! राजन् ! और हमारा शत्रु और साधारण जन भी हमें ऐश्वर्यवान् और कल्याणकारी कहे। हम सदा ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर की शरण में रहे।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! शीघ्रता के कार्य करने के लिये जिस प्रकार वेगवान् अश्व को नियुक्त किया जाता है उसी प्रकार आशु, शीघ्रकारी, प्रजापति या सुव्यवस्थित राष्ट्र के आश्रय, उसके शोभाजनक समस्त प्रजाओं और नेता पुरुषों को सुप्रसन्न करनेवाले और समस्त मित्रों को प्रसन्न रखने वाले स्वामी होने योग्य पुरुष को शीघ्र कार्य सम्पादन के लिये इस पृथिवी पर नियुक्त कर।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे सैकड़ों सहस्रों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्य वाले ! तू इस राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग करके, मेघों को सूर्य के समान सैकड़ो विघ्नकारी शत्रुओं को मारने में समर्थ हो, अर्थात् जिस प्रकार सूर्य इस जल का पान करके मेघों को रूपवान् करता है। समस्त जगत् की अन्नों द्वारा रक्षा करता है उसी प्रकार संग्रामों में संग्राम करने में कुशल ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र या पुरुष की उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे सैकड़ों पदार्थों के ज्ञान बुद्धि और सामर्थ्य वाले राजन् ! संग्रामों में विजय प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्यवान्, उस तुझको हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन्, शत्रुनाशक ! धनों, राज्यादि ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये हम आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, तुझे ऐश्वर्य पद से विभूषित करते हैं।

यो रायो॒३ऽवनि॑र्म॒हान्त्सु॑पा॒रः सु॑न्व॒तः सखा॑ ।
तस्मा॒ इन्द्रा॑य गायत ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर या राजा ऐश्वर्य का बड़ा भारी रक्षक और दाता है और जो उत्तम पालन पोषण करने हारा, सब कार्यों की पूर्ति करने वाला, उपासना करने वाले, धर्मात्मा पुरुषों और अभिषेक करने वाले प्रजाजनों का मित्र है उस इन्द्र, प्रभु की स्तुति करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[५]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । १ विराड् ।
३ पिपीलिकामध्या निचृद् । ५—७,९ निचृद् । ८ पादनिचृद् ॥
दशर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वेता॒ नि षी॑द॒तेन्द्र॑म॒भि प्र गा॑यत ।
सखा॑यः॒ स्तोम॑वाहसः ॥ १ ॥

भा०—हे स्तुति मन्त्रों को धारण करने वाले मित्रजनो! आओ और विराजो। उस ईश्वर को लक्ष्य करके उसकी खूब स्तुति गान करो।

पु॒रू॒तमं॑ पुरू॒णामीशा॑नं॒ वार्या॑णाम् ।
इन्द्रं॒ सोमे॒ सचा॑ सु॒ते ॥ २ ॥

भा०—आकाश से लेकर पृथिवी तक बहुत से वरण करने योग्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के स्रष्टा स्वामी, नाना दुष्ट स्वभाव के जीवों को कर्म फल से कष्ट देने वाले परमेश्वर की इस उत्पन्न संसार में मिलकर स्तुति करो।

राजा वरण योग्य, सम्पदाओं का स्वामी राष्ट्र के पालक पोषकों में से सब से श्रेष्ठ पालक, इन्द्र, शत्रुहन्ता को एकत्र स्थित होकर राजा को ऐश्वर्ययुक्त सोम = राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करें।

आत्मा के ज्ञानों को पूर्ण करने वाले इन्द्रियों के बीच सबसे श्रेष्ठ ज्ञाता और वरण योग्य समस्त आशाओं के स्वामी, इन्द्र, आत्मा की ब्रह्मानन्द रस में समवेत होकर स्तुति करें।

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर ही योगाभ्यास काल अथवा अप्राप्त-पुरुषार्थ के प्राप्त करने मे सहायक हो। वह उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने मे सहायक हो। वह परमेश्वर ही शास्त्रो को धारण करने वाली बुद्धि को प्राप्त करने में सहायक हो। वह हमे नाना ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो। राजा अप्राप्त ऐश्वर्य और 'पुरन्धी' अर्थात् स्त्री, गृहस्थ के पालन, पुर, राष्ट्र के पालन की नीति मे समर्थ हो। वह हमे अन्न आदि ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

भा०—राजा के पक्ष मे—युद्धो मे जिसके अश्वो को शत्रुगण रथ मे लगे देखकर संग्रामो मे डट नही सकते, भयभीत होकर भागते है, उस ऐश्वर्यवान् राजा के गुण गान करो।

परमेश्वर के उत्तम रीति से स्थित होने योग्य जगत् मे सूर्य के प्रकाश और आकर्षण के समान बल पराक्रम है, संग्रामो मे शत्रु जिसके सहाय से बल नही पकडते उस ईश्वर की स्तुति करो।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—ऐश्वर्यों की रक्षा करने वाले राजा के भोग के लिये ही ये प्रजाओ को धारण पोषण करने वाले कार्यों मे अपने को नष्ट करने शुद्ध, पवित्र, सदाचारी राष्ट्र के पदाधिकारी गण प्राप्त होते है।

जीव के पक्ष मे—उत्पन्न पदार्थों की रक्षा करने, उनको भोगने मे समर्थ पुरुष के भोग के लिये ये समस्त पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त है। इति नवमो वर्गः ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले जीव ! तू उत्तम ओषधि रस के समान जगत् के उत्पन्न ऐश्वर्य भोग, पालन या प्राप्त करने के लिये सबसे उत्तमपद को प्राप्त करने के लिये शीघ्र ही, सब दिन सबसे बड़ा, सर्वश्रेष्ठ होकर रह ।

परमेश्वर शुद्ध प्रज्ञावान् ! इस उत्पन्न संसार को अपने मे ले लेने मे महान् है ।

आ त्वा॑ विशन्त्वा॒शव॑: सोमा॑स इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते॑ सन्तु॒ प्रचे॑तसे ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य प्रभो ! तीव्र वेग से जाने वाले सेनाओं के प्रेरक, सचालक, अधिकारीगण तेरे मे प्रविष्ट हों, तेरे अधीन होकर रहे और वे उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त तुझे कल्याणकारी हों ।

को सबजीव पदार्थ प्राप्त हो और सुखकारक हो ।

त्वां स्तोमा॑ अवीवृधन् त्वामु॒क्था श॑तक्रतो ।
त्वां व॑र्धन्तु नो॒ गिर॑: ॥ ८ ॥

भा०—हे असंख्य ज्ञान और कर्मों के स्वामिन ! राजन ! एवं परमेश्वर ! तुझको स्तुतिसमूह वेदमन्त्र बढ़ाते हैं, वे तेरी ही महिमा का गान करते हैं। वेद के सूक्त भी तेरा ही गान करते हैं । हमारी वाणियां भी तुझे बढ़ावें, तेरी महिमा का प्रकाश करें ।

अक्षि॑तोतिः सनेदि॒मं वाज॒मिन्द्र॑: सह॒स्रिण॑म् ।
यस्मि॒न् विश्वा॑नि॒ पौंस्या ॥ ९ ॥

भा०—अक्षय रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से युक्त ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा इस सहस्रों असंख्य बल, वीर्य और सुखों वाले ऐश्वर्य को प्राप्त हो या प्रदान करे जिसमें समस्त प्रकार के पुरुषोपयोगी बल है ।

परमेश्वर अक्षय ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से युक्त, सहस्रों सुखों का देनेवाला ज्ञान, अन्न और बल प्रदान करे । उसमें सब बल है ।

८ मा नो मर्तो अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! हे आज्ञा प्रदान करने वाले वा स्तुत्य ! मरण-धर्मा मनुष्य हमारे शरीरो का द्रोह न करें, हम पर द्वेष से प्रहार न करें। तू सब का सामर्थ्यवान् स्वामी होकर घात या हिसा कार्य को दूर कर, हम तक न पहुचने दे । दशमो वर्गः ॥

[६]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ १–३ इन्द्रो देवता ॥ ४, ६, ८ ९ मरुत । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्र । गायत्र्य । १२ विराड् । ४, ८ निचृद् ॥
दशर्चं सूक्तम् ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् योगी जन सबको नियम-व्यवस्था में बांधने वाले, महान्, सर्वाश्रय, रोषरहित, अहिंसक, तेजस्वी, समस्त स्थावर, अचेतन प्राकृतिक संसार में व्यापक परमेश्वर का समाहित चित्त होकर ध्यान करते हैं, उसका योगाभ्यास से साक्षात् करते हैं। और वे ही ज्ञानमय प्रकाश और परम ज्योतिर्मय तप से तेजस्वी होकर प्रकाशस्वरूप परमेश्वर या मोक्ष मे प्रकाशित होते है, विराजते हैं ।

तेजस्वी, महान्, विचरने वाले सूर्य को उसके चारो ओर स्थित नक्षत्र आदि लोकों को आकर्षण से बांधते हैं, जो आकाश में चमक रहे है ।

सूर्य के समान सबको बांधने वाला महान्, वायु के समान स्वच्छन्द विचरने वाले बलवान् को स्थिर प्रजाजनों के ऊपर राजा नियुक्त करते हैं । वे ज्ञानवान् पुरुष राजसभा मे विराजते हैं ।

असो वा आदित्यो ब्रध्न. । अग्निर्वा अरुष. । इमे वै लोकाः परितस्थुषः । नक्षत्राणि वै रोचनानि । वायुर्वै चरन् । (तै० ३।९।४।१–२)

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

भा०—इस आत्मा के प्राप्त करने के लिये रमण करने योग्य इस देह में कामना करने योग्य गतिशील एवं इन्द्रियों को गति देने वाले विविध पार्श्वों में स्थित, गतिशील, दृढ़, नेता आत्मा को वहन करने वाले प्राण और अपान दोनों को योगी जन योगाभ्यास द्वारा वश करते हैं।

सूर्य और अग्नि के पक्ष में—रथ में जिस प्रकार दोनों पार्श्वों पर दो अश्व लगाये जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों दृढ और रक्तवर्ण, क्षत्रिय, रथस्थ, मनुष्यों को उठाने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार इस सूर्य और अग्नि के हरणशील आकर्षण और वेग दोनों गुण, विविध यन्त्रकला, जलचक्रादि को पार्श्वों पर धारण करने में समर्थ, उत्तम इच्छा योग्य, गतिप्रद, दृढ, बहुत मनुष्यों को उठाकर ले जाने में समर्थ हैं, उनको विद्वान् शिल्पी रथ आदि यानों में लगावें।

राजा के पक्ष में—राजा के रथ में कामनानुकूल गति करने वाले दोनों बाजू पर दृढ अश्वों को नियुक्त करते हैं।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन! विद्वन! तू अज्ञानी के अज्ञान को नाश करने के लिये उसको विशेष ज्ञान और सुवर्णादि रहित धनहीन पुरुष के दारिद्र्य को नाश करने के लिये सुवर्णादि धन प्रदान करता हुआ सूर्य जिस प्रकार उषाकालों सहित उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार प्रजा के अज्ञान और पाप-दोषों को नष्ट कर डालने वाले विद्वान और वीर पुरुषों सहित सामर्थ्यवान प्रबल और प्रसिद्ध हो। हे मनुष्यो! आप लोग भी उसका सत्संग करो।

(२) सूर्य रात्रि में सोते हुए अचेत को प्रातः सचेत करता और अन्धकार में रूपरहित पदार्थ को पुनः रूप प्रदान करता है।

(३) अध्यात्म में—जीव केतु अर्थात् ज्ञान रहित देह को ज्ञानवान् और रूप रहित प्राणों को रूपवान् करता हुआ प्राणों के सहित देहवान् होकर प्रकट होता है।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य ताप के अनन्तर ही जल को प्राप्त करके अथवा अपनी धारणा शक्ति के अनुसार वायुएं बार बार जल को ग्रहण करने वाले स्वरूप को प्राप्त करते है और उसी समय परस्पर मिलने या सयोग से उत्पन्न होने वाले जल को भी धारण करते है। अर्थात् सूर्योत्ताप के बाद वायुगण अपने भीतर जल को धारण करने के सामर्थ्य के अनुसार, परस्पर सयोग से उत्पन्न जल को धारण कर लेते हैं वही दशा 'गर्भ' रूप कहाती है। वृष्टि आदि के पूर्व वायु जलो से गर्भित हो जाते हैं। (२) अध्यात्म मे—परस्पर स्त्री पुरुष के रजोवीर्यांश के संयोग से उत्पन्नस्वरूप को धारण करते हुए प्राण गण स्वधा अर्थात् जीव वा अन्न के साथ ही उसके लिङ्ग शरीर सहित प्रविष्ट हो कर माता की कुक्षि मे गर्भरूप को प्राप्त होते हैं।

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! तोड फोड करनेवाले बलवान्, उठाकर फेंकने वाले बलवान् पदार्थों से जिस प्रकार दृढ, बलवान् दुर्ग को भी तोड डाला जाता है और गुफा में भीतर स्थित रत्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते है उसी प्रकार शत्रुओं का गढ तोडने वाले सेना के मुख्य पदो को धारण करने वाले, नायकों के साथ पर्वतों के गुप्त भागों में भी दृढ़ता से नाना ऐश्वर्य देने वाली भूमियां, गौवों, प्रजाओं को भी प्राप्त कर।

(२) आत्मा अज्ञान के आवरणो को तोडने मे समर्थ शरीर के धारक

प्राणों द्वारा दृढ़ता से भीतरी 'पुरीतत्' नाम गुहा में प्रवेश करके अनन्तर प्रकाशमय किरणों को प्राप्त करे।

(३) सूर्य छेदन-भेदन, संयोग-विभाग करने वाले वायुओं द्वारा आकाश में ही किरणों से जलादि पदार्थों को धारण करता है [दया०]।

(४) इन्द्र = विद्युत् वायुओं द्वारा बह निकलने वाली जल-धाराओं को प्रकट करता है [ग्री०]।

(५) सूर्य अन्तरिक्ष में दिनों को प्रकट करता है। [मैक्स०]।

(६) विद्वान् अज्ञान का नाश करने वाले अग्निस्वरूप आचार्यों से दृढ़ सत्य, ज्ञान प्राप्त कर हृदय-गुहा में ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष देव, परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं, वे स्तोता विद्वान् पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, मननशील, बड़े भारी विद्वान्, बहुश्रुत एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करते हैं।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सूर्य से युक्त होता है, दोनों समान रूप से तेजस्वी और हर्षजनक होते हैं उसी प्रकार हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय ! शत्रुहन्ता सेनापति के साथ युक्त होकर ही तू शोभा पाता है। तुम दोनों समान रूप से, तेज को धारण करनेवाले और सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो।

(२) विद्वान् जीव अभयस्वरूप आचार्य या परमेश्वर के साथ संगत होकर दीखता है।

(३) प्राणगण ! अभय आत्मा के साथ संगत हैं। दोनों समान तेजस्वी और एक दूसरे को आनन्दप्रद हैं।

अ॒न॒व॒द्यैर॒भिद्यु॑भिर्म॒खः सह॑स्वदर्चति ।
ग॒णैरिन्द्र॑स्य॒ काम्यैः ॥ ८ ॥

भा०—यह जगत्-पालन रूप महान् यज्ञ ही निन्दनीय दोषो से रहित, खूब तेजस्वी, गणो सहित शत्रुहन्ता सेनापति के शत्रु-पराजयकारी सामर्थ्य का वर्णन करता है ।

(२) सूर्य का ससार पालन रूप यज्ञ अति कामना योग्य, निर्दोष, त्रुटिरहित, अति तेजस्वी वायुगणो या किरणो से उसके बलयुक्त कार्य का वर्णन करता है ।

(३) शरीर का जीवन यज्ञ आत्मा को प्राणगण सहित जीव के सर्वातिशायी स्वरूप को बतलाता है ।

अतः परिज्मन्ना ग॑हि दि॒वो वा॑ रोच॒नादधि ।
सम॑स्मिन्नृञ्जते॒ गिरः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो ! हे प्राण ! सब दिशाओ मे जाने मे समर्थ ! एवं सब पदार्थों को ऊपर नीचे फेंकने मे समर्थ ! तू सूर्य के प्रकाश से और मेघमण्डल से आ । इस तुझ में ही वाणिया प्रकट होती हैं ।

वायु ही सब दिशाओ मे बहता है, वही मेघो मे विचरता है उसी के कारण मेघ गर्जनरूप अन्तरिक्षस्थ वाणियें प्रकट होती है । उसी प्रकार प्राण ! तू मूर्धा भाग और अन्तःकरण से भी आता है और कण्ठ की वाणिया प्रकट होती है ।

इ॒तो वा॑ सा॒तिमीम॑हे दि॒वो वा॒ पार्थि॑वा॒दधि ।
इन्द्रं॑ म॒हो वा॒ रज॑सः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—इस पृथिवी लोक से और द्यौलोक से और अन्तरिक्ष लोक से भी बडे ऐश्वर्यवान् और उनके ऊपर शासकरूप से विद्यमान सूर्य वा प्रभु को ही हम सब पदार्थों के सयोग-विभाग करने और प्रदान करने वाला जानते है उसी से ऐश्वर्य सुख की याचना करते हैं । इति द्वादशो वर्गः ॥

प्राणों द्वारा दृढता से भीतरी 'पुरीतत्' नाम गुहा में प्रवेश करके अनन्तर प्रकाशमय किरणों को प्राप्त करे।

(३) सूर्य छेदन-भेदन, संयोग-विभाग करने वाले वायुओं द्वारा आकाश में ही किरणों से जलादि पदार्थों को धारण करता है [दया०]।

(४) इन्द्र = विद्युत् वायुओं द्वारा वह निकलने वाली जल-धाराओं को प्रकट करता है [ग्री०]।

(५) सूर्य अन्तरिक्ष में दिनों को प्रकट करता है। [मैक्स०]।

(६) विद्वान् अज्ञान का नाश करने वाले अग्निस्वरूप आचार्यों से दृढ़ सत्य, ज्ञान प्राप्त कर हृदय-गुहा में ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष देव, परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं, वे स्तोता विद्वान् पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, मननशील, बड़े भारी विद्वान्, बहुश्रुत एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की साक्षात् स्तुति करते हैं।

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सूर्य से युक्त होता है, दोनों समान रूप से तेजस्वी और हर्षजनक होते हैं उसी प्रकार हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय! शत्रुहन्ता सेनापति के साथ युक्त होकर ही तू शोभा पाता है। तुम दोनों समान रूप से, तेज को धारण करनेवाले और सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो।

(२) विद्वान् जीव अभयस्वरूप आचार्य या परमेश्वर के साथ संगत होकर दीप्ता है।

(३) प्राणगण! अभय आत्मा के साथ संगत है। दोनों समान तेजस्वी और एक दूसरे को आनन्दप्रद हैं।

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

भा०—यह जगत्-पालन रूप महान् यज्ञ ही निन्दनीय दोषो से रहित, खूब तेजस्वी, गणो सहित शत्रुहन्ता सेनापति के शत्रु-पराजयकारी सामर्थ्य का वर्णन करता है।

(२) सूर्य का संसार पालन रूप यज्ञ अति कामना योग्य, निर्दोष, त्रुटिरहित, अति तेजस्वी वायुगणो या किरणो से उसके बलयुक्त कार्य का वर्णन करता है।

(३) शरीर का जीवन यज्ञ आत्मा को प्राणगण सहित जीव के सर्वातिशायी स्वरूप को बतलाता है।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
सम॑स्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो ! हे प्राण ! सब दिशाओ मे जाने मे समर्थ ! एवं सब पदार्थों को ऊपर नीचे फेंकने मे समर्थ ! तू सूर्य के प्रकाश से और मेघमण्डल से आ। इस तुझ में ही वाणिया प्रकट होती है।

वायु ही सब दिशाओ मे बहता है, वही मेघो मे विचरता है उसी के कारण मेघ गर्जनरूप अन्तरिक्षस्थ वाणियें प्रकट होती हैं। उसी प्रकार प्राण ! तू मूर्धा भाग और अन्तःकरण से भी आता है और कण्ठ की वाणियां प्रकट होती है।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—इस पृथिवी लोक से और द्यौलोक से और अन्तरिक्ष लोक से भी बडे ऐश्वर्यवान् और उनके ऊपर शासकरूप से विद्यमान सूर्य वा प्रभु को ही हम सब पदार्थों के संयोग-विभाग करने और प्रदान करने वाला जानते है उसी से ऐश्वर्य सुख की याचना करते हैं। इति द्वादशो वर्ग. ॥

[७]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । ७ निचृद् । ८, १० पिपीलिकामध्या निचृद् । ९ पादनिचृद् । दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहद् इन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का ही सामगान करने हारे विद्वान् गान करते हैं। अर्चना योग्य मन्त्रों और विचारों से युक्त विद्वान् पुरुष अर्चनाओ और सत्यभाषणादि व्यवहारो, शिल्पादि साधक कर्मों और वेदमन्त्रो से उस महान् परमेश्वर की स्तुति करते हैं और चारो वेदो की वाणियो से ईश्वर की स्तुति करते है।

बृहत्—बृहता साम्ना । वाणीः—यजूरूपाभिर्वाग्भिरिति सायणः । वेदचतुष्टयीरिति दयानन्दः ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

भा०—वायु ही वाणी या शब्द के साथ योग करने वाले लाने और ले जाने के गुणों को एक साथ सब पदार्थों से युक्त करता है, उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् सूर्य भी संवत्सर और ताप से युक्त और प्रकाश से युक्त है।

(२) राजा वाणीमात्र से रथ मे जुड़ जाने वाले, आज्ञाकारी घोड़ो से युक्त है। और वह शक्तिशाली खड्ग धारण करता और तेजस्वी, धन-सम्पन्न है।

(३) जीव ही वाणी के साथ युक्त होकर प्राण और अपान से युक्त है, वही बलवान् और तेजस्वी है।

(४) परमेश्वर वेदवाणी से युक्त होने वाले गुरु शिष्यो को मिलाता है। वह ज्ञानमय, प्रकाशमय है।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर चिरकाल तक देखने के लिये और प्रकाश के लिए आकाश मे सूर्य को स्थापित करता है। और वह सूर्य किरणो से मेघ को विविध दिशाओ मे गति देता है।

(२) राजा दीर्घ दर्शन के लिए राजसभा मे सबके ऊपर सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को सभापतिरूप से स्थापित करे। वह अपनी वाणियो, आज्ञाओं से अखण्ड शासकगण का सचालन करे।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू सहस्रो, असंख्य उत्तम चक्रवर्ती राज्य आदि धनों के देने वाले संग्रामो मे, हमारी रक्षा कर। हे सदा बलवान्, प्रचण्ड शक्तिमन्! तू शत्रुओं को उद्वेग उत्पन्न करने वाले सर्वोत्तम रक्षाकारी साधनो और सेनाओ से हमारी रक्षा कर।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा को हम बडे सग्राम वा बहु धनदायी-कार्य मे बुलाते हैं। उसी शत्रुहन्ता को हम छोटे कार्य मे भी स्मरण करते हैं। घेरने वाले मेघो पर प्रकाशमान् सूर्य के समान नगरो को रोकने वाले शत्रुओं, प्रजा के समस्त व्यवहारो पर वज्र या शत्रुवारक घोर अस्त्रों का प्रयोग करने वाले, व्यवस्थापक, सदा सहायक, प्रजा के स्नेही, सावधान, सर्वाज्ञाकारी नियोक्ता राजा वा प्रभु को हम स्मरण करते है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे जलो को मेघ के समान, सुखों के वर्षण करने हारे! हे सत्य, अभीष्ट फलो को, एक साथ ही देने वाले! तू सूर्य के समान हमारे

लिए द्वार खोल दे, वह तू हमारे लिए कभी पराजित न होने वाला, वीर विजेता के समान अप्रकम्प रहने वाला, हमें न भूलने वाला है।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—अनन्त वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के प्रत्येक दान को लक्ष्य करके जो उत्तम उत्तम स्तुति-मन्त्र हैं उनसे अतिरिक्त उसकी और अधिक उत्तम स्तुति को मैं नहीं पाता हूं।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥

भा०—वीर्य सेचन में समर्थ सांड जिस प्रकार गो-समूहों को अपने बल पराक्रम से प्राप्त होता है और वही जिस प्रकार अपने पराक्रम से क्षेत्र में हलादि के और मार्ग में रथ, शकट आदि के खींचने के कार्य करता है उसी प्रकार सुखों का वर्षक राजा और परमेश्वर अति सेवनीय स्वरूप, मनोहर, एवं धर्मात्माओं को अनेक पदार्थ प्राप्त कराने वाला होकर अपने बल, पराक्रम से मनुष्यों को प्राप्त होता, उनको संचालित करता है और वही कभी प्रतिपक्षियों से विचलित न होने वाला, दृढ़ निश्चयी होकर समस्त राष्ट्र और जगत् का स्वामी है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

भा०—जो राजा अद्वितीय, अकेला, राष्ट्र में बसने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, इन पांचों प्रकार के निवास करने वाले मनुष्यों के बीच में ऐश्वर्य भोगने और अन्यों को देने में समर्थ है वह राजा 'इन्द्र' कहाने योग्य है।

(२) परमेश्वर पृथिवी आदि उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, उत्तमतर, उत्तमतम इन पांचों लोकों का स्वामी और अकेला ही निवासयोग्य समस्त लोकों और मनुष्यों को ऐश्वर्य देने में समर्थ है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

भा०—समस्त प्रजाजनो से ऊपर, सबसे उत्कृष्ट वा उनके सब ओर सर्वत्र विद्यमान, राजा के समान रक्षक परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। वह एकमात्र, अद्वितीय मोक्षमय परमेश्वर ही हमारा और तुम्हारा कल्याणकारी हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[८]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्य । १, ५, ८ निचृद् । २ प्रतिष्ठा । १० वर्धमाना ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू सदा उत्तम रीति से सेवन करने योग्य, अपने बराबर के शत्रुओं का विजय करने वाले, सदा शत्रुओं को पराजित करने और समस्त दुःखों को सहन कराने वाले, अत्यन्त अधिक धनैश्वर्य को हमारे रक्षा के लिये प्राप्त करा।

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

भा०—जिस ऐश्वर्य से हम लोग मुष्टिवत् संघ शक्ति से मार मार कर ही सुख सम्पदाओं को रोक लेने वाले, विघ्नकारी, शत्रुओं को सर्वथा रोक दें और हे राजन् ! परमेश्वर ! तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर ही हम अश्वबल से शत्रुओं को विनष्ट करें, वह धन हमें प्रदान कर।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! परमेश्वर ! तेरे अधीन सुरक्षित

रहकर हम शत्रु के वारण करने वाले आग्नेय शस्त्रास्त्र और उनको हनन करने वाले, तोप आदि संहारकारी दृढ साधनों को ग्रहण करें। युद्ध में हम स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को विजय करें।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! परमेश्वर! हम शस्त्रास्त्रों के फेंकने में कुशल शूरवीर पुरुषों और तुझ सहायक से युक्त होकर सेनाओं को बढा कर युद्ध में आने वाले शत्रुओं को बराबर पराजित करें।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—समस्त जगत् का राजा, सर्वैश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा ही बड़ा है और वही सबसे बढ़कर है। न्यायानुसार दण्ड बल से युक्त, वीर्यवान् पुरुष को ही पूजनीय बड़प्पन का पद प्राप्त हो। वह ही अति विस्तृत बल से सूर्य और आकाश के समान महान् है।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

भा०—जो नेता पुरुष संग्राम में लगे रहते हैं और जो लोग पुत्र, पौत्र आदि सन्तानों के प्राप्त करने में गृहस्थ होकर रहते हैं और जो विज्ञान को प्राप्त करने और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक, मेधावी पुरुष हैं वे सब भी आदर के योग्य हैं। अर्थात् संग्रामविजयी, वीर क्षत्रिय, पुत्रवान् गृहस्थ और ज्ञानवान् ब्रह्मिष्ठ विद्वान् तीनों आश्रमी समानरूप से आदरणीय हैं।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

भा०—जो सूर्य के समान समस्त पदार्थों से रस भाग अपने भीतर ले लेने में समर्थ है, जो मेघ के समान उत्तम ऐश्वर्यों का सबसे उत्कृ

लक एवं सोम अर्थात् राजपद का पालक अथवा उपभोक्ता, जल ग्रहणकर्त्ता होकर जलों को बरसा देने वाले अन्तरिक्ष या मेघ या र्य के समान ही प्रजाओं पर गर्जन शब्द पूर्वक वर्षण करने वाले मेघ के मान पृथिवी, उन पर बसने वाली प्रजाओं पर प्राप्त करने योग्य दार्थों या जलधाराओं के समान आशों का सेवन करता है वही राजा ादरयोग्य है। (२) प्राणगण जिस प्रकार वाणियों को सेवन करते हैं और जिस प्रकार सर्व पदार्थों का रक्षक सूर्य या जल ग्रहण करने वाला घ पृथिवी को सींचता है उसी प्रकार राजा प्रजाओं को बढ़ाता है अतः ह आदरयोग्य है।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—पृथ्वी के समान वेदवाणी का वर्णन। इस परमेश्वर की ही नेश्चय से उत्तम ज्ञान को प्रकाशित करने वाली, प्रिय और सत्य प्रकाशक अथवा अप्रियों को नाश करने वाली, सत्यमयी वाणी विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली, अति विस्तृत, नानाविध वेदवाणियों से युक्त सर्वाश्रय पृथ्वी के समान ही पूजनीय है। वह दानशील एवं दूसरों को ब्रह्मविद्या का प्रदान करने वाले, गुरु और अपने को भक्तिश्रद्धापूर्ण शिष्य रूप से सौंप देने वाले, नित्य विद्याभ्यासी पुरुष के लिए पके फलों से लदी वृक्ष की शाखा के समान नाना सुखप्रद होती है। (२) राजा की पृथिवी, उत्तम अन्न और जल से युक्त, विविध पदार्थों की देने वाली अतएव बड़ी भारी, गौ आदि पशुओं से समृद्ध पृथिवी है। वह भूमि में बीजवपन करने वाले एवं राजा को कर आदि देने वाले या ध्यान और मनोयोग देने वाले उद्योगी पुरुष को पके फलों से लदी शाखा के समान सदा परिपक्व धान्यसम्पदाओं से युक्त होकर उसे नाना भोग्य सुख प्रदान करती है।

'सूनृता'—सुष्ठु ऋतं यस्याः सा। ऋतमिति उदकान्नजलज्ञानादिनामसु.

पठितम् अन्न नाम (नि० २।७॥)। सुतरामूनयति अप्रियम् इति सून्, सा चासौ ऋता सत्या चेति सूनृता प्रिया सत्यावागिति सायणः।

'विरप्शी' इति महन्नाम (निघ० ३।३)। विविधं रपण विरप् तदेषामस्तीति विरप्शानि वाक्यानि। तानि यस्यां वाचि सा विरप्शी। अत इनि-ठनावितीनिः। ङीप्। नलोपश्छान्दसः। इति सायणः।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—निश्चय से, हे ईश्वर ! तेरी ये विविध ऐश्वर्यों से युक्त विभूतियां सब मेरे जैसे अपने को आत्मसमर्पण कर देने वाले जीव की रक्षा व्यवहार साधन, ज्ञानवर्धन और ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिए ही सदा ही होती है।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् ! ये तेरे समस्त ऐश्वर्य अपने को तेरे अधीन सौंपने वाले मुझ जैसे प्रजाजन की रक्षा आदि के लिए ही हैं।

'ऊतये'—रक्षणाद्यर्थस्यावतेरूतिनिपातनात्। (पा०३।३।९७॥)

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—इस परमेश्वर के वर्णन करने वाले ही मनोहर और स्तुति करने योग्य मन्त्रसमूह और सूक्त हैं। सोम, अर्थात् जगत् के पदार्थों को अपने वश करने हारे, परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के गुण वर्णन के लिए ही उनका उच्चारण करो।

राजा के पक्ष मे—राजा के ही उत्तम स्तुत्य पदाधिकारी बल वीर्य के कार्य, आज्ञाएं और दण्डविधान उत्तम स्तुति योग्य हैं। वे ही राष्ट्र के भोग व पालन करने वाले राजा के योग्य हैं।

[९]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । १, ३, ७, १० निचृत् । ५, ६ पिपीलिकमध्या निचृद् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
मुहाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्विन् ! परमेश्वर ! सूर्य जिस प्रकार समस्त चन्द्र के पर्वों, कलाओं से और अन्धकार के नाश करने वाले प्रकाश से प्रतिदिन आता है और समस्त प्राणियों के हर्ष का कारण होता है और जैसे सूर्य तेज से सर्वत्र व्यापक और बड़े भारी सामर्थ्य वाला है, उसी प्रकार परमेश्वर समस्त उत्पन्न पदार्थों और प्राणियों के पोरु पोरु में स्थित, नाना उत्पादक और प्रेरक और पालन-सामर्थ्यों से और सबको प्राण धारण कराने वाले अन्न और पृथिवी आदि तत्वों से सबको प्रसन्न, आनन्दित और तृप्त करता है। वह तू हमें प्राप्त हो, हम ज्ञान-विज्ञान के रहस्यों से भरी तेरी अद्भुत शक्तियों सहित तुझे प्राप्त करें। तू अपने बल, पराक्रम और सकल संसार के धारण करने वाले व्यापक तेज से सब पदार्थों के अणु अणु में व्यापक होकर बड़े भारी सामर्थ्य वाला है।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू सोम, राज्य-ऐश्वर्य के अंग प्रत्यंगों से अन्याय और अधर्माचरण के नाशक बल और व्यवस्था तथा अन्नादि सम्पत्ति से सबको तृप्त, आनन्दित और प्रसन्न करता है और बल पराक्रम से सबको सन्मार्ग-व्यवस्था को जानने हारा और सब शत्रुओं का पराजयकारी होकर बड़ा सामर्थ्यवान् है।

अन्धसः—'अन्धकाररूपस्यान्यायस्य निवर्त्तकम्' अथवा 'अधर्माचरणस्य नाशकम्' इति श्री दयानन्दो यजुर्भाष्ये (१९ । ७५,७७)।

एमेनं सृजता सुते मुन्दिमिन्द्राय मुन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! इस अग्नितत्व और जलतत्व को नाना प्रकार से प्रकाशित करो और साधो, उत्पन्न हो जाने पर हर्षदायक क्रिया उत्पन्न करने वाले इस अग्नितत्व, विद्युत् को समस्त कार्यों और पुरुषार्थों

के करने हारे ऐश्वर्य के इच्छुक जीव के सुख के लिए प्रयोग करो।

राजा के पक्ष में—इस समस्त ऐश्वर्यमय, सबको नाना सम्पदाओं से प्रसन्न और तृप्त करने वाले, सब कार्यों को करने वाले राष्ट्र चक्र को अभिषेककाल में सबके प्रसन्न करनेवाले, सब कार्यों के सम्पादन में समर्थ पुरुष के हाथों प्रदान करो।

अध्यात्म में—समस्त विश्व का कर्ता और आनन्दस्वरूप परमेश्वर, इन्द्र, 'मन्दी' और 'चक्री' है ज्ञान में प्रसन्न कर्मकर्ता और भोक्ता जीव भी मन्दी और चक्री है। उसको उस परमेश्वर पर वार दो।

मत्स्वा सुशिप्र मुन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे।
सचैषु सर्वनेष्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम ज्ञानवन्! सूर्य के समान उत्तम प्रकाशस्वरूप! हे समस्त संसार के द्रष्टः! समस्त विश्व को अपने भीतर आकर्षण करने या संचालन करने हारे परमेश्वर! तू हर्षित करने वाले, गुणों के प्रकाशक वेद के स्तुति वचनों से इन ऐश्वर्यों में ध्यान-वन्दनादि में, अथवा जगत्सर्गों में विद्यमान हमको हर्षित कर।

आत्मपक्ष में—हे ज्ञानवन्! आत्मन्! हे विश्वमय परमेश्वर के देखने हारे ज्ञानवन्! तू इन सब सर्गों में विद्यमान अपने आपको आत्मानन्द के उत्पादक ईश्वर की स्तुतियों से हर्षित रख।

राजा के पक्ष में—हे उत्तम बलशालिन्! राष्ट्र के देखने हारे! इन अभिषेक कार्यों में या ऐश्वर्यों के हर्षजनक स्तुति वचनों से प्रसन्न हो। एवं नाना आज्ञा और अधिकार दान से हम अधीनस्थों को प्रसन्न कर।

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेरी वेदवाणियां समस्त सुखों के वर्षक, सबके पालक तुझको ही सर्वोच्च बतलाती हैं। तू ही उनको स्वयं सेवन

करता अर्थात् उनकी यथार्थता का विषय है। अतः मैं भी उनको तेरे ही स्तुतिवर्णन के लिए प्रयोग करता हूं।

सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग्राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम्।
अस॒दित् ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! परमेश्वर! तू वरण करने योग्य, अति श्रेष्ठ, सञ्चय करने योग्य, चक्रवर्ती राज्य, विद्या, मणि, सुवर्ण, हाथी आदि सम्पत्ति को हमें प्रदान कर। तेरा व्यापक, सर्वत्र नाना सुखप्रद और उत्तम प्रभावजनक सामर्थ्य है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अ॒स्मान्त्सु तत्र॑ चोद॒येन्द्र॑ रा॒ये रभ॑स्वतः।
तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे ईश्वर! हे बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन्! राजन्! तू कार्य आरम्भ करने वाले, आलस्य रहित, पुरुषार्थी हम यशस्वी एवं बल-वीर्य से सम्पन्न उद्योगी पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए उत्तम मार्ग में चला।

सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑वद॒स्मे पृ॒थु श्रवो॑ बृ॒हत्।
वि॒श्वायु॑र्धे॒ह्यक्षि॑तम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हमें उत्तम वाणी, गौ आदि पशु और पृथ्वी से युक्त अन्न, बल, ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त विस्तृत, बड़े भारी अक्षय सदा बढ़ने हारे, अविनाशी यश, ज्ञान, धन और पूर्ण आयु १०० वर्षों की और उससे भी अधिक आयु प्रदान कर।

अ॒स्मे धे॑हि॒ श्रवो॑ बृ॒हद् द्यु॒म्नं स॑हस्र॒सात॑मम्।
इन्द्र॒ ता र॒थिनी॒रिषः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! हमें और हमारी रक्षा के लिए बड़ा भारी अन्न और सहस्रों को, सहस्रों सुखोपभोग देने में भी अति अधिक ऐश्वर्य और रथादि चतुरंग सम्पन्न नाना सेनाएं प्रदान कर और राष्ट्र में रख।

वमोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्तं ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

भा०—समस्त बसने हारे प्रजाजन और उनके निवास हेतु ऐश्वर्य के स्वामी, ऋचाओं, वेदमन्त्रों के बनाने हारे उपदेष्टा या उनके प्रतिपाद्य ज्ञानवान्, सर्वव्यापक परमेश्वर की वाणियों से स्तुति करते हुए रक्षा और ज्ञानप्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं ।

राजा के पक्ष में—ऐश्वर्यों और प्रजाओं के पालक ऋचाओं, वेदमन्त्रों के ज्ञाता, विद्वान् और शत्रुओं पर चढ़ाई करने हारे सेनापति को हम नाना वाणियों से स्तुति करते हुए अपनावें ।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—शत्रु भी प्रत्येक अभिषेक में नियत स्थान बनाकर रहने वाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी, अपने से शक्ति में बड़े, ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बड़े भारी बल का आदर करता है । उसके आगे झुकता है ।

परमेश्वर के पक्ष में—पुत्रों का लिप्सु पुरुष प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ या प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति में परमेश्वर के महान् बल की स्तुति करता है ।

'अरिः'—ऋच्छति गृह्णाति अन्यायेन इत्यरिः, ऋच्छति सुखानि च यः सोऽरिः इति दया० । इयर्त्ति गच्छति अनुष्ठेयकर्म इति अरिर्यजमानः इति सायणः । इत्यष्टादशो वर्गः ।

[१०]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुभः । १ । ३ । ५ विराट् ।
४ एकोना विराट् । ६, ८ निचृद् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

भा०—गायत्र, साम के गान करने हारे गायकजन तेरा ही गान करते हैं । ज्ञानप्रद वेदमन्त्रों के ज्ञाता जन भी अर्चना करने योग्य तेरी

ही अर्चना करते हैं। हे सैकडो कर्मों के करने और विज्ञानो के जानने हारे परमेश्वर! वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण भी वंश अथवा ध्वजा दण्ड के समान तुझको ही उत्तम पद पर नियत करते हैं। सबसे ऊंचे पद पर सर्वोपरि मानते हैं।

'अर्कम्'—अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चति। अर्कमन्नं भवति अर्चति भूतानि। अर्को वृक्षो भवति संवृतः कटुकिम्नेति। निरु० ५। ४॥

यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥ २॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य एक पर्वत-शिखर से दूसरे पर्वत-शिखर पर चढता है तब वह और बहुत से कर्तव्य, करने योग्य कार्यों को और जाने योग्य स्थानों को दूर दूर तक देख सकता है। इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी प्राप्त होने योग्य समस्त पदार्थों को सर्वोपरि होने से जानता है। वर्षण करने वाला मेघ जिस प्रकार वायुगण से प्रेरित होकर आगे बढता है उसी प्रकार परमेश्वर समस्त काम्य सुखो का वर्षण करने हारा होकर सुख प्रदान करने वाले समस्त साधनो से संसार को चलाता है।

अध्यात्म मे—कुण्डलिनी प्रबोध के अवसर पर मेरु दण्ड मे एक पोरु से दूसरे पोर को अथवा एक मानस भूमि से दूसरी भूमि को पहुंचता हुआ बहुत से लोकोत्तर कर्मों का साक्षात् करता है और तब परम पद को जानता है और धर्ममेघ मे सुखवर्षी मेघ के समान आनन्दघन होकर प्राणगण सहित उत्क्रमण करता है।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥ ३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रकाशस्वरूप! जिस प्रकार तेजस्वी राजा लम्बे बालो वाले, कोखो पर भरे पूरे हृष्ट-पुष्ट, दो घोडो को रथ मे जोडता

है उसी प्रकार तू भी 'केशी' प्रकाशयुक्त किरणरूप केशों वाले, व्यापन-शील, वृष्टि के कराने वाले सब पदार्थों के अवयव अवयव में व्याप्त, धन च ऋण दोनों विद्युत् बलों को निश्चय से जोड़ता है। और हे ऐश्वर्यवन्! विद्युत् के समान व्यापक! हे प्रेरक! बल और ऐश्वर्य के पालक इन्द्र! तू वाणियों का श्रवण कर।

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे परमेश्वर! आप हमें प्राप्त हो। हे वाणी के प्रदान करने हारे ज्ञानप्रद गुरो! वेदमन्त्र समूहों को साक्षात् ज्ञान कराओ। सन्मुख साक्षात् उपदेश करो। प्रतिपद की व्याख्या करो। हे समस्त भूतों में निवास करने वाले और सबको अपने में बसाने हारे एवं ब्रह्मचारियों को अपने कुल में बसाने हारे, मेघ के समान ज्ञानप्रद गुरो! हमारे ब्रह्म, वेदज्ञान और ब्रह्मचर्य को और यज्ञ कर्म और परस्पर मिल के करने योग्य वेदाध्ययन रूप यज्ञ एवं आत्मा के बल और ईश्वरोपासना को भी बढ़ाओ।

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ५ ॥

भा०—अनेक शास्त्रों का ज्ञान करने हारे अथवा अनेक अज्ञान आदि दोषों को दूर करने में समर्थ, ज्ञानवाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिये मान आदर के बढ़ाने वाला वचन कहने योग्य है। जिससे वह ज्ञानवाणी में रमण करने वाला अथवा याचना-नुसार फल देने वाला आचार्य हमारे मित्रों, समान रूप से नाम, यश को धारण करने वाले पुत्र, स्त्री, भृत्य, बन्धुओं में और हमारे पुत्रों में भी बराबर उत्तम उपदेश करे। अथवा—जैसे गुरु पुत्रों और मित्रों को उपदेश करता है उसी प्रकार शक्तिशाली, ज्ञानप्रद परमेश्वर जीव को ज्ञानवर्धक, स्तुति योग्य ज्ञान, वेद का उपदेश करता है।

'शक्रः—शक्नोति यः स शक्र. । शकेरक् औणादिकः । शग्धि इति याञ्चाकर्मा निघ० । शक विभाषितो मर्पणे दिवादिः । शक्लृ शक्तौ स्वादिः । शास व्यक्ताया वाचि । शचीति वाक्प्रज्ञाकर्मनामसु । तां राति ददाति इति शक्रः । शक्रः समर्थ, उपदेशको वाणीप्रदो, याचितप्रदः, सहनशील इत्यादि ।

तमित्सखित्व ईमहे तं राये सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६॥१९॥

भा०—उसको हम अपना मित्र होने के लिये प्रार्थना करते हैं । और उसी से ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं । उत्तम वीर्य, बल प्राप्त करने के लिये भी उसीसे प्रार्थना करते हैं । और वही 'शक्र' कहाता है जो हमें हमारे याचित फल प्रदान करता है और जो इन्द्र ऐश्वर्यवान् होकर दान देता, रक्षा करता, दुष्ट शत्रुओ का नाश करता और सबको शरण मे लेता हुआ हमें सुख से बसने योग्य धन प्रदान करता है ।

'शक्रः' वसु दातुम् शकत् स शक्र इति वेदाभिप्रायः ।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद् यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित एव फैला हुआ और अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त, जल के समान अन्न, बल और ज्ञान तेरा ही शोधा हुआ, प्रकाशित या प्रदान किया हुआ है । अर्थात् जिस प्रकार समस्त जल या अन्न सूर्य द्वारा परिशोधित होता है उसी प्रकार समस्त कर्म फल और ज्ञान परमेश्वर द्वारा ही प्रदत्त एवं प्रशस्त है । वह भी व्यापक जल के समान सुप्रकट, सुविस्तृत है । हे ईश्वर ! हे गुरो ! जैसे कोई गवाला गौओ के वाडे को खोल दे तो गौएं बहुत प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! गुरो ! सूर्य के किरण-समूहों के समान ज्ञान-वाणियों के समूह को आप खोल दें, उनके आवरण को दूर करके प्रकट करें । और हे मेघों से युक्त वायु जिस प्रकार जल प्रदान करता करता है

उसी प्रकार अखण्ड शक्ति से सम्पन्न बलवन्! एवं ऐश्वर्यवन्! आप ऐश्वर्य, धन और ज्ञानोपदेश प्रदान करें।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर! आकाश और पृथिवी दोनों भी उपासना करने योग्य तुझको नहीं व्यापते। तू उन दोनों से महान् है। तू प्रकाशयुक्त या आकाश में स्थित समस्त लोकों को अथवा आकाशस्थ सर्वोत्पादक प्रकृति के सूक्ष्म परिमाणुओं को भी विजय करता है, उन पर अपना वश रखता है। सूर्य जिस प्रकार किरण प्रदान करता है उसी प्रकार तू हमें ज्ञान-वाणियों को भली प्रकार प्रदान कर।

राजा के पक्ष में—शत्रु-वध करने वाले एवं पूजनीय तेरा राजवर्ग और प्रजावर्ग व शत्रु और मित्र दोनों तेरा पार नहीं पाते। ऐश्वर्ययुक्त सुखी प्रजाओं, विज्ञानयुक्त आप्तजनों को तू अपने वश करता है। हमें आज्ञाएं भूमियें या गौए प्रदान कर।

'ऋघायमाणम्'—ऋघ्नोतिः परिचरणकर्मा। ऋध्यत इति ऋघः पूज्यः। ऋघवदाचरति इति ऋघायमाणः। दया०। नृन् हन्तीति ऋघा। अनृघा ऋघा भवतीति ऋघायमाणः। सा०।

'स्वर्वतीः—' असौ लोकः स्वः। ऐ० ६। ७॥ देवाः वै स्वः। श० १।९। ३। १०॥ देवाः किरणाः। स्वरिति विशम् अजनयत्। स्वरिति पशून् अजनयत्॥ श० २। ४। १३॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद् दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम्॥ ९॥

भा०—हे सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त परमेश्वर! नु निश्चय से मेरी स्तुति को श्रवण करता है। तू मेरी स्तुति-वाणियों को धारण कर, सुन। मुझ समाहित चित्त वाले योगाभ्यासी साधक मित्र के इस स्तुति-समूह को भीतर कर। अथवा मेरे हृदय को शुद्ध कर।

आचार्य पक्ष मे—हे विज्ञानमय कर्णों से युक्त ! बहुश्रुत !

राजा के पक्ष मे—सब तरफ के वृत्तान्त सुनने हारे यन्त्रों, साधनों से युक्त।

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! तुझको ही हम सब कामना योग्य सुखों को सबसे अधिक वर्षाने वाला और यज्ञो और सग्रामो मे भक्तो के आह्वानों को सुनने वाला और प्रजाओं की पुकार और शत्रुओ की ललकारो को सुनने वाला जानते हैं। समस्त सुखो के सर्वोत्तम वर्षक तेरी सहस्रो सुखो और ऐश्वर्यो के देने वाली रक्षा की याचना करते हैं। (मन्त्राः शतम् १००)

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! सर्वानन्दकारक ! हे कौशिक, समस्त पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाले परमेश्वर ! गुरो ! तू ज्ञान-प्रकाश से अति उज्ज्वल होकर प्रयत्न से उत्पन्न किये ज्ञान-रस का ओषधि-रस के समान पान कर, श्रवण कर, और नये जीवन को खूब अधिक बढा और वेदमन्त्रों के अर्थ देखने वाले विद्वान् पुरुष को सहस्रो ज्ञानो और ऐश्वर्यों को लाभ करने मे समर्थ कर।

अध्यात्म मे—इन्द्र जीव, कौशिक पञ्चकोशो मे विराजमान प्रमोद-युक्त, प्रकाशयुक्त होकर ब्रह्म रस का पान करे। नये और दीर्घ आयु को प्राप्त करे और ऋषि, प्राण को सहस्रो सुख भोगने वाला बना। सर्वं वै सहस्रम्। शत० ॥

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

भा०—हे वेदवाणियो और विद्वज्जनो की वाणियो को सेवन करने वाले, उन के एकमात्र लक्ष्य ! ये समस्त वाणियें सब प्रकार से तुझे ही लक्ष्य करके हो, तेरे ही गुणो का वर्णन करें। वृद्धि को प्राप्त होने वाली, सेवन करने योग्य वाणियां तुझ महान् को ही लक्ष्य कर चाहने वाले को अति प्रीतिकर हो।

आचार्य या विद्वान् के पक्ष मे—हे वाणियो के सेवन करनेहारे ! ये सब ज्ञानवाणिया तुझे प्राप्त हो। वृद्धि उन्नति करने वाली प्रीति-उत्पादक वाणियां तुझ दीर्घायु को अधिकाधिक प्रिय लगें। इति विंशो वर्ग.॥

[११]

१—८ जेता माधुच्छन्दस ऋषि.॥ इन्द्रो देवता॥ अनुष्टुभः। १, ३, ८ निचृद्। ५ एकोना विराट्। ७ विराट्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रं॒ विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑।
र॒थीत॑मं र॒थीनां॒ वाजा॑नां॒ सत्प॑तिं॒ पति॑म्॥ १॥

भा०—समुद्र के समान अति विस्तृत अथवा आकाश और अन्तरिक्ष मे भी व्यापक, रथवान् सैनिको के बीच सबसे श्रेष्ठ रथारोही वीर, सेनापति महारथी के समान रमण साधनरूप देहधारी जीवो मे भी सर्वश्रेष्ठ, पृथिवी आदि रमण साधन लोको मे भी व्यापक और सत् अर्थात् नाशरहित कारण द्रव्यो के भी परिपालक, स्वामी और समस्त ऐश्वर्यो के भी स्वामी, परमेश्वर को ही समस्त वेदवाणियां बढ़ाती हैं, वे उसकी महिमा का गान करती है।

राजा और सेनापति के पक्ष मे—समुद्र मे भी नौकादि से जाने वाले, गम्भीर, रथियो मे महारथी, सज्जनो के पालक और अन्नो, ऐश्वर्यो और सग्रामो के स्वामी, विजेता को ही सब स्तुतिया बढाती है, उसके यश और उत्साह को बढ़ाती है।

स॒ख्ये त॑ इन्द्र वा॒जिनो॒ मा भे॑म शवसस्पते।
त्वाम॒भि प्र णो॑नुमो॒ जेता॑रम॒प॑राजितम्॥ २॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! हे शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, वेगवान् अश्वारोही, ऐश्वर्यवान् और संग्रामकारी योद्धागण हम तेरे मित्रभाव में रहकर कभी भयभीत न हों, सदा निर्भय रहें। हे समस्त ज्ञानों और बलों के स्वामिन् ! जीतने वाले विजय दिलाने वाले और कभी स्वयम् पराजित न होने वाले, अजेय, तुझे ही लक्ष्य करके सदा हम स्तुति करते हैं, तुझे नमस्कार करते हैं।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस कारण उत्तम गौ आदि पशु, वाणी आदि इन्द्रियों से सम्पन्न सुख प्राप्त करने वाले सामर्थ्य के ऐश्वर्य को स्तुतिकर्त्ता विद्वान् पुरुषों को दान करता है, इसी कारण से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के दिये सनातन से चले आये दान, ज्ञान और रक्षाएं भी कभी विनष्ट नहीं होतीं।

राजा के पक्ष में—राजा विद्वानों को भूमि आदि धन प्रदान करता है इससे उसके दिये दान और रक्षाएं नष्ट नहीं होतीं। सत्पात्र में दिया दान नष्ट नहीं होता।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर मुमुक्षु जनों के देह रूप पुरों को तोड़ने वाला होने से 'पुरभित्' है। वह कभी वृद्ध और परिणामी न होने से अथवा नाना पदार्थों को मिलाने, जुदा करने में समर्थ होने से 'युवा' है। क्रांतदर्शी होने से 'कवि' है। अनन्त पराक्रम होने से वह सर्वशक्तिमान् बल का अक्षय भण्डार है। वह परमेश्वर ही अज्ञान का निवारक होने से, ज्ञानमय वज्र का धर्त्ता 'वज्री' है। बहुत से विद्वानों से स्तुति किये जाने से 'पुरुष्टुत' है। वह ही इन्द्र ऐश्वर्यवान् परमेश्वर विश्वरूप कर्म का धारण करने वाला है।

सेनापति, राजा शत्रुओं के पुरों को तोड़ने वाला, सन्धि विग्रह से मिलाने तोड़ने वाला, क्रान्तदर्शी, अपरिमित बल वाला इन्द्र ही समस्त राष्ट्र-कार्यों को धारण करता है। वही शस्त्रों अस्त्रों का स्वामी, बलवान् प्रजाओं से स्तुति किया जा सकता है।

सूर्य—जल-सवों का विच्छेदक, मेघों को मिलाने व भेदने वाला, अमित जलों व तेजों का धारक, सब जगत् के कर्मों का कर्त्ता, धर्त्ता, किरणों वाला वर्णनीय है।

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः॥ ५॥

भा०—हे वज्रवन्! अखण्ड वीर्यवान् राजन्! सूर्य जिस प्रकार किरणों को रोकने वाले मेघ के जल को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार तू भी भूमि को रोक लेने वाले शत्रु को दूर कर, छिन्न-भिन्न कर। भय रहित तुझमें अपना अपना आश्रय पाकर, तेरे से नाना प्रकार के ऐश्वर्य और रक्षाएं प्राप्त करके सुरक्षित विद्वान् पुरुष, युद्ध-विजयी सैनिकगण भी तुझे प्राप्त होते हैं। तेरा आश्रय लेते हैं।

अध्यात्म में—इन्द्रियों के निरोधक अज्ञान के बाधक बल को आत्मा नाश करता है। विषयों के प्रकाशक देव, इन्द्रियगण पीड़ित होकर, शरण रूप आत्मा से शान्त होकर उसे ही प्राप्त होते हैं।

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन्।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः॥ ६॥

भा०—हे शूरवीर! राजन्! परमेश्वर! तेरे अनेक दानों से मैं तुझको बहने महानद के समान अक्षय ऐश्वर्यवान् कहता हुआ प्राप्त होता हूं। हे वाणियों द्वारा स्तुति योग्य! समस्त वाणियों के आश्रय! उस समुद्र के समान गम्भीर और अक्षय ऐश्वर्यवान् तुझे ही स्तुतिकर्त्ता विद्वान गण और राज्यादि कार्यों के कर्त्ता कुशल पुरुष तेरे सामर्थ्य को जानते हैं और तेरी उपासना करते हैं, तेरा ही आश्रय लेते हैं।

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

भा०—हे शत्रुनाशक ! राजन् ! तू माया, कुटिल बुद्धि, दुष्ट बुद्धि वाले प्रजाओं के रक्त शोषण करने वाले अत्याचारी, अधार्मिक पुरुष को विशेष बुद्धियों से विनष्ट कर । मेधावान्, विद्वान् पुरुष तेरे उस सामर्थ्य को भली प्रकार जानते है और उनको तू नाना श्रवण करने योग्य ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य प्रदान कर ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥२१॥३॥

भा०—जिसके दान हजारो, अनेक और पूर्ण है और जिसके दान और भी बहुतसे है । सब स्तुतिकर्त्ता और मन्त्रगण बल पराक्रम से सब को अपने वश करने वाले, जगन्नियन्ता, सबके स्वामी इन्द्र, राजा और परमेश्वर की स्तुति करते है । इत्येकविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[१२]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्र्यः । ३, ५ निचृद् : ४, १० पिपीलिकामध्या निचृद् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष मे—हम इस ब्रह्माण्डमय यज्ञ के उत्तम ज्ञाता और कर्त्ता, विश्व के ज्ञाता, समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, सबके दाता, उपास्य और सूर्य के समान दुष्टो के सन्तापकारी परमेश्वर को हम वरण करते हैं।

विद्वान् के पक्ष मे—अग्नि के समान तेजस्वी, ईश्वरोपासन करने वाले विद्वान् पुरुष को इस यज्ञ का होता वरण करते हैं।

अग्नि के पक्ष मे—प्रति कण मे व्यापक होने से 'अग्नि' है । सताप-जनक होने से 'दूत' है । वेग आदि गुणप्रद होने से 'होता' है, सब

शिल्पियों के शिल्पों को देने से 'विश्ववेदाः' है। वह शिल्पमय यज्ञ का 'सुक्रतु' है।

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म्।
ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम् ॥ २ ॥

भा०—आहुति या भोजन योग्य पदार्थों से जिस प्रकार आहवनीय या जाठर अग्नि को लोग अन्न, हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार बहुतों को प्रिय लगने वाले प्रजाओं के पालक अग्नि के समान ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा आदर सत्कार करो।

अध्यात्म में—'पुरु' इन्द्रियों के प्रिय आत्मा को अन्तराह्वानों द्वारा साक्षात् करो।

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे।
असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्ने, सूर्य के समान तेजस्विन्! अग्रणी नेतः! परमेश्वर! विद्वन्! तू यहां सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्राप्त कराता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुषों को प्राप्त करा। तू यज्ञार्थ कुशादि काटकर लाने वाले, कुशल या वायु-शुद्धि के लिये अग्नि में आहुति देने वाले विद्वान् पुरुष के उपकार के लिए स्वयं प्रकट होकर उत्तम ज्ञानों को प्रकट करने वाला और अग्नि के समान आहुति किये या श्रद्धापूर्वक दिये पदार्थों को ग्रहण करने वाला, हमारा पूजनीय होता नामक विद्वान् या उपदेष्टा हो।

ताँ उ॑श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म्।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने! विद्वन्! राजन्! जब तू दूत कर्म, शत्रुओं को सताप देने वाले कार्य या सामर्थ्य को प्राप्त होता है तब तू तेरी चाहना करने वालों को विशेष प्रकार से बतला और अन्य विद्वान् ज्ञानी और तेजस्वी पुरुषों सहित आसन पर, प्रजा के राज्यासन पर विराजमान हो।

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह ।
अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! हे अग्नि में जिस प्रकार घृत आदि दीप्तिकारक पदार्थों की आहुति दी जाती है उसी प्रकार घृत अर्थात् जलो वा तेजोवर्धक साधनों की आहुति लेने हारे! हे दीप्यमान! तेजस्विन्! तू दुष्ट पुरुषो वाले, हिंसाकारी शत्रुसंघो को एक एक करके जला डाल।

भौतिक पक्ष मे—घृत की आहुति लेने वाला अग्नि, जलों को ग्रहण करने वाला सूर्य जीवन के नाशक दुष्ट रोगों से युक्त पदार्थों को जलावे, तप्त करे, भस्म करे।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।
हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही आहुति योग्य हवि को ग्रहण कर उसको नाना देश में प्राप्त कराता और ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है उसी प्रकार क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है और प्रकाशित होता है। वह भी ग्रहण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाला होने से 'हव्यवाड्' और उपदेशप्रद वाणी को मुख में धारण करने वाला होने से 'जुह्वास्य' है। इसी प्रकार युवा, बलवान् गृहपति भी गृहपति से ही उत्पन्न होकर अग्नि के समान ही गृहपति हो जाता है, वह भी अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्रदान करने से 'हव्यवाड्', 'जुहू' नाम उत्तम वाणी को मुख में धारण करने से 'जुह्वास्य' है। इति द्वाविंशो वर्गः।

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥

भा०—क्रान्तदर्शी, सबकी बुद्धियों से परे विद्यमान, मेधावी, ज्ञान-

स्वरूप, प्रकाशक, सत्य धर्मों को धारण करने वाले, सुखप्रद परमेश्वर की स्तुति कर और इसी प्रकार सत्य, अविनाशी धर्म वाले प्रकाशक रोगहारी अग्नि का सबको उपदेश कर।

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! राजन् ! जो दान देने और ग्रहण करने योग्य, अन्न आदि पदार्थों और उत्तम गुणों का पालक पुरुष, ज्ञान के दाता और शत्रुओं के पीड़क तेरी उपासना और सेवा करता है, हे दानशील ! हे द्रष्टः ! तू उसका सबसे उत्तम रक्षा करने वाला हो और है।

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।
तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

भा०—जो अन्नादि पदार्थों का स्वामी होकर देवों, उत्तम विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने, उत्तम गुणों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की आराधना करता है। हे परम पावन अग्नि के समान समस्त पाप कर्मों को दग्ध करके हृदय को पवित्र करने वाले परमेश्वर ! तू उसको सुखी कर।

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह ।
उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥

भा०—हे परम पावन ! हे प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! अग्ने ! तू अग्नि के समान शोधक, दीप्तियुक्त, अग्रणी है। तू हमारे कल्याण के लिये उत्तम गुणों, पदार्थों और विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा। हमारे यज्ञ और हवि अर्थात् देने लेने योग्य उत्तम अन्न को भी प्राप्त करा।

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! वह तू अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, गायत्री छन्द से युक्त प्रगाथ से स्तुति किया जाकर हमें वीर पुरुषों

च उत्तम सन्तान से युक्त सेना, अभिलषित अन्न, सत्कार और ऐश्वर्य प्राप्त करा।

राजा इस गायत्र अर्थात् भूलोक-वासी प्रजाजनों द्वारा स्तुति किया जाकर वीरो से युक्त सेना और ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

अग्ने॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ विश्वा॑भिर्दे॒वहू॑तिभिः ।
इ॒मं स्तोमं॑ जुषस्व नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे तेजस्विन्! परमेश्वर! तू अति उज्ज्वल, शुद्धिकारक दीप्ति से सब विद्वानों और वेदो की वाणियो सहित इस स्तुतिसमूह को स्वीकार कर।

राजा अति उज्ज्वल तेज से युक्त होकर विद्वानो की स्तुतियो सहित ऐश्वर्य, पदाधिकार और बल को प्राप्त करे। इति त्रयोविंशो वर्ग. ॥

[१३]

मेधातिथि काण्व ऋषिः ॥ १ इध्म समिद्धो वाग्नि. । २ तनूनपात्। ३ नराशंसः। ४ इळ । ५ बर्हि । ६ देवीर्द्वार. । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ। ९ तिस्रो देव्य सरस्वतीळाभारत्यः। १० त्वष्टा। ११ वनस्पतिः। १२ स्वाहाकृतय ॥ गायत्र्यः। ६ निचृद्। ७, ८, ११, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्॥ द्वादशर्चमाप्रीसूक्तम् ॥

सुस॑मिद्धो न॒ आ व॑ह दे॒वाँ अ॑ग्ने ह॒विष्म॑ते ।
होत॑: पावक॒ यक्षि॑ च ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! अग्रणी विद्वन्! राजन्! हे ज्ञान के देने हारे! हवि को स्वीकार करने हारे! हे हृदय को पवित्र करने वाले! मलो के शोधक! शत्रुओ के नाशक! तू अग्नि के समान तेज, ज्ञान और सद्गुणों से अति उज्ज्वल होकर हममें से ज्ञान और उचित उपाय वाले पुरुष को विद्वान् जन, उत्तम गुण और पदार्थ प्राप्त करा। और हे पुरुष! तू, उसी की उपासना कर।

राजा तेजस्वी युद्धकाल मे शस्त्रास्त्रों से प्रज्वलित होकर विजिगीषु

वीरों को अपने अधीन करे। वाणों के फेंकने वाले के समान शत्रुओं को भून डालने वाला शस्त्रों से युद्ध करे।

मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

भा०—हे शरीरों के अंग प्रत्यंगों की रक्षा करने हारे 'तनूनपात्' जाठराग्नि के समान! हे क्रान्तदर्शिन्! मेधाविन्! तू हमारे मधुर, अन्नादि पदार्थों से युक्त यज्ञ के समान, मधु अर्थात् शत्रुपीडनकारी बल से युक्त परस्पर सुसंगत राष्ट्र को उत्तम रीति से भोग करने के लिये आज, सदा विद्वान् विजयी पुरुषों के आश्रय कर।

परमेश्वर हमारे यज्ञ रूप आत्मा को ज्ञानवान् करे।

अध्यात्म में—जाठराग्नि इस देह रूप यज्ञ को कान्ति के लिये मधुर पदार्थ वीर्यादि से युक्त बनावे।

नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

भा०—इस यज्ञ में प्रिय, मनोहर, सब नायक पुरुषों से स्तुति करने योग्य, मधुर जिह्वा अर्थात् मधुर वाणी बोलने वाले, स्वीकार करने योग्य अन्न चरु के सम्पादन और ज्ञानोपदेश करने वाले विद्वान् को मैं आदर से बुलाता हूँ।

भौतिक अग्निपक्ष में—जिसके लिये हवि किया जाय, ऐसे सबसे स्तुति किये, मधुर गुणकारी ज्वाला वाले अग्नि को प्रज्वलित करूं। भौतिक अग्नि की काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूपी ये ७ जिह्वा कही गई हैं। वे मधुर, सुखप्रद, रोग-नाशक प्रकाश देने वाली हैं। घृत से उत्पन्न जिह्वा होने से भी अग्नि 'मधु-जिह्व' है। हवि को छिन्न-भिन्न करने अथवा नाना पात्र में रक्खे पदार्थों को क्रिया में प्रवृत्त कराने से 'हविष्कृत्' है। विद्वानों से उपदेश किये जाने योग्य होने से 'नराशंस' है।

अग्ने॑ सु॒खत॑मे॒ रथे॑ दे॒वाँ ई॑ळि॒त आ व॑ह ।
असि॒ होता॒ मनु॑र्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्ने ! ज्ञानवन् ! स्तुति किया गया, अति सुख देने वाले, रमण करने योग्य विमान यान आदि में तू विद्वान् पुरुषों को ले आ। तू सब सुखों का देने वाला मनन-शील होकर सबका हितकारी है।

भौतिक में—अग्नि, विद्युत् ही नाना यानो का चालक है। वह विद्वानो द्वारा जानने योग्य होने से 'मनु' है। गति देने और सुखप्रद होने से 'होता' है।

अध्यात्म में—आत्मा मननशील होने से 'मनु' है। सब इन्द्रियो का वशकारी, प्रवर्त्तक होने से 'होता' है। वह देव, इन्द्रियो को अति सुखप्रद रथ रूप देह में धारण करता है। सबसे प्रिय होने से आत्मा 'ईळित' है।

'आत्मनस्तुकामाय सर्वं प्रिय भवति।' बृहदा० उप० ४। ५॥

ईश्वर पक्ष में—स्तुति किया जाकर परमेश्वर विद्वान् पुरुषो को अति सुखप्रद आनन्द रस में लीन कर लेता है। वह सर्वाश्रय दाता होने से 'होता', ज्ञान योग्य होने से 'मनु' और पोषक होने से 'हित' है।

स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिरा॑नु॒षग्घृ॒तपृ॑ष्ठं मनीषिणः ।
यत्रा॒मृत॑स्य॒ चक्ष॑णम् ॥ ५ ॥

भा०—हे बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषो ! आप लोग यज्ञ में कुशा के बने आसनों को ऐसे बिछाओ कि वे एक दूसरे से लगे रहें। जिस पर घृत के पात्र रक्खे जायं और जहां अमृत, जल का दर्शन हो।

पृथिवी को वेदी मानकर भौतिक पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो ! जल से व्याप्त विस्तृत आकाश को ऐसे धूम से आच्छादित करो। जहां जल का मेघ रूप से दर्शन हो।

परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो ! महान् तेजस्व-रूप महाज्ञान का आस्वादन करो, उसमें आश्रय लो। उसकी धारा

लो, यहां अमृत, आत्मानन्द, परम नित्य का दर्शन है, जहां मृत्यु का भय नहीं।

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः।
अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—आज, सदा अवश्य यज्ञ करने के अवसर में सुख को या निर्गमन और प्रवेश को बढ़ाने वाले प्रकाश से युक्त द्वार पृथक् पृथक्, खुले, चौड़े, विविध रूप से लगाये जायं।

गृहस्थ के पक्ष मे—सब दिन यज्ञ रूप सुसगत होने के लिए गृह मे विषयों में अनासक्त होकर सत्य ज्ञान को बढाने वाली देवियां पापों का वर्जन करने हारी होकर विविध रूप से आश्रय लें।

राष्ट्रपक्ष मे—युद्ध-यज्ञ के लिए शत्रुओं का वारण करने वाली विजयशालिनी सेनाएं सत्य व्यवहार और राष्ट्र बल को बढ़ाने वाली होकर विविध स्थानों पर छावनी बनाकर रहें।

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

भा०—इस यज्ञ मे उत्तम, सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले रात्रि और दिन दोनों को उपयोग मे लाऊ। जिससे हमारा यह आसन के समान आश्रय करने योग्य सुख ऐश्वर्यवर्धक गृह सब प्रकार से सुख से रहने योग्य हो।

राष्ट्रपक्ष मे—नक्त और उषस् दो सभाएं है। 'बर्हि' राष्ट्र है।

गृहस्थ-पक्ष में—नक्त और उषस् स्त्री और पुरुष हैं। वे दोनों चन्द्र के समान शीतल और सूर्य के समान तेजस्वी हों। वे उत्तम रूपवान्, ऐश्वर्यवान् होकर यज्ञ मे आवें।

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

भा०—यज्ञ मे दो विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति—मैं ज्ञान के देने वाले

देवों, विद्वानो के हितकारी, क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी, शुभ वाणी बोलने वाले, विद्वानों को बुलाता हूं। वे दोनो हमारे इस यज्ञ को सम्पादित करें।

भौतिक पक्ष में—अग्नि और विद्युत् दोनो उक्त प्रकार से ज्वाला वाले, सुखप्रद दिव्य पदार्थों मे उत्पन्न होते हैं। वे हमारे यज्ञ और शिल्प को करें।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ ९॥

भा०—'इडा', 'सरस्वती' और 'मही' तीनो देवियें सुख उत्पन्न करने हारी हैं। तीनों अक्षय, अविनाशिनी, अहिसनीय होकर आसन और गृह मे विराजें।

'इळा'—ईड्यते स्तूयते अनेन इति सा वाणी। ईळतेरन् औणादिकः। ह्रस्वत्वं गुणाभावश्छान्दसः। दया०। निशादिवत् टापं चैव हलन्ताना-मितीलेट्टाप् इति सायणः। ईडतेरिन्धतेश्चाकर्त्तरि कारके घञ्। ईडेर्ह्रस्व-त्वम्। इन्धेर्नकारलोपो डकारो गुणाभावश्चेति देवराजो यज्वा। इणगता-वस्माद्वा डः। इडा गौ.। यद्वा इल स्वप्नक्षेपणयोः अस्मादिगुपधलक्षणः क.। सुप्यतेऽस्यां क्षिप्यते वा बीजादिकमिति पृथ्वी, स्त्री वा। इला इत्यन्ननाम, गो नाम च। अर्शादित्वादच्। अन्नवती, गोमती। इयम् पृथिवी वा इडा। कौ० ९। २॥ इडा हि गौः। श० २। ३४। ३४॥ पशवो वा इडा। श० १। ८। १। २१॥ अन्न वा इडा। ऐ० २। २५॥ श्रद्धा इडा। श० १२। २। ७। २०॥ इडा वै मानवी यज्ञानुकाशिनी आसीत्। तै० १। १४। ४॥ इरा पत्नी विश्वसृजाम्। तै०। ३। १२। ५॥

स्तुति करने और कथन करने से 'इला' वाणी है। दीप्ति करने से, प्रकाशक होने से 'इडा' वाणी और विद्युत् है। सहशयन और बीजवपन से स्त्री और भूमि दोनो 'इडा' है। गौ और अन्न दोनों का वाचक 'इडा' शब्द पढ़ा है। उनकी स्वामिनी भी 'इडा' है। पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य-

धारणावती बुद्धि या मनुष्य की पत्नी और समस्त विश्वचक्र कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी 'इडा' और 'इरा' नाम से कहाती है।

'सरस्वती'—वाग् वै सरस्वती। श० २। ५। ४। ६॥ सा वाक् ऊर्ध्वा उदातनोत् यथा अपां धारा संततम्। तां० २०। १४। २॥ योषा वै सरस्वती, वृषा पूषा। श० २। ५। १। १२॥ सरस्वतीति तद् द्वितीयम् वज्ररूपम्। कौ० १२। २॥ सरः सरस्वती चेति वाङ्-नामनी। सरति जानाति सर्वं। ज्ञायते वा विद्वद्भिः गच्छत्येव वाहूता इति सरः वाग्। सरः इत्युदकनाम च सर्त्तेस्तद्वती। वृष्ट्यधिदेवतात्वादुदकवती हि मध्यमिका वाक्। इति देवराजः। सर इति प्रशस्तम् ज्ञानं तद्वती इति दया०।

सरस्वती वाक् है, सरस्वती स्त्री है, पूषा पुरुष है। सरस्वती वज्र विद्युत् है। सरः और सरस्वती दोनों वाणी के नाम हैं। सरः जलवाचक है। इससे मध्यम वाग् विद्युत् सरस्वती है। 'सरः' उत्तम ज्ञान है, उसमे युक्त वेदवाणी सरस्वती है।

भारती—एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्माद्देवाह भरत इति। श० १। ४। २। २॥ अग्निर्भरतः। सः प्राणो भूत्वा हवींषि बिभर्त्ति। तदीया भारती। अथवा भरत इति ऋत्विट् नाम। तदाया स्तुतिसाधनत्वात्। बिभर्त्ति जगद् वर्षप्रदानेन, स्वाभिधेयं धा ध्रियते प्राणिभिः व्यवहारसाधनत्वेन इति देव०।

प्राणरूप होकर सब प्रजाओं का पोषक होने से अग्नि 'भरत' है। उसकी शक्ति भारती है। भरत ऋत्विज है। उनकी स्तुति भारती है। वर्षा देकर जगत्-पालन करने से विद्युत् भारती है।

'मही—इयमेव मही। इयम् वा अदितिर्मही। श० ६। ५। १०॥ पृथिवी नाम, वाङ् नाम, गो नाम च।

'मही' पृथिवी, वाणी और गौ तीनों का नाम है।

फलतः इडा = ऋग्। सरस्वती = यजुः। मही = साम। तीनों नाम पृथ्वीवाचक हैं। इला = अन्नदायी, सरस्वती = जलदात्री, मही = उत्तम रत्न

आदि दात्री। गृहस्थपक्ष में—इला = कुमारी, सरस्वती = गृहपत्नी। मही = वृद्धा। राज्यपक्ष मे—इला = भूमि-प्रबन्धकर्त्री सभा। सरस्वती = विद्वत्सभा। मही = पूज्य शिक्षक-समिति।

इलादिशब्दाभिधेया वह्निमूर्तयस्तिस्रो देव्य इति सायणः। अर्थात् तीनो प्रकार के विद्वान्।

इह त्वष्टा॑रमग्रि॒यं वि॒श्वरू॑पमु॒प ह्वये।
अ॒स्माक॑मस्तु॒ केव॑लः ॥ १० ॥

भा०—यहां मैं अग्र, सर्व-प्रथम, सर्वोच्च अग्रासन के योग्य, सर्व-श्रेष्ठ, समस्त रूपो वा विश्व के रूपको अपने भीतर धारण करने वाले, ससार के कर्त्ता, सब दुःखो के छेदक एवं तेजस्वी परमेश्वर को स्मरण करता हू। वह एक अद्वितीय हमारा उपास्य हो।

अग्निपक्ष मे—सब पदार्थों के विभाजक, सब प्रकार के रूपो के दिखाने वाले, तेजोमय अग्नि का मैं प्रयोग करू।

आत्मपक्ष मे—उस तेजोमय, दुःखो के नाशक, पुष्टि मे सब से श्रेष्ठ, विश्वरूप = आत्मा की उपासना करता हूं। वह ही केवल हमारा पूज्य है।

अव॑ सृजा वनस्पते॒ देव॑ दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः।
प्र दा॒तुर॑स्तु॒ चेत॑नम् ॥ ११ ॥

भा०—ऊखल जिस प्रकार कूट छानकर गृहस्थों को अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे वनों के पालक! हे उपभोग करने योग्य समस्त अन्नादि पदार्थों के पालक! हे उपासकों के पालक! भक्तप्रतिपाल परमेश्वर वा राजन्! हे सब पदार्थों के दातः तू चरु के समान अन्न और ज्ञान को उत्पन्न या प्रदान कर जिससे दानशील अथवा आत्मा को शुद्ध करने वाले पवित्र आचारवान् उपासक को ज्ञान उत्तम रीति से हो।

'वनस्पति'—यज्ञ में ऊखल, देह में आत्मा, विश्व में परमेश्वर, राष्ट्र में राजा या सेनापति सब 'वनस्पति' हैं। यज्ञपक्ष में—ऊखल से कूटकर

हवि, अन्नादि प्राप्त कर उससे यजमान की अग्नि प्रदीप्त हो। वन अर्थात् वृक्ष, ओषधि आदि को अधिक वृष्टि लाकर पालने से बडे वृक्ष वनस्पति हैं।

स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे।
तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग उत्तम आहुति द्वारा दानशील धार्मिक पुरुष के घर में उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति, वायु-शुद्धि और ईश्वरोपासना के लिए यज्ञ करें। उस यज्ञ मे मै विद्वान् पुरुषों को आदरपूर्वक बुलाऊं।

अध्यात्म मे—आत्मा के ज्ञान के लिए सत्संग करने वाले समाहित पुरुष के देह मे 'सु-आहा' उत्तम वाणी से यज्ञ अर्थात् आत्मा की उपासना करो और उसमें प्राणगणों दिव्य गुणो को अपने वश करूं।

१-४ मन्त्रों मे विद्वानो के आह्वाता होता का वर्णन है। ५ वें में यज्ञ मे आसन कुशाच्छादन है। ६ ठे मे यज्ञशाला के द्वार, ७ में नक्त और उषा, ८ वें मे दो दैव्य होता, ९ मे ३ देवियें, १० मे त्वष्टा, ११ वें मे वनस्पति और १२ वें में 'स्वाहा' का वर्णन है। अध्यात्म मे क्रम से मन, देह, उसके प्राण द्वार, जागृत, स्वप्न दशा, प्राण, अपान दो होता, इडा पिङ्गला, सुषुम्ना तीन नाड़ियें, त्वष्टा परमेश्वर, वनस्पति आत्मा और उनकी परस्पर आहुति यह अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है।

[१४]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः गायत्र्य ॥ ७, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्। १२ निचृद्। १०, ११ विराड् ॥ दशर्चं सूक्तम्।

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये।
देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे सर्वव्यापक, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर! तू इन समस्त दिव्य गुण वाले, तेजस्वी जल, अग्नि आदि पदार्थों सहित, सुखजनक पदार्थों को उपभोग कराने के कारण समस्त आराधना, सेवा और स्तुति-

वाणियों को प्राप्त हो। मैं आपकी उपासना करता हूँ। समस्त दिव्य पदार्थों से परमेश्वर हमें आनन्द और सुख प्राप्त कराता है इस कारण वह समस्त आराधना और स्तुति-वाणियो के योग्य है, उसी की मै उपासना करूं।

अध्यात्म में—आत्मा ही प्राणों से ज्ञान रसपान करने से वह उपासना और स्तुतियों का पात्र है। साधारण अग्नि दिव्य गुणो के कारण सुखप्रद है। राजा समस्त विद्वानों सहित सोम अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति पद का पालन और उपभोग करने के लिये स्तुतियो का पात्र है।

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः।
देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे विविध विद्याओ को और प्रजाओ को पूर्ण करने वाले विद्वन्! तेरे ही कर्मों और विज्ञानों का अन्य विद्वान् पुरुष अन्यो को उपदेश करते हैं और तेरी ही स्तुति करते, तेरा ही स्मरण करते हैं। हे अग्ने, ज्ञानवान् अग्रणी! तू, देव, दिव्यगुण वाले उत्तम विद्वानो सहित आ, हमे प्राप्त हो।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष 'इन्द्र', विद्युत् और वायु, 'बृहस्पति' अर्थात् बड़े २ लोको के पालक, सूर्य, मित्र, प्राण, भौतिक अग्नि, सबके पोषक अन्नप्रद पृथिवी, अन्न और ओषधिवर्धक चन्द्र 'भग' सुख से सेवन योग्य ऐश्वर्य और 'आदित्य' सूर्य और पृथिवी की गति से उत्पन्न १२ मासों और 'मारुत गण' वायुओं के समूह इन सबका उपदेश करें और उनका प्रयोग करें।

अध्यात्म में—इन्द्र = आत्मा। वायु = प्राज्ञ। बृहस्पति = परमेश्वर। मित्र = नासिकागत प्राण। अग्नि = जाठर। पूषा = अपान। भग =

अष्टविध ऐश्वर्य। आदित्य = १२ प्राण, मारुत गण = प्राणादि वायुगण।

इसी प्रकार राष्ट्र में इन्द्र = राजा। वायु = सेनापति। बृहस्पति = पुरोहित। मित्र = राजा = अग्नि = आयुध। पूषा = पृथिवी और अन्न। भग = राज्य समृद्धि। आदित्य = वैश्यगण या विद्वान् गण, मारुत गण, सैनिक समूह वा प्रजाजन। इनको आदर-पूर्वक बुलावें और इनके कर्त्तव्यों का उपदेश करें।

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः।
द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के सुख के लिये ही द्रुतगति से जाने वाले, हर्षपूर्वक शत्रु पर प्रयाण करने वाले, सबको हर्षित करने वाले, अति गर्वशील, सेना में सुसज्जित, जलों के समान वेग से गतिशील एवं शत्रुओं का पीड़न करने वाले वीर पुरुष राष्ट्र में भृति, अन्न आदि द्वारा रक्खे और पाले पोसे जाते हैं।

जलों और ओषधि रसों के पक्ष में—द्रवशील, तृप्तिकारक, सुख, हर्षजनक, तृप्तिजनक, द्रवरूप, पात्र में स्थित, मधुर जल पात्रों में भरकर रक्खे जाते हैं।

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥ ५ ॥

भा०—रक्षा, तेज और ज्ञान की इच्छा करने वाले, कुशा को काट लाकर यज्ञ को रचने वाले, फलतः, कुशल मेधावी, विद्वान् दान और ग्रहण करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थों से युक्त सब कार्यों को अच्छी प्रकार सुशोभित और सुन्दर, सुचारु रूप से करने वाले पुरुष तेरी ही स्तुति करते हैं।

'वृक्त-बर्हिषः'-यज्ञार्थं वृक्तं बर्हिः यैस्ते वृक्तबर्हिष ऋत्विजः अर्थात् यज्ञार्थं कृतोपक्रमाः। तद्यथा कुशान् लान्तीति कुशलाः। उभयो पदयोरेकप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् पर्यायत्वमुचितम्।

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! घृत से सिंचे, अग्नियो के समान अति तेजस्वी, मन के बल से योग-समाधि करने वाले, शरीर को वहन करने वाले अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, अति तेजोमय प्रकाश से युक्त होकर तुझको धारण करते हैं, तू आनन्दजनक ज्ञान-रस का पान करने के लिये उन विद्वान् पुरुषो को स्वीकार कर ।

अध्यात्म मे—हे आत्मन् ! वीर्य से आसिक्त, मन से युक्त शरीर का वहन करने वाले प्राणगण तुझको धारण करते हैं, तू आनन्दजनक रसपान करने के लिये अथवा उत्तम पदार्थों के भोग के लिये इन्द्रियो को धारण कर ।

हे राजन् ! कान्तिजनक पदार्थों से हृष्ट पुष्ट अश्व जिस प्रकार रथ को खींच ले जाते है उसी प्रकार जो वीर विद्वान् पुरुष, चित्त से तेरे साथ होकर तुझे धारण करते हैं, तुझे सन्मार्ग पर ले जाते हैं, हे राजन् ! तू उन विद्वान् और वीर पुरुषों को राष्ट्र ऐश्वर्य के भोग पालन के लिये नियुक्त कर ।

तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि ।
मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू देवोपासना करने वाले सत्य ज्ञान, यज्ञ और राष्ट्र की वृद्धि करने वाले, उत्तम पत्नियों से युक्त गृहस्थ पुरुषों को ऐश्वर्यवान् कर । और हे उत्तम ज्वाला से युक्त अग्नि के समान उत्तम जिह्वा अर्थात् वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमें मधुर ज्ञानरस का पान करा ।

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया ।
मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

भा०—अग्ने, विद्वान् ! परमेश्वर ! जो मनुष्य यज्ञ करने वाले,

उपासनाशील और जो स्तुति करने योग्य हैं वे अपनी वाणी द्वारा ही वषट्कार युक्त यज्ञ अर्थात् बल के कार्य मे और गृहस्थ के यज्ञादि कार्य में तेरा मधुर रस, ज्ञान और अन्न का पान करें।

'वषट्कारः'—(१) वाग् वै वषट्कारः। वाग् रेतः। रेत एव एतत् सिञ्चति। (२) षट् इति ऋतवो वै षट्। तदृतुष्वेव एतद् रेतः सिच्यते तदृतवो रेतःसिक्तमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति। तस्मादेव वषट् करोति। श० १।७।२।२१॥ वाक् च प्राणापानौ च वषट्कारः। ऐ० ६।८॥ प्राणो वै वषट्कारः। एष एव वषट्कारो य एष तपति। श० १।७।२।११॥ यो धाता स वषट्कारः॥ ऐ० ३।४७॥ त्रयो वै वषट्काराः वज्रो धामच्छद् रिक्तः। स यदेवोच्चैः बल वषट् करोति स वज्रः। अथो य. सम. सन्ततो निर्हाणच्छत् स धामच्छन् अथ येन वषट् पराप्नोति स रिक्तः। गो० उ० ३।३॥ वज्रो वै वषट्कारः। ऐ० ३।८॥ एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च। कौ० ३।५।२। ऐ० ३।८॥ तस्य एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्काराः—यद् वातो वाति। यद् विद्योतते। यत्स्तनयति। यदवस्फूर्जति। श० ११।४।६।९॥

[१] शरीर मे वाणी, प्राण और अपान ये वषट्कार है। [२] वीर्य सेचन भी वषट्कार है। छः ऋतुओं मे सूर्य बलाधान करता है यह उसका वषट्कार है। सूर्य स्वतः वषट्कार है। 'धाता' होना अर्थात् वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट्कार है। ब्रह्म, धामच्छद् और रिक्त ये तीन स्वरूप वषट्कार के हैं। ओज. और सहः अर्थात् पराक्रम और शत्रु दमनकारी बल ये दोनों वषट्कार के दो स्वरूप है। ब्रह्म यज्ञ के चार वषट्कार हैं वायु का वेग से चलना, बिजली का चमकना, गर्जना और कड़कना। फलत.—यज्ञ में—यज्ञशील स्तुति योग्य पुरुष मधुर अन्न का भोग करें। गृहस्थ कार्य, प्रजोत्पत्ति के कार्य में—हे अग्ने! काम! परस्पर संगत एवं एक दूसरे की इच्छा पूर्ति करने वाले स्त्री पुरुष 'जिह्वा' रस ग्रहण शक्ति से मधुर रस आनन्द को प्राप्त करें।

विद्युत् पक्ष मे—परस्पर नाना तत्वो को मिलाने मे चतुर विद्वान् पुरुष बलकारी शक्ति के उत्पादन कार्य मे उत्तम वशकारिणी शक्ति से 'मधोः' बल का उपयोग करें।

आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः ।
विप्रो होतेह वक्षति ॥ ६ ॥

भा०—ज्ञानवान्, बुद्धिमान् ज्ञान के दान करने और ग्रहण करने वाला पुरुष सूर्य के समान चराचर के प्रकाशक और सचालक परमेश्वर के प्रकाश से ही उषाकाल अर्थात् सृष्टि के आदि काल मे बोध को प्राप्त कराने वाले समस्त ज्ञानप्रद वेदमन्त्रो को सब प्रकार से सर्वत्र उपदेश करे, और सुखप्रद सब दिव्य भोगो को प्राप्त करे अर्थात् जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से प्रातः चेतने वाले किरणो को या दिव्य आनन्दो को प्राप्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर के दिये प्रकाश से विद्वान् पुरुष ज्ञानो और नाना उत्तम भोगों को प्राप्त करता है।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! जीव! जिस प्रकार अग्नि ऐश्वर्य और तेज की वृद्धि करने वाले गतिशील वायु से और प्राण के धारण सामर्थ्य या जल के बलों से प्रेरक बल को उत्पन्न करने वाले द्रव पदार्थ को अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार तू ऐश्वर्य के उत्पादक वायु से और सूर्य के प्रकाशों के समान प्राण के धारण सामर्थ्यों से वीर्य के उत्पन्न करने वाले मधुर अन्न और ब्रह्मानन्द रस के जनक मधुर ब्रह्मज्ञान का पान कर, उसको ग्रहण कर।

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन्! तू यज्ञ मे होता नाम ऋत्विज् के समान सब ज्ञानों को धारण करने वाला, मननशील, सर्वहितकारी होकर यज्ञों

में विराज। वह तू हमारे इस यज्ञ, एवं न नाश करने योग्य, उत्तम, सुखजनक पदार्थ को प्राप्त करा।

राजा राष्ट्र को अपने वश करने और सबको यथायोग्य मान, पद वेतन आदि देने में समर्थ, मननशील पुरुष को प्रजापालन के कार्यों मे स्थापन करे। वह हमारे 'अध्वर' प्रजापालन रूप यज्ञ को व्यवस्थित करे॥

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः।
ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

भा०—हे सूर्य के समान देदीप्यमान, तेजस्विन्! चमकने वाले! विद्वन्! देव! तू रमण करने योग्य रथ में रक्त गुण वाली, गमनशील एवं कान्तियुक्त हरणशील शक्तियों को संयोजित कर। उनसे इस लोक में कामना योग्य सुखकारी पदार्थों और व्यवहारो को प्राप्त करा।

भौतिक अग्नि की ज्वालाएं या गतियुक्त शक्तियां रक्तवर्ण की कान्ति वाली हैं और रोहित अर्थात् ईषत् रक्त हैं जिनसे वह 'देवो' अर्थात् किरणों को दूर तक पहुंचाता है। इति सप्तविंशो वर्गः॥

[१५]

मेधातिथि काण्व ऋषि॥ ऋतवो देवता। १, ५ इन्द्र;। २ मरुत। ३ त्वष्टा। ४ अग्नि। ६ मित्रावरुणौ। ७—१० द्रविणोदाः। ११ अश्विनौ। १२ अग्निः॥ गायत्र्य.। १२ पिपीलिकामध्या निचृद्। २ भुरिग्। १२ निचृद्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः।
मत्सरासस्तदोकसः॥ १॥

भा०—हे इन्द्र! जल को रश्मियों में मेघ रूप से धारण करने वाले सूर्य! तू वसन्त आदि प्रत्येक ऋतु के बल से जल का पान करता है, उनको रश्मियों से सोख लेता है और तब ही वे जल, अन्तरिक्ष, वायु, पृथिवी आदि नाना स्थानों पर आश्रय पाकर प्राणियों को हर्ष और तृप्ति

उत्पन्न करने वाले होकर द्रव रूप एवं गीला करने वाले रूप में रहते हैं, तुझको वे प्राप्त होते है। तेरे पर आश्रित हैं।

राजा के पक्ष में—हे इन्द्र राजन्! महामात्य और राजसभा के सदस्यों के बल से तू ऋतु बल से सूर्य के समान राजपद ऐश्वर्य का भोग कर। हर्षजनक नाना देशो और महलो मे रहने वाले चन्द्र के समान प्रजारञ्जनकारी विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष तुझे प्राप्त हो, वे तेरे अधीन, पात्र मे जल के समान आश्रित रहे।

मरु॑तः॒ पिब॑त ऋ॒तुना॑ पो॒त्राद्य॒ज्ञं पु॑नीतन।
यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानवः ॥ २ ॥

भा०—हे मरुद्गण! विद्वान् जनो! जिस प्रकार वायुगण ऋतुओ के अनुसार जल को सूक्ष्म रूप से पान करते है और सूक्ष्मरूप से अपने भीतर धारण करते है और अपने पवित्र करने के सामर्थ्य से यज्ञ अर्थात् सृष्टियज्ञ को पवित्र करते हैं और वे उत्तम सुख और वृष्टि जल, कृषि फल को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आप विद्वान् जन भी ज्ञान, बल और प्राण के सामर्थ्य से अन्न ओषधि आदि रस का पान करो और पवित्र करने वाले परमेश्वर, प्राण या जल के सत्य ज्ञान और सामर्थ्य से आत्मा और शरीर को पवित्र करो। हे विद्वान् जनो! क्योकि आप लोग उत्तम कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्य का दान करने हारे हो।

प्राणो के पक्ष मे—हे प्राणगण! मुख्य प्राण या ओंकार के बल से आत्मा को पवित्र करो। तुम उत्तम बलप्रद हो।

सैनिकों के पक्ष मे—शत्रुमारक वीर पुरुष सेनापति के बल से राष्ट्र का उपभोग करे, पालन करें। ब्राह्मण के बल से यज्ञ रूप राष्ट्र को स्वच्छ करें, उत्तम रक्षाकारी हो।

अ॒भि य॒ज्ञं गृ॑णीहि नो॒ ग्नावो॒ नेष्टः॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑।
त्वं हि र॑त्न॒धा असि॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले! हे सब

पदार्थों को शुद्ध करने हारे ! तू यज्ञ, प्रजापति, परमेश्वर को लक्ष्य करके हमें उपदेश कर और सत्यज्ञान के बल पर आनन्द रस का पान कर। क्योंकि निश्चय से तू ही अति रमण करने योग्य ज्ञान और आत्मतत्व को धारण करने वाला है।

गृहस्थ-पक्ष में—हे सत् स्त्री से युक्त ! उसके स्वामिन् ! हे विवेकिन् ! तू परमेश्वर की उपासना कर और ऋतु के अनुसार अन्नादि भोग्य पदार्थों का भोग कर। तू ही रमण योग्य, सुखप्रद स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य आदि के धारण पोषण करने हारा है।

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह सा॒दया॒ योनि॑षु त्रि॒षु।
परि॑ भूष॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! तू अग्नि या सूर्य के समान इस राष्ट्र या लोक में दिव्य गुणयुक्त पदार्थों एवं दानशील और विजयशील विद्वान्, धनवान् और बलवान् पुरुषों को प्राप्त करा। और उनको तीनों उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर स्थापित कर। और इन सबको सब प्रकार से सुशोभित कर। और बल, ऋतु और सहयोगी अमात्य आदि सहित ऐश्वर्य का पालन व भोग कर।

ब्राह्म॑णादिन्द्र॒ राध॑सः॒ पिबा॒ सोम॑मृ॒तूँरनु॑।
तवेद्धि स॒ख्यमस्तृ॑तम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आत्मन ! तू प्राणों के सामर्थ्य से उस महान् परमेश्वर के आराधना, साधना या विभूति, ऐश्वर्य में से प्राप्त होने वाले परमानन्दमय रस को पान कर। और हे आत्मन् ! तेरा ही सख्य, मैत्रीभाव, प्रेम कभी नष्ट नहीं होता। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'। बृहदा० उप०।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू ऋतुओं या मन्त्रिगण अथवा राजसभा के सदस्यों सहित महान् राष्ट्र के ऐश्वर्य से अथवा वेदोक्त प्राप्त अपने अंश रूप ऐश्वर्य का ग्रहण कर। तेरे सख्य का कभी नाश नहीं होता।

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् ।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—हे व्रतो, नियमो को धारण करने और उनको स्थिर रखने वाले! मित्र,सब के स्नेही, वरुण, दुष्टो के वारक तुम दोनो सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार दोनो ऋतु के अनुसार संवत्सर रूप यज्ञ को धारण करते हैं और प्राण और अपान दोनो गति बल से जिस प्रकार देह को धारण करते हैं उसी प्रकार राजा और मन्त्री, गृह मे गृहस्थ और गृहपत्नी सत्य धारक बल से शत्रुओ से नाश न होने वाले बल को और परस्पर सग से उत्पन्न प्रजापालन व्यवहार को व्याप्त होकर रहो। उस पर वश रक्खो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—धन ऐश्वर्य और द्रुत वेग को चाहने वाले ज्ञानी पुरुष उत्तम स्तुति करने से सिद्धहस्त होकर हिंसारहित, शुद्ध, पवित्र यज्ञ मे और ईश्वरोपासना के कार्यों मे और विद्या, बल, राज्य ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर की उपासना, स्तुति, प्रार्थना करते हैं। अर्थात् यज्ञो में परमेश्वर की स्तुति करते हैं।

राजा के पक्ष मे—वज्र आदि हनन करने के शस्त्रास्त्रो को हाथ मे लिये, उनको चलाने मे कुशल, सिद्धहस्त होकर प्रजापालन और सेना सग्रामो मे धन प्रदान करने वाले दाता राजा की ही कामना पूर्ण करते हैं।

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे ।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

भा०—जिन भी बहुत से प्राणियों को सुखपूर्वक बसाने वाले ऐश्वर्य सुने जाते हैं, उन सबको वह सब ऐश्वर्यों का देने वाला प्रभु ही हमे प्रदान करे। और उनको दिव्य कार्यों, राज्य व्यवहारो और विद्वानों के निमित्त प्राप्त करें और उनके हित के लिये प्रदान करें।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत।
नेष्ट्राद् ऋतुभिरिष्यत ॥ ६ ॥

भा०—ऋत्विजों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला पुरुष जिस प्रकार सोम रसों का पान करता है उसी प्रकार ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ 'द्रविणोदा' राजा ही ऐश्वर्य को भोग करने की अभिलाषा करता है। इसलिये हे वीरो! विद्वान् जनो! आप लोग शस्त्रों का प्रहार करो एवं परस्पर का लेन देन व्यवहार करो और आगे बढ़ो। और प्राणों के बल से जिस प्रकार मनुष्य व्यापक आत्मा या मन से ही समस्त इच्छाएं करते हैं और जिस प्रकार प्राणी ऋतुओं के सहित सबके नायक सूर्य से ही सब इष्ट फल प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे वीर पुरुषो! तुम लोग भी ज्ञानवान् पुरुषों सहित सबसे आगे चलने वाले नायक पुरुष से ही अपने इष्ट कार्यों को प्राप्त करो, उनकी आज्ञा पर चलो।

यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे।
अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

भा०—हे द्रविणोदः, ऐश्वर्यों के देने हारे परमेश्वर! जिस तुरीय, मोक्षस्वरूप तुझको प्राप्ति के समस्त साधनों से हम उपासना करते हैं, और तू ही हमें सब पदार्थों का दाता, सब कष्टों और दुःखों से त्राता और रक्षक हो। हे राजन! प्रभो! तुझ चारों वर्णों के पूरक या शत्रु, मित्र और उदासीन सबपे ऊपर विद्यमान चतुर्थ तुझको हम सब सदस्यों एवं बलों से युक्त करें। तू हमारा दाता और रक्षक हो। परमेश्वर का 'तुरीय' स्वरूप देखो माण्डूक्य उप०। अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार [आत्मै] व ॥

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता।
ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

भा०—देह में व्यापक जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले,

शरीर को शुद्ध करने वाले कर्मों के करने वाले होकर अन्न का मधुर रस मुख्य प्राण के बल से पान करते हैं और वे दोनो आत्मा को धारण करते हैं। इसी प्रकार शुद्ध कर्मों और नियमो वाले अग्नि के समान स्वयं प्रकाशमान, अथवा राजारूप अग्रणी नेता पद के साथ प्रकाशित होने वाले, उसके संग विराजमान होकर हे अश्वो पर चढ़ने वाले दो मुख्य अधिकारियो ! या राजा रानियो ! तुम दोनों राष्ट्ररूप यज्ञ, प्रजापालक प्रजापति पद को धारण करते हुए ऋतु के अनुकूल या बल से राज्य को प्राप्त करने वाले सामर्थ्य से ही मधुर राष्ट्र के ऐश्वर्य का पान करो, उसका उपभोग करो। राष्ट्र का धारण, पोषण व पालन करना ही उसका उपभोग करना है। राष्ट्र को दुर्व्यसनों मे नाश करना उसका भोग करना नहीं है।

इसी प्रकार एक दूसरे के हृदय मे व्यापक, एक दूसरे के भोक्ता, पति पत्नी, शुद्ध नियम व्रत का पालन करते हुए, अग्निहोत्र मे अग्नि को प्रज्वलित करने वाले आहिताग्नि होकर गार्हस्थ्य या परस्पर संगत यज्ञ को धारण करने वाले होकर ऋतु के अनुसार मधुर गृहस्थ सुख का भोग करें।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—हे दान करने और उत्तम विद्या, ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने मे कुशल पुरुष ! तू गृहपति के पालन करने योग्य ऋतु मे ही यज्ञ को सम्पादन करने वाले प्रमुख पुरुष के लिये उत्तम व्यवहारों को सम्पादन कर और उत्तम विद्वानों को सुसंगत कर।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् ! तू गृहपति, पिता के योग्य विधान से यज्ञ राष्ट्र का नायक हो। तू विजय करने वाले के लिये वीर पुरुषों को प्राप्त कर। इत्येकोनत्रिंशत् वर्गः ॥

[१६]

मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । ३ पिपीलिकामध्या निचृद् । ६ विराड ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वा॑ वहन्तु॒ हर॑यो॒ वृष॑णं॒ सोम॑पीतये ।
इन्द्र॑ त्वा॒ सूर॑चक्षसः ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! परमेश्वर ! जल ले लेने वाले किरण रसों को पान करने के लिये जिस प्रकार वर्षण करने वाले सूर्य या मेघ को धारण करते है, उसी प्रकार सूर्य के समान तेजोमय, स्वतःप्रकाश परमेश्वर का साक्षात् करने वाले विद्वान् जन भी आनन्द रस का पान करने के लिये तुझ सब सुखों के वर्षक को ही हृदय मे धारण करते हैं और तुझे ही साक्षात् करते हैं।

अध्यात्म मे—ये 'हरि' इन्द्रियगण तुझे धारण करते है।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् ! सूर्य के समान तीव्र चक्षु वाले, तेजस्वी लोग राष्ट्र के भोग और पालन के लिये तुझे बलवान् एवं शस्त्रास्त्र वर्षक या प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षाने वाले को ही मेघ के समान जानकर तुझे रथ को अश्वों के समान धारण करते है, तेरे कार्य वहन करते है।

इ॒मा धा॒ना घृ॑त॒स्नुवो॒ हरी॑ इ॒होप॑ वक्षतः ।
इन्द्रं॑ सु॒खत॑मे॒ रथे॑ ॥ २ ॥

भा०—दो अश्व जिस प्रकार राजा को रथ द्वारा ले जाते है और सब पदार्थों और कालचक्र को ले जाने वाले कृष्ण और शुक्लपक्ष जिस प्रकार चन्द्र को और दक्षिणायन और उत्तरायण जिस प्रकार सूर्य को धारण करते है, उसी प्रकार हे आत्मन ! हरणशील, गतिमान दोनों प्राण और अपान इस अति-अधिक सुखकारी रमण कराने वाले स्वरूप मे ऐश्वर्य-युक्त, आत्मसाक्षात्कार मे देखने योग्य रसमय स्वरूप में धारण करते है, द्रष्टा को वहां तक पहुंचाते है। और जिस प्रकार दिन रात्रि या किरणें काल के धारण करने मे 'धाना' कहाती है सूर्य और चन्द्र की ज्योति या

जल को धारण करने से वे 'धाना' हैं और तेजप्रद होने से 'घृतस्नु' हैं उसी प्रकार ये सब आत्मा को धारण करने वाली नाडियां 'धाना' आनन्द रस को स्रवण करने वाली हैं।

राजा के पक्ष मे—समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने से प्रजाएं ही 'धाना' हैं। वे तेज, अन्नादि देती हैं।

'धानाः'—नक्षत्राणां वा एतद् रूप यद् धानाः। तै० ३।८।४।५॥ अहोरात्राणां वा एतद् रूप यद् धानाः। श० १३।२।१।४॥ पशवो वै धानाः। कौ० १८।६॥

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं सोमस्य पीतये॥ ३॥

भा०—प्रात.काल के अवसर पर प्रतिदिन हम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर इन्द्र को स्मरण करें। उत्तम ज्ञान प्रदान करने वाले यज्ञ में भी हम उसी ईश्वर का स्मरण करें। और सोम, परम ब्रह्मानन्द रस का पान करने के लिये परमेश्वर को ही स्मरण करें।

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः।
सुते हि त्वा हवामहे॥ ४॥

भा०—हे परमेश्वर! जिस प्रकार किरणों वाले, तेजोमय वेगवान् किरणों सहित जगत् को सूर्य या वायु प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू भी किरणों वाले वेगवान् सूर्यादि पदार्थों द्वारा हमारे ज्ञान से निष्पन्न आत्मा को प्राप्त हो। और उपासना के अवसर मे ही तुझे हम पुकारते हैं।

अध्यात्म मे—हे इन्द्र, आत्मन्! तू क्लेश देने वाले प्राणों सहित इस उत्पन्न देह को प्राप्त होता है। इस देह मे आत्मा का ही ज्ञान करें।

राजा के पक्ष मे—केश वाले अश्वों सहित तू इस प्राप्त राष्ट्र मे आ। अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यमय राष्ट्र मे तुझको आदरपूर्वक स्मरण करते हैं।

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् ।
गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—पियासा गौर मृग जिस प्रकार उत्सुक होकर जलाशय मे जल पीता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू स्तुतिवाणियों मे रमण करने वाला होकर हमारे इस स्तुतिसमूह को प्राप्त हो और इस उत्तम रीति से सम्पादित उपासना रस का पान कर, स्वीकार कर ।

राजा के पक्ष मे—गौ अर्थात् पृथ्वी मे रमण करने हारा राजा तृषित मृग के समान अति उत्सुक होकर प्रजा के जन संघ को प्राप्त करे और इस अभिषेकद्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को भोग करे । इति त्रिंशो वर्गः ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।
ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

भा०—हे इन्द्र, परमेश्वर ! ये उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्ययुक्त सूर्य, वायु आदि कारण पदार्थ अन्तरिक्ष और महान् आकाश मे विद्यमान हैं उनको अपने बल से पान कर, अपने भीतर धारण कर ।

अध्यात्म मे—सोम साक्षात् देह से देहान्तर मे जाने वाले ये जीव अन्न के आधार पर उत्पन्न हैं । हे परमेश्वर ! उन्हे अपने मे धारण कर ।

जलों के पक्ष मे—हे इन्द्र, सूर्य ! अन्तरिक्ष मे ये द्रवणशील जल विद्यमान हैं उन्हे किरणों से पान कर ।

राजा के पक्ष मे—प्रजाजन के ऊपर आज्ञा करने वाले ऐश्वर्यवान् उत्तम जन अभिषिक्त हैं, उनको अपने बल की वृद्धि के लिये अपने में मिला ले, अपने अधीन कर ।

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।
अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा यह हृदय को स्पर्श करने वाला, अतिप्रिय, स्तुतिसमूह सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, अतिशान्तिदायक हो । और तू उत्पन्न हुए इस जीव को पान कर, अपनी शरण मे ले ।

राजा के पक्ष में—यह अधिकार सर्वश्रेष्ठ, सबके हृदयों को स्पर्श करने वाला तुझे शान्तिदायक हो। तू इस अभिषेक से प्राप्त राष्ट्र या सोम राजपद को स्वीकार कर।

विश्वमित् सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सब प्राणियों को आनन्दित और जीवन रस से तृप्त करने के लिये इस समस्त उत्पन्न जगत् को व्यापता है और जल को सर्वत्र पान कराने के लिये ही वह मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर उत्पन्न हुए इस समस्त सुखजनक ऐश्वर्यमय जगत् को आनन्द रस से तृप्त करने और सोमरूप चैतन्य तत्व के पालन कराने के लिये आवरणकारी तामस आवरण को नाश करके सर्वत्र व्याप रहा है।

राजा के पक्ष में—शत्रुनाशक राजा अभिषेक से प्राप्त समस्त ऐश्वर्य को अपने हर्ष और राष्ट्र-भोग के लिये प्राप्त करता है।

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे असंख्य कर्मों और प्रजाओं वाले परमेश्वर! या राजन्! वह तू हमारे इस मनोरथ को गौओं और अश्वों से गृहस्थ और राष्ट्र के कार्यों के समान पूर्ण कर। हम उत्तम रीति से तेरी चिन्ता करने वाले भक्तजन तेरी ही स्तुति करते हैं, तेरा ही गुणानुवाद करते हैं।

अध्यात्म में—ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर। हम शुभचिन्तक ध्यानशील होकर तेरी स्तुति करें। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१७]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ गायत्र्यः । २ यवमध्या विराट्। ४ पादनिचृद् (हसीयसी)। ६ निचृद्। ५ भुरिगार्ची। ८ पिपीलिकामध्या-निचृद् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

भा०—मैं प्रजाजन अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले इन्द्र और वरुण, राजा और सेनापति, दोनों के रक्षा कार्य को स्वीकार करूं, दोनों के रक्षा कार्य को आवश्यक जानता हूँ। वे दोनों हमें सूर्य और चन्द्र के समान या वायु और मेघ या विद्युत् और मेघ के समान इस प्रकार साक्षात् राज्यकार्य में सुखी करते हैं।

अध्यात्म में–इन्द्र = जीव, वरुण = परमेश्वर दोनों में से एक ब्रह्माण्ड और दूसरा देह मे राजा के समान प्रकाशित होने से दोनों को मैं प्राप्त करूं, वे दोनों हमें ऐसे लोक और परलोक मे सुखी करते हैं।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण नामक राजा और सेनापति पुरुषो! आप दोनों अग्नि और जल के समान मनुष्यों के धारण पोषण करने वाले हो। और मेरे समान विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले बुद्धिमान् प्रजाजन के रक्षा करने के लिए युद्ध को भी निश्चय से जाने को सदा तैयार रहते हो।

अग्नि और जल दोनों—विद्वान् पुरुष के इच्छानुकूल शिल्पकलादि साधनों को प्राप्त होकर पुरुषों के धारक,पालक और पोषक होते हैं।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्नि और जल के समान प्रजा की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करनेहारे! तुम दोनों ऐश्वर्य के प्रत्येक प्रकार की अभिलाषा को पूर्ण करो। उन तुम दोनों को हम लोग अपने अति अधिक समीप प्राप्त होकर याचना करते हैं।

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग उत्तम बुद्धियो, शक्तियो और वेदवाणियों के साथ अपने को मिलाये रक्खें और उत्तम मनन करने वाली बुद्धियो वाले विद्वानो के साथ हम सत्संग करें। और अन्न और ऐश्वर्य देने वाले पुरुषो के बीच मे हम सदा रहें।

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—सहस्रों ऐश्वर्यों और सुखों के देने वालो मे से परमेश्वर, अग्नि, विद्युत, सूर्य, मेघ, राजा यही क्रियावान्, कुशल एवं प्रशंसा-योग्य हैं। और स्तुति करने योग्यो मे से सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, जल, वायु, चन्द्र और समुद्र ही क्रियावान् और प्रशसा के योग्य हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

भा०—उन दोनों के ही ज्ञान, रक्षण और तेजः सामर्थ्य से हम सब लोग समस्त सुखो का भोग करें। और धन को कोष मे संचय करें और हमारे पास बहुत अधिक ऐश्वर्य हो।

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण राजन्! और सेनापते! मैं प्रजाजन अद्भुत, राज्य, सेना, भृत्य, पुत्र, मित्र, सुवर्ण, रत्न, हस्ती, अश्व आदि से सम्पन्न एवं दूसरो के आश्चर्यकारक धन को प्राप्त करने के लिए आप दोनों को बुलाता हूँ। आप दोनो हम सबको विजयशील बनाओ।

इन्द्रावरुणा नु नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे इन्द्र और वरुण ! वायु और जल या मेघ के समान सुखप्रद ! आप दोनों को भजन या सेवन करने वाली प्रजाओं में आप दोनों हमें सुख प्रदान करो ।

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे ।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

भा०—हे इन्द्र और वरुण ! पूर्वोक्त वायु जल ! उनके समान राजन् ! सेनापते ! जिस सत्य गुण वर्णन वाली स्तुति को मैं प्रकट करता हूँ और जिस सत्य अपने गुण स्तुति और शक्ति को प्राप्त कर आप बढते हैं वह आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हो । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः ।

[१८]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः । देवता—१—३ ब्रह्मणस्पति । ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च । ५ बृहस्पतिर्दक्षिणा । ६—८ सदसस्पतिः : ९ सदसस्पतिर्नाराशंसो वा ॥ गायत्र्य । १ विराट् । ३, ६, ८ पिपीलिकामध्या निचृद । ४ निचृद् । ५ पाद-निचृद् । नवर्च सूक्तम् ।

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥

भा०—हे वेदों और वेदज्ञ विद्वानों के पालन करने हारे परमेश्वर ! तू यज्ञ कर्म करने वाले, अपने उपासक को जो तेजस्वी, वीर्यवान्, ज्ञानी, गुरु का पुत्र या शिष्य है उसको उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता और उपदेष्टा तथा हाथों की अंगुलियों से किये जाने वाली शिल्पक्रिया में भी सिद्धहस्त कर ।

आचार्य के पक्ष में—हे आचार्य ! जो तेजस्वी माता पिता का बालक है उसको अभिषव अर्थात् स्नान करने अर्थात् विद्या पढकर स्नातक बनने वाला तथा उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता तथा हाथों की क्रियाओं में कुशल, ज्ञानवान् और क्रियावान् बना ।

राजा के पक्ष में—हे समस्त ब्रह्म के स्वामिन्! मुख्य पुरोहित तू जो तेजस्वी, पराक्रमी या कामना, इच्छा वाले माता-पिता या प्रजाजन से उत्पन्न है जिसको प्रजा चाहती है ऐसे अभिषेक करने योग्य राजा को सबका आज्ञापक और शत्रुओं का उपतापक और कसे कसाये घोड़े के समान बलवान् एवं शत्रुबल को अवगाहन करने की शक्ति से युक्त एव राष्ट्र रूप रथ को खैंच लेने में समर्थ अथवा अगल बगल की प्रबल सेनाओं से सम्पन्न बना।

'कक्षीवन्त'—कक्षीवान् कक्ष्यावान्। आपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात्। नि० ६। १०॥ कक्ष्या रज्जुः। अश्वस्य कक्षं सेवते। कक्षो गाहते.। क्स. इति नामकरणः। ख्यातेर्वानऽनर्थकोऽभ्यासः। किमस्मिन् ख्यानमिति वा। कषतेर्वा तत्सामान्यान्मनुष्यकक्षः। बाहुमूलसामान्यादश्वस्य। निरु० २।१।२॥

कक्षासु। करांगुलिषु क्रियासु भवा शिल्पविद्या प्रशस्ता यस्य स कक्षीवान्। कक्षा इत्यंगुलिनाम॥ दया०॥

'औशिजः'—उशिजः पुत्रः। उशिग् वष्टेः कान्तिकर्मणः। उशि प्रकाशे जातः स उशग्। तस्य विद्यावतः पुत्र इव।

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः।
स नः सिषक्तु यस्तुरः॥ २॥

भा०—जो विद्या और धनैश्वर्य से सम्पन्न, वैद्य के समान समस्त दुःखदायी रोगकारणों का नाश करने वाला, समस्त लोकों को जानने वाला, अन्न और ज्ञान से शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाला है और जो अति वेगवान् शीघ्र सुख फल देने वाला है वह हमें प्राप्त हो।

राजा के पक्ष में—जो ऐश्वर्यवान्, रोगों के समान शत्रुओं का नाशक गौ आदि सम्पत्ति का बढाने वाला, राष्ट्र का पोषक, ऐश्वर्य को युद्धादि द्वारा प्राप्त करने और प्रजा को देने वाला, वेदज्ञ विद्वानों का

पालक और जो शत्रु पर वेग से आक्रमणकारी है वह हमें संगठित करे, हम में सब बनाकर बलवान् करे।

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

भा०—महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर! महान् राष्ट्र के पालक राजन्! वेद के पालक आचार्य! हमारी तू रक्षा कर। दुष्ट पुरुष का नाशकारी, कष्टप्रद आक्षेप वचन या उपदेश हम तक न पहुंचे। अपितु वेदज्ञ विद्वान् हमारी रक्षा करे। अथवा हममें से कोई भी हिंसक नष्ट हो, अदानशील पुरुष का वचन भी नष्ट हो, हमारा वचन व ख्याति नष्ट न हो।

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस पुरुष वा प्रजाजन को वायु, प्राणवायु सोमलता आदि ओषधिसमूह और वेद का पालक विद्वान् और ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर बढ़ाते हैं वह शत्रुबलों को तितर बितर करने में समर्थ वीर पुरुष कभी दुःख नहीं पाता, कभी नष्ट नहीं होता।

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—हे महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! वेदज्ञ विद्वन्! बृहत् राष्ट्र के पालक राजन्! तू, सोम, ओषधि रस, विद्वान् जन और वीर्यादि सामर्थ्य, सेनापति, प्राण, वायु और बढ़ने की उत्तम धर्म नीति ये सब उस पुरुष को पाप से बचावें।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

भा०—अद्भुत, आश्चर्यकारी, ऐश्वर्यवान् राजवर्ग और वैश्यवर्ग के प्रिय लगने हारे, सब प्रजा के इच्छानुकूल, योग्य ज्ञान और उचित श्रमा-

नुकूल वेतन पुरस्कार आदि देने वाले, विद्वानों की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के पालक, न्यायसभा या धर्मसभा के नेता सभापति को मैं धारणावती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त करूं।

परमात्मपक्ष में—जीव के प्रिय लोकसमूह, ब्रह्माण्ड के पालक, सबको कर्म फलों के दाता, परमेश्वर को मैं बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊं वा उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि प्राप्त करूं।

यस्मा॑दृ॒ते न सिध्य॑ति य॒ज्ञो वि॑प॒श्चित॑श्च॒न ।
स धी॒नां योग॑मिन्वति ॥ ७ ॥

भा०—जिसके बिना बडे भारी विद्वान् पुरुष का भी यज्ञ, कोई भी उत्तम कार्य, उपासना आदि सफल नहीं होता, वह परमेश्वर सर्वोपास्य, समस्त बुद्धियों और कर्मों की एकाग्रता से ध्यान करने योग्य है।

अथवा—वह समस्त बुद्धियों का संयोजन अर्थात् प्रेरणा करना जानता है। वही सब बुद्धियों को प्रेरणा करता और सब कर्मों का सचालक है।

विद्वान् के पक्ष में—जिस विद्वान् के विना कोई परस्पर का संगत राज्य आदि समवाय न चल सके वह पुरुष सब कार्यों का नियोजन करे।

आदृ॑ध्नोति ह॒विष्कृ॑तिं॒ प्राञ्चं॑ कृणोत्यध्व॒रम् ।
होत्रा॑ दे॒वेषु॑ गच्छति ॥ ८ ॥

भा०—पूर्वोक्त सभापति के समान सर्वोच्च, सर्वप्रेरक मुख्य पुरुष ही तब स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों के सम्पादन करने वाले यज्ञादि उत्तम कार्यों को सम्पन्न करता है। और यज्ञ को उन्नति की ओर ले जाने वाला, अविनश्वर, निर्विघ्न बनाता है। और दान देने योग्य पदार्थों को विद्वान् पुरुषों के निमित्त प्राप्त करता है।

परमेश्वर के पक्ष में—अन्नादि कर्मफलों के उत्पादक, अविनश्वर जगत्-मय यज्ञ को वही सम्पन्न करता, हवनादि क्रियाओं को करता और दिव्य गुणों या दिव्य पदार्थों में व्याप्त है।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

भा०—मैं समस्त मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला और अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और सूर्यादि प्रकाशवान् लोकों के समान सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त, अथवा—महान आकाश और सूर्य के भी महान् आश्रय-गृह के समान देखता हूँ । अर्थात् परमेश्वर ही जगत् को सबसे उत्तम रीति से धारण करता है, वही आकाशादि पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक है । वह समस्त तेजस्वी पदार्थों का आश्रय है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[१९]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः । अग्निमरुतश्च देवते ॥ गायत्र्यः । ७ निचृद् । ९ पिपीलिकामध्या निचृद् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! उस जगत्प्रसिद्ध नित्य विद्यमान, ब्रह्माण्डमय उत्तम यज्ञ की रक्षा के लिये तू प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है । तू विद्वानों एवं वायुओं के समान व्यापक पदार्थों के साथ आ, हमें प्राप्त हो ।

राजा के पक्ष में— हे तेजस्विन् ! राजन् ! तू शत्रुओं को मारने वाले, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर पुरुषों सहित आ । तू इस श्रेष्ठ, न नाश होने वाले, यज्ञ, राष्ट्र के रक्षार्थ प्रस्तुत है ।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तेरे महान् कर्म और ज्ञान सामर्थ्य

से कोई तेजस्वी पदार्थ परे नहीं है। अर्थात् सूर्यादि पदार्थ भी तेरे ज्ञान और कार्य सामर्थ्य से कम और उसके भीतर हैं। और न कोई मरणधर्मा जीव ही तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से परे है। तू ही वायु, आकाश आदि व्यापक और प्रकाश, विद्युत् आदि तीव्र वेगवान् भूत तत्वों सहित प्रकट होता है। ये सब परमेश्वर के ही महान् सामर्थ्य हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥कठ०उ०॥

ये मृहो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

भा०—हे विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! जो समस्त परस्पर द्रोह न करने वाले, एक दूसरे के साथ मिल कर, एक दूसरे के उपकारक होकर, बड़े २ लोकों को प्राप्त हैं उन तीव्रगामी, वायु आदि तत्वों के सहित तू प्रकट है।

भौतिक पक्ष में—जो द्रोहरहित विद्वान्गण नक्षत्रादि लोकों को ज्ञान करते हैं उन विद्वानों द्वारा तू जाना जाय।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—जो अति बलवान्, वेगवान्, कभी शत्रुओं से धर्षण या पराजय को प्राप्त न होने हारे, अपने बल पराक्रम के द्वारा सूर्य के समान तेजस्वी सम्राट् के गुणों को प्रकाशित करते हैं। उन वायु के समान तीव्र, बलवान् वीर पुरुषों सहित हे शत्रुसन्तापक अग्रणी राजन्! तू आ, हमें प्राप्त हो।

परमेश्वर के पक्ष में—जो बलवान् बल से पराजित न होकर भी अर्चनीय परमेश्वर की उपासना करते हैं उन विद्वानों द्वारा हे ज्ञानवन्! तू हमें प्राप्त हो।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जो वीर पुरुष श्वेत वर्ण के, उज्ज्वल रूप वाले, नाना अलकारों और गुणो से सुशोभित, शत्रुओं का नाश करने वाले, भयानक रूप को धारण करने वाले, उत्तम क्षात्र-बल से युक्त, हिंसक दुष्ट पुरुषों के भी नाश करने वाले है उन वेगवान् वीर पुरुषो सहित हे अग्रणी, तेजस्विन् ! तू आ ।

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर जो पृथिवी, चन्द्र, अन्यान्य ग्रह आदि या प्रकाश की किरणें है उनके साथ ही सूर्य उदय होता है उसी प्रकार सुखयुक्त राष्ट्र के ऊपर अधिष्ठाता रूप मे विद्यमान स्वयं ज्ञानवान्, तेजस्वी सर्वोपरि ज्ञानप्रद राजसभा मे जो विद्वान् पुरुष विराजते है उन राष्ट्र के प्राणस्वरूप विद्वान् पुरुषों के साथ हे अग्रणी तेजस्विन् ! नायक ! तू हमें प्राप्त हो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥

भा०—जो पर्वतो को और जलयुक्त समुद्र को अथवा अन्तरिक्ष और समुद्र को, उथलपुथल करते हैं उन वायुओ सहित हे सूर्य एव विद्युत् ! तू हमें प्राप्त हो । इसी प्रकार जो वीर पुरुष पर्वतो के समान प्रजाओ को पालन करने वाले भूमियों को कपा देते है और जो ऐश्वर्य-सम्पन्न, बलवान , जल से भरे समुद्र के समान गम्भीर सेना-बल को भी नीचा दिखाते है उन वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करने वाले वीर पुरुषों के साथ हे अग्रणी नायक ! राजन ! तू प्राप्त हो ।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥

भा०—जो वायुगण सूर्य की किरणो के ताप से फैलते हैं और बल-पूर्वक अन्तरिक्ष और जलमय सागर को भी उथलपुथल कर देते है, उन वेगवान् प्रचण्ड वायुओ सहित हे सूर्य ! तू प्राप्त हो। उसी प्रकार जो वीर पुरुष सूर्य-किरणो के समान फैलने वाली अश्व की रासो से तथा उनके समान प्रजा को वश करने वाले साधनों से राष्ट्र को विस्तृत करते है और बल से अपार सागर का भी तिरस्कार करते हैं उन वीर पुरुषो के साथ हे नायक ! तू प्राप्त हो।

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

भा०—अग्ने ! राजन् ! मैं तेरे निमित्त ऐश्वर्य अथवा राजपद के योग्य, सुखजनक मधुर, अन्न आदि पदार्थ एवं बल और अधिकार को सबसे प्रथम आनन्दपूर्वक स्वीकार करने के लिये सोम रस के समान ही प्रस्तुत करता हूं। वे वायुओ सहित जिस प्रकार सूर्य पृथिवी पर जलो को रश्मियो द्वारा पान करने के लिये आता है उसी प्रकार तू भी आ। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

[२०]

मेधातिथि काण्व ऋषि ॥ ऋभवो देवता ॥ गायत्र्य । ३ विराट् । ४, ५ ८ निचृद् (५, ८ पिपीलिकामध्या) ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥

भा०—बुद्धिमान् पुरुष अपने मुख से दिव्य, उत्तम गुणों से युक्त जन्म, इस देह-रचना एवं पुनर्जन्म ग्रहण के निमित्त उत्तम उत्तम रमण योग्य सुखों के देने वाला इस प्रकार का स्तुतिसमूह करते है।

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष, शिल्पी जिस प्रकार ऐश्वर्यवान राजा या स्वामी के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्जों की व्यवस्था करते हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये अपने मनन सामर्थ्य से वाणी के साथ योग देने वाले, उसके साथ समाहित होने वाले गतिशील, प्राण और अपान दोनों को साधते हैं वे ही शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करते हैं ।

जो विज्ञान से वाणी के साथ चलने वाले वेगवान् साधनों को पैदा करते हैं वे शिल्प क्रियाओं से सुसंगत शिल्प को भोगते हैं ।

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

भा०—और जो विद्वान शिल्पीजन सदा सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये सब तरफ जाने वाले उत्तम सुखप्रद अवकाश युक्त रमण साधन रथ आदि यान बनाते हैं और वे ही दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली वेदवाणी का भी उपदेश करते हैं ।

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

भा०—सत्य विचारों से युक्त ऋजु, धर्म मार्ग पर चलने हारे, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान पुरुष युवा, गृहस्थ स्वधर्म में परस्पर मगन हुए माता पिता, स्त्री पुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट, सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

'ऋभवः'—मेधाविनाम । निघ० ३ । १५ । उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्ति इति वा ऋतेन भवन्तीति वा । निरु० ११ । २ । ३ ॥ आदित्य-

रश्मयोऽपि ऋभव उच्यन्ते । निरु० ११ । २ । ४ ॥ उरूपपदाद् भातेर्भवतेर्वा मृगय्यादित्वात् कुप्रत्ययः । टिलोपः सम्प्रसारणं च निपातनात् ।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों के आनन्द और हर्ष वायुओं सहित मेघ, उनके समान वीर सैनिको और प्रजा पुरुषो से युक्त सेनापति के साथ और सूर्य की किरणो और उनके समान तेजस्वी राजाओ के साथ प्राप्त होते है ।

अर्थात् जैसे सूर्य की किरणो का रस तृप्तियोग्य वायुयुक्त विद्युत् और प्रखर किरणो के साथ है उसी प्रकार विद्वानों के विद्या-विलासादि आनन्द शिष्यो सहित आचार्य, प्रजाओं सहित राजा और वीरों सहित सेनापति और तेजस्वी राजाओं के साथ है । इसी प्रकार शिल्पियों को भी सेनापति, राजा आदि का आश्रय आवश्यक है । वह भी 'इन्द्र' = विद्युदादि शिल्प करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

भा०—और दानशील, सब पदार्थों के द्रष्टा, विद्वान् शिल्पी के उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जिस प्रकार अन्य शिल्पी उसके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं उसी प्रकार सबको ज्ञान और चेतना देने वाले परमेश्वर के उस जगत् प्रसिद्ध, सदा नवीन एवं सदा स्तुतियोग्य, सुखादि प्राप्त करने योग्य सब प्रकार से उत्तम रीति से बने, सुसम्पादित वेद ज्ञान को साक्षात् करके फिर ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना भेद से चार रूपों में साक्षात् करते हैं ।

अध्यात्म मे—मुख्य एक प्राणरूप चमस को नाना ऋभु = प्राण ने चक्षु, घ्राण, मुख और कान रूप से चार प्रकार से विभक्त किया है ।
(मन्त्रसंख्या द्विशते २००)

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

भा०—विद्वान पुरुष, शिल्पी जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा या स्वामी के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्ज़ों की व्यवस्था करते हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये अपने मनन सामर्थ्य से वाणी के साथ योग देने वाले, उसके साथ समाहित होने वाले गतिशील, प्राण और अपान दोनों को साधते हैं वे ही शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करते हैं ।

जो विज्ञान से वाणी के साथ चलने वाले वेगवान् साधनों को पैदा करते हैं वे शिल्प क्रियाओं से सुसंगत शिल्प को भोगते हैं ।

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

भा०—और जो विद्वान् शिल्पीजन सदा सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये सब तरफ़ जाने वाले उत्तम सुखप्रद अवकाश युक्त रमण साधन रथ आदि यान बनाते हैं और वे ही दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली वेदवाणी का भी उपदेश करते हैं ।

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

भा०—सत्य विचारों से युक्त ऋजु, धर्म मार्ग पर चलने हारे, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् पुरुष युवा, गृहस्थ स्वधर्म में परस्पर संगत हुए माता पिता, स्त्री पुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट, सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

'ऋभवः'—मेधाविनाम । निघ० ३ । १५ । उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्ति इति वा ऋतेन भवन्तीति वा । निरु० ११ । २ । ३ ॥ आदित्य-

रश्मयोऽपि ऋभव उच्यन्ते। निरु० ११। २। ४॥ उरूपपदाद् भातेर्भवतेर्वा मृगय्वादित्वात् कुप्रत्ययः। टिलोपः सम्प्रसारणं च निपातनात्।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता।
आदित्येभिश्च राजभिः॥ ५॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के आनन्द और हर्ष वायुओं सहित मेघ, उनके समान वीर सैनिकों और प्रजा पुरुषों से युक्त सेनापति के साथ और सूर्य की किरणों और उनके समान तेजस्वी राजाओं के साथ प्राप्त होते हैं।

अर्थात् जैसे सूर्य की किरणों का रस तृप्तियोग्य वायुयुक्त विद्युत् और प्रखर किरणों के साथ है उसी प्रकार विद्वानों के विद्या-विलासादि आनन्द शिष्यों सहित आचार्य, प्रजाओं सहित राजा और वीरों सहित सेनापति और तेजस्वी राजाओं के साथ है। इसी प्रकार शिल्पियों को भी सेनापति, राजा आदि का आश्रय आवश्यक है। वह भी 'इन्द्र' = विद्युदादि शिल्प करते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्।
अकर्त चतुरः पुनः॥ ६॥

भा०—और दानशील, सब पदार्थों के द्रष्टा, विद्वान् शिल्पी के उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जिस प्रकार अन्य शिल्पी उसके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं उसी प्रकार सबको ज्ञान और चेतना देने वाले परमेश्वर के उस जगत् प्रसिद्ध, सदा नवीन एवं सदा स्तुतियोग्य, सुखादि प्राप्त करने योग्य सब प्रकार से उत्तम रीति से बने, सुसम्पादित वेद ज्ञान को साक्षात् करके फिर ज्ञान, विज्ञान, कर्म और उपासना भेद से चार रूपों में साक्षात् करते हैं।

अध्यात्म मे—मुख्य एक प्राणरूप चमस को नाना ऋभु = प्राण ने चक्षु, घ्राण, मुख और कान रूप से चार प्रकार से विभक्त किया है।
(मन्त्रसंख्या द्विशते २००)

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

भा०—वे विद्वान् पुरुष सवन, ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वाले के लिए सात तिया, २१ प्रकार के सुख से रमण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करें, करावें ।

यज्ञपक्ष में—'त्रिः सप्तानि' अग्न्याधेय, दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरूढ़ पशुबन्ध, सौत्रामणी ये सात हविर्यज्ञ संस्था हैं । पञ्च महायज्ञ, अष्टकाश्राद्ध, श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजी-कर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं । अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ये सात सोमयज्ञसंस्था हैं (सायण) । ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ,अतिथिसत्कार और दान ये ७ इनको मन, वाणी, देह से तीन प्रकार से वार २ करें करावें (दया०) ।

अध्यात्म में—प्राणगण उत्तम व्यवस्थाओं से त्रिगुण भेद से सातों सुखप्रद शरीर धातुओं को धारण करें ।

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २ ॥

भा०—राष्ट्र के कार्य भार को धारण करने हारे विद्वान् जन, अग्नि के समान तेजस्वी, धुरन्धर विद्वानों और दानशील या विजिगीषु राजाओं के बीच में भी अपने यज्ञ, सुसंगत धर्मानुकूल व्यवस्था के कार्य के योग्य अपने भाग या अंश को उत्तम रीति से सुसम्पादित करके ही धारण करें । अर्थात् प्रत्येक कार्यकर्त्ता उत्तम रीति से करके ही अपना वेतनादि पाने का अधिकारी हो अन्यथा नहीं । इति द्वितीयो वर्गः ।

[२१]

मेधातिथि. काण्व ऋषि ॥ इन्द्राग्नी देवते । गायत्र्य. । २, ५ निचृद् (२ पिपीलिकामध्या) ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

भा०—यहा इस जगत् में या राष्ट्र मे, मै प्रजाजन इन्द्र अर्थात् वायु और अग्नि अथवा अग्नि या सूर्य दोनो के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषो को स्वीकार करता हूं, पदो पर नियुक्त करता हूं। उन दोनो के ही स्तुतिसमूह, गुणवर्णन एवं अधिकार आदि चाहते हैं। जिस प्रकार वायु और जल मिलकर भूमि के जलांश को पान करते है और अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं अथवा जिस प्रकार वे उत्पन्न जगत् की रक्षा करते है, उसी प्रकार सोम, राष्ट्र और ऐश्वर्य का पान प्राप्ति, उपभोग और पालन करने मे सर्वश्रेष्ठ वे दोनों सोम, ऐश्वर्यमय राष्ट्र, राजपद और जगत् का पालन करें।

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

भा०—यज्ञो मे, उपासना के अवसरों पर जीव और परमेश्वर के गुणो का वर्णन किया जाता है और शिल्पादि मे वायु, सूर्य और अग्नि आदि के गुणो का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार परस्पर एकत्र होने के संग्राम आदि स्थलो और प्रजा-पालन के कार्यों मे, हे नेता पुरुषो ! आप लोग इन्द्र और अग्नि, सेनापति और शत्रु-संतापक अग्रणी राजा के गुणो का अच्छे प्रकार वर्णन करो। उन ही को सुशोभित करो और अधिक उत्साहित और उत्तेजित करो। उनको ही गायत्री छन्दों में, यज्ञों मे, पुरुषो में अथवा पृथिवी के शासन और विजय कार्यों या मुख्य पद पर उनके गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन करो।

गायत्री वा इयम् पृथिवी । शत० ४ । ३ । ४ । ९ ॥ गायत्रोऽयं भूर्लोकः । कौ० २ । ९ ॥ गायत्रो यज्ञः । गो० पू० ४ । २४ ॥

अध्यात्म में—इन्द्र = जीव । अग्नि = जाठर । गायत्र = प्राणगण ।

स्वाध्याय यज्ञ में—इन्द्र और अग्नि दोनों आचार्य हैं । एक आचारग्राहक, दूसरा विद्याप्रद । उस पक्ष में गायत्र = ब्राह्मण, विद्वान् गण । गायत्रो वै प्राणः । कौ० २ । ५ ॥ गायत्रो वै ब्राह्मणः । ऐ० १ । २८ ॥

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनों इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषों को स्नेहवान् बन्धु, उपकारक के लिए और ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों के पालन, रक्षण और उपयोग के लिये सोम, ऐश्वर्य और उत्पन्न पदार्थों के पालक उन दोनों को हम बुलाते हैं और आदर करते हैं ।

आधिभौतिक में—मित्र अर्थात् प्राण के उत्तम गुण प्राप्त करने के लिये सूर्य, अग्नि या वायु और अग्नि का उपयोग करें ।

सोम अर्थात् वीर्य के पालन के लिए भी सोम अर्थात् ओषधि रसों के पालक दोनों का उपयोग करें ।

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

भा०—इन्द्र और अग्नि, वायु और सूर्य या विद्युत् और अग्नि या विद्युत् और मेघ इन दोनों के समान उग्र बलवान्, तीव्र स्वभाव के दोनों को हम बुलाते हैं, यह सवन, ऐश्वर्योत्पादक राज्य तैयार है । वे दोनों यहां आवें ।

भौतिक पक्ष में—वायु और अग्नि दोनों तत्व तीव्र स्वभाव के हों और लोक में पदार्थोत्पादक कारखाना चलावें, उनमें दोनों का उपयोग लें ॥

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्षं उब्जतम् ।
अप्रंजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

भा०—वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि, महान् पद, पराक्रम और वीर्य वाले राजसभा के पालक, सभापति के तुल्य होकर दुष्ट राक्षस पुरुषों को झुका देवें, क्रूर कर्मों को छुडाकर उनको सरल-स्वभाव बना दें और प्रजा को लूट खसोट कर खाने वाले शत्रु प्रजारहित हों । अर्थात् उनके अगले आने वाले वैसे प्रजानाशक न हों ।

भौतिक पक्ष में—वायु और आग दोनो पदार्थ बडे, बलकारी गुणवान होने से 'महान्' है । गुणो के आश्रयभूत पदार्थों के पालक होने से 'सदस्पति' हैं । वे जीवन के विघातक रोगो और शत्रुओ का नाश और मूलोच्छेद करें ।

तेनं सत्येनं जागृतमधिं प्रचेतुन पुदे ।
इन्द्राग्नी शर्मं यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनो उस जगत्प्रसिद्ध सत्य व्यवहार, सज्जनो के हितकारी न्याय से सबको चेताने वाले न्यायाधीश के परमपद पर रहकर स्वयम् जागते रहो, सावधान रहो । और हे पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि ! आप दोनो सूर्य और अग्नि, वायु और विद्युत् के समान समस्त प्रजावर्ग को सुख और सुखप्रद शरण प्रदान करो । इति तृतीयो वर्गः ॥

[२२]

मेधातिथि काण्व ऋषि.। देवता—१—४ अश्विनौ। ५—८ सविता । ९, १० अग्निः। ११—१२ देव्य इन्द्राणीवरुणान्यग्नान्य । १३, १४ द्याव पृथिव्यौ । १५ पृथिवी । १६ देवो विष्णुर्वा । १७—२१ विष्णु । गायत्र्य । १, ७, १२, १७, ३, ६, १९ निचृद् । १८ पिपीलिकामध्या । १५ विराट् । एकविंशत्यृच सूक्तम् ॥

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू प्रात , सबसे प्रथम समाहित चित्त से उपा-

सना करने वाले एवं प्रेम से परस्पर मिलने वाले, दिन रात्रि के समान या सूर्य चन्द्र के समान या सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर दोनो स्त्री पुरुषों को विशेष रूप मे जागृत कर, ज्ञानोपदेश कर। वे दोनों इस यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म में इन्द्र उत्पन्न करने योग्य उत्तम सुख के पान या प्राप्त करने के लिए प्राप्त हों।

अथवा—प्रातः संयुक्त सूर्य पृथिवी दोनो हमे प्राप्त हों। विद्वान् हमे सुख प्राप्ति के लिए ज्ञान द्वारा जागृत करें। अर्थात् हमे आश्रय और ज्ञानप्रकाश दोनो प्राप्त हों, तभी हम ज्ञानी होकर सुख प्राप्त करें।

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे॥ २॥

भा०—जो दोनों स्त्री पुरुष उत्तम रथ वाले, रथ-संचालन मे उत्तम रथी, आकाश मे सूर्य चन्द्र के समान ज्ञान प्रकाश मे प्रकाशित अथवा राजसभा मे सम्मानित, वायुयानो द्वारा आकाशमार्ग को स्पर्श करने हारे विद्वान्, दानशील, अश्वों पर चढने वाले उत्तम राजा रानी या राष्ट्र के दो उत्तम अधिकारी हैं उन दोनो को हम आदर से बुलाते हैं।

अग्नि-जलतत्व पक्ष मे—वे दोनों तत्व उत्तम रथो के घटक होने से 'सुरथ' है। नाना रमण साधन या रथों के संचालक होने से 'रथीतम'। आकाश मार्ग मे रथो के चलाने हारे होने से 'दिविस्पृक्' हैं। व्यापक गुण वाले होने से 'अश्वी' है। उन दोनो का हम उपयोग करें। 'जल' तत्व मे घृत, तैल आदि पदार्थ भी समाविष्ट है।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥ ३॥

भा०—हे नाना विद्याओं को व्यापने वाले अध्यापक और शिष्य-गणो! तुम दोनो की जो मधुर ऋग्वेद आदि ज्ञानयुक्त, उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण, अर्थों के प्रकाश करने वाली वाणी है उससे आप दोनो यज्ञ, सत्कर्माचरण और परस्पर के सत्संग और विद्या आदि के दान आदि

व्यवहार और आत्मा और ईश्वरोपासना के कार्य को सेवन करो। अर्थात् इन कार्यों मे मधुर वेदवाणी का उपयोग करो।

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्याओं और कलाकौशल मे पारंगत पुरुषो ! आप दोनो जहा भी रथ से जा सकते हो वह उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी के गृह, स्थान तुम दोनो के लिये दूर नही है।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये।
स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—मै सर्व जगत् के उत्पादक, हृदय को आनन्द देने वाली पूजा वाले अथवा समस्त सूर्यादि गतिशील एव तेजस्वी, हितकारी और सब जन्तुओ को सुखकारी पदार्थों को अपने वशकारी हाथ या अधिकार वा व्यवहार मे रखने वाले परमेश्वर को ही अपनी रक्षा के लिये सदा स्मरण करता हूं। वह ही साक्षात् सब पदार्थों का देने वाला, सब ज्ञानों और तत्वों का सूर्य के समान साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला और सब ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला और प्राप्त करने योग्य एव जगत् में सर्वत्र व्यापक है।

राजा के पक्ष मे—सबके प्रेरक, सुवर्णादि हृदयग्राही पदार्थों को अपने वश मे रखने वा देने वाले दाता को रक्षा के लिये स्वीकार करूं। वही प्रजाओ को धर्माधर्म का चेताने वाला, राजारूप सर्वोच्च पद के योग्य है।

सूर्य के पक्ष मे—सूर्य कान्तिमान् किरणों से 'हिरण्यपाणि' है। चेतनों और चेतनाओं का प्रेरक होने से 'सविता' और ज्ञापक, द्रष्टा होने से 'चेत्ता' और दाता, व्यापक, सर्वाश्रय और परम प्राप्य होने से 'पद' है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि ।
तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों द्वारा जलों को आकर्षण कर नीचे नहीं गिरने देता, उसी प्रकार समस्त व्यापक आकाशादि पदार्थों को नाश न होने देने वाले और स्वतः नित्य, अविनाशी सबके उत्पादक और प्रेरक सर्वैश्वर्यप्रद, सविता परमेश्वर की रक्षा के लिए ही तू स्तुति कर और हम उस जगदीश्वर के ही बनाये नित्य, नियत धर्मों से युक्त व्रतों, शुभ आचरणों और उसके नित्य गुण स्वभावों की कामना करें।

राजा के पक्ष मे—प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी तथा सूर्य के समान प्रजा से जल के समान कर ग्रहण करने और उसके ही हितों में इसको व्यय करने वाले राजा का गुण वर्णन करता हूँ। उसके ही बनाये धर्म नियमों को हम चाहें।

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

भ०—वास या जीवन निर्वाह करने योग्य विचित्र, अद्भुत, नाना प्रकार के ऐश्वर्य के विभाग करने वाले, कर्मानुसार सबको न्यायपूर्वक प्रदान करने वाले, सब मनुष्यों और जीवों के द्रष्टा, अन्तर्यामी, सबके उत्पादक और प्रेरक के समान सर्वद्रष्टा परमेश्वर और राजा की हम स्तुति करें, चाहें, अपना स्वामी स्वीकार करें।

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग परस्पर समान नाम और समान मान और शोभा को धारण करने हारे, सहृदय, परस्पर उपकारी मित्र होकर सब तरफ से आकर विराजो। जिससे सबका उत्पादक वह परमेश्वर ही स्तुति करने योग्य है। वही समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला

है। वही सूर्य के समान स्वयं शोभा को प्राप्त और अन्यों को भी शोभित करता है।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।
त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! अग्रणी राजन्! इस राष्ट्र में तू विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषों की विजय की कामना करने वाली अथवा तेजस्विनी राष्ट्र का पालन करने वाली सेनाओं और परिषदों को प्राप्त कर और सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापालक प्रजापति राजा को प्राप्त करा।

भौतिक अग्नि दिव्य पदार्थों, गुणों और व्यवहारों के पालन करने वाली शक्तियों को इस शिल्प कार्य में प्राप्त कराता और उत्पन्न करने या बनाने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने योग्य छेदन भेदन करने वाले शिल्पी को प्राप्त हो।

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्।
वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—हे अग्रणी राजन्! तू इस राष्ट्र में रक्षण कार्य के लिये गमन करने योग्य पृथिवियां, भूमियों और तीव्र गति वाली सेनाओं को अपने वश कर, सम्भाल। और हे न्यायकारिन्! विवेकिन्! हे अग्ने! बलशालिन्! शत्रुनाशक! तू सबके पालन पोषण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को वरण करने योग्य, सबको सुख देने वाली, आहुति के समान सर्ववशकारी, उत्तम वाणी, आज्ञा या राजप्रजा के धर्मों के उपदेश करने वाली वेद वाणी को भी प्रजा पालन के निमित्त धारण कर।

गृहस्थ-पक्ष में—अग्नि वरण योग्य स्त्री को गृहस्थ धर्म पालन के लिये विवाह करे। और कान्तिमती, वरण योग्य या स्वयंवरा, उत्तम सुखदायिनी, वीर्याहुति द्वारा आधान योग्य स्त्री को धारण करे।

गृहस्थ के पक्ष में—स्त्री पुरुषों के घृत वाले दूध आदि पदार्थों का विद्वान् जन गृहस्थ के स्थिर गृह में नाना प्रकारों से सेवन करते हैं।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू सुखप्रद, कांटों और दुःखप्रद शत्रुओं से रहित प्रजा के बसने योग्य हो। तू विस्तृत अवकाश और ऐश्वर्य से युक्त हमें शरण, सुख प्रदान कर।

स्त्रीपक्ष में—पृथिवी के समान विशाल हृदय और गुणों वाली एवं उसके समान बीज धारण में समर्थ ! स्त्री हृदयवेधक, संतापजनक दुर्गुण, दुर्वचनों से रहित घर बसाने वाली, सुखजनक हो। हमें विस्तृत, यशयुक्त सुख शरण प्रदान करे। ऋक्षरः—कण्टकः। ऋच्छते। निरु० ९। ३२।
इति षष्ठो वर्गः।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

भा०—जिस अनादि तत्व से व्यापक परमेश्वर पृथिवी से प्रारम्भ कर समस्त लोकों को धारण करने वाले सात पदार्थों सहित इन लोकों को रचता है विद्वान् गण अथवा प्रकृति के विकार पृथिवी आदि उस ही मूल कारण द्वारा हमारी रक्षा करें और उसका ज्ञान करावें।

राजा के पक्ष में—व्यापक सामर्थ्यवान् राजा पृथिवी से आदि लेकर सात धारण करने वाले तेजः सामर्थ्यों से युक्त होकर जिस कारण से पराक्रम करे उसी निमित्त विद्वान् राज्याधिकारी और सैनिक जन हमारी रक्षा करें। अर्थात् राजा के विजय और प्रजा की रक्षा का एक ही उद्देश्य है। पृथिवी आदि पांच भूत, परमाणु और प्रकृति ये सात धातु हैं। राष्ट्रपक्ष में स्वामी, अमात्य, सुहृत्, दुर्ग, राष्ट्र, कोष और बल ये सात प्रकृति हैं।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर इस प्रत्यक्ष और जानने योग्य जगत् को विविध रूप से रचता है और सबको तीन प्रकार से स्थिर करता है। इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओ से पूर्ण आकाश मे स्थापित करता हे। तीन प्रकार—एक प्रत्यक्ष प्रकाश रहित पृथिवीमय, दूसरा—अदृश्य कारण त्रसरेणु-रूप, तीसरा—प्रकाशमय सूर्यादि ।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

भा०—कभी विनाश को न प्राप्त होने वाला, जगत् का रक्षक, व्यापक परमेश्वर समस्त पदार्थों को इस मूल कारण से ही विविध रूपों मे बनाता है ।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

भा०—इस व्यापक परमेश्वर के किये सृष्टि आदि कर्मों को देखो जिसके अनुग्रह से जीव अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता है। वह परमेश्वर जीव का सर्वत्र साथ देने वाला मित्र है ।

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर के उस परम सर्वश्रेष्ठ पद, परम वेद्य स्वरूप को विद्वान् पुरुष आकाश मे खुले सर्वत्र विस्तृत, सर्व पदार्थों के दर्शक चक्षु, नेत्र वा सूर्य के समान स्वतःप्रकाश परम प्रमाण रूप से सदा देखते हैं ।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

भा०—व्यापक परमेश्वर का जो परम, सबसे उत्कृष्ट जानने योग्य स्वरूप है उसको नाना प्रकार से परमेश्वर की गुण की स्तुति करने वाले विद्वान् मेधावी, जागने वाले, प्रमाद रहित पुरुष भली प्रकार प्रकाशित करते हैं।

१७ से २१ तक पांचो मन्त्रो की अन्य पक्षो मे संगति साम, अथर्व और यजुर्वेद के भाष्यो मे देखें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[२३]

मेधातिथिः काण्व ऋषि ॥ देवता—१ वायुः। २, ३ इन्द्रवायू। ४—६ मित्रावरुणौ। ७—९ इन्द्रो मरुत्वान्। १०—१२ विश्वेदेवा.। १३—१५ पूषा। १६—२२ आपः। २३—२४ अग्नि (२३ आपश्च) ॥ १—१८ गायत्र्यः। १९ पुर उष्णिक्। २१ प्रतिष्ठा। २०, २२—२४ अनुष्टुभः। चतुर्विंशत्यृच सूक्तम् ॥

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे।
वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! ये उत्पन्न हुए नाना प्रकार की उत्तम कामना और आशाओं वाले उत्पन्न, तीव्र वेग से जाने वाले, देह से देहान्तर में गति करने वाले जीवगण हैं। तू आ, दर्शन दे और उन समस्त जीवों, प्रस्थान करने वाले, तेरी तरफ आने वाले, मुक्ति के अभिलाषियों को अपने भीतर, अपनी शरण में ले।

वीरों के पक्ष में—वे तीव्र वेग वाले अभिषिक्त, प्रोक्षित या दीक्षित वीर जन हैं, विजय के लिये प्रस्थित उनको तू प्राप्त हो और अपनी शरण में ले।

इसी प्रकार आचार्य दीक्षित कर तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों को लेवे।

वायुपक्ष में—उत्तम कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, तीक्ष्ण वेगवाले अस्थिर जलों को वायु पान करता है।

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—इन्द्र और वायु, अग्नि और पवन सुख के प्राप्त करने के लिये आकाश मे यान आदि को ले जाते हैं।

अध्यात्म मे—इस परमैश्वर्य के सुख को प्राप्त करने के लिये दिव्य गुण वाले जीव और परमेश्वर दोनो ज्ञान प्रकाश को प्राप्त हैं। उन दोनो की हम स्तुति करते हैं। उनका ज्ञान करते हैं।

इसी प्रकार राष्ट्र के पालन के लिये हम ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनो को नियत करते हैं।

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

भा०—मेधावी बुद्धिमान् पुरुष रक्षा, ज्ञान और तेज को प्राप्त करने के लिये सहस्रों ज्ञान साधनो से युक्त ज्ञानो और कर्मों के पालक विद्युत् और वायु के समान तेजस्वी और बलवान् मन के समान वेगवान् अथवा मन या ज्ञान से चलने हारे दोनो को प्राप्त करते है।

नाना दूत, सभासद् और प्रणिधि होने से सेनापति और राजा दोनो 'सहस्राक्ष' है। नाना क्रिया साधनो से युक्त विद्युत् और पवन भी 'सहस्राक्ष' है। छत्रि-न्याय से जीव और ईश्वर दोनों 'सहस्राक्ष' है।

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये।
जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार समाधिगत आनन्द-रस और स्वास्थ्य सुख को प्राप्त करने के लिये हम पवित्र मन और शरीर को रोग रहित करनेवाले बल से युक्त उत्पन्न होने वाले मित्र, प्राण और वरुण, अपान की साधना करते है।

उसी प्रकार राष्ट्र मे पवित्र कर्मकारी और दुष्ट पुरुषों के नाशक कण्टकशोधक सेना बल से युक्त राष्ट्र मे प्रकट होने वाले सबके स्नेही और दुःखों और कष्टो के वारण पुरुषों को राष्ट्र-ऐश्वर्य के भोग के लिये नियुक्त करें।

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—ज्योति, प्रकाश, तेज के पालक सूर्य और वायु वा सूर्य और मेघ के समान ज्ञान और तेज या जीवन को धारण करने वाले जो दो सत्य व्यवहार को बढ़ानेवाले, सत्य, वेद विज्ञान के प्रकाशक पालक हैं उन दोनों मित्र, सूर्य के तुल्य तेजस्वी ब्राह्मण वर्ग और वरुण, वायुवत् दुष्टों के वारक, सबसे वरण किये गये, क्षात्रवर्ग दोनों को राष्ट्र में नियुक्त करता हूँ ।

वायु-सूर्य पक्ष में—ऋत, जल और अन्न को बढ़ाने वाले ।

मेघ पक्ष में—ऋत, जल से उत्पन्न विद्युत् के पालक ।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥

भा०—बाह्य और शरीर के भीतर का वायु जिस प्रकार शरीर की अच्छी प्रकार से रक्षा करता है और सूर्य जिस प्रकार जगत् की रक्षा करता है उसी प्रकार से दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ राजा और स्नेहवान्, न्यायाधीश अच्छी प्रकार राजा का रक्षक और ज्ञानप्रद हो । और वे दोनों समस्त रक्षा साधनों और प्रकारों से हमें उत्तम ऐश्वर्ययुक्त करें ।

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम वैज्ञानिक पदार्थों के सुख भोग करने के लिये हम लोग वायुओं के स्वामी विद्युत् को ग्रहण करें । वह वायुगण के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर सबको तृप्त करे ।

प्रजा के पक्ष में—वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बलवान्, धीर पुरुषों के स्वामी शत्रुहन्ता, वीरपुरुष, राजा, सेनापति को नियुक्त करें । अपने सैनिकगणों, दस्तों के साथ एक समान वेग से जाने वाला वह सदा तृप्त, प्रसन्न रहे और राष्ट्र को भी पूर्ण करे ।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

भा०—राजा और सेनापति जिनमें सबसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ पद पर विराजता है, वे मरुद्गण, वीर पुरुष विजय की कामना करनेवाले, सबके पोषक, स्वामी द्वारा वेतनादि दान प्राप्त करने हारे सब मेरे स्तुति और आह्वान को श्रवण करें ।

वायुपक्ष में—सूर्य को प्रबल रूप में धारण करने वाले, सूर्य की शक्ति को प्राप्त करने वाले तेजोगुण से युक्त वायुगण ही मेरे शब्द को श्रवण कराते हैं ।

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

भा०—उत्तम जल और रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने वाले वायुगण जिस प्रकार विद्युत् के साथ बलपूर्वक मेघ को आघात करते हैं इसी प्रकार हे उत्तम वेतन, उपायन आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने कराने हारे ! आप लोग अपने साथी, सहयोगी, शत्रुहन्ता, सेनापति के साथ बलपूर्वक राष्ट्र को घेर लेने वाले या शक्ति में बढ़नेवाले शत्रु को मारो और हम पर दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने या बुरा शासन करने वाले, अथवा बुरी ख्याति वाले दुष्ट कभी स्वामी वा अधिकारी न रहें ।

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये ।
उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—हम लोग पदार्थों के उत्तम भोग के लिये समस्त दिव्य गुणों से युक्त, व्यवहार, व्यापारादि के साधक वायुगण का उपयोग करें । वे अन्तरिक्ष में उत्पन्न वायुगण वेगवान् होते हैं । इसी प्रकार ऐश्वर्यों के भोग के लिये समस्त विजयशील सैनिक वीरपुरुषों को हम आदर करें और वे आदित्य के समान समस्त प्रजाओं से साररूप कर को लेने वाले

राजा से बनाये गये अथवा पृथिवी माता से उत्पन्न होने हारे निश्चय से बड़े बलवान् हों ।

अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द रस पान के लिए समस्त प्राण-गण को हम वश करें । वे बडे बलवान् है । इति नवमो वर्गः ॥

जयंतामिव तन्यतुर्मरुतामिति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥

भा०—हे नायक वीर पुरुषो ! जब आप लोग सुखपूर्वक यात्रा करते हो तब शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले, दृढ, वेगवाले शत्रुहन्ता वीर सैनिकों का सा घोर शब्द उत्पन्न होता है । वायुओं के पक्ष में—वायुओं की वेगवाली विद्युत् दृढ रूप में विजयशील पुरुषों के घोर गर्जन के समान उत्पन्न हो, तब हे नायक विद्वान् पुरुषो ! जो भी सुखप्रद पदार्थ हो उनको प्राप्त करो ।

हस्काराद् विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।
मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

भा०—दिन का सा प्रकाश कर देनेवाली विशेष दीप्तिमान् सूर्य से उत्पन्न और इस विद्युत् से उत्पन्न वायुगण हमारी रक्षा करें । और वे हमें सुखी करें । वीर पुरुषों के पक्ष में—दीप्तिकारी सूर्य के समान तेजस्वी राजा के चारों ओर विद्यमान या उसके आश्रय जीने वाले धीर, वेग-सैनिक हमारी रक्षा करें और सुखी करें ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

भा०—हे सबके पोषक ! हे सब प्रकार से सब ओर दीप्ति तेज किरणों युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! पृथिवी-राष्ट्र ! जिस प्रकार खोये हुए पशु को खोजकर लाया जाता है उसी प्रकार ज्ञानवती राजसभा के आश्रय रूप विचित्र, अद्भुत वृद्धिशील कर्मों का ऐश्वर्यों और प्रजा-जनों से या लोकसमूह से युक्त तेजस्वी विद्वान् पुरुष को बड़े मान से प्राप्त कर ॥

पूषा राजा॑नमाघृ॑णिरप॑गूळ्हं गुहा॑ हि॒तम् ।
अवि॑न्दच्चि॒त्रब॑र्हिषम् ॥ १४ ॥

भा०—राजा और प्रजा दोनो को पोषण करनेवाली पृथिवी राष्ट्र, स्वतः सूर्य के समान ऐश्वर्य से तेजस्वी होकर अति गूढ़, बुद्धि कौशल में स्थित, प्रज्ञावान् अनेक अद्भुत लोक, प्रजा और पशु आदि ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष को राजा रूप से प्राप्त करे ।

परमेश्वर के पक्ष मे—सूर्य के समान सर्वपोषक परमेश्वर, बुद्धि मे स्थित, अति गूढ, अज्ञानियो से सुदूर, छिपे हुए, विचित्र कर्म सामर्थ्य वाले अति तेजस्वी गुणो से सुशोभित जीव-आत्मा को प्राप्त करता है ।

अथवा देह का पोपक जीव एवं अपनी बुद्धि मे स्थित अद्भुत सामर्थ्य वाले गूढ़ परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करे ।

उ॒तो स मह्य॒मिन्दु॑भि॒ः षड् यु॒क्ताँ अ॑नु॒सेषि॑धत् ।
गोभि॒र्यवं॒ न च॑र्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—और जिस प्रकार बैलो से किसान जौ आदि अन्न की खेती करता है और जिस प्रकार वह हल मे जुते बैलों को एक साथ एस दूसरे के पीछे चलाता है उसी प्रकार वह राजा ऐश्वर्यों द्वारा अपने पदों पर नियुक्त ६ अमात्यों को मुझ प्रजाजन के हित के लिए अपने अनुकूल चलावे । इसी प्रकार जीव सूर्य, मन, चक्षु आदि ६ इन्द्रियो को स्नेह-वर्धक राग प्राप्त रसों से अपने अनुकूल चलावे ।

सूर्य के पक्ष में छः ऋतु । इति दशमो वर्गः ॥

अ॒म्बयो॑ य॒न्त्यध्व॑भिर्जा॒मयो॑ अध्वरीय॒ताम् ।
पृ॒ञ्च॒तीर्मधु॑ना॒ पयः॑ ॥ १६ ॥

भा०—जीवन की रक्षा करनेवाली जलधारायें, शरीर मे रक्त या प्राण की धाराएँ भगिनियों या बन्धुओं के समान अपने अहिंसित जीवन को चाहनेवाले हम जीवों के मार्गों से मधुर गुण से युक्त पुष्टिकर रस को युक्त करती हुई गति करती हैं ।

प्रजापक्ष में—प्रजा का नाश न चाहने वाले प्रजापति राजाओं के बनाये मार्गों से एक दूसरे की रक्षक प्रजाएं बन्धु, भगिनियों के समान अन्न से राष्ट्र को पुष्ट करती रहें।

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

भा०—ये जो सूर्य के समीप या उसके प्रकाश में रहती हैं और जिनके साथ सूर्य और उसका प्रकाश रहता है वे हमारे सदा जीवित रहने योग्य जीवन या शरीर यज्ञ को तृप्त, पुष्ट करें। इसी प्रकार वे पुरुष जो सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन या उसके अति समीप हैं वे हम प्रजाजन को पुष्ट करें।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

भा०—जिन नदियों और नहरों के आश्रय हमारी गौवें जल-पान करती हैं या भूमियें सींची जाती हैं। हे विद्वान् पुरुषो! मैं उन गतिशील उत्तम गुणों वाले जलों को प्राप्त करूं। और उन ही बड़ी बहनेवाली नदियां, नहरों से अन्न को उत्पन्न करने का यत्न करो।

आप्त पुरुषों के पक्ष में—मैं उन आप्त पुरुषों को आदर से बुलाऊं जहां हमारी इन्द्रियां और वाणियां सुख प्राप्त करती हैं, उपदेश श्रवण करती हैं।

उन समुद्र के समान अगाध ज्ञान-सागरों से उपादेय ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिए यत्न करो।

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! जलों के भीतर मृत्युकारी रोग को निवारण करने वाला परम रस, जीवन रूप अमृत विद्यमान है और जलों में ही सब रोगों के दूर करने का बल भी है। और उत्तम गुण और बल

उन्नति के प्राप्त करने के लिये आप लोग उत्तम ज्ञान और बल युक्त होवो।

आप्तो के पक्ष मे—उनमे ही अमृत, आत्मज्ञान और उनमे ही रोगनाशक ज्ञान और उन्नति का मूल है। प्रजाओ में ही राजा और राष्ट्र का अमर जीवन, दोषों का उपाय और बलकारी गुण है। हे विजिगीषु राजाओ! उनके बल पर ही अश्व के समान बलवान् हो जाओ।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥११॥

भा०—सब ओषधियों मे उत्तम सोम नामक लता ही यह मुझे बतलाती है कि जलों के भीतर ही सब प्रकार के रोगो को दूर करने की सामर्थ्य है। और वह सोम ही जलो मे समस्त जगत् को सुख शान्ति देने वाले अग्नि को भी जलो के भीतर ही बतलाता है। और जलों को ही समस्त दुःखों के दूर करने का उपाय बतलाता है।

आप्तो के पक्ष मे स्पष्ट है। उनसे ही ज्ञान और उनसे ही सब रोग शान्ति के उपाय प्राप्त होते हैं, यह बात विद्वान् शिष्य बतलाता है।
इत्येकादशो वर्गः ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥

भा०—हे जलो! जल के समान शान्तिदायक और उससे उत्पन्न प्राणो और आप्त पुरुषो! आप लोग मेरे शरीर के हित के लिये और सूर्य के प्रकाश को चिरकाल, दीर्घ आयु तक देखते रहने के लिये रोग निवारण करने वाला, सर्वश्रेष्ठ औषध सेवन कराओ।

इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥

भा०—हे आपः, जलो! प्राणो! हे आप्त पुरुषो! मेरे मन और शरीर मे जो कुछ भी यह दुष्ट स्वभाव, दुष्ट इच्छा, वासना या उससे उत्पन्न पाप या मलिन अंश है उसको बहा डालो, धो दो, नष्ट करो।

और जो कुछ मैं किसी के प्रति द्रोह बुद्धि करूं और जो कुछ भी अनुचित, निन्द्य वचन कहूँ और जो कुछ भी असत्य वचन कहूँ उस सब को दूर करो।

आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥ २३ ॥

भा०—आज मैं रसयुक्त जलों मे नित्य विचरण करूं अर्थात् मैं नित्य स्नान करूं। और पुष्टिकारक, रोगनाशक, सारवान् भाग से संयुक्त होऊं। हे भौतिक अग्ने! तू भी पुष्टिकारी रस से युक्त होकर मुझको प्राप्त हो और मुझको भी पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से युक्त कर। इसीलिये उस मुझको तेज और बल से संयुक्त कर :

आप्तजनों के पक्ष मे—हे आप्त विद्वान् पुरुषो! मै शिष्य जन आज तक आप गुरुजनों की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास, धर्मानुष्ठान आदि व्रताचरण करता रहूं जो हम विद्या, वीर्य और बल से युक्त हों। हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! मैं दूध मात्र पर आहार करके व्रत वाला हूँ। तू हमे प्राप्त हो और मुझको ब्रह्मवर्चस् से युक्त कर।

सं मा॑ग्ने॒ वर्च॑सा सृज॒ सं प्र॒जया॒ समायु॑षा ।
वि॒द्युर्मे॑ अ॒स्य दे॒वा इन्द्रो॑ वि॒द्यात् स॒ह ऋषि॑भिः ॥२४॥१२॥५॥

भा०—हे अग्ने! परमेश्वर! आचार्य! तू प्रजा और दीर्घ जीवन से मुझे वर्चस्वी, प्रजावान् और दीर्घायु कर। इस मेरे तप, प्रजा और ब्रह्म-चर्य के शुभ कर्म को विद्वान् गण और परमेश्वर और आचार्य भी वेद-मन्त्रार्थ के वेत्ता गुरुजनों सहित जाने।

शरीर त्यागने पर मानस अग्नि से जीव नये शरीर को धारण करता है और उसे प्रकाशित करता है। जीवों के पाप पुण्य की व्यवस्था को ऋषि, योगी, विद्वान् जानते हैं। परमेश्वर कर्मानुसार जीवों को शरीर धारण कराने की व्यवस्था करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[२४]

शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः। देवता—१ कः (प्रजापतिः)। २ अग्निः। ३—५ सविता भगो वा। ६—१५ वरुणः॥ छन्दः—१, २, ६—१५ त्रिष्टुभ। ३—५ गायत्र्यः। ३ पिपीलिकामध्या निचृद्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥१॥

भा०—मरण रहित, मुक्तात्माओं के परम सुखदायक कौन से सबसे अधिक सुखमय प्रजा पालक के अति उत्तम नाम को जानें, स्मरण करें, चिन्तन और मनन करें। हम मुक्ति मे सुख ही सुख के भोगने हारे जीवों को भी वह कौन प्रजापति परमेश्वर बड़ी भारी अखण्ड पृथिवी वा प्रकृति के ऐश्वर्यों को भोगने के लिये बार प्रदान करता है, भेजता है, जिससे मैं जीव बालक पिता और जननी माता का दर्शन करता हूँ।

अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च॥२॥

भा०—हम सब जीव गण मरण से रहित, मुक्त, अविनाशी जीवों के बीच मे सबसे प्रथम, आदितम, मुख्यतम, सर्वश्रेष्ठ सब सुखो के दाता, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के ही प्राप्त करने योग्य, आचरण योग्य, मनोहर नाम को चिन्तन करते है, वह हमे अखण्ड पृथिवी वा प्रकृति के भोग के लिये पुनः अवसर देता है जिससे मैं पिता और माता के भी दर्शन करता हूं।

अ॒भि त्वा॑ देव सवित॒रीशा॑नं॒ वार्या॑णाम्।
सदा॑वन् भा॒गमी॑महे॥३॥

भा०—हे सबके उत्पादक! हे सब सुखो के दाता और सब पदार्थों के सूर्य के समान दर्शक! हे सबके सदा रक्षा करनेहारे! वरण करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, भजन और सेवा करने योग्य, आश्रय योग्य तुझसे ही हम याचना करें।

यच्चिद्धि ते इत्था भगः शशमानः पुरा निदः ।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर, जो भी सेवन करने योग्य, कल्याणकारी ऐश्वर्य तेरा पूर्वकाल से ही स्तुति किया जा सकता है, वह निन्दित पुरुष से लेकर, मै द्वेषरहित होकर, हाथों मे धारण करता हूँ, देता हूँ। अथवा निन्दक पुरुष के प्राप्त होने से पूर्व ही मैं ग्रहण करूं।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा ।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ऐश्वर्य के विभाग करने वाले तेरे ही हम रक्षण, पालन और ज्ञान सामर्थ्य से उन्नत, उत्कृष्ट पद को प्राप्त करें। और हम ऐश्वर्य के शिरोभाग, सर्वोच्च आदर प्रतिष्ठा के पद को प्राप्त करने मे समर्थ हो।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! ये पूर्व से पश्चिम आदि दिशाओ मे जाने वाले पक्षिगण और उनके समान सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि बड़े बड़े लोक और ज्ञानैश्वर्य वाले विमानधारी भी तेरे रक्षण सामर्थ्य और बल को नहीं पा सकते। और वे न तेरे शत्रु को पराजय करने और सबको वश करने के अपार बल को प्राप्त कर सकते है। वे न तेरे क्रोध या मनन सामर्थ्य या ज्ञानशक्ति को ही पा सकते है। और विना झपक लिए, एक क्षण भी विश्राम न लेकर चलने वाली ये जल, नदी तथा अप्रमाद होकर धर्माचरण करने वाले ये आप्त जन भी तेरे बल, सामर्थ्य और ज्ञान को नहीं पा सकते। और जो वायु के तीव्र वेग हैं वे भी तेरे सामर्थ्य या महान् सत्ता को मानने से इनकार या निषेध नहीं कर सकते।

अथवा—जो वायु के भी वेग को नाश करते है अर्थात् जो वायु के तीव्र वेग की भी उपेक्षा कर देते हैं ऐसे पर्वत, महावृक्ष आदि पदार्थ

तेरे बल वीर्य और क्रोध को नहीं पा सकते। वे बहुत अल्पबल हैं।

अथवा—जो वायु के बल को माप सकते है वे भी तेरे बल वीर्य को थाह नहीं पाते।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः॥७॥

भा०—प्रकाशमान, तेजोमय, सर्वश्रेष्ठ रवयं स्वच्छ, पवित्र और पावनकारी तेजोबल से युक्त होकर सेवन करने योग्य, एव विभक्त करके सर्वत्र पहुचने योग्य तेज के समूह को सबके ऊपर मूल रहित या बन्धन रहित आकाश मे धारण करता है। और वे सब किरणें नीचे, इस भूमि पर आकर पडती है। इन सबका बाधनेवाला, सबका केन्द्र ऊपर है। और वही किरणें हमारे भीतर भी विद्यमान है। इसी प्रकार सब दुःख बन्धनो से रहित मोक्ष मे प्रकाशस्वरूप वरुण, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, पवित्र ज्ञान और बल से युक्त सबसे ऊपर ज्ञान समूह वेदराशि को धारण करता है। वे इस लोक मे सूर्य की किरणो के समान प्राप्त है, परन्तु इन सबका मूल ऊपर ही है। वे ही ज्ञानराशिये हमारे भीतर भी विद्यमान हो। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार सब प्रकाशो का केन्द्र सर्वोपरि है उसी प्रकार ज्ञानो का प्रधान केन्द्र परमेश्वर सर्वोपरि है।

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्॥ ८ ॥

भा०—जो सर्वत्र प्रकाशमान, प्रकाशस्वरूप सर्वश्रेष्ठ, राजा के समान वरुण परमेश्वर सब दु खो का वारण करने हारा होकर सूर्य के प्रतिदिन और प्रति सवत्सर पुन. पुन· नियम से अनुसरण करने के लिए विशाल मार्ग को बना देता हे और अगम्य आकाश मे भी किरणो के प्रत्येक पदार्थ तक पहुचने के लिए अवकाश को बनाता है वह ही हृदय अर्थात् मर्म को शस्त्रों और दुःखदायी वचनो से वेधने वाले कटुभाषी-

पुरुष का भी निराकरण करनेवाला हो। अथवा हृदयवेधी के समान निन्दक पुरुष का भी दमन करता है।

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥

भा०—हे राजन्! प्रकाशमान परमेश्वर! तेरे सैकड़ों और हजारों रोग और बाधक शत्रुओं के निवारण करने वाले औषधों और वैद्यों के समान उपाय हैं। अथवा तुझ वैद्य के समान सर्व कष्ट-निवारक परमेश्वर के बनाये सैकड़ा और हजारों उपाय कष्टों से बचने के हैं। तेरी ही यह गम्भीर, अगाध पृथिवी है, तेरी ही शुभ कल्याणकारी मति सदा रहे। अथवा तेरा विशाल और गम्भीर उत्तम ज्ञान हमें प्राप्त हो। तू पाप प्रवृत्ति और दुःखदायी कष्ट करनेवाली शत्रुसेना को दूर ही से पीड़ित कर। किये हुए अपराध को भी हमसे परे हटा।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥

भा०—जो ये नक्षत्रगण ऊपर आकाश मे निश्चल रूप मे स्थापित हैं, जो रात के समय तो दिखलाई देते हैं और दिन के समय कहीं चले जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं और विशेष प्रकाश से चमकता हुआ चन्द्र रात के समय आ जाता है, यह सब उस सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के नियम कभी नष्ट नहीं होते।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११ ॥

भा०—हे सब दुःखों के वारक, सबसे वरण करने योग्य, एवं सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! उपासना करनेवाला पुरुष उत्तम स्तुति-वचनों से उन उन अभिलाषा योग्य पदार्थों की कामना करता है। उन उन पदार्थों की ही मैं भी वेद द्वारा तेरी स्तुति करता हुआ तुझसे याचना करता हूँ। हे बहुत मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, अतिस्तुत्य! तू हमारा अनादर और

तिरस्कार न करता हुआ इस संसार मे हमारा अभिप्राय जान और हमे ज्ञान प्रदान कर और हमारी आयु को मत नष्ट कर ।

राजा के पक्ष मे—कर देनेवाला प्रजाजन नाना कर, अन्न आदि देकर नाना प्रकार की आशाएं करता है । मै भी वेदोक्त वचनो से तेरे गुणो का वर्णन करता हुआ उसी आशागत फल को चाहता हूँ । तू प्रजा का अनादर न करता हुआ प्रजा के कर्त्तव्यो को जान और मुझ प्रजाजन की आयु को नष्ट मत कर ।

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु॥१२

भा०—विद्वान् पुरुष, माता पिता, आचार्य गण और चारो वेद रात्रि को उस परम ज्ञान का ही मुझे उपदेश करें । और वे ही विद्वान् जन और वेद मन्त्र मुझे दिन के समय भी उसी परमसुख प्राप्ति कराने वाले ज्ञान का उपदेश करें । यह वेदज्ञान हृदय को सब प्रकार से प्रकाशित करता है । सुखार्थी और उत्तम विद्वान् बन्धन मे बध कर जिस परमेश्वर को पुकारता है, स्मरण करता है वह सब मे प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, परमेश्वर हम बद्ध जीवो को अन्धकार से सूर्य के समान अज्ञानमय बंधनों से मुक्त करे ।

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः । अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

भा०—तीन खूंटो मे बंधे हुए पशु के समान प्रकृति के तीन गुणो मे आन फसा और जकडा हुआ यह सुखार्थी, मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, एव सबको अपनी शरण में लेने हारे परमेश्वर को पुकारता है । और प्रकाशस्वरूप, वह सर्वोपरि वरुण, सर्वश्रेष्ठ, कभी भी नाश न होने वाला, नित्य, ज्ञानवान्, परमेश्वर उस जिज्ञासु को बंधनों से छुडादे और वही सब पाशों को नाना प्रकार से दूर करे ।

अवं ते हेळो वरुण नमोभिरवं यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि॥१४॥

भा०—हे सर्वो मे वरणीय, दुःखवारक परमेश्वर ! हम तेरे प्रति अनादर, अवज्ञा और उपेक्षा द्वारा किये अपराध को नमस्कारों, देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को देकर और दान, उपासना आदि कर्मों से दूर करते हैं। हे उत्कृष्ट ज्ञान वाले हे राजा के समान तेजस्विन्! हृदय और संसार भर के राजन्! हे सबके प्राणों में रमने, प्राणों के देने और दुःखों के उखाड फेंकने वाले! तू हमारे किये कर्मों का भोग द्वारा क्षय कराता हुआ, तप द्वारा सब पाप कर्मों को भी शिथिल कर दे ।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू उत्तम कोटि के सात्विक बन्धन को उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और निकृष्ट, तामस बन्धन को नीचे की जीवयोनियों में भेज कर शिथिल करता है। और मध्यम श्रेणी के पाश को विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है। उन सब भोगों के अनन्तर, हे शरण में लेने हारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक ! हम तेरे दिखाये कर्त्तव्य कर्म में चल कर अखण्ड सुख, मोक्ष के प्राप्त करने के लिये निष्पाप, स्वच्छ हो जाते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[२५]

शुन शेप आजीगर्तिर्ऋषि ॥ वरुणो देवता ॥ गायत्र्य । १४, १७, ८ पिपीलिका मध्यनिचृद् । ६, १६, २० निचृत् । १० एकोना विराड । ११ विराड ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—हे सबके वरने योग्य राजा के समान ! हे सर्वसुखप्रद ! सर्वप्रकाशक ! परमेश्वर ! प्रजाएं जिस प्रकार दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ नियम-भङ्ग आदि अपराध किया ही करती हैं उसी प्रकार जो कुछ भी कभी हम किसी कर्त्तव्य को दिन प्रतिदिन तोडा करते हैं । परन्तु तू—

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ळा॒नस्य॑ रीरधः ।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥

भा०—हे वरुण ! राजन् ! हे परमेश्वर ! अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिये हमे मत प्रेरित कर । और इसी प्रकार क्रोध के निमित्त स्वयं लज्जा अनुभव करने वाले को दण्ड देने के लिये भी मत उकसा ।

वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न सन्दि॑तम् ।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! रथ का स्वामी बल से खण्डित, थके, हारे हुए घोडे को जिस प्रकार नाना प्रकार की मन बधाने वाली, पुचकार वाली वाणियों से उसको अपने वश करता है उसी प्रकार हम भी सुख प्राप्त करने के लिये तेरे हृदय या ज्ञान को स्तुति-वाणियों द्वारा बाधते हैं ।

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑ इष्टये ।
वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥

भा०—पक्षिगण जिस प्रकार अपने रहने की जगहों के प्रति उड जाते हैं उसी प्रकार हे वरुण ! राजन् ! मेरी विविध प्रकार की बुद्धियां सबसे श्रेष्ठ वसु, सबको वास देने हारे, सबके शरणरूप तुझको प्राप्त करने के लिये निश्चय तेरे समीप तक उडती, तुम तक पहुचती है ।

अथवा—पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिये दूर २ चले जाते है इसी प्रकार विशेष ज्ञानवान् पुरुष अति अधिक धन प्राप्ति के लिये दूर २ देशों तक जावें ।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।
मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—सुख प्राप्त करने के लिये हम लोग सबके नायक, अपने आप चुने गये राजा के समान सब कष्टों के वारक, बहुत प्रकार के ज्ञानों और प्रजाजनों के द्रष्टा पुरुष को हम लोग कब समस्त बलों का आश्रय, राजा रूप से बनावें अर्थात् सदा ही हम अध्यक्ष नायक पुरुष को अपना राजा बनावें । इति षोडशो वर्गः ॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।
धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—समस्त व्रतों, नियमों, कर्त्तव्यों की बागडोर को धारण कराने वाले दानशील स्वामी को प्रसन्न करने के लिये उसकी अभिलाषा के अनुसार वाद्य वादन और गान करने वाले गायक, वादक जिस प्रकार उसके अभिलषित गान वाद्य को दोनों समान रूप से प्रयोग करते है और सबको प्रसन्न करते है। उसी प्रकार समस्त संसार की नियम व्यवस्थाओं को धारण करने वाले सर्व सुखों के दाता परमेश्वर की कामना करने वाले साधक और जिज्ञासु जन उसके वचन को समान रूप से प्राप्त करें और सबको प्रसन्न करें ।

अथवा—राजा के दो भृत्य जिस प्रकार समान रूप से पद को प्राप्त करते, उसकी कामना करते नहीं प्रमाद करते, उसी प्रकार सब नियम व्यवस्थाओं के धारण करने वाले, सबके दाता, स्वामी, परमेश्वर के बनाये नियम को सूर्य और वायु भी समान रूप से व्यापते हैं और वे कभी प्रमाद नहीं करते ।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥

भा०—जो परमेश्वर और राजा अन्तरिक्ष, आकाश मार्ग से जाने वाले पक्षियों और विमानों के भी गन्तव्य मार्ग को जानता है समुद्र में

चलने वाली महान् आकाश में विद्यमान, बड़े २ सूर्य आदि लोकों या समुद्रगामी नौकाओं, जहाजों को भी जानता है वही परमेश्वर और राजा सेवनीय है।

वेद॒ मासो॑ धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः ।
वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥

भा०—जो परमेश्वर या विद्वान् सब नियमव्यवस्थाओं और धर्मों को धारण करने वाले सूर्य के समान नाना उत्पन्न प्रजाओं के स्वामी बारहों मासों को जानता है। और बाद में जो १३ वां मास होता है उसको भी जानता है वह सबको सुख देता है। उसी प्रकार राजा १२ प्रजा-पालक राजाओं को जानता है और जो उस १३ वें विजिगीषु को, जो सब में प्रबल हो जाता है उसको भी जानता है वही प्रजा को 'वरुण' पद पर चुनने योग्य है।

वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः ।
वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥

भा०—परमेश्वर बड़े बलवान् सर्वत्र गतिशील, दर्शनीय, वायु के मार्ग को जानता है, और जो सूर्यादि लोक, नाना पदार्थों पर अधिष्ठाता, शासक रूप से विराजते हैं उनको भी जानता है।

विद्वान् वायु के मार्ग और सूर्यादि शासक पदार्थों को जाने। राजा वायु के समान प्रबल सेनापति या शत्रु राजा के मार्गों और शासकों की चालों को भी जाने।

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॒॑स्वा ।
साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतुः॑ ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—सदाचार और राज्य-नियमों को धारण करने वाला राजा एवं संसार के सृष्टि नियम और धर्मों को धारण या स्थापन करने वाला सर्वश्रेष्ठ, पुरुषोत्तम गृहों में बसने वाली प्रजाओं में महान् साम्राज्य की

व्यवस्था के लिये उत्तम कर्म और प्रजा से युक्त होकर विराजे। इति सप्तदशो वर्गः।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा॥ ११॥

भा०—इसी कारण ज्ञानवान् पुरुष समस्त आश्चर्यजनक, अभूत-पूर्व, जो पहले कभी देखे, सुने या किये भी न गये हों ऐसे किये कर्मों और जो काम भविष्य में करने को हैं उन सबको देखता है। सब पर दृष्टि रखता है।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ १२॥

भा०—उत्तम ज्ञान और कर्मों का करने वाला सूर्य के समान तेजस्वी वह ज्ञानवान् परमेश्वर, विद्वान् और राजा सदा, सब दिनों उत्तम मार्ग से हमें संचालित करे और हमारे जीवनों को बढ़ावे, उनको सफल करे।

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परि स्पशो नि षेदिरे॥ १३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सुवर्ण के समान उज्ज्वल ज्योतिर्मय बाह्य स्वरूप को धारण करता है और शुद्ध प्रकाश को वस्त्र के समान धारण करता है। और प्रकाश की किरणें उसके चारों ओर विराजती हैं, उसी प्रकार राजा भी सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवच को धारण करता हुआ और सदा शोधन, न्याय, विवेक करने वाले आसन पर विराजता है या अति शुद्ध वस्त्रों को धारण करता है सत्यासत्य को देखनेवाले स्पर्श, उसके अधीन दूत, प्रणिधि और विद्वान पुरुष उसके गिर्द विराजते हैं। इस प्रकार परमेश्वर तेजोमयरूप को धारता और शुद्ध सत्य तत्व को ग्रहण करता है और स्पर्श करनेवाले या दर्शी सब सूर्यादि दिव्य पदार्थ उसी के आश्रय पर विराजते हैं।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

भा०—जिस दानशील परमेश्वर और विजिगीषु राजा को हिंसाशील पुरुष मारना भी नहीं चाहते अर्थात् उससे मारने का संकल्प तक भी नहीं कर सकते और जन्तु और सब मनुष्यों के द्रोहकारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको अभिमानी शत्रुगण भी परास्त नहीं कर सकते, वही परमेश्वर और राजा न्यायकारी पद पर स्थित 'वरुण' है ।

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—और जो परमेश्वर, सूर्य और मेघ समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त पूर्णरूप से यश, अन्न प्रदान करता है और हमारे पेटों को भरने के लिए अन्न सर्वत्र पैदा करता है वह 'वरुण' है ।

उसी प्रकार जो राजा समस्त मनुष्यों में अपने यश, कीर्ति को विस्तृत करता और सब मनुष्यों और हम प्रजाजन के उदरों की क्षुधा शान्ति के लिए सर्वत्र भूगोल पर अन्न उत्पन्न कराता है वह राजा 'वरुण' है । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

भा०—गौओं के जाने के स्थान, बाड़े में जिस प्रकार गौएं जाती हैं उसी प्रकार समस्त विशाल लोकों के द्रष्टा, सूर्य के समान दर्शनीय, तेजोमय उस परमेश्वर को चाहती हुई मेरी बुद्धियां और चेष्टाएं दूर तक उसी को लक्ष्य करके चलती चली जाती हैं और मुमुक्षु के सब मनन और कर्म प्रयत्न उसी परमेश्वर के लिए हैं ।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥

भा०—क्योंकि मुझे अति प्रिय ज्ञानरस विद्वानों से प्राप्त हुआ है। और हे शिष्य ! तू उस प्रिय, तृप्तिकर ज्ञानराशि को यज्ञकर्त्ता विद्वान् के समान ही अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए प्राप्त करता है इसलिए हम दोनों भली प्रकार उस ज्ञान को परस्पर वचन-प्रतिवचन द्वारा उपदेश दें और ग्रहण करें।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

भा०—इस पृथ्वी पर सबके दर्शनीय, रथ पर चढे, महारथी, महाराजा या सूर्य के समान तेजस्वी परम रसस्वरूप, आनन्दमय परमेश्वर को पुनः पुनः दर्शन करने के लिए मेरी इन वेदवाणियों को सेवन करो। इनका श्रवण, मनन, अभ्यास करो।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! राजन् ! मेरे इस स्तुति वचन, पुकार, स्मरण को आज श्रवण कर और आज दिन, अब सदा तू ही मुझे सुखी कर। मैं रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होकर तेरी स्तुति करता हूं।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

भा०—हे मेधाविन् ! विद्वन् ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू आकाश और पृथिवी के ऊपर राजा और सूर्य के समान प्रकाशित होता है और वह तू प्रति पहर प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण करता है।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! हमारे उत्तम श्रेणी के सात्विक बन्धन को उन्मुक्त कर, उत्तम रीति से, उत्तम फलों के भोग द्वारा छुड़ा।

और बीच की श्रेणी के बन्धन को विविध उत्तम अधम योनि में मिले कर्म फलो के भोग द्वारा काट और निकृष्ट कोटि के पाशो को भी जीवन को सुखप्रद करने के लिये नीच योनियो मे भोग भुगा कर काट । इसी प्रकार राजा भी तीनों प्रकार के अपराधियों को तीन प्रकार की कैद आदि मे रखकर उनको दोषों से दूर रक्खे ॥ इत्येकोनविंशो वर्ग. ॥

[२६]

शुन शेप आजीगर्तिर्ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्र्य । १, ८, ९ एकोना विराट् । २—६ निचृद् । ३ प्रतिष्ठा । ५, ७ विराट् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥

भा०—हे पवित्र यज्ञ के योग्य विद्वन्! हे प्रजापति पद के योग्य राजन्! हे सत्सग उपासना करने योग्य परमेश्वर! हे यज्ञ अग्नि द्वारा हव्य पदार्थों को प्रक्षेप करने हारे ऋत्विग्! और हे अन्नो, बलो, पराक्रमों और समस्त परम रसो के परिपालक! तू आदित्य जिस प्रकार आच्छादक, सबके तेजों को दबा लेने हारे प्रकाशो को धारण करता है उसी प्रकार भव्य वस्त्रों को धारण कर, पहन। और वह तू हमारे इस हिंसारहित यज्ञ, प्रजापालन रूप कर्म कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर! तू सबको आच्छादन करने हारे वस्त्र त्वचा आदि प्रदान करता है। वह तू हमारे आत्मा को 'अध्वर' अर्थात् हिंसारहित जीवन प्रदान कर।

नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः ।
अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥

भा०—हे बलशालिन्! हे अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! तू हमें समस्त सुखप्रद पदार्थों और ज्ञानो के देने हारा, उत्तम पद और कार्य के लिए वरण करने योग्य श्रेष्ठ मनन करने योग्य ज्ञातव्य गुणों से युक्त होकर प्रकाश और ज्ञान को अधिक

बढ़ाने वाले उत्तम गुण या तेज से युक्त होकर हमें वाणी, वेदवाणी और उत्तम आज्ञा का उपदेश कर। अथवा हे परमेश्वर हमे ज्ञान के वर्धक वचन, वाणीमय उपदेश से युक्त कर। इन मन्त्र में विद्वान् ज्ञानी पुरुष को ही यज्ञ के लिए भी होता वरण करना चाहिए, यह भाव स्पष्ट है।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार पालक पिता पुत्र को अपना सर्वस्व देता है और आप्त विद्वान् या बन्धु आप्त शिष्य या बन्धु को अपना ज्ञान और धन प्रदान करता है और मित्र अपना प्रेम और धन को प्रदान करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! राजन्! तू भी हमें हमारे पिता, बन्धु और मित्र होकर मुझ पुत्र, बन्धु और मित्र के लिए वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ होकर सब कुछ प्रदान करता है।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्। गी० ११।४४॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। गी० ११।४३॥

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
सीदन्तु मनुषो यथा॥ ४॥

भा०—हमारे यज्ञ मे जिस प्रकार मननशील, बुद्धिमान्, ज्ञानी पुरुष आकर बैठें उसी प्रकार हमारे सुखप्रद उत्तम अधिकारासन पर शास्य प्रजाजन के ऊपर प्रजापालन के कार्य पर भी हिंसक दुष्ट पुरुषों के नाशक दुःखों का वारक श्रेष्ठ पुरुष, सबका स्नेही और न्यायाधीश पुरुष भी विराजें।

पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च।
इमा उ षु श्रुधी गिरः॥ ५॥ २०॥

भा०—हे पूर्व के विद्वान् पुरुषों द्वारा सत्कार पानेहारे! उन द्वारा उच्चासन पर स्थापित! हे अधिकारों और प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य सुखों

के देने हारे! तू इस मित्रता और बन्धुता के कारण सदा खूब प्रसन्न, हर्षित हो और इन वाणियो, स्तुतियो को श्रवण कर और हे विद्वन्! इन वेदवाणियो को श्रवण करा। इति विंशो वर्ग॰ ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।
त्वे इद् धूयते हविः ॥ ६ ॥

भा०—और जब जब भी अति विस्तृत, अनादि सिद्ध वेदज्ञान से किसी भी दिव्य पदार्थ या ज्ञानद्रष्टा, तत्व प्रकाशक विद्वान् को आदर सत्कार करते हैं, तब तब भी उस तुझ मे ही हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! अग्नि मे डाली आहुति के समान तेरे मे ही वह ग्रहण करने योग्य या देने योग्य आदर, सत्कार, स्तुति वचन, प्रेम आदि प्रदान किया जाता है। अर्थात् विद्वानो, सत्पुरुषो का आदर सत्कार आदि भी परमेश्वर की ही पूजा करना है।

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति। स्फुट।

पृथिव्यादि पदार्थों मे विशेष गुण लाने के लिए भी अग्नि मे ही आहुति दी जाती है और सब श्रेष्ठ कार्य करते समय भी परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है।

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

भा०—सुखों, ऐश्वर्यों के देने वाला वरण करने योग्य, चुन लेने योग्य, सदा स्वय प्रसन्न, सबको प्रसन्न करने हारा, स्तुति योग्य, अति सुखभाव प्रजाओं का पालक, स्वामी, राजा हमारा प्रिय, प्रीतिपात्र हो। और अग्निहोत्र या यज्ञ मे श्रेष्ट होता से जिस प्रकार हम उत्तम यज्ञाग्नि युक्त होकर सब बन्धु-बान्धवों के प्रिय हो जाते है उसी प्रकार पूर्वोक्त राजा से ही हम सब प्रजाजन भी उत्तम अग्नि के समान तेजस्वी, शत्रु-संतापक, ज्ञान, बलप्रद राजारूप अग्नि से युक्त होकर सबके प्रेमपात्र और परस्पर प्रीतियुक्त हों।

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः।
स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

भा०—उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को धारण करने वाले सूर्य के किरण जिस प्रकार अति सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त हुए जल को धारण करते हैं और जिस प्रकार उत्तम अग्नि से युक्त होकर पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ वरण करने योग्य श्रेष्ठ जन, सुवर्ण रत्नादि को धारण करते हैं उसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् और शत्रुसन्तापक, प्रतापी राजा-स्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त होकर विजिगीषु, वीर पुरुष और करादि देने वाले व्यवहारी प्रजागण हमारे वरण करने योग्य धनैश्वर्य को धारण करते और उसका उपयोग करते हैं। और हम लोग उत्तम अग्रणी नायक, विद्वान् और परमेश्वर और यज्ञाग्नि को भली प्रकार धारण करके ही उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

भा०—हे कभी न मरने वाले चिरायुष ! दीर्घजीवन ! आयुष्मन् ! और मूर्ख और पण्डित दोनों पक्षों के मरणधर्मा, वीर पुरुषों के परस्पर उत्तम प्रवचन हों।

राजा के पक्ष में—हे वीर नेतः ! निज और शत्रु दोनों पक्षों के वीर मर्दों में परस्पर खूब शस्त्रप्रहार, कटाकटी हो।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—हे पर सेना को दमन करने में समर्थ बल के द्वारा उत्पन्न या प्रसव अर्थात् अभिषेक द्वारा बनाये गये सेनापते ! राजन् ! हे अग्रणी ! प्रतापिन् ! तू समस्त सेनानायकों सहित हमारे इस यज्ञ, प्रजापतिपद, सुसंगत सुप्रबद्ध राष्ट्र को इस वचन, आज्ञा प्रदान के कार्य, स्तुति या प्रजाशासन करने योग्य धर्मशास्त्र को और समस्त अन्न, पूजा और सत्कार को धारण कर और प्रदान कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[२७]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता —१—१२ अग्निः । १३ विश्वे देवा । छन्दः— १—१२ गायत्र्यः (३ एकोना पिपीलिकामध्या विराड् । ५, ७ निचृद्) १३ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

भा०—हिंसादि दोषों से रहित यज्ञों, प्रजापालन के उत्तम कार्यों में प्रकाशित, यशस्वी होनेवाले तेजस्वी, प्रतापी, अश्व के समान पूंछ के बालों के समान बाधक शत्रुओं के वारण करने वाले सेनादि साधनों से सम्पन्न तुझ नायक अग्रणी पुरुष को आदरपूर्वक नमस्कारों और अन्न आदि भोग्य पदार्थों से स्तुति करने के लिए हम सदा तैयार हैं, परमेश्वर दुःखों के वारक साधनों से 'वीरवान्' है। अहिंसित, कभी नाश न होने वाले सृष्टि नियमों में और अविनाशी आकाशादि पदार्थों में प्रकाशित होने से अध्वरों का सम्राट् है। वह व्यापक होने से 'अश्व' है। उसकी नमस्कारों द्वारा हम वन्दना करें।

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

भा०—वह निश्चय से बल से, बलपूर्वक रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़नेवाला, प्रजा को उत्तम सुख देने हारा मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि वर्षानेहारा, वीर्यवान् पुरुष हमारे बीच में हमारा प्रेरक, आज्ञापक, अभिषेक युक्त राजा हो।

अग्नि-पक्ष में—बल से प्रेरित करने वाला, बड़े यान से जाने वाला, उत्तम सुखदायक बलवान् हो।

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद् विश्वायुः ॥ ३ ॥

भा०—वह तू समस्त विश्व में व्यापक परमेश्वर और समस्त प्रजाओं

का जीवनप्रद राजा या सभापति हमें पापकर्म, हत्या आदि करना चाहने वाले दुष्ट पुरुष से सदा ही दूर से और समीप से भी रक्षा कर।

इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।
अग्ने देवेषु प्र वोचः॥ ४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू हमें समस्त सुख प्रदान करने वाले, उपदेश करने और गान करने वाले का त्राण या रक्षा करने वाले, सदा नये नये ज्ञानों को विद्वानों, अग्नि आदि ऋषियों और ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों में उपदेश करता है।

राजा के पक्ष में—राजा सुखप्रद, पृथिवी के शासन सम्बन्धी अति उत्तम आज्ञा हमारे हित के लिए करे।

आ नो भज पर्मेष्वा वाजेषु मध्यमेषु।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य॥ ५॥ २२॥

भा०—हे परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू हमें परम उत्कृष्ट कोटि के संग्रामों या ऐश्वर्यों में और मध्यम कोटि के ऐश्वर्यों या युद्धों में और अति समीपतम, तृतीय कोटि के ऐश्वर्यों को भी प्राप्त करा और दे। तीनों लोकों के ऐश्वर्य को हमें प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि॥ ६॥

भा०—हे चित्र विचित्र, नाना रंगों की किरणों वाले सूर्य के समान विद्वन्! राजन्! जिस प्रकार सूर्य समुद्र के तरंग के उठने पर समीप ही जलों को जल-कणों के रूप में विभक्त कर देता है और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षारूप में बरसा देता है उसी प्रकार हे नाना विद्याओं और तेजों, पराक्रमों से युक्त विद्वन्! परमेश्वर! राजन्! तू वेग से जाने वाले, तरंग के समान उमड़ने वाले अपार ऐश्वर्य और ज्ञान राशि को सब में विभक्त कर देता है। आत्म-समर्पण के हित के लिये शीघ्र ही मेघ के समान वर्षा देता है।

यम॑ग्ने पृत्सु मर्त्य॒मवा॒ वाजे॑षु॒ यं जु॒नाः ।
स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! अग्ने ! विद्वन् ! प्रतापी राजन् ! जिस मनुष्य को तू सेनाओं के बीच में से बचाता या अधिक तेजस्वी बनाता है और संग्रामों के बीच में जिसको प्रेरित करता है, आगे बढ़ाता है वह ही निरन्तर स्थिर रहनेवाली कामना योग्य प्रजाओं और आज्ञा पर चलने वाली सेनाओं का नियन्ता, व्यवस्थापक राजा और सेनापति होने योग्य होता है।

नकि॑रस्य सहन्त्य पर्ये॒ता कय॑स्य चित् ।
वाजो॑ अस्ति श्र॒वाय्यः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे सहनशील ! विद्वन् ! इस ज्ञानवान्, युद्ध विद्या कुशल, पराक्रमी सेनापति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है। और इसका बल, वीर्य, ऐश्वर्य और वेग भी जगत्-प्रसिद्ध, कहने सुनने योग्य, एवं स्तुत्य, आश्चर्यकारी है।

'कयस्य'—कस्येत्यत्र यकारोपजन इति सायणः। चिकेति जानाति इति कयः, इति दयानन्दः ॥

स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒रर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता ।
विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ॥ ९ ॥

भा०—वह समस्त प्रजा का द्रष्टा, रक्षा के निमित्त सब पर दृष्टि रखने वाला, अश्व आदि तुरग बलों से संग्राम को पार करता और विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को समस्त प्रजा में विभक्त करता है।

जरा॑बोध॒ तद् वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य ।
स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे गुण स्तुति द्वारा अपने वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करनेवाले अग्रणी नायक ! तू प्रत्येक प्रकार की प्रजा के लिए यज्ञ, राष्ट्र-

व्यवस्था अथवा युद्धक्षेत्र के योग्य उपदेष्टा विद्वान्, शत्रुओं के रुलानेवाले वीर पुरुष और योद्धा के योग्य दर्शनीय उस उस सत्य गुण, स्तोम को विशेष रूप से प्राप्त कर।

वीर नायकों और सैनिकों को उनके योग्य गुणस्तवन और उत्साह-वर्धक वाक्य सुनाने से उनको अपनी शक्ति, सामर्थ्य और कर्त्तव्य का ज्ञान होता रहता है।

स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरुश्च॒न्द्रः।
धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११ ॥

भा०—वह हमारे लिये बड़ा, अपरिमित बलशाली, धूम की शिखा-वाले अग्नि के समान शत्रुओं को सिर से पांव तक कंपा देने वाले बल और प्रज्ञा वाला अथवा शत्रुओं को भयभीत करने वाली ध्वजा वाला, बहुतों को आह्लाद या सुख, शान्ति देने और हृदय में उत्साह देने में समर्थ या सबको पालने में समर्थ, सुवर्णादि ऐश्वर्यवान्, बहुत कोशवान् है। वह कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने और संग्राम, ऐश्वर्य और विजय प्राप्त करने के लिए प्रेरित करे, उत्साहित करे।

स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः।
उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

भा०—वह परमेश्वर राजा धनाढ्य के समान प्रजा का पालन करनेहारा, समस्त दिव्य पदार्थ अग्नि, जलादि व्यापक पदार्थों और विजिगीषु विद्वानों में सबसे कुशल, ज्ञानवान् और बड़े तेजों और दीप्तियों में अति तेजस्वी, अग्रणी, प्रतापी है। वह प्रजाजनों का वेदमन्त्रों द्वारा उनके अनुसार सब कुछ श्रवण करे और न्याय करे।

नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥१३॥

भा०—बड़े आदरणीय विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और बलवृद्ध पुरुषों को नमस्कार, आदर और बल, वीर्य उचित पद प्राप्त हो। बालक

विद्या, बल में अल्प पुत्र, शिष्य आदि को भी उचित आदर प्राप्त हो। युवा, बलवान् और विद्यावान् पुरुषों को नमस्कार आदर प्राप्त हो। विद्या, बल और अधिकार में अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों को आदर प्राप्त हो। हम जब भी शक्तिमान् और सामर्थ्यवान् हों, जितना भी कर सकें उत्तम ज्ञानवान्, ज्ञान, बल और सुख के प्रदाता और व्यवहारकुशल, तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुषों का सत्संग करें, उनका दान मान सत्कार करें। हे विद्या प्रकाशक विद्वान् और दानशील पुरुषो! मैं अपने से बड़ों की कीर्ति, स्तुति को न काटूं, न परित्याग करूं।

'आ वृक्षि'—व्रश्चतेरिति सायणः। वृजेरिति दयानन्दः।

[२८]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवताः॥ छन्दः—१—६ अनुष्टुभ। विराट् (२ द्व्यूना ३, ६ एकोना)। ७—६ गायत्र्यः (२, ७, ८ निचृद्। ७ पिपीलिकामध्या)॥ नवर्चं सूक्तम्॥

यत्र ग्रावा॑ पृथुबु॑ध्न ऊ॒र्ध्वो भव॑ति॒ सोत॑वे।
उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः॥ १॥

भा०—जहां बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, बड़ा पाषाण या बड़ी शिला जिस प्रकार ऊंचा होकर ओषधियों के रस निकालने के लिये होता है उसी प्रकार ज्ञान का उपदेश करने वाला विद्वान् पुरुष बड़े विस्तृत शक्ति और अधिकार वाले राजा आदि का आश्रय पाकर ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रचार और प्रसार करने के लिए उन्नत पद पर स्थित हो। और जिस प्रकार गृहपति ओखली से कूट पीसकर बनाये, तैयार किये अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को प्राप्त करता और उसका भोजन करता है इसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! आचार्य! तू बहुत बड़े कार्यों को करने वाले पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को अवश्य प्राप्त कर और उनको उपदेश कर।

राजा के पक्ष में—बहुतों को दीक्षित करने वाले गुरु के तैयार

किये विद्वानों को प्राप्त कर और उनका भोग कर अर्थात् राष्ट्र के कार्य में अपने अधीन रख।

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्यां कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

भा०—जिसमे दो सोम को कूटने के लिये शिला और बट्टा दोनो के समान शरीर मे गति करने वाली दो जघाएं बनी हैं अथवा शरीर मे दो जघाओं के समान यज्ञ मे सोम सवन के लिये अन्न कूटने के निमित्त दो अधिसवन फलक और गृहस्थ यज्ञ मे पुत्रोत्पादक दो स्त्री पुरुष बने है और ज्ञान मे ज्ञानोत्पादक गुरु शिष्य हैं वहां अति अधिक अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य के कर्त्ता पुरुषो से उत्पादित अन्न, पुत्र और शिष्यो को, हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! आत्मन् ! गृहपते ! आचार्य ! तू अवश्य रक्षा कर, उनको उपदेश कर और नियुक्त कर।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

भा०—जिस गृहस्थ के कार्य में स्त्री त्याग करना, दान देना, व्यय करना और ऐश्वर्य अन्नादि को प्राप्त करना, संचय करना आदि का अभ्यास करती है, हे इन्द्र, विद्वन् ! तू ऊखल से बने अन्नो को वहां प्राप्त कर और उनका भोजन कर। अथवा जहां स्त्रियां दान देने और संग्रह करने की शिक्षा प्राप्त करें हे विद्वन् ! बड़े २ कार्य और ऐश्वर्यों के स्वामियों के पुत्रों को वहां प्राप्त कर और उपदेश कर।

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥

भा०—अश्वों को वश करने के लिये जिस प्रकार सारथि रासों को जोड़ता है और जहां लोग दूध दही को मथन करने वाली रई को रस्सी बांधते हैं हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! वहां ओखली से तैयार किये अन्नों को भी प्राप्त कर और भोग कर।

उसी प्रकार जिस राष्ट्र मे अश्वो के समान ही शत्रुओं को मथन करने वाली क्षात्र शक्ति को नियम मे बांधा जाता है वहां बड़े ऐश्वर्यों के उत्पादक व्यापारियो द्वारा उत्पादित ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर, उपभोग कर।

आचार्य पक्ष मे—जहा अश्व के समान ही हृदय को मथन कर देने वाली काम चेष्टा आदि मनोवृत्ति पर नियन्त्रण रखते हैं, हे आचार्य! उस ब्रह्मचर्याश्रम मे बड़े संयमकारी पुरुषो के पुत्रो की तू रक्षा कर और उनको उपदेश कर।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे अति अधिक ज्ञानोत्पादक वचनों को उपदेश करने हारे विद्वन्! तू अति अधिक ज्ञानोत्पादक, ओखली के समान जो भी तू घर घर नियुक्त किया जाता है तो तू इस राष्ट्र मे विजयकारी योद्धाओं के रणभेरी के समान अति ज्ञानप्रकाश से युक्त लाभदायक उपदेश कर।

उलूखलक—उलूखलं कायति शब्दयति तत्सम्बुद्धौ, विद्वन्, इति दया०। उलूखलमुरुकरं वा उर्क्करं वा, ऊर्ध्वं खं वा, 'उरु कुरु मे' इत्यब्रवीत् तदुलूखलमभवत्। उरुकरं वैतदुलूखलमित्याचक्षते। निरु० ९। २० ॥ बहुत अन्न, ज्ञान, कार्य, शक्ति आदि उत्पन्न करने वाले, ओखली, गुरु, बड़ा पुरुष, राजा, पुरोहित आदि सभी 'उलूखल' शब्द से कहे जाने योग्य है।

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

भा०—हे सेवन करने योग्य फल, छाया, उत्तम रस के पालक महावृक्ष और तेरे अग्र भाग तक वायु अर्थात् रस प्राप्त कराने वाला बल विविध प्रकारों से प्राप्त होता है। और हे ओखली के समान नाना अन्नों को उत्पन्न करने वाले पुरुष! तू ऐश्वर्यवान् पुरुष के पान करने के लिये ओषधि रस का सार भाग प्राप्त कर।

अथवा—हे सेना समूह के पालक पुरुष ! वायु के समान तीव्र बलवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखाओं को तोड़ डालने में समर्थ पुरुष ! तेरे अग्र अर्थात् मुख्य भाग को विविध प्रकार से कंपाता, चलाता है। इससे हे बहुत से ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पुरुष ! तू वायु के समान प्रबल, बलवान् राजा के उपभोग के लिये ऐश्वर्य उत्पन्न कर।

आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

भा०—नाना प्रकार के जौ चने आदि अन्नों को खाने वाले, परस्पर संगत और वेग से जाने वाले जैसे दो घोड़े रथ को उठाते हैं उसी प्रकार एक साथ संगत होने, यज्ञ करने और दान देने वाले और ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष वे दोनों ही ऊंचे पद, गृहस्थादि के कार्य-भार को उठाते हैं। और दोनों नाना अन्नो का उपभोग करते हैं। इसी प्रकार ऊखल मुसल भी परस्पर संगत, अन्न देने वाले, ऊँचे रक्खे जाते हैं। वे भी कूटते समय मानो अन्न खाते और औरों को कूटकर खिलाते हैं।

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

भा०—काष्ठ के ऊखल और मूसल दोनों जिस प्रकार गृहपति के लिये मधुर अन्न को तैयार करते हैं उसी प्रकार वे दोनों सेवन करने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों के पालक राजा और प्रजावर्ग और स्त्री पुरुष दोनों महान् प्रभुता और सामर्थ्य वाले होकर दर्शनीय या बड़े २ अभिषव, अभिषेक करने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों से मिलकर शत्रु नाशक बल-वान् पुरुष के लिये ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न राष्ट्रपति पद को अभिषेक द्वारा प्रदान करें।

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज।
नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—'चमू' नाम अधिसवन फलक,ऊखल मूसल दोनों में कूटे

गये अन्न को निकाल लो । और पुनः उस कूटे पिसे अन्न को साफ़ करने वाले छाज पर रक्खो और शेष सोम के गोचर्म पर रक्खो । इसी प्रकार राष्ट्र का उपभोग करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में शिक्षित विद्वान् पुरुष को उन्नत पद पर स्थापित करो और ज्ञान से पूर्ण उपदेशक को परम पावन, ब्राह्मण, आचार्य आदि पद पर नियुक्त कर । और उसको वाणी, वेदज्ञान के संवरण अर्थात् रक्षा के कार्य पर नियुक्त कर ।

सेनापति, राजा के पक्ष में—पदाति और यान, अश्वरथ आदि पर चढा कर दोनों प्रकार की सेनाओं के ऊपर अथवा निज दोनों सेनाओं के बीच सुशिक्षित पुरुष को उत्तम पद पर स्थापित कर । पवित्र करने वा कण्टकों के शोधक पद पर सर्वाज्ञापक पुरुष को लगा । पृथ्वी पर रक्षक रूप से शासन करने के लिये ऐश्वर्यवान् राजा को स्थापित कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[२९]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः । १, ४, ५ निचृद् । २, ३, ६, ७ विराड् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

भा०—क्योंकि, हे सज्जनों के हितकर ! सत्यस्वरूप, न्यायपरायण ! परमेश्वर ! राजन् ! हे समस्त ऐश्वर्यों और उत्पन्न पदार्थों के पालक स्वामिन् ! हम अकुशल, प्राप्त करने में असमर्थ के समान अल्पबल, अल्पज्ञ हैं, इसलिये हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! आचार्य ! राजन् ! हे अधिक ऐश्वर्यवन् ! आप हमें वाणी, पशु, इन्द्रिय, भूमि और अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और हजारों शोभाजनक, सुखप्रद पदार्थों से विख्यात व सम्पन्न कर ।

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥

भा०—प्राप्तव्य ऐहिक पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त करने हारे ज्ञानवन्! बलवन्! सग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक, हे शक्ति, प्रज्ञा और प्रजा के स्वामिन्! तेरा ही यह सब सामर्थ्य है। हे ऐश्वर्यवन् प्रभो! इन्द्र! हमें भी सहस्रों शोभाजनक रथ विमानादि ऐश्वर्यों में उत्तम सम्पन्न कर।

नि ष्वा॑पया मिथू॒दृशा॑ स॒स्तामबु॑ध्यमाने।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्व॑श्वेषु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥३॥

भा०—जो स्त्री पुरुष मिथ्या दृष्टि से युक्त, दुःख से मिले विषय सुख को वास्तविक सुख मानने वाले और प्रमाद, आलस्य करने वाले होकर कुछ भी ज्ञान न प्राप्त कर, मूर्ख रहते हुए सदा सोते हैं उनको उस कुमार्ग से हटा। और हे इत्यादि पूर्ववत्।

अथवा—हे इन्द्र, राजन्! परस्पर प्रेम से मिथुन होकर, सुसंगत होकर देखने वाले स्त्री पुरुष रात्रि के समय अचेत, निश्चिन्त होकर सोवें। उनको खूब निश्चिन्त सोने दे। अर्थात् तेरे उत्तम राज्य शासन में सब निश्चिन्त होकर सोवें और हमें तू गौ आदि पशु, अश्वों और ऐश्वर्यों से युक्त कर।

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्व॑श्वेषु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥४॥

भा०—वे दानशील शत्रुगण, अचेत होकर सोवें, मूर्ख रहें। हे शूरवीर! दानशील प्रजाएं ज्ञानवान्, जागृत, सावधान होकर रहें। और हमें तू गौ आदि पशुओं, अश्वों और ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर।

समि॑न्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्व॑श्वेषु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥५॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! सभाध्यक्ष! तू अमुक २ नाना प्रकार की पापयुक्त-वाणी से निन्दा करते हुए कर्णकटु बोलने वाले, निन्दक गधे के समान स्वभाव वाले नीच पुरुष को अच्छी प्रकार दण्डित कर

गौ आदि पशु और सहस्रों सुखप्रद ऐश्वर्यों के विषय में हमे उत्तम, सम्पन्न एव निर्दोष प्रसिद्ध कर।

पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६॥

भा०—वायु जिस प्रकार वन से निकल कर भी बहुत दूर तक अति कुटिल गति से चला जाता है। अथवा वह दाहकारी अग्नि की ज्वाला के साथ दूर तक फैल जाता है उसी प्रकार वायु के समान बलवान् सेनापति भी सेना समूह से निकल कर राजनीति की कुटिल गति या शत्रुदाहक प्रताप और पराक्रम वाली शक्ति से दूर तक आक्रमण करे। और तू हमे गौ आदि पशु, अश्व और उत्तम ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७॥

भा०—हे राजन् ! तू सर्वप्रकार के प्रजा को रुलाने वाले, दुःखदायी एवं सर्वत्र निन्दा फैलाने वाले दुष्ट पुरुष को विनाश कर, दण्डित कर। और हिंसा और आघात करने वाले डाकू पुरुष को विनष्ट कर, उसे राष्ट्र से परे कर। हमें गौ आदि पशु, अश्व और ऐश्वर्यों से सम्पन्न कर। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३०]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवताः—१—१६ इन्द्रः। १७—१६ अश्विनौ। २०—२२ उषाः ॥ छन्दः—१—१०, १२—१५, १७—२२ गायत्र्यः। २, ४, ६, १०, १४, १७, १८, २० निचृद् (६, १०, १५, १८ पिपीलिकामध्या)। ३, १६, २१, २२ विराट् (२१ पिपीलिकामध्या)। १२ पादनिचृद्। १६ त्रिष्टुप्। द्वाविंशत्यृच सूक्तम् ॥

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

भा०—अन्न की कामना करने वाले किसान लोग जिस प्रकार कूप का

आश्रय लेते हैं और जलों से क्षेत्रों को सींचते है उसी प्रकार हे वीर पुरुषो! आप लोगों में से संग्राम मे विजय और ऐश्वर्यों की कामना करने वाले जन सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों के करने मे कुशल शत्रु के नाशक, कार्य-दक्ष, ऐश्वर्यवान्, शत्रुघातक दानशील पुरुष का आश्रय करो। हे पुरुष! तब जलों के समान सदा बहने वाले ऐश्वर्यों से प्रजाजन को राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनो का सेवन कर, बढ़ा।

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जल नीचे की ओर बह जाता है उसी प्रकार जो विद्वान् शुद्ध पवित्र करने वाले सहस्रों साधनों, कर्मों और पदार्थों के प्रति और आश्रय या सेवन करने योग्य हजारों ग्राह्य पदार्थों के प्रति झुकता ही है वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है।

भौतिक अग्नि, विद्युत् के पक्ष में—वह विद्युत् कान्ति वाले, धातु के बने सैकड़ों और सहस्रों आश्रय द्रव्य के प्रति ऐसे वेग से आता है जैसे जल नीचे स्थान पर बह आता है। विद्युत् सुवाहक धातु के बने पदार्थों और आश्रय स्थान मेघ, पृथिवी आदि पदार्थों पर भी अति शीघ्रता से जल के समान आ दौड़ता है।

इसी प्रकार ताप भी जलवत् संग लगे अल्प ताप वाले पदार्थों में सुगमता से फैल जाता है।

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार समुद्र विविध पदार्थों को धारण करने वाले, नाना विस्तृत अवकाश को धारण करता है उसी प्रकार बलवान्, अति तृप्त इस विद्वान् पुरुष के पेट या वश में नाना सहस्रों पदार्थ धारण कराता हूँ, उसके भोगने के निमित्त प्रदान करता हूँ।

भौतिक अग्नि के पक्ष में—जैसे समुद्र में बहुत से पदार्थ समा जाते

हैं उसी प्रकार अग्नि के प्रचण्ड ताप में सहस्रों पदार्थ, पेट मे अन्न के समान भस्म हो जाते हैं ।

अ॒यमु॑ ते॒ सम॑तसि क॒पोत॑ इव गर्भ॒धिम् ।
वच॒स्तच्चि॑न्न ओहसे ॥ ४ ॥

भा०—कबूतर जिस प्रकार गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास आता और संगत होता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी नाना वर्णों का आश्रय होकर अपने गर्भ मे, अपने बीच मे तुझे धारण करने मे समर्थ राष्ट्र की प्रजा को तू आपसे आप प्राप्त होता है । यह समस्त लोक तेरे ही भोग और शासन के लिये, तेरे ही वश है । उसी प्रकार हमारे तू वचन को भी प्राप्त हो ।

अग्नि के पक्ष मे—नाना उज्ज्वल वर्णों से युक्त होने से अग्नि 'कपोत' है, अग्नि को भूगर्भ मे धारण करने से पृथ्वी 'गर्भधि' है । यह लोक उसी का है । वह पृथ्वी से संगत है । वही हमारे व्यक्त वचनों को भी ग्रहण करता व स्थानान्तर पहुंचाता है ।

स्तो॒त्रं रा॑धानां पते॒ गिर्वा॑हो वीर॒ यस्य॑ ते ।
विभू॑तिरस्तु सू॒नृता॑ ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे वीर ! वीर्यवन् ! जिस समस्त स्तुति वाणियों को धारण करने वाले, उनके योग्य तेरी स्तुति हैं । उस तेरी ही यह उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण विविध सम्पदा है । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ऊ॒र्ध्वस्ति॑ष्ठा न ऊ॒तये॒ऽस्मिन् वाजे॑ शतक्रतो ।
सम॒न्येषु॑ ब्रवावहै ॥ ७ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञाओं से युक्त राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! तू हमारे रक्षा करने के लिए सबसे ऊंचा होकर इस संसार, राष्ट्रयज्ञ और ऐश्वर्य पद पर विराज और हम दोनों स्त्री-पुरुष, गुरु-शिष्य और राजप्रजा वर्ग मिलकर अपने से भिन्न, अन्य शत्रुजनों में भी अथवा

अन्य कार्यों और अवसरों पर भी परस्पर मिल कर तेरे गुणों का कथन किया करें।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

भा०—हम सब मित्र, सुहृद् होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के प्रत्येक अवसर में और प्रत्येक संग्राम के अवसर में भी रक्षा करने के लिये अति बलशाली और ज्ञानशाली, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता एवं कार्य-कुशल परमेश्वर और सेनापति, राजा को बुलावें, उसे प्रस्तुत करें।

आ घा गमद्यदि श्रवत् स हस्त्रिणीभिरूतिभिः।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

भा०—यदि वह परमेश्वर या सेनापति हमारे स्तुति-वचनों और बुलावे को सुन ले, तब अवश्य ही वह सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों के देने वाली सेना रूप रक्षाओं और अन्न, ज्ञान, उपाय, युद्धादि सामग्री और अश्व आदि वेगवान् साधनों से निश्चय से अवश्य आजावे।

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

भा०—जिस नाना लोकों के बनानेवाले, सबके नायक, अति पुराण स्थान, आकाश के भी पूर्व विद्यमान परमेश्वर की तेरे पालक जन भी स्तुति करते थे। उसी की मैं आदर से स्तुति करता हूँ।

राजा के पक्ष में—अति पुरातन स्थान, देश के नायक बहुत से शत्रुओं के मुकाबले पर जाने वाले जिसको तेरा पिता पालक वर्ग भी आदर करता है उसी का मैं भी आदर करूँ।

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत।
सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे सबसे वरण करने योग्य, सबको धनैश्वर्य का समान रूप से न्यायपूर्ण विभाग करनेहारे! हे बहुत से जनों से स्तुति किये, रक्षा,

क्षेमादि के निमित्त बुलाये एवं स्मरण किये गये ! हे मित्र ! हे सबमें बसने और सबके बसाने वाले परमेश्वर ! राजन् ! हम उस तुझको स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुषों के हितकारी रूप से चाहते और कामना करते हैं। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे सोम, नाना उत्पादित कार्य, पदार्थ, ऐश्वर्य आनन्द ज्ञान तथा राष्ट्र के पालक ! राजन् ! विद्वन् ! ईश्वर ! ज्ञान से युक्त हम स्त्रियों का और सोम, अन्न, ज्ञान, बल-ऐश्वर्य राष्ट्रादि के पालक और मित्र भाव से रहने वाले हम स्त्रियों और पुरुषो में से सभी का तू हितकारी है, तुझे हम प्राप्त करना चाहते हैं।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

भा०—हे राष्ट्रपालक, ऐश्वर्यमय जगत् के पालक ! हे सखे ! मित्र ! हे बलवन् ! दुःखो के निवारक ! जिस प्रकार से भी हम तुझे अपने इष्ट, अभिलषित फल प्राप्ति के लिए चाहते हैं तू उसी प्रकार हमारा मनोरथ पूर्ण कर और वह हमारा अभिलषित कार्य भी वैसे ही सिद्ध हो।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

भा०—अन्न आदि भोग्य पदार्थों से समृद्धिमान् होकर हम जिन प्रजाओं से और जिन सहधर्मचारिणी स्त्रियो के साथ तृप्त, सन्तुष्ट, पूर्ण सफल हो सकें वे अति ऐश्वर्य और अन्नों से युक्त होकर धनैश्वर्य वाली स्त्रियें ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में या राजा या परमेश्वर के आश्रय रहकर हमारे साथ सुख और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली हों।

परमेश्वर के प्रति विश्वास और उत्तम राजा के उत्तम राज्य में, उत्तम

स्त्रियो सहित हम ऐश्वर्यवान् होकर सुख से रहें, मनोऽनुकूल स्त्रियें और प्रजाएं प्राप्त हों ।

अ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
अणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

भा०—चक्रों के बीच लगा धुरा जिस प्रकार गति करता हुआ स्वयं भी चलता है और अन्यों को भी अभिलषित स्थान तक पहुंचाता और वह स्वयं अपने ही आश्रय पर स्थित रह कर दोनों चक्रों को भी सम्भालता है उसी प्रकार हे बलवन्! शत्रुओं को पराजय करने हारे! ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू भी अपने ही समान, अपने जोड़ का अकेला, अपने ही सामर्थ्य से अपने में स्थित होकर विद्वान् गुण स्तुति करने वाले पुरुषों को स्वयं प्राप्त होता और उनको अभिलषित फल मोक्ष और सुख प्राप्त कराता है ।

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—जिस प्रकार चक्रों का धुरा क्रियाओं द्वारा गति करता हुआ इष्ट देश को प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल ईश्वर! राजन्! विद्वन्! सभापते! तेरी जो परिचर्या, सेवा है वह भी स्तोता विद्वान् पुरुषों को अपनी बुद्धियों और कर्मों से अभीष्ट फल को प्राप्त कराती है । इति त्रिंशद् वर्गः ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि । स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता इन्द्र, भूमि और राष्ट्र का पालक राजा नथुने फुनफुनाते हुए, अतिपर्याप्त बलशाली, व्यायामशील नाद करते हुए निरन्तर श्वास लेने वाले घोड़ों से नाना ऐश्वर्यों का निरन्तर विजय करे । और वह कर्म शक्ति से सम्पन्न होकर हमें सुवर्ण और लोहादि

धातु के बने रथ दान करे। और वह सब ऐश्वर्यों का दाता दानशील हमें दान देने या ऐश्वर्य विभाग करने के लिये ही दान दे।

परमेश्वर के पक्ष मे—परमेश्वर अनादिकाल से ही अपरिमित, स्थूल परिमाण मे रहने वाले, नाना शब्द करने वाले विद्युत् आदि पदार्थों और नाना जीवों से और निरन्तर श्वास लेने वाले प्राणियो द्वारा नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करता और उनको अपने वश करता है, वह ही दानी, सर्वशक्तिमान्, हमारे भोग के लिये हमे सुवर्णादि रथ अथवा हितकारी रमण योग्य आत्मा के देह रूप रथ को प्रदान करता है।

अध्यात्म मे—आत्मा नाक के नथुनों को कंपाने वाले, नाद करने वाले, श्वास लेने वाले, प्राणों से प्रिय लगने वाले, भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। वही कर्म चेष्टाओं का स्वामी होकर हमारा भोक्ता आत्मा सुख प्राप्त करने के लिये आत्मा के हमे परम तेजोमय रस प्रदान करता है।

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत्॥ १७॥

भा०—हे सूर्य और पृथिवी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि और शरीर मे प्राण और अपान के समान राष्ट्र मे व्यापक शक्ति और अधिकार वाले! राष्ट्र के दुःखों और दरिद्रता आदि दोषो के नाश करने वाले आप दोनों अश्वो वाली, अश्वारोहियों से बनी, सैकड़ो वीर पुरुषों से पूर्ण, इच्छानुकूल प्रेरित सेना से सर्वत्र प्रयाण करो, जिससे हमारा राष्ट्र गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और सुवर्ण आदि धनों से समृद्ध हो।

अथवा—तुम दोनों इच्छानुकूल गति से जाओ। बैलों से जुते और सोने के बने यान को प्राप्त करो।

'शवीरया—'शु गतौ' इत्यस्मात् बाहुलकात् उणादिरीरन् प्रत्ययः, अथवा शवसा बलेन ईर्यते तया। अथवा शतं वीरा अस्याम् इति तकाराकारलोपश्छान्दसः॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

भा०—हे दुःखों के नाशक, तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र के संचालको ! तुम दोनों का रथ एक जैसा बना हुआ और विना मनुष्य के चलने वाला है । हे वेगवान् साधनों से जाने हारो ! वह रथ अन्तरिक्ष और समुद्र में भी जाता है ।

प्राणापान पक्ष में—हे कर्म श्रम की बाधा के नाशक प्राण अपान ! हे अश्व अर्थात् व्यापक भोक्ता आत्मा को धारण करने वालो ! तुम्हारा रथ रूप देह जब तक समान नामक प्राण से युक्त रहता है तब तक वह कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । वह कामनानुसार विषय में गति करता है, इच्छानुसार चलता है । अथवा प्राण वायु या जल के आधार पर या पुरुष या आत्मा या मन के आश्रय पर गति करता है ।

'समुद्रे'—कामः समुद्रः इवेति । न वै कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य । तै० २।२।५।६ ॥ अयं वै समुद्रो योयं वायुः पवते । एतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति । श० १४ । २ । २ । २ ॥ आपो वै समुद्रः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ मनो वै समुद्रः । श० ७।५।२।५२॥ पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥

गुरु-शिष्य पक्ष में—विद्या के पारंगत दोनों गुरु शिष्य 'अश्वी' हैं । ज्ञान का रथ दोनों के समान चित्त होने से युक्त होता है । वह सम्बन्ध भी अटूट है, यह समुद्र रस सागर परमेश्वर की साक्षिता पर चलता है ।

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम शिल्पि जनो ! तुम दोनों विनाश न होने योग्य दृढ रथ के सिर या अग्र भाग पर एक और को लगाओ । इससे वह आकाश में भी चला जावे ।

देह पक्ष में—न विनाश करने योग्य, रक्षा योग्य इस देह रूप रथ

के शिरोभाग में अन्य इन्द्रियों से भिन्न क्रिया करने वाले मन रूप साधन को नियमित करते हो। तब ही ज्ञानप्रकाश और परमेश्वर को भी प्राप्त किया जाता है।

सूर्यपक्ष में—इस महान् आकाश के शिर पर एक सूर्य रूप चक्र लगा है जो आकाश में घूमता है।

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

भा०—हे पापों के नाश करने वाली उषा के समान ज्योतिर्मयि! परमेश्वरीय शक्ते! हे स्तुति एवं ज्ञान कथा से अतिप्रिय! हे कभी न मरने वाली अविनाशिनि! नित्ये! तेरे परमानन्द के भोग या सुख को प्राप्त करने के लिए कौन मरणधर्मा प्राणी समर्थ है? कोई भी नहीं। हे विशेष तेजोयुक्त! तेजस्विनि! तू किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है? अर्थात् तू किसी को प्राप्त नहीं हो सकती? अथवा सर्व सृष्टि के कर्त्ता 'कः' सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है।

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात्।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

भा०—हे व्यापक, आश्चर्यशक्तिशालिन्! एव अति पूजनीय! हे अतिदीप्तिमति ईश्वरीय शक्ते! निश्चय से अति समीप से लेकर दूर तक भी विवेचना करके तेरे स्वरूप को हम नहीं जानते।

त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः।
अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

भा०—हे सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न उषा के प्रभात वेला के समान! तेजोमय ज्ञान प्रकाश से उत्पन्न होने वाली एवं ज्ञानप्रकाश को दोहन या प्रदान करने वाली! तू ऐश्वर्यों और उन ज्ञानों सहित हमें प्राप्त हो। और हमें विद्या, ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान कर।

इसी प्रकार २०-२२ तक तीनों मन्त्र राजशक्ति परक भी हैं। जब

राजा का अभ्युदय होता है तब उसकी ऐश्वर्यशक्तियां, राज्यलक्ष्मी उदित होते समय सूर्य की प्रभा के समान हैं। (१) वह उस समय प्रभावशाली होने से विभावरी और सबसे स्तुति योग्य होने से 'कधप्रिया' अतिद्वंद्वियों के नाशकारी होने से 'उषा' है। (२) अश्व अर्थात् राष्ट्र-रूप एवं अश्वारोही बल चतुरंग सेना रूप होने से 'अश्वी' है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा से उत्पन्न और उसके ऐश्वर्य दोहन करने से 'दिवः-दुहिता' है। वह संग्रामों, ऐश्वर्यों और सुभिक्षों सहित राष्ट्र को प्राप्त हो, वह ऐश्वर्य दे। एकत्रिंशद् वर्गः ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः।

[३१]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ १—७, ९—१५, १७ जगत्यः (१, ३, ५, ६, ७, १५, १७ विराट्। ४, १०, १३ एकोना विराट्। ९, १२ द्व्यूना, २, ११, १४ निचृद्)। ८, १६, १८ त्रिष्टुभः (८ विराट, १६ एकोना विराट्, १८ निचृद्)। अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सोऽजायन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप! ज्ञानवन्! परमेश्वर! तू 'अंगिराः' अर्थात् शरीर में प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड में स्थित, सूर्य आदि लोकों के संचालक, बलस्वरूप, सबसे प्रथम, जगत् की रचना के भी पूर्व विद्यमान, सब विद्वानों और लोकों का देखने और उपदेश करने वाला, आनन्द, ज्ञान और ऐश्वर्य का दाता, समस्त दिव्य लोकों और विद्वानों का कल्याणकारी और परम मित्र है। हे परमेश्वर! तेरे बनाये नियम में रहकर ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले, क्रान्तदर्शी, मेधावी, मरणधर्मा विद्वान् मनुष्य भी अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाले हो जाते हैं।

राजा के पक्ष में—हे अग्रणीनायक! तू अंगारे के समान तेजस्वी,

सब विजिगीषु राजाओं में सर्वश्रेष्ठ, सबका द्रष्टा, राजा है, तू सबका कल्याणकारी मित्र बन। तेरे शासन में रहकर ज्ञानवान्, विद्वान् हों, और प्रजाजन एवं शत्रुहन्ता वीर पुरुष चमचमाते शस्त्रों वाले हों। अर्थात् ब्राह्मण विद्वान् और क्षत्रिय तीक्ष्णायुध, सदा सन्नद्ध हों।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥२॥

भा०—हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! तू सबसे प्रथम, आदि मूल कारण 'अंगिरा' शब्दों से कहाने वाले अग्नि, आदित्य, प्राण, आत्मा आदि सबसे उत्कृष्ट, अधिक तेजस्वी क्रान्तदर्शी 'सर्वज्ञ होकर विद्वानों और सूर्यादि लोकों के व्रतों, नियमों, धर्मों को धारण करता रहा है। तू मेधावान् एवं संगत, समस्त भुवन ब्रह्मांडों के भीतर व्यापक, विशेष सामर्थ्यवान् होकर भी उनका सूक्ष्म और स्थूल, दोनों रूपों का बनाने वाला, सबके भीतर प्रसुप्त सत्तारूप से विद्यमान एवं जगत्‌भर को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला होकर मनुष्यों के लिए कितने ही प्रकारों से नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है।

राजा के पक्ष में– शत्रुहन्ता राजा प्रजावर्ग दोनों के प्रति माता के समान पालक एवं माता-पिता और आचार्य दोनों को माता मानने वाला द्विज, युद्ध में शत्रुओं को सुलाने वाला, प्रजाजन के हित के लिये कितने ही प्रकारों से शासन करने वाला है।

भौतिक अग्नि—दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न और सूर्य दो अयनों का उत्पादक व्यापक, विविध सामर्थ्यवान्, विद्युत्, तेजाव, अग्नि, जाठर आदि नाना रूपों में प्राप्त है।

त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो॥ ३॥

भा०—हे तेजस्विन् ! परमेश्वर ! तू अन्तरिक्ष में गतिशील वायु तत्व के भी प्रथम विद्यमान होकर, विविध प्रजाओं और लोकों में व्यापक,

और उनको बसाने, धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व सबमे उत्तम कृति या प्रज्ञा या संकल्प रूप मे प्रकट होता है। अर्थात् सूक्ष्म, अग्नि वायु आदि तत्वों की सृष्टि के भी पूर्व परमेश्वर का काम, संकल्प, इच्छा या प्रकृति रूप में प्रकट होता है। [सुक्रतु = प्रकृति। काम, संकल्प, इच्छा अर्थात् 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि ऐत० उपनिषद्।] सबको अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले, उत्पादक और प्रलयकारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से गति करती हैं अर्थात् उसी के संकल्प से भोग्यभोक्ता और जीव प्रकृति में प्रथम स्पन्द उत्पन्न हुआ। हे परमेश्वर ! तू ही सब जीवों और लोकों के भरण पोषण के कार्य को भी धारण करता है। हे सबको बसाने और सबमें बसने वाले परमेश्वर ! तू ही बड़े सूक्ष्म तत्वों को सगत करता है।

— राजा और विद्वान् पृथ्वी पर वेग से आक्रमण करने वाले क्षात्रबल और विविध प्रजा के स्वामी वैश्य दोनों में उत्तम कर्म और प्रजा से सर्व-श्रेष्ठ होकर रहे। राजा प्रजावर्ग दोनों उससे चलते हैं। होता पुरोहित द्वारा प्रदत्त राजपद पर समस्त राज्यभार को सहन करता है। हे राजन् ! तू अपने से बड़ों का आदर और सत्संग कर।

त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पुरू॒रव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या॑ त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे ज्ञानमय अग्ने ! तू ही मननशील बहुत से ज्ञानोपदेशों को धारण करने वाले, उत्तम कर्मों के करने वाले, पुण्याचारी जीव के उपकार के लिये सूर्य और उसके समान ज्ञानप्रकाश के देने वाले बड़े ज्ञान का उपदेश करता है। हे जीव ! पुरुष ! जब तू माता पिता के घर से मुक्त या पृथक् होता है तब उसी परमेश्वर के दिये ज्ञान के निमित्त तेरे माता, पिता, बन्धु आदि तुझको पहले गुरु, आचार्य के समीप उपनयन द्वारा प्राप्त कराते हैं। और फिर दूसरे उसी परमेश्वर के प्रति

ये प्राणगण या विद्वान् जन तुझको उसी परमज्ञान के लिये ले जाते हैं।

अथवा—जब माता पिता के बन्धन से मुक्त होता है तब उस परमेश्वर के ज्ञान या व्यवस्था से ही पूर्व जन्म और अपर जन्म तथा इस कल्प और अगले कल्प को तेरे कर्म आदि तुझे पुनः प्राप्त कराते हैं।

राजा के पक्ष मे—प्राणी, विद्वान्, उत्तम कार्यकुशल इन सबके हित के लिए तू राजसभा के प्रति आज्ञा देता है। जब तू माता पिता से मुक्त होता है तव तू सूर्य के समान पूर्व और पश्चिम दोनो राष्ट्र या भूमि या सामान्य और विशेष दोनो अधिकारों को प्राप्त होता है।

भौतिक अग्नि जब दोनो उत्पादक अरणियों से मुक्त होता है तब प्रथम आहवनीय के निमित्त और फिर उसे होतागण गार्हपत्य के निमित्त वेदी के पूर्व मे, और पुनः बाद में, पश्चिम भाग मे ले जाते हैं।

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥५॥

भा०—हे विज्ञानवन्! परमेश्वर! तू सूर्य और मेघ के समान जलों और सुखों के वर्षाने वाला, पोषणकारी अन्नो और पशु सम्वृद्धि को बढ़ाने वाला और ऊर्ध्व मस्तक भाग मे वीर्य को दमन करने वाली, ऊर्ध्वरेता एवं उच्चतम भ्रुकुटि या ब्रह्मरन्ध्र मे समस्त प्राणवृत्तियो को रोधने वाले योगों के लिये श्रवण करने, साक्षात्कारक ने और दूसरो के बतलाने योग्य होता है। जो स्वयं पांचों भूत और अहंकार महत् तत्वयुक्त छहों विकारो की आहुति को अपने भीतर ग्रहण करता है। और जो एकमात्र समस्त संसार जीव रूप होकर, समष्टि महान् चैतन्य होकर सबसे पूर्ण अपने भीतर विद्यमान महत् आदि समस्त प्रजाओं को आच्छादित करता, ढकता, वश कर रहा है। वह परमेश्वर सबकी आहुति लेने से सबका मूल कारण 'सत्' है। वह एकायु अर्थात् समष्टि चैतन्य होने से 'चित्' है और सब

उद्यत-स्रुचे—प्राण एव स्रुवः। सोयं प्राणः सर्वाण्यंगाम्यनुसञ्चरति। योषा वै स्रुग् वृषास्रुवः। श० १। ३। १। ९॥

अध्यात्म में—आत्मा आनन्दघन होने से 'वृषभ' है। वह प्राण-निरोधी योगी को साक्षात् होता है। स्वाप और मरणकाल में मन, चक्षु आदि छहों को अपने भीतर लीन करना जानता है। वह उन सब में या समस्त प्राणियों में निवास करता है।

त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्सम॑ृता हंसि॒ भूय॑सः॥६॥

भा०—अग्रणी! नायक! सेनापते! हे विविध प्रजाओं के द्रष्टा तू समवाय या संघ से बने युद्ध में बल से जाने योग्य मार्ग मे जाने वाले वीर पुरुष को अन्न आदि से पालता पोषता है। और जो तू शूरों से सुखपूर्वक भोगने योग्य चारों ओर से आक्रमण करने योग्य युद्ध में भी मारने में कुशल छोटे छोटे वीर पुरुषों के द्वारा भी एकत्र होकर युद्ध में आये बहुत से शत्रुओं को भी मार देता है। वही तू सेनापति या राजा पद के योग्य है।

आत्मा परमेश्वर पक्ष में—हे साक्षिन्! तू काम, क्रोधादि के सब मे फंसकर पापमार्ग से जाने वाले पुरुष को बचा लेने मे समर्थ है। वीरों से लडने मे योग्य अति दुःखकर इस संग्राम मे एकत्र हुए बहुत से काम क्रोधादि आभ्यन्तर शत्रुओं को हृदयाकाश में स्थिर प्राणों के बल से विनष्ट करता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मा मनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः॥
शश्वद्भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति
कौन्तेय प्रति जानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति॥ गीता॥

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑॥७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! जो पुरुष दोनों जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए तेरे आनन्द प्राप्त करने के लिए पियास अनुभव करता है, जो तेरे लिए तरसता है उस विद्वान् के हित के लिए तू परम सुख और अन्न, ऐहिक सुख, श्रेय और प्रेय दोनो ही प्रदान करता है। और तू उस मनुष्य को प्रतिदिन मोक्ष के निमित्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता एवं पालन पोषण करता है। तुलना करो गीता० अ० ६। श्लो० ४०–४५।

'उभय जन्म'—अतीत, आगामी, वर्त्तमान ये तीन जन्म और आचार्य प्रदत्त द्विजन्मता ये चारो मिलकर एक जन्म है और मुक्त होने के पश्चात् पुनः जन्म लेना द्वितीय जन्म है ऐसा महर्षि का आशय है।

राजपक्ष में—उभय जन्म अर्थात् द्विपाद्, चतुष्पाद् दोनो प्रकार के जन्तुओं के हितार्थ जो तरसता है राजा उसको सुखसामग्री और अन्न का प्रबन्ध करे। उसके दिनो दिन ज्ञान और ख्याति लाभ के लिए उत्तम चिरस्थायी पद पर स्थापित करे।

त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः।
ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः॥ ८॥

भा०—हे तेजस्विन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! तू स्वयं स्तुति किया जाकर, उच्च आसन पर प्रस्तुत होकर, सबको उपदेश या शासन करता हुआ हमे नाना धनो, ऐश्वर्यों के प्रदान और उत्तम विभाग के लिये यशस्वी उत्तम कार्यकर्त्ता, शिल्पी, कर्मशील पुरुष को नियुक्त कर। और हम सदा नये २ प्रयत्न और उत्साह से अपने अभिलषित कर्म या उद्देश्य को बढ़ावें और अधिक फलदायक बनावें। सूर्य और पृथिवी, स्त्री और पुरुष एवं राजा प्रजा वर्ग दोनो अग्नि आदि दिव्य पदार्थ और दानशील एवं विजयशील और निरीक्षक अधिकारी और ज्ञानी, धनाढ्य पुरुषों द्वारा हमारी भली प्रकार रक्षा करें।

राजा ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये उत्तम शिल्पियों को बढ़ावे। जिससे

प्रजा अधिक उत्पादक श्रम करें। राजा प्रजावर्ग उत्तम रक्षकों और रक्षासाधनों से प्रजा को भूखों मरने और आधि व्याधियों से पीड़ित होने से बचावें।

त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः।
त॒नू॒कृद्बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे ॥९॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर ! हे अनिन्द्य, निष्पाप ! तू सब सुखों का दाता और अग्नि आदि तत्वों में सदा जागरणशील, सदा क्रियाशक्ति रूप से व्यापक होकर जगत् के पालक सूर्य पृथिवी दोनों के बीच में सर्वत्र व्यापक है। और तू सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला और समस्त प्राणियों और लोकों और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों, देहों को रचने हारा होकर कार्य करने वाले कर्त्ता जीव को ज्ञान प्रदान कर। हे मंगलमय ! तू ही इस कर्त्ता जीव के सुख के लिये समस्त प्रकार के ऐश्वर्य सर्वत्र उत्पन्न करता है।

प्रजनश्चास्मि कंदर्पः। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ इन गीतावचनों के अनुसार—हे अनिन्द्य तेजस्विन् ! वीर्य ! तू माता पिता दोनों के देहांगों में सुखप्रद एवं कामना युक्त जीवों में जागृत होता है। तू ही सर्वश्रेष्ठ मति वाला जाना जाता है। हे सुखप्रद ! तू जगद्विधाता के लिए समस्त जीव संसार को भूमि में अन्न बीजों के समान बीज वपन करता और सृष्टि उत्पन्न करता है।

राजा और आचार्य माता पिता से उतर कर तीसरा 'देव' है। वह सबमें सावधान होकर उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर विद्या में जन्म देने से 'तनुकृत्' है। वह बोध करावे। वही कल्याणकृत् ! समस्त ज्ञानैश्वर्य का शिष्यों में मानो वपन करता है। आचार्य का शिक्षण राष्ट्र के नवयुवकों में समस्त जीवों की उन्नति के बीजों को बोने के समान है।

त्वम॑ग्ने॒ प्रम॑ति॒स्त्वं पि॒तासि॑ न॒स्त्वं व॑य॒स्कृत्तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम्।
सं त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य ॥१०॥३३॥

भा०—हे ज्ञानवन् आचार्य ! परमेश्वर ! राजन् ! तू हमारा उत्तम ज्ञान सम्पन्न पिता के समान उत्पादक और पालक है। तू हममें जीवन बल और ज्ञान का देने वाला है। हम सब तेरे बन्धु या सन्तान के समान हैं। हे अतिप्रशंसनीय ! सदा आदरणीय ! सैकड़ों और हजारों विद्या, धर्म सुख आदि से युक्त ऐश्वर्य व्रतों के पालक, व्रतपति, तुझको प्राप्त हैं।

आचार्य उत्तम ज्ञानी होने से 'प्रमति' विद्या जन्म के दाता होने से 'पिता' ब्रह्मचर्य द्वारा, वीर्य पालक और ज्ञान देने से 'वयः-कृत्' है। शिष्यों में वह विद्या के बीज बोने से शिष्य उसके 'जामि' उत्तम फलोत्पादक भूमियों के समान, स्नेह से बन्धु और पुत्र के समान हैं। सैकड़ों हजारों गौ आदि से युक्त ऐश्वर्य उसको दक्षिणा में प्राप्त हो।

इसी प्रकार राजा उत्तम शत्रुस्तम्भक, पालक बलप्रद है। प्रजा उसकी ऐश्वर्यजनक भोगभूमियें हैं, उस उत्तम वीर को सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त हों।

उत्पादक वीर्य जीवनवृद्धि कारक होने से 'वय.कृत्' है। समस्त सैकड़ों गृहस्थसुख वीर्यवान् पुरुष को प्राप्त होते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒मम॒ायुम॒ायवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म्।
इळा॑मकृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥११॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि और विद्वान् जन सबसे आदि में विद्यमान तुझको ही कर्म-बन्धनों में बंधने वाले जीव गण के इस लोक में आने, ज्ञान प्राप्त करने और जीवन सुख से व्यतीत करने के लिये प्रजाओं के पालक राजा के समान बतलाते हैं, और वे ही इला स्तुति करने हारी या स्तुति योग्य वेदविद्या को ही मननशील मानवगण के शिक्षा करने वाली बतलाते हैं। जिस प्रकार पुत्र उत्पादक पिता का होता है उसी प्रकार मननशील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान ही होता है। उसी प्रकार यह मानववर्ग परमेश्वर और वेद चतुष्टयी, आचार्य और विद्या दोनों का पुत्र है।

राजा के पक्ष में—विद्वान् और विजिगीषु पुरुष राज्यव्यवस्था में बांधने योग्य मानव समाज के ज्ञान की वृद्धि और हित के लिए सबसे प्रथम, उच्चकोटि के पुरुष को ही प्रजाओं का पालक, राजा करे। और 'इला' भूमि और वेदवाणी को मनुष्यों के शासन करने वाली बनावें। प्रजागण अपने अपने पिता के पुत्र के समान पालने योग्य हों।

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१२॥

भा०—हे ज्ञानवन् परमेश्वर ! अग्रणी नायक राजन् ! सभाध्यक्ष ! हे सुख के देने हारे, राष्ट्र का विजय करने वाले ! तू ऐश्वर्य से युक्त हम सम्पन्न प्रजाजनों की और हमारे शरीरों और हमारे सन्तानों के शरीरों की अपने पालनकारी साधनों से रक्षा कर। तू हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तति के निमित्त अपने नियम शासन व्यवस्था में बिना किसी प्रमाद के, निरन्तर उनके प्राणों की रक्षा करता हुआ भी उनकी गौ आदि पशुओं और चक्षु आदि इन्द्रियों का भी पालक है।

उत्पादक वीर्य पालनकारी गुणों से सन्तति प्रसन्तति और उनके हस्त, पाद, चक्षु आदि तक की निरन्तर पालना करता है। वीर्य में दोष आने से ही सन्तति में व्यंग आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

त्वम॑ग्ने॒ यज्य॑वे पा॒युरन्त॑रोऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे ।
यो रा॒तह॑व्योऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न्मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ॥१३॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! तू यज्ञशील, उपासक भक्तजन का रक्षा करने वाला है। तू अन्तर्यामी होकर निःसंग, साधक और चार आंखों वाला, अति सावधान, चौकन्ना अथवा चारों दिशाओं में व्यापक होकर हृदय में प्रकाशित होता है। और जो तू वृक के समान हिंसक न होकर अहिंसक सौम्य होकर रहने वाले और सबके पालन पोषण करने वाले पुरुष को ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह तू अपनी स्तुति

करने हारे भक्त के उस नाना प्रकार के मन से विचारित मन्त्र, वेदमन्त्र या मनन संकल्प को भी स्वीकार करता है।

राजा, विद्वान्, सभापति आदि के पक्ष मे—तू सन्धि करने वाले, अपने से संगत पुरुष का शासन करता है। निष्पक्षपात के लिए चौकन्ना एव चारों दिशाओ मे सावधान होकर या चतुरंग बल से युक्त होकर प्रदीप्त तेजस्वी होकर रहता है और वृत्ति से रहित अपने पोषक को ऐश्वर्य देता और किये हुए मन्त्र, विचार को मन से चाहता और मानता है। अथवा चोर आदि वृत्ति से रहित सर्वपोषक तुझको जो अन्नादि प्रदान करता है उस अपने प्रजाजन के किये मन्त्र, सम्मति को मन से स्वीकार करता है। सच्चा रक्षक राजा अपनी पालक प्रजा के मत का शासन-प्रबन्ध में आदर करता है। और भक्षक राजा सदा प्रजा को चूसता, चुराता और प्रजामत का तिरस्कार करता है।

वीर्य-पक्ष में—निःसंग ब्रह्मचर्य के पालक, वीर्यरक्षा करने वाले के शरीर के भीतर वीर्य तेजरूप से चमकता है। वह विद्वान्, अन्नभोक्ता को मनन शक्ति प्रदान करता और उसी मे व्यय हो जाता है।

त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद्रेक्ण॑ः पर॒मं व॒नोषि॒ तत् ।
आ॒ध्रस्य॑ चि॒त्प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पाकं॒ शास्सि॒ प्र दिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः ।

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! विद्वन् ! सभाध्यक्ष ! तू जब अति अधिक स्तुतिशील एवं विद्वान् वाणी से स्तुति करने वाले और उस द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले विद्वान् को नाना प्रकार के उस परम, सर्वश्रेष्ठ चाहने योग्य, धनैश्वर्य प्रदान करता है तव तू उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर सब प्रकार से धारण पोषण योग्य राष्ट्र या दुर्बल दीन प्रजाजन का भी पिता, पालक पिता ही कहाता है। और तभी परिपक्व ज्ञान का भली प्रकार उपदेश करता है। और तू विद्वानों मे श्रेष्ठ होकर प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्या के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है, उनसे ऊपर अपना विचार रखता और देता है।

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥१५॥३४

भा०—हे अग्ने! ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वान् यज्ञकर्त्ता और यज्ञाग्नि जिस प्रकार दान-दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और खूब दृढता से सीया हुआ कवच जिस प्रकार युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू परमेश्वर अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रियाशक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम मे रखने वाले साधक पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करता है। और जो पुरुष अपने निवास योग्य गृह या देह में उत्तम स्वादयुक्त, पुष्टिकारक जल, अन्न खाता और अपने आपको सुखी रखता हुआ, प्राण धारण करने के निमित्त आजीवन यज्ञ करता है वह सूर्य के समान सुखप्रद जाना जाता है। इसी प्रकार राजा भी उत्तम शास्त्रादि ज्ञान के देने वाले पुरुष की कवच के समान रक्षा करे। अपने राष्ट्र में सब प्रजा को सुख दे. समस्त प्राणियों को अन्न दान करे। वह सूर्य के समान दानशील तेजस्वी है। इसी प्रकार शरीर में जाठर अग्नि और वीर्य भी सयतवीर्य वाले यति की रक्षा करता, उत्तम अन्न के भोक्ता को आजीवन सुखपूर्वक प्राण प्रदान करता है, वह 'सूर्य' या स्वर्ग के समान है। आरोग्य परमं सुखम्। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्॥१६॥

भा०—हे अग्ने! ज्ञानवन्! परमेश्वर, विद्वन्! तू हमारे नाश करने वाली इस वर्तमान अविद्या को या हिंसाभाव को दूर कर। जिस तेरे पास हम इतनी दूर से भी इतना लम्बा मार्ग चल कर तुझे प्राप्त हुए हैं वह तू ज्ञानवान् पुरुषों में भी सबसे अधिक उत्कृष्ट ज्ञान वाला, पालक और सदा आप्त, बन्धु है। तू ही मनुष्यों के हित के लिये सूर्य के समान सर्वत्र व्यापक या सत्यासत्य के विवेचक तर्कों, युक्ति प्रमाणों का उपदेष्टा है।

शरीर-गत वीर्याग्नि हमारे जीवन नाश को दूर करता है जिससे हम लम्बे जीवनपथ को पार कर लेते हैं। वह शरीर का बन्धु, पालक है। सौम्य, वीर्य रक्षक पुरुषो का पालक और मनुष्यो मे ज्ञानी, ऋषियो और शरीर मे इन्द्रियो, प्राणों का उत्पादक और बलकारक है।

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् १७

भा०—हे अग्ने ज्ञानवन्! अग्नि के समान तेजस्विन्! हे अङ्गिरः, सूर्य के समान प्रकाश वाले! वायु के समान समस्त ससार के अंग अंग मे व्यापक! हे शुचे परम पावन! पवित्र आचार वाले! तू मननशील पुरुषों से युक्त होकर, तेजस्वी, बलवान् पुरुषो से युक्त होकर, विद्याओं के पार और सग्राम मे आगे बढ़ने वाले वीर पुरुषो से युक्त होकर और अपने से पूर्व विद्यमान गुरु, माता, पिता और पूज्य पुरुषो से युक्त होकर राजसभा-भवन में या मुख्य पद पर हमे प्राप्त हो। तू विद्वानों और राजाओ के हितकारी पुरुषो को प्राप्त करा। और सबके प्रिय, पुरुष को आसन पर, प्रजाजन के ऊपर शासन के लिये स्थापन कर और उसको उचित वेतन आदि प्रदान कर। अथवा मननशील, तेजस्वी और प्रयाण मे कुशल पुरुष के समान राजसभा मे या मुख्य आसन पर आ।

वीर्याग्नि पक्ष मे—शुक्र रूप अग्नि अंग अग मे व्याप्त रस या बल के सहित, क्रिया शक्ति से युक्त होकर गृहरूप देह मे प्राप्त है। सन्तति जनन में कुशल उत्पादक अंग को प्राप्त होता और सुख प्रदान करता है।

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या १८।३५

भा०—हे अग्ने, ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू इस महान् वेद ज्ञान, महान् ब्रह्म अर्थात् संचालक बल और ब्राह्म बल से बढ़। हम जो कुछ भी तेरे निमित्त शक्ति से और ज्ञान से करें तू तो हमें उत्तम धन

ऐश्वर्य प्राप्त करा। और हमें उत्तम मति, बुद्धि और ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त कर। वीर्याग्नि पक्ष में ब्रह्म=अन्न। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[३२]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषि.॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुभः। १, ३, ५, ७ विराट् १ २, ४, ८, ९, १०, १२, १३, १५ निचृद्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

भा०—मैं इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, वायु के समान बलवान्, राजा और सेनापति के बलयुक्त उन कर्मों का उपदेश करता हूं जिन अति उत्तम बल के कार्यों को छेदन भेदन करने में कुशल वह करता है। [१] जिस प्रकार सूर्य या वायु मेघ को प्रकाश और प्रबल वेग से आघात करता है उसी प्रकार जीता, न छोड़ने योग्य शत्रु को राजा भी प्रताप और पराक्रम से आघात करे। जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ पर आघात करके तदनन्तर उसमें से जलों को नीचे गिराता है उसी प्रकार पराक्रमी राजा भी शत्रु-सेनाओं को बार बार पीड़ित करे। और विद्युत् और वायु जिस प्रकार पर्वतों और मेघों की कोखों और तटों को विदीर्ण करता है और उनमें से नदियों और जल-धाराओं को बहा देता है उसी प्रकार राजा भी पर्वत के समान अचल, दृढ, शत्रु-राजाओं के कोखों या पार्श्व के दृढ रक्षा स्थानों को तोड डाले और शत्रु-सेना के प्रवाहों को छिन्न भिन्न कर दे। अथवा प्रजा के हित के लिये पर्वतों के पासों से नदी, नहरों को बहा दे।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥

भा०—पर्वत या मेघमण्डल में आश्रय लेने वाले मेघ को जिस प्रकार कान्तिमान् सूर्य या वायु आघात करता है और राजा के लिये त्वष्टा शिल्पी जिस प्रकार शस्त्र बनाता है उसी प्रकार वायु घोर

गर्जना करने वाले और अतितापदायी विद्युत् रूप वज्र को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार विजयशील राजा पालन करने में समर्थ गिरि पर्वत या बडे राजा के आश्रय पर रहने वाले अपने, न जीता छोड़ने योग्य, वध्य शत्रु को मारे। और त्वष्टा, कारीगर शिल्पी उसके मारने के लिये अति गर्जनाकारी, अतिताप या अग्नि से चलने योग्य शस्त्र को बनावे। और जिस प्रकार दुधार गौएं दूध की धाराएं प्रेमवश बहाती हुई बछड़े के पास वेग से जाती हैं उसी प्रकार जलधाराएं भी प्रकट रूप में, अति शीघ्र बहती हुई अन्तरिक्ष और समुद्र को पहुंच जाती हैं, उसी प्रकार प्रजाएं शीघ्र ही प्रेम से वशीभूत अतिद्रवीभूत होकर समुद्र के समान गम्भीर राजा के पास आवें।

वृषायमा॑णोऽवृणीत॒ सोमं॒ त्रिक॑द्रुकेष्वपिबत् सु॒तस्य॑।
आ साय॑कं म॒घवा॑दत्त॒ वज्र॒मह॑न्नेनं प्रथम॒जामही॑नाम् ॥३

भा०—वृष, वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ जिस प्रकार गौओं में वीर्य सेचन करता है, उसी प्रकार भूमियों को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य तीनों लोकों में अथवा तेज, किरण, वायु द्वारा उत्पन्न जगत् के जलीय अंश को प्राप्त करता और पान कर लेता है। और जल और तेज से पूर्ण सूर्य मेघ का अन्त कर देने वाले विद्युत् रूप तेजोमय वज्र को लेता है और मेघों में सबसे प्रथम उत्पन्न महा मेघ को आघात करता है। उसी प्रकार विजयेच्छु राजा बरसते मेघ के समान शस्त्र वर्षण में कुशल होकर, उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्राप्ति, पालन और शत्रुनाश इन तीनों कार्यों के निमित्त अथवा सेना, राष्ट्र और प्रजा इन तीनों के आधार पर सोम अर्थात् राष्ट्र को स्वीकार करे, और उसका भोग करे। वह ऐश्वर्यवान्, समृद्ध होकर शत्रु के वर्जन करने में समर्थ विद्युत् के समान तीव्र, तेजस्वी बाण आदि अस्त्र को ले और अत्याज्य, अवश्य वध करने योग्य शत्रुओं में से भी सबसे मुख्य, प्रथम कोटि में दीखने वाले प्रबलतम शत्रु को मारे।

यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनामामिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से॥४॥

भा०—हे इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! जिस प्रकार मुख्य प्रबल मेघों वा अन्धकारों को नाश करके वायु सूर्य को उषा-काल और आकाश को प्रकट करता है और समस्त मायावी रात्रिचरों की हिंसाकारी चेष्टाओं का नाश करता है, बाद में अन्धकार कहीं दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार तू भी अवश्य वध करने योग्य शत्रुओं में से सबसे प्रबलतम शत्रु को जब हे राजन्! तू मारे तब मायावी कुटिलाचारी लोगों की छल, कपट आदि कुटिल आचरणों का अच्छी प्रकार नाश कर। और उसके अनन्तर सूर्य के समान तेजस्वी आकाश के समान विस्तृत और उषाकाल के समान तमोनाशक अपने स्वरूप को प्रकट कर। और तभी तू अपने राष्ट्र में निश्चय से शत्रु को भी नहीं प्राप्त कर सकेगा। अर्थात् शत्रु का नाश होकर उसका मिलना असम्भव हो जाय।

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः॥५॥३६

भा०—इन्द्र, सूर्य और तीव्र वायु जिस प्रकार नाना कन्धों के समान उठे शिखरों वाले, आकाश को घेर लेने वाले मेघ को बड़े भारी वज्र, विद्युत् से आघात करता है और वह मेघ पृथिवी के ऊपर पानी के में गिर पड़ता है, उसी प्रकार शत्रुहन्ता राजा नाना सेनास्कन्धों या सेनांगों से युक्त बल और ऐश्वर्य में बहुत अधिक बढ़ने वाले शत्रु भी बड़े भारी हिंसाकारी शस्त्रसमूह से आघात करे, मारे। कुठार से प्रकार वृक्ष के डालों को काट दिया जाता है इसी प्रकार तीक्ष्ण से शत्रु के कन्धे और सेना के स्कन्ध और अंग विशेष रूप से काट दिये जायं। जिससे अवश्य वध योग्य शत्रु पृथिवी के ऊपर पड़ा सदा के लिए सोये।

वृत्रं—वृत्रो वृणोतेर्वा, वर्त्ततेर्वा, वर्धतेर्वा, यद्वृणोत्। तद् वृत्रस्य

वृत्रत्व यदवर्त्तत तद् वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते । यदवर्धत तद् वृत्रत्वमिति विज्ञायते । निरु० २ । १७ ॥ इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥

भा०—बुरे, पापमय मद, भोगविलास से तृप्त होने वाला व्यसनी, एवं अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायो से अपने भोग विलास पूर्ण करने वाला पुरुष बडे वीर, अनेको शत्रुओ को पीडन करने मे समर्थ, उत्तम गुणो, उत्तम ऐश्वर्यों के अर्जन करने वाले अथवा ऋजु, सरल मार्ग पर जाने वाले धर्मात्मा, नीतिमान्, सग्रहशील पुरुष को लडना न जानने वाले अकुशल योद्धा के समान युद्ध मे ललकार ले। तो वह दुर्व्यसनी पुरुष इस महावीर धर्मात्मा पुरुष के शस्त्रास्त्रो के एक साथ होने वाली कडी मार या एक साथ आने वाले प्रहार को पार नहीं कर सकता। वह उससे बच नही सकता। सूर्य या वायु का शत्रु मेघ जिस प्रकार वज्र से ताडित होकर नदियो को और उनके तटो को तोड़ फोड़ देता है और नदियां विक्षुब्ध होकर भागती हैं उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् धर्मात्मा राजा का वह शत्रु दुर्व्यसनी विरोधी भी अपनी अति पीडित सेनाओ, प्रजाओं को पीस डालता है, मरवा डालता है और वे मर्यादा तोडकर भागने लगती है।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥७॥

भा०—यदि वे पाव का लङ्गडे के समान निराश्रय, वे हाथों का ठूला, नि.शस्त्र, अल्पसेना वाला होकर कोई दुर्मद पुरुष पूर्वोक्त ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा के विरुद्ध सेना सहित युद्ध करे तो इस धार्मिक, बलवान् राजा का शस्त्र, सेनाबल, वीर्य, पराक्रम उसको मेघ को जिस प्रकार वायु का तीव्र विद्युत् मेघ के उठे कन्धो पर वज्र-आघात करता है, उसी प्रकार उसके कन्धे या अवयव पर सब तरफ से उसे प्रहार

करता है। और जिस प्रकार वधिया, नपुंसक बैल खूब बलवान् सांड के मुक़ाबले पर आकर जगह-जगह विविध प्रकार से पटका जाकर लोट-पोट हो जाता है उसी प्रकार वह बधिया, नपुसक बैल के समान निर्बल पुरुष भी सांड के समान बलवान् राजा के मुकाबले पर आना चाहता हुआ बहुत से स्थलों पर विविध प्रकार से परास्त होकर बिजली की मार खाये हुए मेघ के समान भूमि पर आ पडता है।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥

भा०—जलधाराएं जिस प्रकार प्रजाओं के चित्त पर चढी, अति चित्ताकर्षक होकर इस पृथ्वी के साथ सोये हुए प्रशान्त, टूटे तटवाले महानद को उसके तट तोड़कर उससे जा मिलती है। उसी प्रकार सेनाएं भी मनोरथ पर चढी हुई इस पृथ्वी के ऊपर सोते हुए टूटे फूटे देह को रण मे छोडकर भाग जाती है। और जिस प्रकार मेघ जिन जलधाराओं को अपने बड़े भारी सामर्थ्य से थामे रहता है, उनका धारण करने वाला मेघ वज्र से ताड़ित होकर पावों तले आ पडता है, उसी प्रकार वर्द्धमान शत्रु अपने बढे हुए सामर्थ्य से जिन सेनाओं के ऊपर सेनापति, शासक रूप से रहता है उनका ही वह अत्याज्य स्वामी युद्ध मे पछाड़ खाकर पांवो तले रोंदा जाता है।

'पत्सुत -शीः'—पादशब्दस्य सप्तमीबहुवचने पदादेशे कृते इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते इति सप्तम्यर्थे तसिल् । लुगभावश्छान्दसः। अथवा 'सु' इत्युपजनः।

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९॥

भा०—इन्द्र, तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार इस अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर अपने आघातकारी विद्युत् आदि का प्रहार करता है तब अन्तरिक्ष को ढांप लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने

वाली अन्तरिक्ष-भूमि भी जल को नीचे गिरा देती है, मानो स्वयं मर सी जाती है। तब अन्तरिक्ष रूप माता तो ऊपर रहती है और उसका पुत्र मेघ नीचे आ पडता है। तब बछड़े सहित गाय के समान वह खण्डित वृत्र, माता के नीचे ही पडा रहता है। इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा इस पृथिवी के ऊपर अपना शस्त्र प्रहार करता है और बढ़ते, उमड़ते शत्रु को अपने पुत्र के समान गोद या बीच मे लिये सेना भी निम्न, बलहीन हो जाती है। उस समय उस सेनापति को अभिषेक करने वाली सेना तो उठी खड़ी रहती है और उसका पुत्र के समान प्रिय अथवा सेना के पुरुषो का पालनकर्त्ता, सेनापति नीचे गिरा होता है। उस समय वह सेना खण्डित बल होकर बछड़े सहित गाय के समान खडी रहती है।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥२७॥

भा०—सूर्य को ढक लेने वाले मेघ का शरीर, स्वरूप कहीं भी स्थिति न पाने वाले, अस्थिर, कही भी न बैठने वाले, निराश्रय वाष्प-रूप जलों के बीच मे गुप्त, अप्रत्यक्ष, छुपे रूप से रक्खा रहता है। जब जलधाराएं होकर विविध रूप से वह जाती हैं तब बिजली से पछाड़ खाया हुआ मेघ विस्तृत, गिरे जल के रूप में आ गिरता है। ठीक उसी प्रकार जब घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु का शरीर भी कहीं भी आसन वृत्ति से स्थिर न होने वाली और कहीं भी निवेश या छावनी बनाकर न बैठने वाली, यात्रा करती हुई क्षुद्र आस्था या स्थिति वाली सेनाओ के बीच मे मृत रूप से, बेनाम निशान होकर गिर पडता है तब सेनाएं भी जलधाराओ के समान विविध दिशाओ में भाग जाती हैं। और प्रबल शत्रुहन्ता राजा के द्वारा आघात खाया हुआ शत्रु गहरे अन्धकार, खेद, मरण मे पडा रह जाता है। अर्थात् निर्बल सेनाओ को देख कर विजिगीषु उसके मुख्य सेनापति पर आघात करे तो सेनाएं अस्थिर

स्वभाव होने से आप ही भाग जाती हैं और शत्रु मरा पड़ा रहता है।
इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११॥

भा०—जिस प्रकार वणिक् जनो या पशुओं के व्यापारी से रोकी हुई गौएं निश्चेष्ट खडी रहती हैं और जिस प्रकार मेघ मे सुरक्षित जल-धाराएं अन्तरिक्ष मे रुकी खड़ी रहती हैं, नीचे नहीं गिरतीं, उसी प्रकार आश्रय रक्षा के देने वाले राजा या सेनापति को अपना पति पालक मानने वाली, आक्रामक शत्रु द्वारा सुरक्षित रहकर सेनाएं युद्ध मे स्थिर भाव से रुकी खड़ी रहती हैं। और जो जलो के रहने का अवकाश ढका रहता है उसको वहने से वारण करने वाले कारण को आघात करने वाला विद्युत् और वायु दूर कर देता है। उसी प्रकार सेना जनो का जो भरण पोषण करने वाला साधन ढका हुआ, सुरक्षित रूप से होता है उस शत्रु का प्रबल हन्ता राजा मार कर दूर कर देता है। अर्थात् पालक सेनापति ही सेनाओं को रोके रहता है। प्रबल राजा उसको मार कर अधीन सेनाओं का नाश करता है वा भय से भगा देता है।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

भा०—हे इन्द्र ! वीर राजन् ! जब विजय करने की इच्छावाला शत्रु अकेला ही तेरे प्रति आघात करता है तब तू भी अश्वारोही सेना में कुशल होकर एकमात्र या शस्त्रबल, वज्र के आश्रय पर ही सेना द्वारा वरण करने और शत्रु को वारण करने मे समर्थ हो। और तू अकेला शत्रु के गौ आदि पशुओं तथा शत्रु की भूमियों को भी विजय कर। हे शूरवीर ! तू ही भूमि और आकाश के सात प्रकार जलाशयों के तुल्य तीव्र वेग से जाने वाले सेना समूहों को चलाने के लिए ऐश्वर्य को प्रदान करता है।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

भा०—जब सूर्य और मेघ दोनो युद्ध करते हैं तब इस सूर्य तक न बिजली और न गर्जना ही पहुचती है। जिस जल वृष्टि और अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत् को भी मेघ चारो ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुंचती। और इन सब अपूर्ण, अस्थायी चेष्टाओ पर प्रकाशमान सूर्य विशेष रूप से जय पाता है। इसी प्रकार जब ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा और आक्रमणकारी शत्रु दोनो परस्पर युद्ध करते हैं तब जिस जलवृष्टि के समान फेंकी शरवृष्टि को और घोर गर्जना करने वाले महास्त्र, शतघ्नी को भी वह फेंकता है तब न वह बिजली के शस्त्र और न वह गर्जनाकारी शस्त्रास्त्र उस तक पहुचते हैं। बल्कि विविध ऐश्वर्यों का स्वामी वह उन बल और शक्ति से रहित, अपूर्ण शत्रु-सेनाओं को विशेष रूप से जीत लेता है।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

भा०—हे इन्द्र, सूर्य के समान तेजस्विन्! शत्रुदल के नाश करने वाले राजन्! यदि शत्रु पर प्रहार करते हुए तुझे भय व्याप जाय तो मेघ के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले किसको तू देखता है? जिस प्रकार बाज डरकर निन्यानवे अर्थात् असंख्य नदियो को, अनेक लोकों को पार कर जाता है उसी प्रकार यदि तू भय करे तो तू भी सैकडो नदियों और जनपदो को छोड भागे। इसलिये निर्भय होकर शत्रु को मार। जब वीर पुरुष को भय व्यापता है तो वह मैदान छोडकर बुरी तरह से भागता है। पर प्रबल वीर के सिवाय शत्रु पर आक्रमण भी कौन करेगा यह सोचकर वह धैर्य से युद्ध करे, अधीर न हो।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

भा०—इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, सूर्य के समान तेजस्वी वज्र या शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में वश किये दीप्तिमान् राजा शत्रु पर आक्रमण करके, सफल होकर युद्ध समाप्त कर देने वाले पराजित दल का और शान्ति युक्त तपस्वी जनों का और हिंसाकारी सेनादल का भी स्वामी होकर रहता है। और वह ही प्रजाओं के बीच राजा होकर रहता है। चक्र के अरों पर जिस प्रकार लोहे का हाल चढ़ा रहता है उसी प्रकार वह राजा भी उन समस्त प्रजाओं को चारों ओर से घेरे रहता, उन पर वश किये रहता है। अथवा 'अवसित' चराचर जगत् का और 'शृङ्गी' सींगवाले पशुओं का भी वह राजा होता है, वह उन पर वश किये रहता है।

अध्यात्म में और परमेश्वर पक्ष में भी इन १५ मन्त्रों की उत्तम योजना है, जो स्थानाभाव से नहीं लिखते।

इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः।

अथ तृतीयोध्यायः।

[३३]

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुभः (१, २, ४, ७, ८, ९, १२, १३ निचृद्। ५, ११ विराट्। १४, १५ एकोना विराट्)। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

एतायामोप॑ ग॒व्यन्त॒ इन्द्र॑म॒स्माकं॒ सु प्रम॑तिं वावृधाति।
अ॒ना॒मृ॒णः कु॒विदाद॒स्य रा॒यो गवां॒ केतं॒ पर॑मा॒वर्ज॑ते नः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आओ। हम अपनी इन्द्रियों, वाणियां और उत्तम स्तुतियों की कामना करते हुए उस परमेश्वर की शरण को प्राप्त हों। वह हमारे उत्कृष्ट कोटि के बुद्धि और ज्ञान को अच्छी प्रकार बढ़ावे। उसका कोई भी मारने वाला नहीं। वह नित्य सदा अमर,

अजातशत्रु है। और इस ऐश्वर्य, वेदवाणियों और इन्द्रियों के सर्वोच्च ज्ञान को बहुत बार हमें प्रदान करता है। वह ज्ञान को देता और अज्ञान का नाश करता है।

राजा के पक्ष में—हम गवादि पशुओं और भूमियो की इच्छा करने वाले राजा को प्राप्त करें जो हमारे उत्कृष्ट ज्ञान और शत्रुस्तम्भक बल को बढ़ावे। वह अजातशत्रु हो। वह अपने ऐश्वर्य और पशु सम्पदा के उत्तम ज्ञान को नाना प्रकार से दान करे।

आचार्य-पक्ष में—हम वेदवाणियो के इच्छुक होकर उत्तम ज्ञानवर्द्धक अहिंसक आचार्य को प्राप्त हों। वह वाणियों के उत्तम ज्ञान को प्रदान करे।

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥

भा०—बाज पक्षी जिस प्रकार अपने प्रिय निवासस्थान को जाता है मैं उसी प्रकार ऐश्वर्य देने वाले चक्षु आदि इन्द्रियों से न दीखने वाले, अगोचर अथवा अनुपम, उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को उसके गुणों का बहुत अधिक ज्ञान कराने वाले, उपमानों द्वारा वर्णन करने वाले स्तुति-वचनों से प्रभु की नमस्या, वन्दना करता हुआ अतिवेग से विह्वल होकर उस प्रभु को प्राप्त होऊं जो प्रति प्रहर या इस संसार में गुण, स्तुति करने वाले भक्तों के सदा स्मरण और स्तुति करने योग्य होता है।

राजा के पक्ष में—शत्रुओं से अजेय, धनदाता राजा को मैं प्रिय वसतिस्थान को जाने वाले पक्षी के समान प्राप्त होऊं। नाना उपमाओं से युक्त स्तुतियो से उसकी स्तुति करूं। वह विद्वानो का भी इस जगत् या लोक मार्ग में पूज्य होता है।

नि सर्वसेन इषुधीरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

भा०—समस्त सेनाओ का स्वामी, सब तरफ धावा करने वाली सेनाओं का स्वामी राजा जब बाणों से भरे तर्कसों को बांध लेता है तब

प्रजाओं का स्वामी जिसका तेज चमकता है, वह भूमियों और गौ आदि पशुओं को प्राप्त कर रक्षा करता है। हे ऐश्वर्यवन्! हे अति अधिक शक्ति में बढ़े हुए! तू बहुत अधिक सुन्दर, भोगने योग्य उत्तम धन को प्रदान करने वाला होकर हमारे लिये वैश्य के समान बदले में कुछ चाहने वाला मत हो। अथवा सत्य व्यवहारी होकर हमारे विपरीत मत हो। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर इन अर्थात् सूर्य से युक्त समस्त जगतों का स्वामी, आत्मा से युक्त समस्त प्राणियों का स्वामी होने से 'सर्वसेन' है। व्यापक और ज्ञानवान् होने से 'अर्य' है। वह जिस पर प्रसन्न होता है उसको ज्ञान वाणियां या प्रकाश की किरणें प्रदान करता है। हे परमेश्वर! तू बहुत ऐश्वर्य देने वाला सबसे महान् है। तू हमसे वैश्य के समान बदले में कुछ नहीं मांगता।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रु के विनाश करने हारे! सूर्य के समान तेजस्विन्! शक्तिशाली प्रयत्नों और सहायकों सहित अकेला विचरता हुआ भी तू आघातकारी, कठिन शस्त्र से अन्यों को नाश करने वाले चोर डाकू के समान पीड़ाकारी धनैश्वर्य युक्त मदमत्त पुरुष को भी अवश्य विनाश कर। और तू प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुषों का विनाशक होकर तेरे धनुष के ऊपर अयज्ञशील, अधार्मिक, परस्पर संगति न करने वाले, परस्पर द्रोही अथवा राजा को कर न देने वाले, दूसरों के माल स्वयं चाबने वाले, क्षुद्र भोगी पुरुष, स्वल्प ऐश्वर्य वाले, अल्पधनी, दरिद्र विविध रूप से भी आक्रमण करें तो वे क्षुद्रभोगी लोग मरण को प्राप्त हों।

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! राजन्! परस्पर मिलकर संगति

में रहने वाले, सुसंगठित एवं धर्माचरणशील ईश्वरोपासकों से स्पर्धा करने वाले, उनके मुकाबले पर आने वाले, असंगठित, अदानशील, अधार्मिक पुरुष सदा तुझसे अपने सिर अवश्य परे फेर लेते है। वे मुख फेर कर परास्त हो जाते हैं। हे अश्व, हस्ती और वीर पुरुषो की सेनाओ के स्वामिन्! हे युद्ध मे स्थिर रहने वाले! तू आकाश से जिस प्रकार वायु मेघो को उड़ा देता है उसी प्रकार हे अति बलवन्! शत्रुओ को तपाने हारे! तू पृथिवी और आकाश दोनों में से नियम, सदाचार से रहित, व्रत या प्रतिज्ञा के पालन न करने वाले शत्रुओ को सर्वथा उड़ा दे, कठोर आज्ञा से दण्डित कर और आग्नेयास्त्रो के द्वारा विनाश कर दे। इति प्रथमो वर्गः ॥

युयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६॥

भा०—जब नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त या नई ही चाल या नई गति या युद्ध शिक्षा को सीखने वाले भूमि निवासी लोग अनिन्द्य, दोषरहित धार्मिक राजा की सेना से युद्ध करना चाहते हैं तो वे उसको प्रयत्न करते या प्रयाण करते है, तब बलवान् से लड़ने वाले नपुंसक, बलहीन पुरुषो के समान परास्त होकर शत्रु परम ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती राजा से भय खाते हुए नीचे उतरने वाले मार्गों से जलधाराओं के समान भाग जाते है।

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राज्य के स्वामिन्! तू इन रोते हुए और खाते पीते और नाना विनोद क्रीडाएं करते हुए भोगी विलासी पुरुषों को इस लोक, पृथ्वी के परे, पृथक् करके उनसे युद्ध कर और प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुष को अपने प्रखर तेज से सूर्य के समान जला दे और अभिषेक करने वाले एव तेरी स्वामी रूप से गुण स्तुति करते और

प्रस्ताव करने वाले विद्वान् गण के उपदेश और उत्तम ख्याति को ध्यान में रख, उसकी रक्षा कर ।

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥८॥

भा०—पृथिवी लोक, उसमें रहने वाले प्रजाजनों के ऊपर शासन प्रबन्ध को करने वाले और सुवर्ण के बने मणि के समान हितकारी और मनोहर, शिरोमणि नायक से शोभा को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होते हुए वीर पुरुष भी राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को नहीं लांघते, उससे बढ़ नहीं सकते । वह तेजस्वी बाधक शत्रुओं तथा अपने तक पहुंचने वाले जनों एवं सत्यासत्य के विवेचक पुरुषों के भी ऊपर अपने सूर्य के समान प्रखर तेज से शासन करता है, उनको अपने अधीन रखता है ।

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! राष्ट्र-पालक राजन् ! जिस प्रकार सूर्य प्रकाश और पृथिवी या आकाश और पृथिवी दोनों का अपने महान् सामर्थ्य से भोग या पालन करता है उसी प्रकार जब तू अपने महान् सामर्थ्य से राजा और प्रजा दोनों वर्गों को सब प्रकार से सुखपूर्वक भोगता और पालता है तब हे विद्वन् ! ऐश्वर्य वाले शत्रुहन्तः ! तू ज्ञानरहित पुरुषों को ज्ञान करने वाले विद्वान् वेदों और वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सब प्रकार से उपदेश कर और प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष को अपने बड़े शस्त्रों से नीचे गिरा कर भस्म कर डाल ।

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥

भा०—मेघ जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों के ही सीमा तक नहीं पहुंचते और गर्जना, अन्धकार आदि चमत्कार चेष्टाओं से भी धन और अन्न की देने वाली पृथिवी को या तेजप्रद सूर्य को वे नहीं दाब

सकते। उनके प्रति वर्षणशील सूर्य अपने सहायक वज्ररूप वायु या विद्युत् का प्रयोग करता है और अपने तीव्र तेज से अन्धकारमय गहरे मेघ से वेग से जाने वाली जलधाराओ को सब तरह से गौओ को गवाले के समान दूह लेता है, उनको जलरहित कर देता है। उसी प्रकार जो दुष्ट पुरुष न्याय, बल, पराक्रम, तेज और पृथिवी के शासनोपयोगी सीमा या मर्यादा को नही प्राप्त कर सकते, नहीं पालन करते और जो अपनी कुटिल बुद्धियो, कपट छल से भरी चेष्टाओ से ऐश्वर्य प्रदान करने वाली पृथ्वी या राजशक्ति के भी अधीन नही रहते उन पर बलवान् राष्ट्रपति पापो से निवारक अस्त्र बल का प्रयोग करे और अपने तेज से अन्धकार के समान क्लेशदायी शत्रु से वाणियो, भूमियो और पशु आदि समृद्धियों को सब प्रकार से दोह ले, उनका ऐश्वर्य प्राप्त स्वयं करके शत्रु की भूमियों का सर्वस्व प्राप्त कर ले। इति द्वितीयो वर्गः ॥

अनु॑ स्व॒धाम॑क्षर॒न्नापो॑ अ॒स्याव॑र्धत॒ मध्य॒ आ ना॒व्या॑नाम्।
स॒ध्री॒चीने॑न॒ मन॑सा॒ तमिन्द्र॒ ओजि॑ष्ठेन॒ हन्म॑नाहन्न॒भि द्यून् ॥११॥

भा०—अन्नों के प्रति या पृथिवी के प्रति जिस प्रकार जलधाराएं बहती हैं और इस मेघ का जल वा शरीर नावों से पार उतरने योग्य बडी २ नदियों के बीच मे भी सब ओर से आकर बढता है और सूर्य या वायु अपने सहज अति बलशाली आघातकारी शस्त्र, वज्र, विद्युत् से अपने प्रकाशो को उस मेघ के प्रति ताडित करता है उसी प्रकार समस्त आप्त जन और धाराओं के समान कुशल सेनाए अपने आपको धारण करने वाले प्रभु को या 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण पोषण करने वाले अन्न या वेतनादि वृत्ति की तरफ वह आती हैं, चली आती हैं। इस सूर्य के समान प्रतापी राजा या मेघ के समान वर्षणकारी प्रजापालक पुरुष का बल भी वेग से बहती बडी नदियो के समान बलशाली या आज्ञा पर चलाई जाने योग्य सेनाओ के बीच बढ जाता है। शत्रुहन्ता राजा अपने साथ चलने वाले स्तम्भक सेना, बल वा ज्ञान से और अति बल-

शाली, आघातकारी शस्त्र से कुछ दिनो मे ही उस अपने शत्रु को मुकाबला करके मार लेता है।

न्या॑विध्यदिली॒बिश॑स्य दृ॒ह्ळा वि शृ॒ङ्गिण॑मभिन॒च्छुष्ण॒मिन्द्रः॑ ।
याव॒त्तरो॑ मघव॒न् याव॒दोजो॒ वज्रे॑ण शत्रु॑मवधीः पृत॒न्युम् ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य भूमि के गढे, ताल, सरोवर, समुद्रादि मे विद्यमान जल के घनीभूत जलो को सब प्रकार से छिन्न भिन्न करता है और जिस प्रकार सूर्य, वायु और विद्युत् पृथिवी के जल को सोखने वाले शिखरो वाले मेघ को छिन्न भिन्न करता है इसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी भूमि के विजय करने मे समर्थ होकर पृथिवी के भीतर दुर्ग बनाकर छुपने वाले दृढ दुर्गों और उसके दृढ अगो को खूब वेध और प्रजा के समस्त सुख-ऐश्वर्यों को सोख लेने वाले, रक्तशोषी, अत्याचारी, हिंसाकारी साधनो से युक्त पुरुष को विविध प्रकारो से छेद भेद डाल। और हे सेनापते! तेरा जितना बल और जितना भी पराक्रम हो उस बल से तू सेना द्वारा युद्ध करने वाले शत्रु को मार, दण्डित कर।

अ॒भि सि॒ध्मो अ॑जिगादस्य॒ शत्रू॒न् वि ति॒ग्मेन॑ वृष॒भेणा॒ पुरो॑ऽभेत् ।
सं वज्रे॑णासृजद् वृ॒त्रमिन्द्रः॒ प्र स्वां म॒तिम॑तिर॒च्छाश॑दानः ॥१३॥

भा०—इस विद्युत् का सब तरफ जाने वाला वेगवान् प्रहार जिस प्रकार छिन्न भिन्न करने योग्य मेघो तक पहुचता है और जिस प्रकार तीखे सींगों वाले बैल से तट भाग तोड़े जाते है और जिस प्रकार अति तीक्ष्ण वर्षाने वाले बिजली से अन्तरिक्ष को पूर्ण करने या प्रजा को पालने वा मेघ को पूरने वाले जलो को सूर्य भेद डालता है और वह वायु जिस प्रकार प्रबल विद्युत् से जलमय मेघ को नीचे एक साथ घनीभूत करके गिरा देता है उसी प्रकार इस सेनापति का सब तरफ जाने वाला सैन्य-बल शत्रुओं को जा पकड़े और जीत ले। तीखे शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले अस्त्र से तोड़ दे। वह शत्रुहन्ता इन्द्र शत्रुवारक क्षात्र-बल से बढ़ते शत्रु को ला भिड़ावे और निरन्तर उसका घात करता हुआ अपनी आज्ञा,

घोषणा और स्तम्भन शक्ति या सेना को घूंसे या शस्त्र के समान खूब आगे बढ़ा दे ।

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

भा०—हे सूर्य और वायु के समान तेज और बल से युक्त इन्द्र, राजन्! तू जिसके बल पर युद्ध करने वाले दशो दिशाओ मे चमकने या विजय करने मे समर्थ और बलवान् एव शस्त्रवर्षण मे समर्थ वीर पुरुषगण की अच्छी प्रकार रक्षा करता है, तू उन शत्रुओ को काट गिराने वाले, शत्रु पर दूर से शस्त्रास्त्र फेंकने वाले वज्र या महास्त्र बल को इच्छा पूर्वक प्राप्त कर, रख । अश्वो के खुरो से उठाया धूलिपटल आकाश मे फैल जाय, तो भी श्वेतवर्ण के यश या देने वाली वसुन्धरा या स्वतः श्वेत कीर्ति का इच्छुक राजा तो शत्रु के नेतागणों के पराजय करने के लिए मैदान मे खड़ा रहे ।

मेघ-सूर्य के पक्ष में—सूर्य! तू उग्र रूप तीक्ष्ण प्रकाश को धारण करता है जिसके बल पर दशों दिशाओं मे चमकने वाले वर्षणशील योद्धा के समान युद्ध करने वाले मेघ या विद्युत् की भी रक्षा करता है । जब गौ आदि पशुओं से उठी धूल आकाश मे व्यापती है तब भी वह सूर्य ही मनुष्यों के हित के लिये आकाश मे विराजता है ।

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥

भा०—हे मघवन्, ऐश्वर्यवन्! इन्द्र! राजन्! जिस प्रकार सूर्य ग्रीष्म की दुःखदायी, प्राणियों का नाश करने वाली दशाओ में या जलों के निमित्त शान्तिदायक जल के वर्षाने वाले मेघ को प्राप्त कराता है उसी प्रकार तू दुष्ट पुरुषो द्वारा प्राप्त होने वाले वध, बन्धन आदि पीडाकारी अत्याचारों के होने पर उनको शान्त करने वाले पुरुष को भेज । हे राजन्! खेत को हलने के लिए किसान जिस प्रकार पृथ्वी के हितकारी

बलीवर्द को खेत में चलाता है और सूर्य जिस प्रकार खेतों में अन्न उपजाने के निमित्त भूमि के हितकारी किरणों को फेंकता है उसी प्रकार तू भी रणक्षेत्रों के विजय के लिए भूमि लोक के हितजनक उसके प्रबन्ध और शासन के भार उठाने में समर्थ नरपुंगव को भेज। इस भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन चिरकाल तक अपनी कृषि व्यापार आदि कार्य करें। हे राजन्! तू शत्रुता का आचरण करने वाले शत्रुओं और द्रोहियों को निकृष्ट कोटि की अति कष्टदायी पीडायें दे। इति तृतीयो वर्गः ॥

[३४]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—जगत्यः। १ विराट् (४ एकोना), २, ६, ८, ७ निचृत्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना। युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥१॥

भा०—हे सूर्य, चन्द्र और दिन रात्रि के समान, विद्या और अधिकारों में व्यापक! हे किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य को शेष न रखने वाले, पूर्णविद्या और ऐश्वर्यवान्! आज के समान सदा आप दोनों हम प्रजाजन के हित के लिए तीनों वार, तीनों प्रकार से अधिक सामर्थ्यवान् होओ। प्रथम, तुम दोनों का गमन या यात्रा करने का साधन, रथ आदि विशेष शक्ति से युक्त हो। और तुम दोनों का देने का सामर्थ्य भी बहुत अधिक हो। रात्रि जिस प्रकार दिन के साथ खूब अनुरूप होकर रहती है अथवा वस्त्र का जिस प्रकार शीत वेला के साथ सम्बन्ध और उपयोग है उसी प्रकार तुम दोनों के यत्र, नियम, साधन एक दूसरे के अनुरूप हों। आप दोनों विद्वान् पुरुषों द्वारा एक दूसरे को लक्ष्य करके नियम में बँधने वाले होकर रहो।

स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे पृथक् २ धन न रखने हारे, अथवा एक

दूसरे से विशेषरूप से पूर्ण अपरिचित दोनो एक ही ऐश्वर्यवाले ! हे एक दूसरे मे मन, वाक्, काय तीनो प्रकार मे व्यापक रहने वालो ! तुम दोनो तीनो प्रकार से हमारे बीच आज विद्वानो द्वारा एक दूसरे के सन्मुख होकर विवाह द्वारा बद्ध हो जाओ। तुम दोनो का यात्रा का साधन, रथ और देह परिमाण विशेष सामर्थ्यवान् हो। परस्पर के दान-प्रतिदान और प्रेम भी विशेष रूप से प्रबल और महत्वपूर्ण हों। तुम दोनो का यन्त्र, शरीरांग अथवा नियमपूर्वक वर्तने योग्य ब्रह्मचर्यादि व्रत या नियम बन्धन वस्त्र के लिए शीत के समान अति उपयोगी सुखप्रद अथवा दिन के साथ रात्रि के समान एक दूसरे की अवधि बनाने वाला हो।

विद्वान् शिल्पियों के पक्ष मे—वे पूर्ण विद्वान् हो। उनका रथ, ऐश्वर्य बडा और यन्त्रकला परस्पर अनुरूप हो। विद्वान्गण उनका सत्सग और साक्षात् करें।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा २

भा०—मधुर, सुखप्रद अन्न आदि और मधुर सुख और वेग आदि को धारण करने वाले रथ मे जिस प्रकार वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि, चक्र या यन्त्र हों। और उसमे सभी ही प्रेरक बल, वायु वा विद्युत् की ही वेगवती, गमन करने वाली शक्ति विद्वान् लोग बतलाते है। उसमें आलम्बन या आधार के लिए तीन खम्भे या दण्ड लगाये गये हों। वे उस रथ द्वारा वेगवान् यन्त्रकला के विज्ञ विद्वान् दोनो तीन वार दिन में और तीन वार रात्रि मे जाते हैं।

गृहस्थ-पक्ष मे—स्त्री और पुरुष दोनो का रमण साधन यह देहरूप रथ आनन्दप्रद होने से 'मधुवाहन' है। उसमे मन, वाणी और काय ये तीनो बलवान् वज्र हैं। उस सोम वीर्य की समस्त कान्ति या तेज को धारण करने के लिये समस्त विद्वान् उपदेश करते हैं। शरीर मे आलम्बन या आधार के लिए तीन ही स्कन्ध है शरीर, इन्द्रिय और मन। इनके

द्वारा स्त्री पुरुष दोनों दिन और रात में तीन वार अर्थात् वार २ एक दूसरे को प्राप्त हो। दिन रात दोनों एक दूसरे के सहायक हो। (मन्त्र संख्या चत्वारि शतानि ४००)

स॒मा॒ने अह॒न्त्रिर॑वद्यगोहना त्रिर॒द्य य॒ज्ञं मधु॑ना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाज॑वती॒रिषो॑ अश्विना यु॒वं दो॒षा अ॒स्मभ्य॑मु॒षस॑श्च पिन्वतम् ॥३॥

भा०—हे एक दूसरे के दोषों और निन्दनीय कार्यों को आच्छादित या गोपन करने वाले स्त्री पुरुषो ! एक ही दिन में आप दोनों तीन तीन वार, अर्थात् बहुत वार मधुर गुणवाले जल से, अन्न से, बल से और मधु के समान मधुर गुण से यज्ञ, आत्मा, शरीर और मन को नित्य सेचन करो। हे ऐश्वर्यों के भोक्ता, परस्पर प्रेमी स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों हमारे हित के लिए दिन और रात बलयुक्त अन्न, वेगवती शुभ कामनाओं और ज्ञान वाली प्रेरणाओं को तीन वार, वार वार सेचन करो। उनको पूर्ण करो।

राजा मन्त्री और रथी सारथि के पक्ष में—वे दोनों एक दूसरे के दोषों, मर्मों त्रुटियों को आघात होने से बचावें। वे प्रजापति पद या राज्यपद को मधुर सौम्यभाव से युक्त करें। बलवती सेनाओं को भीतर बाहर और सीमा पर रक्खें।

शिल्पीगण यन्त्र के दोष या मर्म की रक्षा करें, शिल्प यन्त्र घृत या स्निग्ध पदार्थ तेल आदि से वार वार सींचें। वेग वाली प्रेरणा देने वाली शक्तियों को लगावें। इसी प्रकार यज्ञ में पदार्थों को तीन २ वार योजण करें।

त्रिर्व॒र्तिर्या॑तं॒ त्रिरनु॑व्रते॒ जने॒ त्रिः सु॑प्रा॒व्ये॑ त्रे॒धेव॑ शिक्षतम्।
त्रिर्ना॒न्द्यं॑ वहतमश्विना यु॒वं त्रिः पृक्षो॑ अ॒स्मे अ॒क्षरे॑व पिन्वतम् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों व्यवहार करने और चलने योग्य उत्तम मार्गों को तीन वार अर्थात् वार २ जाओ आओ। अपने अनुकूल नियम धर्म पालन करने वाले उत्तम बुद्धि, दिन आदि के उत्पादक आचार्य आदि के अधीन वार वार रहो। सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने

वाले राजा या उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य के अधीन रहकर पठन, ज्ञापन और हस्त क्रिया से तीन वार अर्थात् वार वार ज्ञान का अभ्यास करो। आनन्दप्रद, सुख सामग्री को बढाने वाले कार्य को या ऐश्वर्य पुत्रादि को भी वार वार प्राप्त करो या पति पत्नी को तीन वार प्रदक्षिणा द्वारा उद्वाह करो। तुम दोनो तीन वार, वार वार हमे अक्षय जलो के समान अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

त्रिर्नो र॒यिं व॑हतमश्विना यु॒वं त्रिर्दे॒वता॑ता त्रिरु॒ताव॑तं॒ धियः॑।
त्रिः सौ॑भग॒त्वं त्रिरु॒त श्रवां॑सि नस्त्रि॒ष्ठं वां॒ सूरे॑ दुहि॒ता रु॑हद्रथ॑म् ॥५

भा०—हे विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनो हमारे लिए ऐश्वर्य को भी तीन तीन वार, वार वार प्राप्त कराओ। यज्ञो और विजय तथा विद्वानो के लिए ज्ञान और यज्ञादि कार्यों मे भी वार वार ऐश्वर्य लगाओ। और बुद्धियो और कर्मों को भी शरीर, मन, प्राण तीनो तरह से रक्षा करो। सुख से भजन करने योग्य परमेश्वर की भक्ति श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा और सुखपूर्वक सेवने योग्य ऐश्वर्य की प्राप्ति, रक्षण और वर्धन द्वारा भोग करो। और श्रवण करने योग्य वेद शास्त्रादि ज्ञानों और ख्याति लाभ करने वाले ऐश्वर्यों को भी उक्त तीनो प्रकारों से तीन वार प्राप्त करो। सूर्य की पुत्री प्रभा या कान्ति जिस प्रकार दिन और रात्रि के बने प्रभात, मध्याह्न और सायं नाम तीन आधारों पर तीन प्रकार से स्थित रथ पर आरूढ होती है उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा की सब कामों को पूर्ण करने वाली प्रजा भी तुम राजा मन्त्री दोनो के मन्त्र, धन और सैन्य बल इन तीनों पर आश्रित राज्यैश्वर्य पर सुख से तीन चक्रो वाले रथ पर नव-वधू के समान विराजे।

स्त्री पुरुषों के पक्ष मे—तेजस्वी विद्यावान्, विद्वान् की सब फलों के देने वाली वेद विद्या, धर्म, अर्थ, काम इन तीन पर स्थित होकर स्त्री पुरुषो के रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ के आश्रय पर रहे।

त्रिर्नो॑ अश्विना दि॒व्यानि॑ भेष॒जा त्रिः पार्थि॑वानि॒ त्रिरु॑ दत्तम॒द्भ्यः।
ओ॒मानं॑ शं॒योर्मम॑काय सू॒नवे॑ त्रि॒धातु॒ शर्म॑ वहतं शुभस्पती ॥६॥

भा०—हे विद्या और ज्ञान प्रकाश मे पारंगत विद्वानो! एवं रथी सारथी के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों जलों से प्राप्त करके पृथ्वी पर उगे वनोषधि से और तेजोमय धातु, लोह स्वर्णादि से बने नाना रोग निवारक पदार्थों को हमारे उपकार के लिए तीन तीन वार अर्थात् वार वार प्रदान करें। शान्ति सुख के चाहने वाले के योग्य मेरे रक्षाकारी उपाय निज बन्धु पुत्र को प्रदान करो और हे शुभ गुणों और आभरणों के पालक व धारक स्त्री पुरुषो! तीन धातु वात, पित्त और कफ के बने सुखद साधन देह को या तीन धातु के बने रोगनाशक आभूषण धारण करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्रिर्नो॑ अश्विना यज॒ता दि॒वेदि॑वे॒ परि॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीम॑शायतम्।
ति॒स्रो ना॑सत्या रथ्या परा॒वत॑ आ॒त्मेव॒ वातः॒ स्वस॑राणि गच्छतम् ७

भा०—हे जल और अग्नि के समान शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो! यज्ञ करने वाले, परस्पर संगत हुए आप दोनों प्रतिदिन तीन धातुओं से बने शरीर को पृथ्वी पर ब्रह्मचारी रहकर तीन वार या तीन दिनों तक शयन करो। हे कभी असत्य आचरण न करने वाले तुम दोनो! आत्मा जिस प्रकार एक देह से अन्य देहों मे और वायु जिस प्रकार एक स्थान से अन्य स्थानों मे स्वयं चला जाता है उसी प्रकार दूर दूर तक के देशों को रथ पर चढ़कर तीनो लोक अर्थात् उच्च, नीच और सम, अथवा जल, पर्वत और स्थल तीनों प्रकार के भूमि-भागों मे दिन रात स्वयं चलने वाले यानों द्वारा आओ। अथवा स्वतः गमनशील यान आदि रथ सब दिन चलाओ। स्त्री पुरुषों के प्रथम तीन रात्रि व्रतपूर्वक भूमि शयन की विधि गृह्यसूत्रों मे देखो। अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणा-वधःशायिनौ स्याताम्। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं। संवत्सरं वा। आश्व० गृ० सू० अ० १ । १०-१२ ॥

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रयं आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

भा०—हे सूर्य और वायु या चन्द्रमा, रथी सारथी के समान तुम दोनो पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, आकाश आदि सूक्ष्म तत्वों से पैदा होने वाले नदियो के समान निरन्तर बहने वाले, सूक्ष्म पदार्थों द्वारा तीनो वार करके आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ को सम्पादित करो। उनके लिए तीन आहुति योग्य पात्र हो और उन अन्नादि ओषधियो को दिनों और रातों मे अर्थात् दिन रात भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानो पर अच्छी प्रकार पहुचाने वाले आप दोनों प्रकाशमय किरणो की: ओर स्थित अति सुखप्रद आकाश की रक्षा करते हो।

क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥९॥

भा०—हे सत्यस्वभाव वालो ! आप लोग जिसके द्वारा यज्ञ या गन्तव्य मार्ग को जाते हो। उस त्रिवृत्, त्रिकोण भूमि, आकाश और जल मे चलने योग्य साधनो से सम्पन्न रथ के तीन चक्र कहां लगे हैं ? और जो तीन एक ही आश्रय मे जुड़े हुए विशेष बन्धन हैं वे कहां हैं। और वेग वाले अति शब्दकारी यन्त्राग्नि के समान या अश्व के समान सञ्चालक शक्ति का योग कब हुआ ? ये सभी प्रश्न विशेष जानने योग्य हैं।

अध्यात्म मे—अग्नि, वायु और तेज इन तत्वों के त्रिवृतीकरण द्वारा देह रूप रथ बना है। उसके वात, पित्त, कफ तीन चक्र हैं। सत्व, रजस, तमस् अथवा मन, वाक्, प्राण तीन दण्ड है। इसमे मुख्य प्राण वेगवान् अश्व है। ये सब कहा २ स्थित हैं ? और प्राण का देह मे कब योग होता है ? ये सब ज्ञातव्य बातें हैं। इसी रथ के द्वारा स्त्री पुरुष 'यज्ञ' रूप परमेश्वर के परम पद तक साधना और तपस्या द्वारा पहुचते है।

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१०॥

भा०—हे कभी असद् आचरण न करने वाले, सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों आदरपूर्वक आओ। अन्न आदि ग्रहण योग्य पदार्थ अग्नि में आहुति किया जावे। और आप दोनों मधु अर्थात् उत्तम अन्न और जल को पान और उपभोग करने वाले मुखों द्वारा मधुर अन्न का उपभोग करो। सर्वोत्पादक परमेश्वर और आचार्य उषाकाल के समान या ताप-कारक यौवनकाल के पूर्व ही तुम दोनों के अति अद्भुत घृतादि स्निग्ध या तेजस्वी पदार्थों से पुष्ट रथ के समान बने देह को यज्ञ के समान पवित्र कार्य, ब्रह्मचर्य और सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रेरित करे।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥११॥

भा०—हे सत्यवादी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग तेंतीस दिव्य गुणों, सामर्थ्यों से युक्त एवं हृष्ट पुष्ट होकर मधुर गुणों से युक्त, उपभोग योग्य नाना पदार्थों और सुखों से युक्त यौवन को प्राप्त करो। और अपने जीवन को ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षा आदि साधनों से खूब बढ़ाओ। और समस्त पाप कृत्यों को सर्वथा दूर करो, धो डालो। द्वेष करने वाले विरोधी, अप्रिय पदार्थों को दूर करो, उनके उपभोग, सहवास आदि का वर्जन करो। और दोनों परस्पर एक साथ मिल कर प्रेम से रहो। तीन दिनों में समुद्र और ११ दिनों में भूगोल को पार करो, [इति दया०] देह ही ३३ देवों की अयोध्यापुरी है, इसका वर्णन अथर्व० में देखो। राजा प्रजा या राजा और मन्त्री दोनों भी मधुपेय अर्थात् बलपूर्वक उपभोग्य राष्ट्र को ३३ शासकों सहित प्राप्त हों। अपना बल बढ़ावें। राष्ट्र से पापों और शत्रुओं को दूर कर, एकत्र होकर रहें।

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥१२॥५॥

भा०—हे नाना सुखों के भोगने हारे, एक दूसरे में हृदय से व्याप्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों हमारे बीच में रथ के समान मन, वाणी और

प्राण तीन बलो से चलने वाले, रमण साधन, रथ रूप देह से उत्तम वीरों से युक्त ऐश्वर्य के समान उत्तम प्राणों से युक्त वीर्य को धारण करो। नाना विद्याओ का श्रवण करते हुए तुम दोनो को मैं आचार्य ज्ञान की वृद्धि के लिये उपदेश करता हूं। तुम दोनो हम लोगो के बीच ज्ञानप्राप्ति, बल-प्राप्ति और ऐश्वर्यप्राप्ति के कार्य मे, सन्तानो और शुभ कार्यों द्वारा हमे बढ़ाने के लिये सदा तत्पर रहो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३५]

हिरण्यस्तुप आंगिरस ऋषि ॥ देवता.—१ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रि. सविता च। २—११ सविता ॥ छन्द —१ विराड् जगती। १, ६ निचृज्जगती। २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ८ एकोनाविराट्। ३, ४, ६ त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ह्वया॑म्य॒ग्निं प्र॑थ॒मं स्व॒स्तये॒ ह्वया॑मि मि॒त्रावरु॑णावि॒हाव॑से।
ह्वया॑मि॒ रात्रीं॒ जग॑तो नि॒वेश॑नीं॒ ह्वया॑मि दे॒वं स॑वि॒तार॑मू॒तये॑ ॥१॥

भा०—सुखपूर्वक समस्त जगत् के विद्यमान रहने के लिये सबसे पूर्व विद्यमान सर्वज्ञानी, परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ। इस जगत् में रक्षा, सत्य ज्ञान और जीवन रक्षा के लिये सबके प्रति स्नेही और दुःखों के दूर करने वाले प्राण और अपान दोनों के समान परमेश्वर के स्नेहमय और दुष्ट नाशक दोनों स्वरूपों की स्मरण या स्तुति करता हूँ। जगत् को अपने भीतर रखने वाली, रात्रि के समान सुखपूर्वक निद्रा में सुलाने वाली, सकल सुखदायिनी उस परमेश्वरी शक्ति की स्तुति करता हूँ। सबकी रक्षा और ज्ञान के लिये भी सर्वोत्पादक, सर्वप्रकाशक, सर्वद्रष्टा, सर्वसुखदाता परमेश्वर की ही स्तुति करता हूँ। वही सर्व प्रथम, सर्वाग्रणी होने से 'अग्नि' है। स्नेह और दुष्ट वारण द्वारा रक्षा करने से वही 'मित्र' और 'वरुण' कहाता है। जगत् को अपने भीतर लेने से परमेश्वर ही 'रात्रि' कहाता है। ज्ञानप्रद होने से वही 'सविता' और 'देव' कहाता है।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒नाऽऽदे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥२॥

भा०—काल रूप से सबका उत्पादक, प्रेरक सूर्य सबका प्रकाशक और वृष्टि, ताप आदि का देने वाला सूर्य जिस प्रकार स्वयं आकर्षण बल से युक्त, अथवा कृष्ण, प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक समूह के साथ भ्रमण करता हुआ और वृष्टि के द्वारा जल और प्राण, चैतन्य और मरणधर्मा शरीरधारी प्राणियों को स्थापित करता हुआ सर्व लोक हित-कारी और मनोहर अथवा तेजोयुक्त अति वेगवान् पिण्ड से समस्त उत्पन्न लोकों और प्राणियों को देखता हुआ जाता है उसी प्रकार परमेश्वर सर्वा-कर्षक लोकसमूहों के साथ उनमें व्यापक रह कर उनमें 'अमृत' मोक्ष-सुख और सत्य ज्ञान तथा 'मर्त्य' मरने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करता हुआ अति आनन्ददायक, तेजोमय, रस स्वरूप से समस्त लोकों को अन्तर्यामी रूप से साक्षात् करता हुआ, सुवर्ण के रथ पर स्थित राजा के समान हमें प्राप्त है। राजा सुवर्ण के रथ पर बैठ कर आगे घनी धूली सहित प्रयाण करता है। अमृत, सन्तति या अन्नादि मर्त्य, प्राणिगण सबकी व्यवस्था करता हुआ निरीक्षण करता जाता है।

याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम्।
आ दे॒वो या॑ति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः॥३॥

भा०—देव अर्थात् सुखप्रद वायु के समान राजा या शूर पुरुष नीचे के मार्गों से भी जाता है। वह ऊपर के मार्ग से भी जाता है। वह सत्संग करने योग्य चन्द्र सूर्य के समान वेगवान्, गतिशील काल के अवयव दिन और रात्रि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन के समान अतिदीप्ति-युक्त, श्वेत, सुन्दर घोड़ों से प्रयाण करता है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा सब दुःखों और दुष्ट पुरुषों को दूर करता हुआ दूर और पास भी सर्वत्र हमे प्राप्त हो। इसी प्रकार परमेश्वर नीचे ऊपर, दूर समीप, सर्वत्र प्रकाशस्वरूप होकर अपने आप गुणों से युक्त ज्ञानी और कर्म दो प्रकार के निष्ठ साधकों द्वारा उपास्य है। वह सब दुष्ट कार्यों को दूर करता हुआ हमें साक्षात् हो।

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥४॥

भा०—नाना प्रकार के अन्नादि उत्तम पदार्थों तथा प्रकाशो का देने द्वारा सूर्य जिस प्रकार जलों को अति सूक्ष्म करने मे समर्थ किरणो से व्याप्त सब तेजो, कान्तियों को धारण करने वाले सुवर्ण आदि धातुओं तथा उच्च ज्योतियो को भी शान्त कर देने वाली प्रखर शक्तियों से युक्त बड़े भारी गतिशील पिण्ड मे स्थित है। वह विचित्र तेजों से युक्त होकर प्रकाश से रहित और आकर्पण गुण वाले लोको को और स्वयं भी बड़ी भारी शक्ति को धारण किये रहता है। उसी प्रकार दानशील, पूजनीय, सूर्य के समान तेजस्वी राजा शत्रुओं को पीड़न करने वाले एवं लोहमय शस्त्रधारियों से घिरे हुए सब प्रकार के गज, अश्व, पदाति आदि को अपने वश करने वाले सुवर्ण या लोह की बनी शङ्कु या कीलों से जड़े बड़े विशाल रथ पर चढ़े। और विविध कान्तियों से युक्त होकर अन्धकार करने वाले धूलि पटलों या कर्पणशील अन्नोत्पादक प्रजा जनो को और बलवती सेना को धारण पोषण करने वाला हो।

वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः॥ ५ ॥

भा०—दिव्य, तेजस्वी और आकाश में विचरने वाले समस्त लोकों मे सर्वश्रेष्ठ सबके प्रकाशक, सूर्य के समान तेजस्वी एवं सबके उत्पादक परमेश्वर की गोद मे, उसके आश्रय मे समस्त प्रजाएं और समस्त लोक स्थित हैं। और ज्ञान करने योग्य, शुभ्र, विशुद्ध ज्ञान कराने वाले पादों, छन्दों के चरणों से युक्त, प्रकाशस्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अति रमणीय, आनन्द मय रस को धारण करते हुए वह परमात्मा मनुष्यों को विविध ज्ञानो का प्रकाश करते और स्वयं भी किरणो के समान प्रकाशित होते हैं।

सूर्य के पक्ष में—समस्त लोको मे पहुंचने वाले श्वेत किरणों वाले,

अग्नि रूप कान्ति का प्रयोग करने वाले, तापमय स्वरूप को धारण करते हुए और जन्तुओं को धारण पोषण करते हुए विविध रूप से प्रकाशित होते हैं उस सूर्य के आधार पर समस्त प्रजाएं और लोक भी सदा काल से स्थित हैं।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा के आश्रय पर समस्त प्रजाएं और सब लोक आश्रय लेते है। काले लाल रंग के, बैजनी रंग के, श्वेत चरणों वाले घोड़े सुवर्ण के जुए से सुशोभित रथ को ढोते और सब लोकों को राजा का वैभव दर्शाते है।

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥६॥६॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् तीन पदार्थ हैं। उनमें से दो अग्नि और विद्युत् सबके उत्पादक सूर्य के आश्रय हैं। और एक यम अर्थात् वायु के जो कि भुवन अर्थात् अन्तरिक्ष मे रहती है जो वीर पुरुषों को भी पराजित करने मे समर्थ है। रथ के भार उठाने में समर्थ रथ के धुरे पर जिस प्रकार रथ और उस पर स्थित पुरुष सम्भले रहते हैं उसी प्रकार वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान जीव गण स्थिर हैं। वे वायु में विचरते और उसके आश्रय पर जीते हैं। जो भी इस रहस्य को जाने वह इस विषय में सबको उपदेश करे।

सूर्य के पक्ष में—तीन द्यौ हैं आकाश, अन्तरिक्ष और यह पृथिवी। इनमे से दो सूर्य के आश्रय हैं आकाश और अन्तरिक्ष। एक यह भूमि नियन्ता राजा के शासन में है जो समस्त वीरों को अपने वश करती है। सकल जीवित प्राणी उसी पृथ्वी पर रहते हैं। जो ज्ञानी पुरुष है वह उनको उपदेश करता है। इति षष्ठो वर्गः॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

भा०—उत्तम सुखकारी रश्मियों से युक्त अति गंभीर, अज्ञात बल

और गतिवाला, सबको प्राणशक्ति देने वाला समस्त आकाश के प्रदेशों को विविध प्रकार से प्रकाशित करता है. परन्तु अस्त हो जाने पर फिर प्रश्न उठता है कि—अब वह सूर्य कहां है ? इस रहस्य को कौन विद्वान् जानता है कि इस सूर्य का रश्मिगण अब किस आकाश को व्याप रहा है। अर्थात् विद्वान् लोग ही उसकी गति स्थिति का ज्ञान रखते हैं। इसी प्रकार राजा भी गभीर, अगाध बलशाली अति बलवान् प्राणो मे रमण करने वाला, उत्तम मार्ग पर प्रजाओ को चलाने वाला उत्तम पालन करने वाले साधनो और शासको वाला, अपने राष्ट्र के भीतर स्थित प्रदेशों को विविध प्रकार के ज्ञानो का उपदेश करे। अब वह तेजस्वी सूर्य कहां है और उसकी रश्मि. शासन सामर्थ्य किस आकाश या स्थान या राजसभा, विद्वत् सभा को व्यापता है ? उसको कौन जाने ? अर्थात् तेजस्वी राजा की गति स्थिति दुर्बोध है।

अष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभ॑: पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न्।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥

भा०—हितकारी, मनोहर ज्योतिरूप व्यापनशील किरणों वाला प्रकाश और ताप का उत्पादक, प्रकाशमान सूर्य यज्ञशील पुरुष को उत्तम उत्तम रमण करने योग्य सुखों को देता हुआ आता है और वह पृथिवी के ऊपर आठों दिशाओं और सब पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले तीनों लोकों और सर्पणशील आकाशस्थ जलों को भी प्रकाशित करता है। उसी प्रकार कर आदि देने वाले प्रजाजन को उत्तम २ ऐश्वर्यों का प्रदान करता हुआ, सूर्य के समान तेजस्वी राजा हितकारी, रमणीय कृपादृष्टि से युक्त होकर आवे। वह आठों दिशा, तीनों सभाओं और सातों समुद्रों को विविध रूप से शासन करे। उन पर अपनी आज्ञा चलावे।

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑ पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते।
अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा द्याम्॑णोति ॥९॥

भा०—जलों के ग्रहण करने वाले, हाथों के समान ज्योतिर्मय किरणों को धारण करने वाला समस्त ओषधियों और अन्तरिक्ष में और जलों का उत्पादक विशेषरूप से समस्त लोकों को आकर्षण करने वाला होकर सूर्य आकाश और भूमि दोनों के बीच में गति करता है और रोगादि पीड़ा को दूर करता है और सबके प्रेरक और उत्पादक प्रकाश समूह को प्रकाशित करता है और अन्धकार के नाश करने वाले तेज से, अथवा तमोमय, प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक समूह के सहित आकाश को प्रकाश से भर देता है। उसी प्रकार राजा सभापति भी सबका आज्ञापक सुवर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने हाथ या अधिकार में रखने वाला और विविध प्रजाओं का द्रष्टा या आकर्षक, वशकारी होकर राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में विद्यमान रहे। वह प्रजा के पीड़क शत्रु और रोगों को दूर करे। वह सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करे तथा अपने आकर्षक तेज से राजसभा को प्राप्त हो।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

भा०—तेजोमय किरणों से युक्त सूर्य के समान सुवर्ण आदि धातुओं को अपने वश करने वाला, अथवा हिरण्य अर्थात् लोहादि धातु के बने हनन साधन, शस्त्रास्त्रों वाला, बलवान्, सबका प्राणप्रद, उत्तम सुगमता नीति से ले जाने वाला, उत्तम नायक, उत्तम सुख देने वाला, दयालु, उत्तम रक्षक अथवा उत्तम धनवान्, उत्तम निज बान्धवों और गुणों वाला होकर हमारे पास आवे और पीड़ा देने वाले मायावी दुष्ट पुरुषों और रोगों को दूर करता हुआ तेजस्वी राजा प्रतिदिन रात्रि अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होकर स्थित हो, अर्थात् सिंहासन पर विराजमान हो।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

भा०—हे सबके उत्पादक परमेश्वर! हे राजन्! अन्तरिक्ष में जिन

प्रकार सूर्य के लिए पहले ही से बने रेणु रहित मार्ग हैं, उन निर्विघ्न आकाशमार्गों से सूर्य प्रतिदिन तेज द्वारा प्राप्त होकर हमें सुख प्रदान करता है। उसी प्रकार हे राजन्! आकाश और पृथिवी के बीच में जो तेरे लिए या तुझ राजा के लिए पूर्व के विद्वानो से निर्धारित विघ्न बाधा आदि से रहित, रजोदोष आदि से रहित, निःस्वार्थता युक्त, जो अच्छी प्रकार से बनाये गये हैं सुखपूर्वक जाने योग्य उन मार्गों से हमारी भी रक्षा कर। हे राजन्! हम पर अधिकारी रूप से शासन भी कर। राजा उत्तम मार्गों, विधियों और राजनियमो से प्रजा की रक्षा और शासन करे। इति सप्तमो वर्गः।

इति सप्तमोऽनुवाकः।

[३६]

घौर ऋषि । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ निचृत्सतः पंक्तिः। ४ निचृत्पंक्तिः। १०, १४ निचृद्विष्टारपंक्तिः। १८ विष्टारपंक्तिः। २० सत. पंक्तिः। ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती। ५, १६ निचृद्बृहती। ६ भुरिग् बृहती। ७ बृहती। ८ स्वराड् बृहती। ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। १३ उपरिष्टाद्बृहती। १५ विराट् पथ्याबृहती। १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती। १९ पथ्या बृहती। विंशत्यृच सूक्तम् ॥

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

भा०—जिस परमेश्वर की सब तरह से स्तुति करते हैं उस ज्ञानवान्, शरण जाने और स्तुति करने योग्य, महान् परमेश्वर की उत्तम गुणों, दिव्य तेजों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाली बहुत सी आप प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम अर्थों वाले मधुर वचनों से प्रार्थना करते हैं।

राजा के पक्ष मे—जिसको अन्य लोग भी चाहे, उस महान् शक्तिशाली देव अर्थात् राजा को बनाने की इच्छा वाली आप बहु संख्या-

वाली प्रजाओं के हितार्थ आप में से ही नायक पुरुष के उत्तम अर्थों वाले प्रिय वचनों से प्रार्थना करें।

जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

भा०—सब विद्याओं में विशेष रूप से प्रकट होने वाले विद्वान् जन कष्टों के सहने और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल को बढ़ाने वाले, ज्ञानवान् परमेश्वर और अग्रणी नायक को धारण करते हैं, अपने में बलवान् को नायक रूप से नियत करते हैं। हे ऐश्वर्य प्रदान करने में कुशल ईश्वर ! राजन् ! हम उत्तम देने और स्वीकार करने योग्य अन्न, रत्नादि पदार्थों को प्राप्त कर तेरी सेवा करें। वह तू उत्तम चित्त वाला और उत्तम ज्ञानवान् होकर आज से इस राष्ट्र में, इस लोक में और युद्धों में और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के निमित्त हमारा रक्षक हो।

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! हम लोग अग्नि के समान शत्रुओं के उपतापक, परंतप, प्रतापी सबको अन्न, अधिकार और शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार के करने वाले, समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी एवं समस्त ज्ञानों के ज्ञाता तुझको उत्तम पद के लिये वरण करते हैं। तुझ बड़े सामर्थ्यवान सज्जन की, अग्नि के समान ही ज्वालाओं के सदृश न्याय-प्रकाश और तेज विविध रूप से राष्ट्र में व्याप्त होते हैं और किरणों के समान वे तेजः-प्रभाव आकाश के समान व्यापक राजसभा आदि राज्य-व्यवहार में प्रकट होते हैं। अर्थात् विद्वान्, ज्ञानी, तेजस्वी, सभा के सुवक्ता को ही दूत रूप से वरण करना चाहिये।

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—सबसे उत्कृष्ट, सबसे वरण करने योग्य, प्रजा के दुःखों का

वारक, स्नेही, मित्र राजा और न्यायकारी ये सब विद्वान् गण तुझ विद्वान् पुरुष को साम आदि उपायों से शत्रु के तापकारी जानकर ही दूत रूप से अग्नि के समान प्रज्वलित करते अर्थात् उत्तम पदाधिकारों से सुशोभित करते हैं। जो मनुष्य तेरे निमित्त आदर पूर्वक अधिकार प्रदान करता है, हे ज्ञानवन् दूत! वह राजा तेरे द्वारा समस्त ऐश्वर्य और प्राचीन काल से चले आये राज्य को भी विजय कर लेता है।

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू सबको सुखी, आनन्द प्रसन्न करने हारा, सबके हर्ष का कारण, अभय प्रदाता गृहो का पालक, प्रजाओं के बीच शत्रुतापक अग्नि के समान प्रतापी एवं स्तुति योग्य है। तेरे ही आश्रय पर, अग्नि के आश्रय पर संस्कार दीक्षा आदि के समान समस्त राजा प्रजा के वे सब धर्म कर्त्तव्य ध्रुव, स्थिर आश्रित हैं जिनको विद्या, धन आदि देने वाले गुरु आचार्य तथा व्यापारी जन करते हैं। विद्वान् जन जिस प्रकार सब दीक्षा आदि कर्म और व्रत, संस्कार यज्ञ आदि कर्म अग्नि को साक्षी करके करते हैं उसी प्रकार व्यवहार में सब लेन देन राजा के साक्षी से होते हैं। स्टाम्प, टिकट, सिक्के आदि सब राजा की साक्षिता के चिह्न हैं। अथवा जिन कर्त्तव्यों को देव, पृथिवी, सूर्य, वायु आदि पालन करते हैं वे सब राजा में संगत हैं। जैसा मनु ने लिखा है।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुबेरः सः वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ मनु० ७ । ७ ॥

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

भा०—हे अति बलशालिन्! हे ज्ञानवन्, नायक! सभापते राजन्! परमेश्वर! उत्तम ऐश्वर्यवान्, भजने सेवने योग्य तुझमें, तेरे निमित्त ही सब स्वीकार करने योग्य पदार्थ और स्तुति वचन भी प्रदान

किये जाते हैं। वह तू आज हमारे प्रति शुभ तथा प्रसन्न चित्त वाला, सुज्ञानी हो और उत्तम वीर्यवान् बलशाली युद्ध-विजयी पुरुषों और विद्वानों को भी वेतनादि प्रदान कर और राष्ट्र में सुसंगत कर। अग्नि में जो हवि देते हैं, वह बलशाली वायुओं में प्रदान करता अर्थात् फैलाता है। परमात्मा में समस्त संसार हवि रूप से प्रलयाग्नि में आहुत होता है। वह सब अग्नि आदि तत्वों को सुसंगत करता और जगत् को रचता है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥७॥

भा०—इस प्रकार से शत्रु को नतमस्तक करने वाले, शस्त्रास्त्र बल को धारण करने वाले राष्ट्रवासी जन उस वीर नायक पुरुष को ही अपना राजा बना कर उसका आश्रय लेते हैं और उत्तम २ पदार्थों को आदरपूर्वक देने आदि क्रियाओं से भी वे मननशील पुरुष अग्रणी पुरुष को ही हवन आदि यज्ञाहुतियों से अग्नि के समान अच्छी प्रकार प्रज्व-लित, तेजस्वी और बलशाली करते हैं। तभी वे अपने हिंसक शत्रुओं को पार कर जाते हैं, उनको विजय करने में समर्थ होते हैं। परमेश्वर स्वप्रकाश होने से स्वराट् है, भक्तिपूर्वक जन उसकी उपासना करते हैं। लोग यज्ञाहुतियों से उसी को प्रज्वलित करते और दुःख बन्धनों से पार तर जाते हैं।

घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

भा०—फैलते हुए मेघ को जिस प्रकार सूर्य की किरणें विनाश करती हुई आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को पार कर जाती हैं उसी प्रकार विजयशील वीर, सैनिक गण घेरा डालने वाले शत्रु को नाश करते हुए अपने और पराये दोनों राष्ट्रों को अपने वश कर लेते हैं। और प्रजाओं के सुखपूर्वक निवास के लिये बड़े राष्ट्र को और नाना कर्मों को भी करते हैं। भूमियों के प्राप्त करने के विजयादि संग्राम कार्यों में हर्ष से हिनहिनाते

हुए अश्व के समान उत्साहपूर्वक सिंहनाद करता हुआ अश्वारोही, मेघ के समान शत्रुओ पर अस्त्र बरसाने वाला, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, सब वीरो द्वारा आदर से सेनाध्यक्ष रूप से स्वीकृत होकर विद्वान् पुरुषो के बीच विराजे।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! राजन् ! तू समस्त तेजस्वी पदार्थों मे अति अधिक कान्तिमान्, सूर्य और अग्नि के समान राजाओ और विद्वानो मे सबसे अधिक तेजस्वी होकर अच्छी प्रकार सिंहासन पर विराज। तू राष्ट्र मे सबसे बड़ा है। तू प्रजाओं के मध्य में अग्नि के समान चमक। हे मेधाविन् एवं संगति करने योग्य ! हे उत्तम रूप से प्रशंसित ! तू रोषरहित दर्शनीय, उत्तम अग्नि के धूम के समान शत्रु को कंपाने वाले बल को विविध प्रकार से उत्पन्न कर।

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥१०॥९॥
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥११॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस अति पूजनीय तुझको इस राष्ट्र मे मनन करने योग्य राज्यशासन पद पर स्थापित करते हैं और हे ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम गुणों को धारण करने वाले, जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको विद्वान् सत्संग करने योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ और जिसको शत्रु पर बाण वर्षण करने वाला वीर योद्धा और जिसको स्तुति करने वाला विद्वान् और जिस अग्रणी नायक राष्ट्रपति को उत्तम संगत होने वाले अतिथि रूप शिष्यो से युक्त विद्वान् पुरुष मेघमण्डलस्थ जल के ऊपर विद्यमान सूर्य के समान सत्य व्यवहार और राज्य शासन के सत्य व्यवस्था या नियम समूह के भी ऊपर प्रकाशित करते और स्थापित करते हैं उस तेरी प्रेरित आज्ञाएं और राज्य-प्रबन्ध की व्यवस्थायें उज्वल

रूप में चमकती और सत्य न्याय का प्रकाश करती है। उस तुझ अग्रणी नायक को ये वेदमन्त्र और हम प्रजाजन बढ़ाते हैं अर्थात् गुण वर्णन द्वारा उसके कर्तव्य और साहस को बढ़ावें।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम्।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

भा०—हे अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू हमें सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान कर। हे तेजस्विन्! नायक! राजन्! तेरा विद्वान्, युद्धविजयी पुरुषों पर बन्धुभाव और मित्रता निश्चय से है। तू श्रवण करने योग्य, अति अद्भुत युद्ध और ऐश्वर्य का राजा है। वह तू हमें सब प्रकार से सुखी कर। तू राष्ट्र में सबसे बड़ा है।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥१३॥

भा०—हे राजन्! परमेश्वर! तू सर्वोत्पादक होकर सबके प्रकाशक सूर्य के समान हमारी रक्षा के लिए सबसे ऊंचा होकर अर्थात् सब से उच्च बन कर रह। तू सबसे उच्च बन कर ही ज्ञान, अन्न, ऐश्वर्य और युद्ध का देने, करने और सेवने हारा है इसी कारण हम नाना विद्याओं को प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषों से मिलकर तेरी विविध प्रकार से स्तुति करते हैं।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४॥

भा०—हे राजन्! तू हमारे सबके सर्वोपरि पद पर स्थित होकर हमें अधर्माचरण रूपी पाप से रक्षा कर। और ज्ञान तथा शासन द्वारा समस्त लूट पाट कर खाने वाले दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार भस्म कर। हमें धर्माचरण और दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिए उत्तम बना, हमें भी ऊंचा कर। विद्वान् के प्रति हमारे अन्दर उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि उत्पन्न कर।

पाहि नो॑ अग्ने र॒क्षस॑: पा॒हि धू॒र्तेररा॑व्णः ।
पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो॒ बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य ॥१५॥१०॥

भा०—हे अग्रणी ! नायक ! राजन् वा परमेश्वर ! हे विशाल तेजो, विद्या, ऐश्वर्य आदि नाना प्रभावों वाले ! हे हृष्ट पुष्ट, जवान के समान सदा बलशालिन् ! हमें राक्षस, अति दुष्ट पुरुषों से बचा । और तू अदान-शील, अति कृपण विश्वासघाती, धूर्त्त, हिंसक पुरुष से भी रक्षा कर । हिंसा करने वाले व्याघ्र आदि पशु और आक्रमणकारी पुरुष से और हमें घात करने की इच्छा करने वाले से भी बचा । इति दशमो वर्गः ॥

घ॒नेव॒ विष्व॒ग्वि ज॒ह्यरा॑व्ण॒स्तपु॑र्जम्भ॒ यो अ॑स्म॒ध्रुक् ।
यो मर्त्य॒: शिशी॑ते॒ अत्य॒क्तुभि॒र्मा न॒: स रि॒पुरी॑शत ॥१६॥

भा०—आघात करने वाले दण्ड आदि से जिस प्रकार कच्चे घड़े आदि पात्र को तोड़ दिया जाता है या हतौड़े से जिस प्रकार लोहे को पीटा जाता है उसी प्रकार, हे शत्रुओं और दुष्टों को संताप देने वाले हनन-कारी शस्त्रों वाले राजन् ! सेनापते ! जो हमारा द्रोह करता है और जो मनुष्य शस्त्रों से बहुत अधिक सताता है ऐसे निर्दय शत्रु को सब प्रकार से विनाश कर । वह पापी शत्रु हम पर कभी प्रभुता या शासन न करे ।

अ॒ग्निर्व॑व्ने सु॒वीर्य॑म॒ग्निः कण्वा॑य॒ सौभ॑गम् ।
अ॒ग्निः प्राव॑न्मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिम॒ग्निः सा॒ता उ॑पस्तु॒तम् ॥१७॥

भा०—अग्रणी राजा विद्वान् जन को उत्तम बल और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे । ज्ञानवान्, तेजस्वी राजा मित्र जनों को और विद्वान् ब्राह्मण आदि पूज्य अतिथि को और गुणों से प्रशंसित, विद्वान् पुरुष को युद्ध शिल्प आदि कार्य के अवसर पर उनकी रक्षा करे और उनके पास जाकर उनका सत्संग करे ।

अ॒ग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे ।
अ॒ग्निर्न॑यन्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॒ दस्य॑वे॒ सह॑: ॥ १८ ॥

भा०—अग्रणी नायक राजा या सभाध्यक्ष के बल पर शीघ्रता से

दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ, यत्नशील, दूसरे के धन लेने में यत्नशील और उग्र, भयानक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को दूर देश से भी हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये ललकारते हैं। क्योंकि प्रजा के नाशकारी, चोर डाकुओं को पराजित करने में समर्थ, नये मकान या गढ़ बनवाने वाले बड़े रमण साधन, वैभव से युक्त एवं बड़े रथ सेना से बलवान् प्रजा के हिंसाकारी पुरुष को अग्नि के समान तेजस्वी राजा दूर करे और कारागार में डाल दे। अथवा ज्ञानी दूत द्वारा धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पर वश करने वाले, यत्नशील, बलवान् विजयी पुरुष को दूर देश से भी हम आदरपूर्वक बुलावें और ज्ञानी पुरुष नये भवन बनाने में कुशल बड़े भारी रथ, सेना आदि रमण साधनों से युक्त शत्रु हिंसक पुरुष को वश में लावें।

नि त्वाम॑ग्ने मनु॑र्दधे ज्योति॒र्जना॑य॒ शश्व॑ते ।
दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उ॒क्षि॒तो यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! तेजस्विन् राजन्! अग्ने! मननशील, ज्ञानी पुरुष तुझको अनादि प्रवाह से आने वाले मनुष्यों के हित के लिए प्रकाशरूप से धारण करता है। तू विद्वान् मेधावी, ज्ञानी पुरुष के आश्रय में रह कर सत्य, राष्ट्रशासन और प्रजापालन धर्माचरण में कुशल होकर अभिषेचित होकर चमक, जिस तुझको समस्त मनुष्य आदर से नमस्कार करें।

त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।
र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥२०॥११॥

भा०—अति दीप्ति वाले, तेजस्वी, बलवान्, अग्रणी नायक राजा के अति भयानक पुरुष ज्ञान के लिए आग की ज्वाला के समान दीपते हैं। हे राजन्! तू दुष्ट राक्षसों के सहायक पीडादायक पुरुषों के स्वामी लोगों को और समस्त लूट पाट कर खाने वाले प्रजापीडक पुरुषों को भस्म कर। अथवा जो अतिदीप्त, भयानक राक्षसों के साथी अग्नि की

ज्वाला के समान दुःखदायी हैं उनको और समस्त प्रजा के खाऊ लोगों को जला दे और समस्त सभास्थान और मेरे जैसे जानने वालों के ज्ञान की वृद्धि के लिए रक्षा कर।

'यातुमावतः'—'यातुमाऽवतः' इतिसायणः। 'यातुऽमावतः' इति दयानन्दः। 'यातुऽमावतः' इति पदपाठः।

[३७]

कण्वो घौर ऋषि ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८, १२ गायत्री। ३, ९, ११, १४ निचृद् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। १०, १५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। १३ पादनिचृद्गायत्री। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत ॥१॥

भा०—हे अपने तेज और पराक्रम से शत्रुओं की आंखों को चकाचौंध कर देने वाले, तेजस्वी वीर पुरुषो! आप लोगो का वायुओं के सम्मिलित बल के समान शत्रु को मारने वाले समूहरूप, दलबद्ध, ऐसा बल जिसके मुकाबले पर कोई भी शत्रु न आ सके और जो रथ वा सेनांग के बल पर अधिक शोभाप्रद है उसको अच्छी प्रकार वर्णन करो, बतलाओ। अथवा हे विद्वान् पुरुषो! आप लोगों के पास प्राणायाम आदि योगाभ्यास द्वारा बढ़ाया वह बल जिससे अश्व न लगाने पर भी शरीर रूपी रथ शोभा देता है उसका उपदेश करो।

'कण्वाः'—कण शब्दे। भ्वादिः। कण निमीलने। चुरादिः। कणति स्तोत्रलक्षणं शब्दं करोति, कण्यते स्तूयते वा, निमीलयति परान् वा स्वतेजसा इति कण्वः। इति देवराजः।

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः॥२

भा०—जो वीर पुरुष हृष्टपुष्ट अश्वों वाली या बाणों से युक्त सशस्त्र सेनाओं और आयुधो और व्यक्तवाणियों और स्पष्ट अभिव्यक्त करनेवाले चिह्नों के सहित स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी हैं, वे ही युद्ध में विजय को प्राप्त करते हैं।

विद्वानों के पक्ष में—जो विद्वान् हृदय में आनन्दप्रद, हर्ष का वर्षण

करने वाली ज्ञान के प्रकाशक अति स्पष्ट अर्थ बतलाने वाली स्पष्ट वाणियों के साथ स्वयं आत्मा के ज्ञान के प्रकाश करने वाले हैं। वे ही जीवन-संग्राम में विजयी होते हैं।

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते॥३॥

भा०—जो सुखादि प्राप्त करानेवाले मार्ग मे अति अद्भुत कर्म किया करते हैं। उनके इन वायुओं और प्राणो की हाथ पैर आदि अगो मे विद्यमान विकसित होनेवाली नाना चेष्टाएँ जो कुछ भी तत्व बतलाती हैं उसको मैं दूरदर्शी बन कर यहाँ ही इस शरीर में स्थित, यहाँ बैठा ही सुन लेता हू अर्थात् जान लेता हूँ।

वीरो के पक्ष में—इनके हाथों मे अर्थात् अधिकारो में नाना वाणियें, आज्ञाएं घोडे के हांकने वाले हण्टरों के समान जो भी बोलती हैं, जो २ करने को कहतीं हैं उनको मैं इस राष्ट्र भर मे श्रवण करू।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत ॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धा मे उत्पन्न होने वाले बल की वृद्धि करने और उज्ज्वल यश प्राप्त करने के लिये परमेश्वर द्वारा दिये महान् वेद मय ज्ञान-वचन का गान करो।

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे॥५॥

भा०—जो प्राणों का बल इन्द्रियो मे अथवा बैल, गौ आदि पशुओं मे शरीर के अंगों मे नाना अद्भुत क्रीड़ाकारी नाना चेष्टाओं को उत्पन्न करने वाला कभी नाश न होने वाला, चेतनता रूप मे विद्यमान है जो अंगों के नाना प्रकार मे झुकाने आदि कार्यों मे भी प्रकट होता है वही खाये हुए अन्न के बने परिपक्व रस के कारण शरीर मे बढ़ता है। उसके बढ़ाने का उत्तम रीति मे उपदेश करो। अथवा जो मारणशील वीर सैनिकों का बल रणभूमियो मे कभी नाश न होने वाला तथा अद्भुत रणक्रीड़ा करता है, वह मुख्य भाग मे स्थित होकर बलपूर्वक बढ़ाता है। उसका उपदेश करो। इति द्वादशो वर्गः॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ ६

भा०—हे नायक, नेता वीरजनो ! आप लोग आकाश और पृथिवी, अथवा सूर्यादि लोक और पृथिवी या उन पर स्थित पदार्थों को कंपा देने वाले वायुओं के समान आकाश जमीन को अपने बल पराक्रम से कपा देने वाले हो। आप लोगो मे से कौन सबसे बडा है ? जिसके बल पर आप लोग सदा वायुए जिस प्रकार वृक्ष या वस्त्र के अग्रभाग, फुनगी या अंचरे को हिला डालते हैं उसी प्रकार शत्रुओ को कंपा डालते हो। अथवा तुममे सबसे बड़ा 'क' प्रजापति, राजा ही है जिसके बल पर तुम सबको कपाते हो।

अध्यात्म मे—ये नेतागण प्राणगण हैं। वे आत्मा के बल पर शरीर के कर चरणादि सब अंगों को हिलाते डुलाते हैं।

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ७

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोगों के नियन्त्रण करने और आप लोगो के अति भयकारी क्रोध को वश करने के लिये ही मननशील, विचारवान् राजा आप लोगो को अपने अधीन व्यवस्था में रखता है जिससे पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रास्त्र वर्षण या गर्जनशील शत्रु भी कांप जाता है। अथवा आप लोगो को उग्र, अति भयंकर प्रयाण और अति तीव्र क्रोध के लिये ही रखता है जिससे शत्रु भी कांप जाता है।

अध्यात्म मे—ज्ञानी पुरुष तुम प्राणगण को इन्द्रियो के दमन और बलवान् बनाने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्राणो को वश करते हो जिससे पर्ववान् मेरुदण्ड और शब्दोच्चारणकारी मुख्य प्राण भी कम्पित हो जाता है।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वा इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते॥८॥

भा०—वायुओ के समान अति प्रबल जिन वीर पुरुषों के उथल पुथल कर देने वाले प्रबल,प्रयाण होने पर समस्त भूगोल अर्थात् उसके वासी

प्रजाजन रोग या बुढ़ापे या शत्रु के निरन्तर आक्रमणों से अति जीर्ण, निर्बल राजा के समान भय से कांपते हैं।

अध्यात्म में—जिन प्राणों के प्रबल वेग से श्वासोच्छ्वासों के होने पर भूमि तत्व का बना शरीर बूढ़े दुर्बल राजा के समान नित्य कांपता है।

अधिदेव पक्ष में—जिन प्रबल वायुओं के प्रबल वेग से चलने पर सारा भूमण्डल कांपता है।

स्थि॒रं हि जान॑मेषां॒ वयो॑ मा॒तुर्निरे॑तवे। यत्सी॒मनु॑ द्वि॒ता शवः॑ ॥९॥

भा०—जिस कारण से इन वायुओं का उत्पत्ति स्थान, आकाश स्थिर है इसी कारण पक्षीगण जिस वायु के बल पर अन्तरिक्ष से जाने आने में समर्थ होते हैं उन वायुओं का बल भी दुगुना अर्थात् महान् होता है। और उनमें शब्द और स्पर्श दो गुण रहते हैं। अथवा जिन वायुओं के बल पर ही पक्षियों का बल दुगुना हो जाता है।

वीरों के पक्ष में—इनका जनसमूह दृढ़ स्थिर है। भूमि के विजय के निमित्त निकलने के लिए ये बाजों के समान वेगवान् हैं। जिनके बल पर सब प्रकार से द्वैधीभाव का युद्ध होता है। और जिनके आश्रय राष्ट्र का बल है।

प्राणों के पक्ष में—इनका जन्म या प्रादुर्भाव स्थिर अर्थात् नियत है। ज्ञाता आत्मा के भीतर से वे मातृगर्भ से पक्षियों के समान आपसे आप बाहर आते हैं। इन प्राणों के कारण ही आत्मा में कर्त्ता और भोक्ता होने के दो भाव हैं। और इन प्राणों ही के कारण शरीर में बल है।

उदु॒ त्ये सू॒नवो॒ गिरः॒ काष्ठा॒ अज्मे॑ष्वत्नत। वा॒श्रा अ॑भि॒ज्ञु यात॑वे ॥१०॥

भा०—वे वायुगण, प्राणगण अपने गमन आगमन के बलों पर ही बालकों के प्रसव कराने वाले और अन्तरिक्ष में मेघों को चलाने वाले होते हैं। ये ही वाणियों को उत्पन्न करते हैं। ये ही जलों को अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं। बछड़ों के लिए उनके प्रेम से हंभारती हुई माताओं

जानुओ की तरफ झुकती हुई गौओ के समान वायुगण नाद सा करते हुए गति करते हैं।

वीरो के पक्ष मे—ये राष्ट्र के पुत्र आज्ञाओ का पालन करते तथा बलयुक्त प्रयाणो मे दिशाएं पार कर जाते है। ये ही शब्द करते हुए घुटने झुका कर या कदम आगे बढ़ाकर जाने के लिए तय्यार होते है।

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

त्यं चि॑द्घा दी॒र्घं पृ॒थुं मि॒हो नपा॑त॒मसृ॑ध्रम्। प्र च्या॑वयन्ति॒ याम॑भिः ११

भा०—वृष्टि के सेचन करने वाले पवनगण जिस प्रकार अपने शीघ्र वेगो से लम्बे, चौडे, बडे भारी जल न गिराने वाले, भूमि को जल से न गीला करने वाले मेघ के भी जल को गिरा देते हैं, उसी प्रकार जलो के समान शरो की वर्षा करने वाले वीर गण बडे लम्बे, विशाल न गिरने या न झुकने वाले, न मारे जाने वाले, प्रबल उस शत्रु को भी अपने प्रबल आक्रमणो से गिरा देते हैं, युद्ध से भगा देते है।

मरु॑तो॒ यद्ध॑ वो॒ बलं॒ जनाँ॑ अचुच्यवीतन। गि॒रीँर॑चुच्यवीतन ॥१२॥

भा०—हे प्रबल वायुओं और प्राणगण के समान वीरो! विद्वान् पुरुषो! जो आप लोगो का बल प्राणियों और प्रजा पुरुषो को सन्मार्ग मे चलने के लिए प्रेरित करता है वही बल मेघों को या पर्वतों को वायुओ के समान पर्वत के समान अकम्प, दृढ़ शत्रु पुरुषो को भी हिला देता है।

यद्ध॒ यान्ति॑ म॒रुतः॒ सं ह॑ ब्रुव॒तेऽध्व॒न्ना। शृ॒णोति॒ कश्चि॑देषाम् ॥१३॥

भा०—और जब भी पवनो के समान परोपकारी, वेग से या ज्ञान-मार्ग से जाने वाले विद्वान्गण और वीरगण ज्ञानमार्ग से या युद्धमार्ग से जाते है और परस्पर वादानुवाद और वार्त्तालाप या ज्ञान का उपदेश करते है तब इनके वचनो को कोई ही सुनता और समझता है।

प्र या॑त॒ शीभ॑माशुभिः॒ सन्ति॒ कण्वे॑षु वो॒ दुवः॑। तत्रो॒ षु मा॑दयाध्वै ॥१४॥

भा०—हे वीरो और विद्वान् पुरुषो! आप लोग बडे शीघ्र जानेवाले यान आदि साधनों से शीघ्र ही दूर देशों तक जाओ, प्रयाण करो। आप

लोगों को विद्वान् मेधावी पुरुषों के अधीन नाना कर्त्तव्य कर्म करने होते हैं। वहां ही आप लोगों को अच्छी प्रकार संतुष्ट, तृप्त और सुखी होना चाहिये।

अस्ति हि ष्मा मदा॑य वः स्मसि॑ ष्मा व॒यमे॑षाम्। विश्वं॑ चि॒दायु॑र्जी॒वसे॑

भा०—आप लोगों के आनन्द लाभ करने के लिए और सदा तृप्त होने और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए समस्त पदार्थ सदा विद्यमान रहें। और इनके ही प्राप्त करने के लिए हम भी सदा पुरुषार्थ करते रहें और आनन्द से जीवन व्यतीत करें। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[३८]

१—१५ कण्वो घौर ऋषिः। मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ८, ११, १३, १४, १५, ४ गायत्री। २, ६, ७, ९, १० निचृद्गायत्री। ३ पादनिचृद्गायत्री। ५, १२ पिपीलिकामध्या निचृत्। १४ यवमध्या विराड् गायत्री। पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

कद्ध॑ नू॒नं क॑धप्रियः पि॒ता पु॒त्रं न हस्त॑योः। द॒धि॒ध्वे वृ॑क्तबर्हिषः॥१॥

भा०—पिता अपने हाथों में, भुजाओं में जिस प्रकार पुत्र को प्रेम से सुरक्षित रूप में लेता है, खिलाता पिलाता और उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार हे शत्रुओं को घास के समान काट गिराने हारे वीर, विद्वान पुरुषो! आप लोग कथा, विद्योपदेश, उत्तम वाक्यरचना और नियम व्यवस्थाओं के द्वारा स्वयं सन्तुष्ट होने और अन्यों को सतुष्ट करने हारे विद्वान्, वाग्मी, शास्त्रज्ञ होकर निश्चय से कब प्रजाजन को अपने हाथों में, अपने वश में, अपने अधीन धारण करोगे?

क्व॑ नू॒नं कद्वो॒ अर्थं॒ गन्ता॑ दि॒वो न पृ॑थि॒व्याः। क्व॑ वो॒ गावो॒ न र॑ण्यन्ति॥२॥

भा०—निश्चय से किस स्थान पर आप लोग अपने इष्ट प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करते हो? आकाश के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को भी आप लोग भला कब प्राप्त करते हो? सूर्य की किरणों के समान आप लोगों की इन्द्रियें, वाणियें और भूमियें, भूमि वासी प्रजायें कहां

मनोहर शब्द करती हैं ? जहां विद्वान् हो, जब वे अपने अभीष्ट को प्राप्त हो, जहां वे उत्तम वचन बोलें वहां उस स्थान पर उस समय उनका सत्संग करो । अथवा आप लोग कहां नहीं हो ? अर्थात् आप लोग वायु के समान सर्वत्र विचरण करते हो । आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को आप कब नहीं प्राप्त करते ? अर्थात् सदा ही आपको आकाश और भूमि के सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं । आप लोगो की ज्ञान वाणियां गौओ के समान कहां नहीं ज्ञान रस धारा बहातीं ? अर्थात् वे सर्वत्र ज्ञान मधु का उपदेशामृत प्रदान करती हैं ।

वीर जनो के पक्ष मे—आप लोगो की गौवो के समान वासी प्रजाएं कहां नहीं रम रही हैं ? सर्वत्र रम रही हैं, भूमियां भी सर्वत्र हरी भरी हैं।

क्व॑ वः सु॒म्ना नव्यां॑सि॒ मरु॑तः॒ क्व॑ सु॒वि॒ता । को॒ विश्वा॑नि॒ सौभ॑गा ॥३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे वायु के समान वैश्य गण और तीव्र-गामी वीर जनो ! तुम्हारे लिये नये से नये, आश्चर्यदायक सुख साधन कहां है ? और आपके शासन तथा नाना ऐश्वर्य कहां हैं ? और समस्त सौभाग्य, सुखप्रद ऐश्वर्य राज्य आदि कहा हैं ? जहां हों वहां से उनको प्राप्त करो । अथवा पूर्व मन्त्र से 'न' की अनुवृत्ति लेवें । आप लोगों के नये २ सुख साधन, शासन, ऐश्वर्य और सौभाग्य सुख कहां कहां नहीं है ? अर्थात् सर्वत्र विद्यमान हैं ।

यद्यू॒यं पृ॑श्निमातरो॒ मर्ता॑सः॒ स्यात॑न । स्तो॒ता वो॑ अ॒मृतः॑ स्याम् ॥४॥

भा०—हे आकाश रूप माता से उत्पन्न होने वाले, अथवा 'पृश्नि' सबके पालक पोषक सूर्य के तेज से उत्पन्न होने वाले वायुगण के समान पृथ्वी और तेजस्वी राजा से उत्पन्न होने वाले प्रजा के वीर पुरुषो ! यद्यपि आप लोग मरणधर्मा पुरुष हो । तथापि आप लोगो का उपदेष्टा, आज्ञापक, नेता पुरुष चिरायु, दीर्घजीवी और शत्रुओं से कभी नाश न होने वाला होकर रहे ।

अध्यात्म मे—शरीरगत प्राण आत्मा से उत्पन्न होने से 'पृश्निमातर' हैं। वे स्वयं नश्वर हैं, उनका उत्पादक आत्मा अमर है।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप॥१५

भा०—घास रहने पर मृग, तृणचारी पशु जिस प्रकार सदा हृष्ट पुष्ट और कार्य सेवा मे लगने योग्य रहता है और घास आदि न मिलने पर दुर्बल और मरणासन्न तथा भार आदि उठाने के काम का भी नहीं रहता उसी प्रकार हे विद्वानो ! वीरो एवं ज्ञानार्थी पुरुषो ! आप लोगों का मार्गोपदेष्टा नायक भी असेव्य अर्थात् सेवा और प्रीति करने और कर्तव्य पालन करने के अयोग्य न हो। वह सदा कर्त्तव्यपरायण बना रहे। तुम उसको सदा आहार आदि से सुखी बनाये रक्खो और वह नियम, नियन्ता के मार्ग से ही जावे। अथवा वायु या मृत्यु के मार्ग मे मत जावे। वह मृत्यु को प्राप्त न हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह॥९॥

भा०—अधिक से अधिक, बहुत अधिक, अति अधिक शत्रु रूप अति कष्टदायिनी पर सेना अति कठिनाई से मरने वाली, प्रबल होकर हमें प्यास से पीड़ित होकर भाग जाये। अथवा अति अधिक, अति कठिनाई से नाश होने वाली कठिनाई, आपत्ति दुरवस्था या रोगादि पीडा हमें कभी न मारे और वह भूख प्यास की पीडा के साथ अकाल दुष्काल आदि के रूप मे भी हमें न प्राप्त हो।

अध्यात्म मे—बड़ी मे बड़ी पीड़ा और पाप प्रवृत्ति भी अवश्य या ... होकर हमें कष्ट न दे। वह हम भोग, तृष्णा या लोभ के साथ व्यापे। विद्वान् जन प्राणादि साधन से उसका प्रतिकार करें।

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम्

भा०—विद्युत् की दीप्ति मे युक्त बलवान्, तीव्र गति वाले जीवों के सुखप्रद, जीवनाधार होकर जिस प्रकार वायुगण अन्तरिक्ष या मरु भूमि में भी अविचल, मूसलाधार वृष्टि करते हैं उसी प्रकार सचमुच ये अति

तेजस्वी, प्रतापी, बलवान्, ज्ञानी, शत्रुओ को रुलाने वाले वीर सेनापति के सैनिक गण धनुष के बल पर ही वायु को भी बीच मे से अवकाश न देने वाली अथवा वायु से भी बढ़कर शर वर्षा को करें। इसी प्रकार जीव के ये प्राण भी बलवान् दीप्तियुक्त रहकर हृदय देश मे विना वायु के आनन्दरस की वर्षा करते हैं। और तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ज्ञानवर्षा करते हैं।

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८॥

भा०—जब इन वायुओ के कारण जल वृष्टि होती है तब जिस प्रकार हंभारती हुई गौ अपने बछड़े की तरफ लपकती है और जिस प्रकार माता प्रेम से दूध क्षरते पयोधरो से बच्चे को अपने अंग के संग लगा लेती है उसी प्रकार बिजली शब्द करती है, भूमि पर निवास करने वाले प्रजाजन को प्राप्त होती और वर्षा से सींच देती है। उसी प्रकार इन वीरो की जब शर वर्षा होती है तो गौ के समान विद्युत् अस्त्र तोप आदि गरजती हैं।

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति॥९॥

भा०—जब ये वायु गण पृथिवी को विशेष रूप से तरबतर कर रहे होते हैं तब जल को धारण करने वाले बादल से ही दिन के समय भी अन्धकार कर देते हैं। जब वीर पुरुष रक्तधाराओ से भूमि को गीला करते हैं तब जलधर मेघ के समान अति युद्धकारी सेनापति द्वारा दिन में भी अन्धकार या शत्रु पक्ष मे अति शोककारी दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

अर्ध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः१०।१६

भा०—आकाश-मण्डल या युद्धभूमि में तीव्र वायुओं और उनके समान प्रचण्ड वेग से जाने वाले वीर सैनिको के घोष से समस्त पृथिवी लोक और समस्त नरपति मण्डल मट्टी के बने घर के समान कांप जाता है। और साधारण मनुष्य तो बहुत ही अधिक कांप जाते हैं, डर जाते हैं। इति षोडशो वर्ग.॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः॥११॥

भा०—वायुगण जिस प्रकार अविच्छिन्न, अटूट वेगों से नाना प्रकार की नदियों की ओर बहते हैं उसी प्रकार हे प्रचण्ड वेगवाले वीर सैनिको! आप लोग दृढ़, बलयुक्त हाथों से अद्भुत या चिन कर बनाई गई या समृद्ध चारों तरफ से घेरने वाले परकोटों से घिरी शत्रु की पुरियों को लक्ष्य कर अनथक चालों से बढ़ते चले जाओ।

प्राणगण के पक्ष में—हे प्राणगण या योगीजनो! तुम दृढ व्यवहार वाले और अखिन्न, निरन्तर होने वाली चेष्टाओं से चेतना देने वाली नाड़ियों के प्रति गति करो। उनको अपने वश में करो।

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् सुसंस्कृता अभीशवः॥१२

भा०—हे वीर पुरुषो! तुम्हारे रथ चक्रों की धुराएं यान, रथ अग्नि और अश्व आदि वेग वाले वाहन इन शिल्पी गणों के कारण शुद्ध तथा बलवान हों। और रासें, अंगुलियां और अश्व भी अच्छी प्रकार से बने, सजे हों।

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम्॥१३

भा०—हे विद्वन्! तू महान ज्ञान वेद राशि को अध्ययन और प्रवचन द्वारा पालन करने वाले ज्ञानवान सबके स्नेही पुरुष को प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शन करने योग्य जान कर विस्तृत व्याख्या करने वाली वाणी से प्रत्येक पदार्थ के गुणों के वर्णन करने के लिए आदर से प्रार्थना कर। अथवा मित्र के समान देखने योग्य अग्रणी नायक, बड़े बल और राष्ट्र के पालक राजा को ज्ञानोपदेश करने के लिए विस्तृत वाणी से साक्षात उपदेश कर।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥१४

भा०—हे विद्वन्! तू वेदवाणी को मुख में कर ले, उसे कण्ठस्थ कर। और उस वेदवाणी को मेघ के समान गर्जना करते हुए, दूर दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर। और गायत्री छन्द में कहे स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को स्वयं गान कर, पढ़ और अन्यों को पढ़ा।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह॥१५

भा०—हे मनुष्य! तू अति तेजस्वी व्यवहार कुशल, उत्तम ज्ञान-सम्पन्न, प्राणो और वायुगणो के समान उपकारी वीरो और विद्वानो के समूह को अभिवादन और स्तुति कर। वे ज्ञान और आयु मे वृद्ध होकर इस लोक मे हमारे हितकारी हो। वायुगण—विद्युत् से दीप्तियुक्त हैं, वे सूर्य से युक्त होने से 'अर्की' हैं। इति सप्तदशो वर्गः।

[३९]

कण्वो घोर ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्द—१, ५, ६ पथ्याबृहती। २, ७ उपरिष्टाद्विराट् बृहती। ३, ८, १० विराट् सतः पंक्ति। ४, ६ निचृत्सतः पंक्तिः। ३ अनुष्टुप्। दशर्चं सूक्तम्॥

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः॥१॥

भा०—हे विद्वानो! एवं वायु के समान तीव्र वेग वाले बलवान् वीर सैनिको! एवं व्यापारकुशल पुरुषो! जिस प्रकार सूर्य दूर देश से अपने तेज को फेंकता है उसी प्रकार दूर दूर के देश से भी आकर तुम जो इस प्रकार प्रजा और शत्रुजन को स्तब्ध या चकित कर देने वाले बल या शस्त्रास्त्रसमूह को फेंकते हो या प्रयोग मे लाते हो तो बतलाओ वह किसके क्रिया-सामर्थ्य से और किसके भौतिक बल से फेंकते हो। और तुम लोग जो वायु के समान तीव्र वेग से जा रहे हो तो किसको लक्ष्य करके जाते हो। और हे वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को कंपाने वाले आप लोग भला किसको अपने बल से कपाना चाहते हो।

परमेश्वर और आत्मा के पक्ष मे—ये तीव्र वेग से जाने वाले वायु गण अधिक परिमाण वाले जलादि को और पृथिवी आदि लोक दूर से तेज को किसके ज्ञान, बल और क्रियाशक्ति से फेंकते हैं। और कहां चले जा रहे हैं। इनका लक्ष्य क्या है। उत्तर—उसके सबके कर्त्ता प्रजापति परमेश्वर के ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य तथा बल से ही प्रेरित होकर ये

सब तेज, जल आदि बरसाते और गति करते हैं उसी को लक्ष्य कर जा रहे हैं ।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोगों के युद्ध करने के हथियार, आग्नेय, वायव्य आदि अस्त्र शस्त्र शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के लिए स्थिर अर्थात् सुदृढ़ हों और शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए वे हथियार बलवान्, दृढ़, मजबूत हों । हे वीर पुरुषो ! तुम लोगों की बलवती सेना अति व्यवहार कुशल, प्रशंसनीय हो । कुटिल, मायावी मनुष्य के वैसे दृढ़ शस्त्रास्त्र और प्रबल, कुशल सेना न हो ।

परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर नायक पुरुषो ! जिस कारण वृक्ष के समान स्थिर शत्रु को भी प्रचण्ड वायु के समान आघात करके उखाड देते हो और पर्वत के समान भारी पदार्थ को भी पलट देते हो, उथल पुथल कर देते हो इस कारण तुम रश्मियों से युक्त प्रचण्ड वायु के समान तीव्र एव वन के समान घना सेना संघ बना कर चलने वाले आप सब पृथिवी, समस्थल और पर्वतों के समस्त दिशाओं को विविध प्रकारों से पहुंचो और उन पर आक्रमण करो ।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४॥

भा०—हे हिंसक शत्रुओं को भी नाश करने वाले वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् धार्मिक पुरुषो ! यदि शीघ्र ही आप लोगों की सेना विस्तृत सह-योगी बल और वीर सेनापति के साथ शत्रुओं के दबाने में समर्थ हो जाय तो निश्चय से हे दुष्ट शत्रुओं के रुलाने वाले वीरो ! या उपदेश करने हारे विद्वानो ! तुम लोगों का कोई भी शत्रु आकाश और

पृथिवी दोनो मे भी नहीं पाया जाय, अथवा वह तुमको न पा सके।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रचण्ड वायुओं के समान प्रबल वेग से जाने वाले वीर पुरुषो! पर्वतो और मेघो को जिस प्रकार वायुगण बडे बल से हिला देते हैं और वे जिस प्रकार वट, गूलर आदि बड़े वृक्षो को प्रबल झकोरो से तोड फोड कर पृथक् २ कर देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी युद्ध विजय की कामना करते हुए अति मदमत्त पुरुषो या हाथियो के समान किसी की भी पर्वाह न करते हुए पर्वत के समान दृढ़ और मेघ के समान शर वर्षाने वाले शत्रुओ को भी खूब कंपा डालो और वट आदि के समान बड़ी बडी प्रजाओ और सेनाओ को आश्रय देने वाले राजाओ को भी तोड़ फोड कर भेद नीति से विरला २, पृथक् २ कर दो और अपनी समस्त आश्रित प्रजा के साथ आगे बढ़ो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! आप लोग अपने रमण, आनन्द विनोद के लिये बने रथो मे या रथारोही महारथियो के अधीन देह मे चेतनता रस और आनन्द का सेचन करने वाली, रक्त नाड़ियो के समान और वर्षा कालिक वायुओ के साथ जुडी धारा वर्षाने वाली मेघ मालाओं के समान नाना रंगो वाली तथा भरी पीठ वाली या वेगों से चलने वाली घोडियो को और शत्रु पर शस्त्र वर्षण करने वाली सेनाओ को लगाओ, नियुक्त करो। आप लोगों मे वायुओ की सूर्य के समान रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला एवं उदय को प्राप्त होने वाला, प्रतापी, तेजस्वी राजा पीठ से बोझा उठाने मे समर्थ बलवान् पशु के समान राष्ट्र-भार या सेनापति पद को उठाने वाला एवं जिज्ञासा के कार्य मे कुशल, अति तेजस्वी मतिमान् पुरुष उस पद को धारण करे। हे वीर जनो! आप

लोगों के प्रयाण के विषय की बातें पृथिवी, दुनियां भर या आकाश तक में भी सुनाई देवें और उन्हे सर्व-साधारण मनुष्य सुन कर भय पावें।

पृषत्यो मरुताम्—प्रावृषि सर्वतः पृषत्यो विचित्रा मेघमाला मरुतामिति स्कन्दस्वामी।

आ वो॑ मक्षू तना॑य॒ कं रु॒द्रा अवो॑ वृणीमहे।
गन्ता॑ नू॒नं नोऽव॑सा॒ यथा॑ पु॒रेत्था कण्वा॑य बि॒भ्युषे॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे दुष्टों और शत्रुओं को रुलाने हारे वीर पुरुषो, नैष्ठिक ब्रह्मचारी जनो ! आप लोगों के सुखजनक रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य को अति शीघ्र अपनी सन्तति और विद्या ऐश्वर्य के प्रसारक विद्वान् पुरुषों के लिये सब प्रकार से चाहते हैं। जिस प्रकार पहले आप लोग अपने रक्षाकारी बल से जाते रहे उसी प्रकार अब भी भयभीत, सङ्कट में पड़े हमारे में विद्वान्, उत्तम पुरुषों की रक्षा के लिये अवश्य जाया करो।

यु॒ष्मेषि॑तो मरुतो॒ मर्त्ये॑षित॒ आ यो नो॒ अभ्व॒ ईष॑ते।
वि तं यु॑योत॒ शव॑सा॒ व्योज॑सा॒ वि यु॒ष्माका॑भिरू॒तिभिः॑ ॥८॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो और वीर सैनिको ! जो शक्तिमान न होकर, निर्बल या सुहृद् भाव में न रहने वाला शत्रु आप लोगों को विजय करना अभीष्ट है और साधारण मनुष्य भी जिसे जीतना चाहते हैं, वह यदि हमें मारे तो उसको अपने बल से और पराक्रम से और अपनी चढ़ाइयों या रक्षा, प्रेम, तृप्ति, आक्रमण आदि करने वाली सेनाओं से हमसे दूर रखो।

अस॑ामि॒ हि प्र॑यज्यवः॒ कण्वं॑ द॒द प्र॑चेतसः।
अस॑ामिभिर्मरुत॒ आ न॑ ऊ॒तिभि॒र्गन्ता॑ वृ॒ष्टिं न वि॒द्युतः॑ ॥ ९ ॥

भा०—बिजुलियां जिस प्रकार वर्षा को पूरी तरह बरसा देती हैं उसी प्रकार हे उत्तम ज्ञान से युक्त उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग भी हमारे प्रज्ञावान् शिष्य के प्रति अपने सम्पूर्ण ज्ञानों और ब्रह्मचर्य आदि पालनकारी शिक्षाओं सहित आओ और पूर्ण ज्ञान और सामर्थ्य प्रदान करो।

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम रीति से प्रजा की रक्षा और शत्रु का खंड २ करने वाले वीर पुरुषो ! विद्वान् जनो ! आप लोग पूर्ण पराक्रम, बल और ब्रह्मचर्य को धारण करो। हे शत्रुओ को कम्पा देने वाले वीर पुरुषो ! और काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, प्रमाद आदि व्यसनो को कंपा कर त्याग देने हारे ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग पूरा बल और ज्ञान धारण करो। देश-द्वेषी शत्रु के ऊपर वीर पुरुष अति क्रुद्ध होकर जिस प्रकार वाण फेंकते है उसी प्रकार आप लोग भी पूर्ण ज्ञानी होकर वेद के विद्वान् और ईश्वर तथा सत्तर्कों और प्राणियों के प्राणो के प्रति द्वेष करने वाले नास्तिक कुतार्किक और हिंसक पुरुष को दूर करने के लिए शस्त्रादि के समान अपनी प्रबल इच्छा शक्ति को उत्पन्न करो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[४०]

कण्वो घौर ऋषि ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—२, १, ८ निचृदुपरिष्टाद्बृहती ।
५ पथ्याबृहती । ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ६ सतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिः ॥
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

भा०—हे वेदज्ञान के परिपालक विद्वन् ! ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! और बडे सैन्यसमूह के पालक सेनापते ! राजन् ! हम विद्यादि उत्तम गुणों की, विद्वान् पुरुषो की और विजयशील राजा की कामना करते हुए तुझको प्रार्थना करते हैं कि उठ, तय्यार हो। उत्तम कल्याणकारी शुभ साधनो तथा प्रिय पदार्थों के दाता और प्रजाओं के रक्षक विद्वान् जन और वीर पुरुष आगे बढे, अपने प्रमुख पुरुष के पास विनयपूर्वक आवें और तब हे ज्ञान वाणी के दातः ! आचार्य ! और ऐश्वर्यवन् राजन् ! सेनापते ! तू अति शीघ्रता से ज्ञानमार्ग में चलने और युद्धमार्ग में के

चलने हारा होकर उन शिष्यों और वीरगणों के साथ रह, उनके साथ बैठ, उन्हें गुरु शिक्षा देकर विद्वान् और वीरपुरुष बना ।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

भा०—हे इन्द्रियों और दुष्ट मानस भावों को दमन करने वाले विद्वान् पुरुष के पुत्र एवं शिष्य ! जो पुरुष तुझको लक्ष्य करके उपदेश करे और हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों को जो विद्या आदि हितकारी ऐश्वर्य के लिए चाहता या तृप्त करता है आप लोग उसके उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक उत्तम वीर्य, बल अथवा उत्तम अश्व के समान बलवान् पुष्ट करने वाले ब्रह्मचर्य बल को धारण करो ।

वीरों के पक्ष में—हे बल के द्वारा प्रजा पुरुषों के रक्षक ! नायक ! सांसारिक मनुष्य हितकारी धन को प्राप्त करने के लिये तेरे आगे ही निवेदन करता है । हे वीरो ! जो तुमको चाहे या तृप्त करे उसकी रक्षा के लिये आप लोग उत्तम तुरङ्गबल और उत्तम वीर्य धारण करो ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

भा०—वेद के सत्यज्ञान तथा विद्वान्, वेदज्ञ ब्राह्मण गण का पालक राजा आगे आए अर्थात् उच्च पद पर अधिष्ठित हो । प्रिय, उत्तम सत्या-चरण तथा सत्य शास्त्रयुक्त वाणी बोलने वाली विदुषी स्त्री तथा राजसभा उच्चपद पर विराजे । विद्वानगण वीर नेता पुरुषों में प्रमुख सेना के वीर पुरुषों की पंक्तियों को वश करने में कुशल पुरुष को हमारे सुव्यवस्थित राष्ट्र कार्य में प्राप्त करावें ।

परमेश्वर के पक्ष में—वेद ज्ञान का पालक परमेश्वर वा आचार्य हमें साक्षात् हो और सत्य वेदवाणी हमें ज्ञात हो । सबका हितकारी वीर्यवान् अक्षरपंक्ति का ज्ञाता विद्वान् स्वाध्याय, यज्ञ या ज्ञान के प्रव-चन कार्य में अग्रणी हो ।

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष को उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त राज्यैश्वर्य या वसने वाली प्रजा रूप धन को धारण कराता है। उस नायक को वीर्यवती बहुत अच्छी प्रकार सब ज्ञानों, पदार्थों और सुखों को देने वाली गौ के समान कभी न मारने योग्य, निर्दोष, निष्पाप कन्या के समान भूमि को हम प्रदान करें।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥

भा०—जिसके आश्रय पर शत्रु विजयी सेनापति, दुष्टों का निवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा, सबका स्नेही विद्वान् पुरुष न्यायाधीश आदि समस्त विद्वान्जन अपने २ स्थान, पद बनाये रहते हैं निश्चय से वह वेदज्ञान का पालक विद्वान् कहने और श्रवण करने योग्य मन्त्र, विचार को कहता है वही सर्वमान्य है।

परमेश्वर के पक्ष में—वह वेद या महान् जगत् का पालक परमेश्वर जिसके आश्रय पर विद्युत् समुद्र मेघ आदि प्राणगण, वायु और पृथिवी आदि लोक तथा समस्त विद्वान् अपना आश्रय बनाये हुए हैं, वही प्रभु उपदेश और श्रवण करने योग्य वेदमन्त्रों का उपदेश करता है। इति विंशो वर्गः ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषो ! हम लोग संग्राम के अवसरों पर और विज्ञान प्राप्त करने के अध्यनाध्यापन, व्याख्यान-प्रवचन आदि कार्यों में न नाश करने योग्य, स्थिर, सत्य, सदा रक्षा करने योग्य, निर्दोष यथार्थ अबाधित, शान्तिदायक, उस ही मनन योग्य विचार और वेदमन्त्र का उपदेश करें। हे मनुष्यो !

नायकगण ! यदि इस वाग्, वेद रूप वाणी को प्रत्येक अवसर पर चाहोगे, प्राप्ति और अभ्यास करोगे तो समस्त प्रकार की उत्तम, सुखप्रद वाणी तुम लोगों को अवश्य प्राप्त होगी।

को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥

भा०—विद्वानों, उत्तम गुणों, पदार्थों और वीर पुरुषों के चाहने वाले पुरुष को कौन प्राप्त होता है और शत्रुओं को कुशा के समान काटकर प्रजा पालन रूप यज्ञ करनेवाले कुशल पुरुष को कौन प्राप्त होता है ? उ०—वह वेदज्ञ विद्वान् ही वीराभिलाषी और शत्रुघाती प्रतापी राजा को मन्त्री रूप में प्राप्त होता है। दानशील पुरुष ही गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं, राष्ट्र भूमियों और सुसंगत, सुव्यवस्थित सेनाओं से नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। और भीतर गति करने वाले वायु से युक्त या भीतर आने वाले नाना ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों से पूर्ण निवास योग्य गृह को तथा प्रजा के निवास योग्य राष्ट्र को धारण करता है।

'पस्त्याभि.'—वसन्त्यस्मिन् । पततेर्वा, सकार उपजनः। पसेः संगत्यर्थे वा इति माधवः।

उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

भा०—जो राजा अपने क्षत्र अर्थात् सेना बल को अच्छी प्रकार सुव्यवस्थित सुगठित कर लेता है वह युद्ध आदि संकट के अवसर पर भी अन्य सहयोगी राजाओं की सहायता से मैदान मार लेता है, अर्थात् शत्रु का नाश कर देता है और अपनी उत्तम निवास भूमि अर्थात् राष्ट्र को भी अपने वश किये रहता है। बड़े २ संग्राम में भी न कोई इसके मुकाबले पर रहने वाला और न कोई इसको परास्त कर इससे बच जाने वाला ही होता है और न छोटे संग्राम में ही उस बल वीर्यशाली राजा को कोई परास्त और उल्लंघन कर सकता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[४१]

काण्वो घौर ऋषि ॥ देवता—१—३, ७—९ वरुणमित्रार्यमण । ४—६ आदित्याः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८ गायत्री । २, ३. ६ विराड् गायत्री । ७, ९ निचृद्गायत्री । नवर्च सूक्तम् ॥

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥१॥

भा०—जिस प्रमुख पुरुष को सर्वश्रेष्ठ सभापति या दुष्टों के वारणकारी. सबका मित्र, विद्वान्, उपदेशक, आचार्य, पक्षपात रहित, न्यायकारी, धर्माध्यक्ष. ये सब उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन सुचित्त सावधान होकर रक्षा करते हैं वह पुरुष कभी ही किसी से मारा नहीं जा सकता या पीडित हो सकता ।

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥२॥

भा०—जिस वीर तथा धर्मात्मा पुरुष को बाहुएं जिस प्रकार शरीर की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अनेक शत्रुओं को रोकने वाली बाहुएं तथा अनेक प्रबल सेना दल पालन करते हैं और घातक शत्रु के आक्रमण से बचाते हैं वह किसी प्रकार भी हिंसित या पीडित न होकर सब अंगो सहित बढ़ता है ।

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ३

भा०—प्रजा में विशेष मान, आदर, प्रतिष्ठा से चमकने वाले तेजस्वी एवं प्रजा को अनुरञ्जन करने वाले राजा गण इन शत्रुओं के दुर्गम गढ़ों को और शत्रु के नगरों और उनमें रहने वाले निवासियों को विविध उपायों से विनष्ट करते हैं और दुःखदायी कारणों तथा बुराइयों को दूर कर देते हैं ।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः४

भा०—हे आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालक विद्वानो ! एव अधिकारी पुरुषो ! सत्य ज्ञान और धर्मशास्त्र तथा वेदानुकूल चलने वाले का मार्ग सदा अति सुगम और काटों और विघ्न, भय

बाधा से रहित होता है। इस मार्ग में हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो के लिये भी किसी प्रकार का कोई भय नहीं, न्यायानुसार मार्ग के उल्लंघन करने पर जहां प्रजाजन को राजगण का भय होता है वहां अन्याय से वर्त्तने वाले राजा और उसके अधीन अधिकारियो को भी पीडित प्रजा से भय उत्पन्न होता जाता है।

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥५

भा०—हे सूर्य के समान सत्-मार्गों के प्रकाशक विद्वान् पुरुषो ! हे नेता पुरुषो ! आप लोग जिस प्रजा पालन या परोपकार के कार्य को सरल, कुटिलता रहित, न्यायानुकूल मार्ग से ले जाते हो वह राजा और राज्य कार्य आप लोगों के ऐश्वर्य भोग के लिये सदा प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥६॥

भा०—वह विद्वान् तथा धर्मात्मा मनुष्य किसी प्रकार भी पीडित और व्यथित न होकर सब प्रकार के रमण करने योग्य, सुखप्रद, ऐश्वर्य और अपने ही प्राण और बल से उत्पन्न पुत्र को भी भली प्रकार प्राप्त होता है।

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य॥७

भा०—हे मित्र जनो ! सबके सुहृद् न्यायाधीश राजा के गुणों का या पदाधिकार का हम किस प्रकार से वर्णन करें, क्योंकि सर्वश्रेष्ठ राजा का भोगने योग्य ऐश्वर्य और वैभव विस्तार या स्वरूप भी तो बहुत बड़ा है।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे॥८

भा०—हे धार्मिक पुरुषो ! विद्वान अधिकारी जनो ! और प्रिय प्रजाजनो ! प्रजाजन और राजा तथा मैं भी आप लोगों को मारने और पीडा देने वाले से कभी प्रेम से बात न करूं। और व्यर्थ निन्दा वचन कहने वाले से भी प्रेम से न बोलूं। और आप लोगों के उत्तम गुणों और विजयी

पुरुषों को चाहने वाले मित्र वर्ग की सुखजनक उत्तम पदार्थों द्वारा ही मैं सेवा करूं या आच्छादित करूं। मित्र गण को सब प्रकार से ऐश्वर्यों से पूर्ण करूं।

चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥९॥२३

भा०—विश, मादक पदार्थ, परपीडा, दूसरे के घर मे आए चार पदार्थों को देने वाले पुरुष से और चोरे हुए पदार्थों को स्थान देने वाले पुरुष से भी डरे। दुष्ट, दुःखदायी वचन और उसको कहने वाले को कभी स्नेह न करे। अथवा द्यूत खेलने वाला पुरुष जिस प्रकार चार पासों को हाथ मे लेने वाले से तभी तक डरता है जब तक वह पासों को नीचे नहीं धरता, उसी प्रकार दुर्वचन कहने वाले से डरे। उससे कभी प्रेम न करे [निरुक्तकार यास्क तथा सायण]। हनतः शपतो ददमानात् निधातोरेताश्चतुरः प्रति न विश्वसेत् बिभीयात्। दुरुक्ताय न स्पृहयेत्। एतान् मित्रकर्तुं नेच्छेत्। मारने वाले हत्याकारी, निन्दक, विष आदि देने वाले और अन्याय से पर पदार्थ के लेने वाले इन चारों पर विश्वास न करे, इनसे डरे। और दुर्वचन कहने वाले के साथ प्रेम न करे। इन चारों को मित्र न बनावे [दया०]

'चतुर·चित् ददमानात्'—इस प्रसग में मनु कहते हैं—

अग्निदान् भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।
संनिधातृंश्च मोषस्य हन्यात् चौरमिवेश्वरः ॥ मनु० अ० ९ । २७७ ॥

(१) दूसरे के घर मे आग लगा देने वाले, (२) विषयुक्त अन्न देनेवाले, (३) हत्या के लिए शस्त्र देने वाले और (४) हत्यारे, विषदायी और अग्नि लगाने वाले इन तीनों प्रकार के अपराधियों को व अपने घर में स्थान देनेवाले इन चारों को और चोरे हुए पदार्थ को अपने घर में रखने वालों को भी राजा चोर के समान दण्ड दे। वेद में भी उक्त चारों पदार्थों को देने वाले और चोरित पदार्थ को लेकर रखने वाले से भय करने और शंकित रहने को कहा है।

अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके प्राप्ति साधनों के देने वाले पुरुष से और वीर्य निषेक करने हारे मातापिता से भी भय करे। परन्तु उनके दुर्वचन को स्वयं ग्रहण न करे। अथवा उनके दोषयुक्त वचन या बुरे उपदेश का आदर या प्रेम न करे।

राजापक्ष मे—चारो सेनाओ के देने मे समर्थ और प्रचुर कोश वाले राजा से भय करे। परन्तु दुर्वचन कहाने वालो का आदर न करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[४२]

कण्वो घोर ऋषि ॥ पूषा देवता ॥ छन्द.—१, ६ निचृद्गायत्री। २, ३, ५—८, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः॥१

भा०—हे सबके पालनपोषण करने हारे सूर्य और पृथिवी के समान सबके रक्षक तथा पोषक! तू कठिन मार्गों के भी अच्छी प्रकार पार पहुंचा दे। हे विविध पदार्थों और सुखो को प्रजा पर न्योछावर करने वाले, मेघ के समान उदार पुरुषों को न नष्ट होने देने वाले राजन्! तू पाप और रोगपीडा से मुक्त कर। हे प्रकाशवन्! दानशील! तू हमारे आगे मार्गदर्शक रूप में रह। अथवा मार्ग के पार कर और हे प्रजा को न गिरने देने वाले! तू पाप और दुःख से मुक्त कर।

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि॥२

भा०—हे प्रजा के पोषक राजन् वा परमेश्वर! जो पापी दूसरो के का चोर, दुःखदायी होकर हम पर शासन करता है उसको तू मार्ग से कांटे के समान दूर उखाड फेंक।

प्र त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज॥३॥

भा०—हे राजन् वा विद्वन् तू दूसरे पर आक्रमण करने के लिए मार्ग से हटकर छुपने वाले और मार्ग से जाते हुए पर आक्रमण करने वाले, चोरों से मूसे के समान दूसरे के घर मे सेंध पाट कर चुराये धन

को ले भागने वाले, नाना प्रकार की कुटिल चालो से या झपट कर दूसरे के पदार्थों को हर लेने वाले, इन तीन प्रकार के चोरो को मार्ग से दूर बलपूर्वक शासन या उपदेश द्वारा दूर कर ।

त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥४

भा०—हे राजन् ! तू आंख के सामने, देखते देखते और पीठ पीछे दोनो प्रकार मे पदार्थ चुराने वाले,पाप और हत्यादि करने की घात मे लगे, क्या तेरा, क्या तेरा करके चुराने वाले उस उस नाना प्रकार के दुष्ट पुरुष की प्रजा को सन्ताप देने वाले गण के ऊपर पैर रखकर, उन पर बलपूर्वक शासन करके उनका मुकाबला कर, उनको वीरतापूर्वक दबा ।

आ तत्ते दस्रमन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥५॥२४

भा०—हे दुष्टो के नाश करने हारे ! हे उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्य वाले ! हे प्रजा के पोषक राजन् ! जिस शासन-बल से तू मां बाप के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को प्रेरित करता है, हम तेरे उस प्रजा के रक्षण तथा व्यवहार को चाहते हैं, स्वीकार करते हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ।

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥६॥

भा०—हे समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी के बोलने हारे परमेश्वर और सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न राजन् ! उत्तम वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमे उत्तम शिल्पी के समान सुख और शान्ति प्रदान करने वाले धन और ऐश्वर्य प्रदान कर ।

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७॥

भा०—हे समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर ! राष्ट्र प्रजा के पोषक राजन् ! विद्वन् ! हम लोगो को सुख से जाने योग्य उत्तम मार्ग से सब विघ्न बाधाओं को पार कर । और हमें अपने जीवन उद्देश्यो तक पहुंचने वाला बना । इस संसार में तू ही कर्त्तव्यो और ज्ञानो को जानता और

बनाता है, हमे भी आकर ज्ञान प्राप्त करा। हे विद्वन्! तू उन सब कर्त्तव्यों और विज्ञानों को स्वयं जान और हम सबको जना।

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूर्षन्निह क्रतुं विदः ॥८॥

भा०—हे सबको अन्न आदि से परिपुष्ट करने हारे प्रभो! राजन्! विद्वन्! जिस प्रकार पशुपाल अपने पशुओं को उत्तम चारे से भरे खेत मे चराने के लिए ले जाता है उसी प्रकार तू भी हमें उत्तम यव आदि अन्नों और ओषधियो से युक्त देश को पहुंचा। जिसमे जीवन मार्ग पर नया कोई सताप, पीड़ा, थकान आदि भी न हो। इस संसार मे तू ही शुभ कर्म करने की सामर्थ्य और ज्ञान को भी प्राप्त कर और हमे करा।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूर्षन्निह क्रतुं विदः॥९॥

भा०—हे सर्वपोषक! राजन्! सभा-सेनाध्यक्ष! तू सब कार्य करने मे समर्थ है। तू हमे समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण कर। तू ही अच्छी प्रकार हमें सब ऐश्वर्य प्रदान कर। तू अच्छी प्रकार तीक्ष्ण और तेजस्वी हो। तू ही हमारे पेटों को अन्न से पूर्ण कर। तू ही समस्त कर्त्तव्यों और ज्ञानों को स्वयं जान तथा अपनी प्रजा को जना।

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ॥१०।२५

भा०—हम लोग सबके पोषक पुरुष को न मारें, उसे पीडित न करें। प्रत्युत उत्तम वचनो से उससे वार्तालाप करें उसका सत्कार करें। शत्रु के नाश करने वाले एव दर्शनीय, अति उत्तम पुरुष से हम ऐश्वर्यों की याचना करें। अथवा अपने पोषक से मधुर वचन कहे और हिंसक को मारें। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दस्म—दसि दश दर्शनयोः दसि भाषार्थः। दसु उपक्षये।

[४३]

१—९ कण्वो घोर ऋषिः ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः। ३ मित्रावरुणौ। ७—९ सोमः ॥ छन्दः—१, ७, ८ गायत्री। ५ विराड्गायत्री। ६ पादनिचृद्गायत्री। ९ अनुष्टुप् ॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥१॥

भा०—उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर और उत्तम पवित्र चित्त से युक्त विद्वान्, सुखों, ज्ञानो और ऐश्वर्यों को प्रजा पर मेघ के समान वर्षण करने वाले, बहुत बडे बलशाली, हृदय मे विराजमान, दुष्टो को रुलाने वाले राजा, परमेश्वर तथा उत्तम उपदेश देने वाले आचार्य के प्रसन्न करने के लिए अति शान्तिदायक, सुखजनक हम वचन बोलें।

यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम्॥२॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी पशुओं को घास आदि खाने को देती है और अखण्ड शासन वाली राज्यव्यवस्था या राजा मनुष्यों की वृद्धि और हित के लिए होता है और जिस प्रकार गोपाल गौओ के हित के लिए पालन करता है और जिस प्रकार माता बालक के लिए अति प्रिय पोषक होती है। उसी प्रकार हमारे लिए शत्रु और दुष्टो के रुलाने वाले रुद्र, परमेश्वर, राजा का यह जगत्सर्जन, दुष्ट दमन आदि कार्य और विद्वान् उपदेष्टा का उपदेश आदि कार्य हमारी कल्याण-वृद्धि करे।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः॥३॥

भा०—जिस प्रकार हमें हमारा मित्र या प्राण चेताता और चैतन्य बनाये रखता है और जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, अज्ञानों और दुष्टो का वारक राजा हमे कुमार्ग में पैर रखने से चेताता है और हमें वार वार चेताता रहता है और जिस प्रकार हमसे प्रेम करने वाले समस्त हमे सङ्कट से चेताते हैं उसी प्रकार वह दुष्टो का पीड़क परमेश्वर राजा और ज्ञानोपदेष्टा आचार्य भी समस्त प्रजाओं, पुत्रों और शिष्यों को उपदेश करें, उनको सब प्रकार के संकटों, कष्टो और दुःखों से बचावें।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥४॥

भा०—गाथा, ज्ञान-वाणियो और विद्वानो के परिपालक, यज्ञों और यज्ञकर्ता, धर्मात्मा पवित्र पुरुषों के पालक, सुखकारी ओषधि और दुःख से छूटने के उपाय बतलाने वाले, ज्ञानोपदेष्टा, विद्वान् परमेश्वर से

हम अति शांतिदायक और दुःखनाशक परमसुख दायक मोक्ष की याचना करते हैं।

यः शुक्र इ॑व॒ सूर्यो॒ हिर॑ण्यमिव॒ रोच॑ते। श्रेष्ठो॑ दे॒वानां॒ वसुः॑॥५॥२६

भा०—जो अति दीप्ति वाला सूर्य के समान प्रखर तेज से चमकता है और जो सुवर्ण या अपने जीव आत्मा के समान अत्यन्त प्रिय है। वही सब विजयेच्छु विद्वानो और उत्तम पुरुषो मे श्रेष्ठ और सबको बसाने और सबमे बसने वाला परमेश्वर है। उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष आदि को भी सूर्य के समान तेजस्वी, सुवर्ण और आत्मा के समान प्रिय, विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ और सबको बसाने वाला होना चाहिये। इति पड्विंशो वर्गः ॥

शं नः॑ कर॒त्यर्व॑ते सु॒गं मे॒षाय॑ मे॒ष्ये॑। नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ गवे॑ ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर और समस्त ज्ञानो का उपदेशक वेद्य तथा राजा हमारे अश्व, भेढा, भेड़ी, पुरुषो, स्त्रियो और गौ, बैलो के लिए भी सुख और शान्ति प्रदान करे।

अ॒स्मे सो॑म॒ श्रिय॒मधि॒ नि धे॑हि श॒तस्य॑ नृ॒णाम्। महि॒ श्रव॑स्तुविनृ॒म्णाम्॥७

भा०—हे सर्वानन्दप्रद परमेश्वर! सबके प्रेरक एव अभिषेक योग्य राजन्! ऐश्वर्यवन्! तू हमारे लिए सौ पुरुषो के योग्य पर्याप्त लक्ष्मी, सम्पदा, बडा भारी अन्न और ज्ञान तथा बहुत से प्रकारो का धन संग्रह करके रख, प्रदान कर।

मा नः॑ सोम परि॒बाधो॒ मारा॑तयो जुहुरन्त। आ न॑ इन्दो॒ वाजे॑ भज ८

भा०—उत्तम पदार्थों, पुरुषो और राजा और राष्ट्र को पीडित करने [illegible] पुरुष हम पर बलात्कार न कर सकें। हे दयालो, वेग मे या दुत- [illegible]ति मे शत्रुओं पर आक्रमण करने हारे! तू हमारे हित के लिए युद्ध के [illegible] या जीवन सग्राम मे हमे नियुक्त कर या हमे प्राप्त हो।

यास्ते॑ प्र॒जा अ॒मृत॑स्य॒ पर॑स्मि॒न्धाम॑न्नृ॒तस्य॑।
मू॒र्धा नाभा॑ सोम वेन आ॒भूष॑न्तीः सोम वेदः ॥९॥२७॥८॥

भा०—हे सर्वेश्वर ! राजन् ! सत्यस्वरूप, कभी नाश न होने वाले तेरी जो प्रजाएं हैं, तू उनके सिर के समान प्रमुख नायक एवं पूज्य और नाभि या केन्द्र मे सबका आश्रय होकर सबसे उत्कृष्ट दुःख रहित स्थान या राष्ट्र अथवा ऐश्वर्य मे रहना चाहती हैं उनको तू सदा चाह, उनको प्रेम कर और उनको समृद्ध रूप मे स्वयं प्राप्त कर। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

[४४]

प्रस्कण्व ऋषि ॥ देवता—१—१४ अग्नि ॥ छन्दः—१,५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती। ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। ७, ११ निचृत्पथ्याबृहती। १२ भुरिग्बृहती। १३ पथ्याबृहती च। २, ४, ६, ८, १४ विराट् सतः पंक्तिः। १० विराड्विस्तारपंक्तिः — ९ आर्ची त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ विव॑स्वदु॒षस॑श्चि॒त्रं राधो॑ अमर्त्य ।
आ दा॒शुषे॑ जातवेदो वहा॒ त्वम॒द्या दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुध॑: ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे जरामरण से रहित अविनाशी ! हे समस्त पदार्थों के जाननेहारे, प्रत्येक पदार्थ मे व्यापक ! ऐश्वर्यवन् ! विद्यावन् ! समस्त जीवो के स्वामिन् ! तू अपने को आपके समर्पण कर देनेवाले साधक को उषाकाल में से उत्पन्न होने वाले, सूर्य के समान प्रकाशवाले, अद्भुत ऐश्वर्य के समान पापो के जला देने वाली विशोका प्रज्ञा के उदय कालो मे विशेष प्राणों के सामर्थ्यों से युक्त, चेतना या चितिशक्ति से युक्त साधना का बल प्राप्त करा : तू आज भी प्रात.काल ब्राह्ममुहूर्त्त में जागने वाले एव उस विशोका प्रज्ञा के द्वारा विशेष ज्ञान सम्पन्न होने वाले, विद्वान् ज्ञाननिष्ठ पुरुषो को भी अपने मे धारण कर। इसी प्रकार हे राजन् ! प्रतापी सभाध्यक्ष ! तू पापी लोगों के संतापकारी अपने उदयों या उत्थानों से ही प्रजा को अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर और विद्वान् विजयी पुरुषों को धारण कर।

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! जिस प्रकार अग्नि अपने बीच मे पडे आहुति के पदार्थों को सूक्ष्म रूप से अति गुणकारी करके दूर देश तक पहुचाता है उसी प्रकार तू भी ले जाने और ले आने योग्य वृत्तान्तो और सदेशो को सूक्ष्म रूप से प्रजा के हित के लिए ले जाने हारा है। इसीलिए तू सबका प्रीतिपात्र और दूत एव शत्रुओ का तापक होने से भी 'दूत' होने योग्य है। तू कभी शस्त्रादि से से भी न मारने योग्य अवध्य पुरुषो मे रथवान् नायक के समान सर्व-प्रमुख है। तू दिन रात्रि और प्रातः उपाकाल इनसे युक्त होकर अग्नि जिस प्रकार उत्तम बलकारी अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी राजा और प्रजा वर्ग दोनो या दो अश्वारोही और तेजस्वी उषा के समान विद्या और प्रभाव से युक्त होकर हमे उत्तम वीर्य बल से युक्त बडे भारी राष्ट्र और विख्यात यश और बल को प्रदान कर। 'अग्नि' यज्ञ के बीच नायक होने से 'रथी' है : वह परिपाक करके वीर्यप्रद अन्न देता है।

परमेश्वर पक्ष मे—उपास्य होने से 'दूत' है। स्तुति योग्य होने से हव्यवाहन है। रसस्वरूप होने से अविनाशी जीवो के बीच रथी है। वह प्राण, अपान और प्रजा के उदय मे बडा ज्ञान प्रदान करे।

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥

भा०—आज, अब, सदा हम लोग बहुतो को प्रसन्न सतुष्ट करने और प्रिय लगने वाले, सर्वप्रिय सकल विद्या और उत्तम गुणो के आश्रय, अग्नि के समान तेजस्वी, अग्नि के धूम के समान शत्रु को कम्पित करने वाले एवं प्रभावशाली ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त प्रात काल की वेलाओं में जिस प्रकार अग्नि और सूर्य विशेष दीप्तियो से युक्त होकर क्रम से उत्तरोत्तर दीप्तियों में बढ़ता ही जाता है उसी प्रकार अपने राष्ट्र की

विविध कामना और तेजस्वी कार्यों के अवसर पर विशेप सौम्य एवं उत्तरोत्तर चढने वाली कान्ति को प्राप्त करने वाले, अथवा सभा को अपने वश करने मे समर्थ यज्ञो मे अश्वमेघ आदि यज्ञो के विशेप आश्रय रूप अग्नि के समान ही समस्त प्रजा के एकत्र हुए सघो और प्रजा पालक राजाओं के बीच मे अहिस्य या अवध्य होने के पद को विशेष रूप से प्राप्त होने वाले उत्तम संदेशो तथा उपासना आदि पदार्थों के ले जाने हारे दूत रूप से हम चुनें।

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—प्रात काल के अवसरो मे जिस प्रकार हम लोग अग्नि को प्रदीप्त कर परमेश्वर की यज्ञों मे उपासना करते है। उसी प्रकार हम लोग सबसे श्रेष्ठ, उत्तम, सब से अधिक बलशाली अतिथि के समान पूजनीय, सबके प्रेमपात्र और सेवा करने योग्य अच्छी प्रकार आदर से बुलाये जाने योग्य वेतन,भृति आज्ञा आदि के देने वाले राजा के हित के लिए विजिगीषु राजाओं, विद्वानो और वीर पुरुषों के प्रति जाने के योग्य समस्त उपस्थित या वर्तमान कार्यों और व्यवस्थाओ को भली प्रकार जानने वाले ज्ञानी पुरुष को नाना प्रकार की इच्छा और कामनाओ की पूर्त्ति के निमित्त मैं प्रधान पुरुष के रूप मे नियुक्त करूं, भेजूं।

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! हे अविनाशिन्! हे सबके पालक! हे दु खो के नाशक! हे ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न आदि पदार्थों और बलो और ज्ञानो को धारण करने वाले! सबको त्राण करने वाले कभी न मरने हारे या न मारने योग्य, अवध्य, उपासना योग्य, एवं आदर सत्कार करने योग्य, विपत्तियो से बचाने वाले प्रभो! तेरी मैं स्तुति करूंगा। परमेश्वर अमर होने से 'अमृत' है। दूत अवध्य होने से

'अमृत' है। राजा बल में अदम्य होने से 'अमृत' है। आत्मा नित्य होने से 'अमृत' है। परमेश्वर पालक होने से, आत्मा भोक्ता होने से, राजा भोक्ता और पालक दोनों होने से 'भोजन' है। दूत भेंट, उपायन, सन्देश आदि ले जाने से 'हव्यवाहन' है। ईश्वर स्तोतव्य गुण और जगत् के लोक धारक होने से 'हव्यवाहन' है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम्॥ ६॥

भा०—हे अति युवा पुरुष के समान कभी क्षीण न होने वाले बल वीर्य से युक्त, अतिप्रिय! मनोहर! हे नमस्कार करने योग्य पूज्य! परमेश्वर और राजन्! तू उत्तम स्तुतियों से युक्त एवं उत्तम अनुशासनों, शिक्षाओं से युक्त मधुर, मनन करने योग्य ज्ञानों और वचनों को जिह्वा पर धारण करने वाला, मधुर वाणी से बोलने वाला, अपने भक्तों को मधुर भक्तिरस प्रदान करने वाला, उत्तम आदर सत्कार से सत्कृत होकर तू उत्तम मेधावी उपासक या भली प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले पुरुष को जीवन के लिए दीर्घायु बढ़ाता हुआ दिव्य, विद्वानों में श्रेष्ठ, एवं वीर पुरुषों में उत्तम जन की रक्षा कर और स्तुति करने वाले को ज्ञान प्रदान कर। उपदेश करने वाले के वचनों का श्रवण कर, उनको समझ। प्रार्थना करने वाले का अभिप्राय जान। अथवा हे पुरुष! तू राजा, विद्वान् एवं ईश्वर के भक्तजन को नमस्कार कर।

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत्॥ ७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! तेजस्विन्! हे राजन्! परमेश्वर! समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, सब सुखों और ऐश्वर्य के दाता, तुझको ही समस्त प्रजाएं अच्छी प्रकार प्रदीप्त करतीं, हृदय में चेतातीं, आपके द्वारा अपने को बलवान् तेजस्वी बनाती हैं। हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति योग्य! तू उत्कृष्ट ज्ञानवाले विद्वानों और विजयेच्छु पुरुषों को इस राष्ट्र में अतिशीघ्र

प्राप्त करा। स्वयं उनको प्राप्त हो। प्रजाएं राजा को तेजस्वी बनाती हैं और राजा प्रजाओं को तेजस्वी बनाता है।

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

भा०—हे उत्तम अहिंसनीय, प्रबलतम ! उषाकाल के समान शत्रु-रूप अन्धकार के नाशक ! मेधावी, बुद्धिमान्, शत्रुहन्ता और उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाले अथवा सोम अर्थात् राजा के पद पर अभिषेक करने वाले पुरुष देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों को धारण करने वाले तुझको, सूर्य के समान तेजस्वी, सूर्य चन्द्र से युक्त दिन रात्रि के समान प्रकाशक शत्रुसंतापक और प्रजा को शान्तिदायक ऐश्वर्यवान् अग्नि के समान तेजस्वी रूप में प्रदीप्त करते हैं, तुझे अधिक शक्तिशाली, प्रभाववान् और तेजस्वी बनाते हैं।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू यज्ञों के पालक अग्नि के समान हिंसादि से रहित प्रजापालन के कार्यों में और शत्रु से न मारे जाने वाले वीर पुरुषों के बीच उन सबका स्वामी और समस्त अधीन प्रजाओं का आदर योग्य एवं संदेशहर या प्रमुख है। तू राष्ट्र के ऐश्वर्यों को आनन्दप्रद अन्न आदि ओषधि-रसों के समान पान करने या उपभोग करने के लिए सुख, ज्ञान और मोक्षानन्द के देखने वाले अर्थात् प्राप्त करने वाले प्रातःकाल अग्नि और सूर्य के समान चेतने वाले तेजस्वी, अप्रमादी, ज्ञानी विद्वान् और वीर पुरुषों को आज सदा धारण कर।

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः।
असि ग्रामेष्ववि॒ता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥

भा०—हे विशेष दीप्ति या प्रकाश से समस्त लोकों को आच्छादित करने वाले अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू पूर्व के उषाकालों या

दिनो के समान ही समस्त ससार मे दर्शनीय होकर प्रकाशित हो और विज्ञान और तेज का प्रकाश कर। तू जनसघो और प्रजा के निवास योग्य स्थानो और संग्रामो मे ज्ञानदाता और रक्षक है। यज्ञो मे, प्रजा-पालन आदि के उत्तम कार्यों मे सब मनुष्यो का हितकारी होकर प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश और सत्यासत्य के विवेक के लिए साक्षी-रूप से आगे उत्तम पद पर स्थापित होकर सबका हित करने वाला है। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

नि त्वा॑ य॒ज्ञस्य॒ साध॑नमग्ने॒ होता॑रमृ॒त्विज॑म्।
म॒नु॒ष्वद्दे॑व धीमहि॒ प्रचे॑तसं जी॒रं दू॒तमम॑र्त्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! तुझको हम लोग सुप्रबद्ध, सुसगत ब्रह्माण्ड, जगत् के बनाने, पालने और आश्रय देनेहारा, समस्त सुखो के देने हारा या समस्त जगत् को अपने भीतर ले लेनेहारा, शरीर मे प्राणो को स्थापन करने वाला, सूर्य के समान ऋतुवत् कल्पो २ मे प्रलय और सृष्टि करनेवाला, उत्कृष्ट ज्ञान वाला अविनाशी, नित्य सबको सहार करने वाला, कालस्वरूप सर्वोपास्य ज्ञान, सामर्थ्य से सम्पन्न तुझको जानते और अपने हृदय मे धारण करते है।

विद्वान् राजा के पक्ष मे—प्रजापालन के साधक, सुखो के दाता, प्रति ऋतु यज्ञ के कर्ता, अथवा ऋतु अर्थात् सदस्यो से सम्बद्ध, उत्तम विद्वान् शत्रुओं के नाशकारी, प्रतापी, दूत के समान अवध्य प्रबल जान कर मानवो मे युक्त तुझको राष्ट्र के परमपद पर स्थापित करते हैं।

यद्दे॒वानां॑ मित्रमहः पु॒रोहि॑तोऽन्त॑रो॒ यासि॑ दू॒त्य॑म्।
सिन्धो॑रिव॒ प्रस्व॑नितास ऊ॒र्मयो॒ऽग्नेर्भ्रा॑जन्ते अ॒र्चय॑ः ॥ १२ ॥

भा०—हे मित्र अर्थात् सूर्य समान महान् तेज और सामर्थ्य वाले! तथा मित्रो, स्नेह करने वाले सुहृदों मे से सबसे अधिक पूजनीय परमेश्वर! तू समस्त सूर्य, पृथिवी आदि लोको और विद्वानो के बीच ही सबके साक्षी रूप से विद्यमान सर्वोच्च पद पर स्थापित, सबके कल्याणकारी, सबके

अन्तःकरणों मे व्यापक, अन्तर्यामी होकर सर्वोपास्य पद को प्राप्त हैं। महान् सागर के भारी गर्जना करने वाले तरंग जिस प्रकार उमड़ते है और आग की ज्वालाएं जिस प्रकार भडका करती हैं उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक, एवं सबको अपने भीतर बांधने वाले या सबको चलाने हारे, शक्ति और ज्ञान के अगाध सागर तेरे मे से ही ये सब तरंगें उमड़ती और प्रकाशस्वरूप तेरी ही समस्त ये ज्योतिज्वालाए चमक रही हैं।

दूत और विद्वान् के पक्ष मे—हे मित्र राजा के समान पूज्य ! मित्र और शत्रुरूप दोनो के बीच तू साक्षी रूप होकर दूतकर्म के लिये जा तेरे गर्जना पूर्ण वचन सिन्धु की तरंगो और अग्नि की ज्वालाओ के समान उमडें, उठें और चमकें।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे कानो से उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक श्रवण करने वाले विद्वन् ! राजन् ! तू तेरे साथ सदा प्रयाण करने और जाने वाले सदा सहयोगी, राज्य के कार्यों को अपने ऊपर धारण करने वाले, विद्वानों और विजयेच्छु और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ प्रजा के धर्म, व्यवहारो को श्रवण कर। अवध्य, एवं अहिंसनीय, तिरस्कार न करने योग्य, उच्च आदरणीय उच्च पद को प्राप्त होकर सबका स्नेही, न्यायाधीश और प्रातःकाल ही अपने कार्य पर दत्त-चित्त होकर सबसे पूर्व उपस्थित होने वाले विद्वान् जन आदर योग्य बड़े २ पदो और आसनो पर विराजें।

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः॥ १४ ॥ ३० ॥

भा०—उत्तम व्यवस्थित रीति से देने वाले सत्य के बढ़ाने और सत्य के बल से बढ़ने वाले विद्वान् पुरुषों को अपनी वाणी या मुख अर्थात् मुख्य बनाने वाले प्रजा के मनुष्य न्यायपूर्वक कहे आज्ञा-वचनों को श्रवण करें। वे और स्वयं प्रजाओं द्वारा वरण किया गया, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश,

समस्त व्रतों नियमों को धारण करने वाला दो मुख्य विद्वानों और दुष्ट पापी पुरुषों को संताप देने वाली पोलिस अथवा तत्व प्रकाश करने वाली न्यायसभा के साथ मिल कर कूट पीस कर निकाले ओषधि रस के समान वादविवाद द्वारा निर्णय किये यथार्थ तत्व को ग्रहण करे। अर्थात प्रजाजन विद्वान् वकील को प्रमुख करें, सत्य से बढ़ें, उत्तम रीति से फीस शुल्क दें और न्याय प्राप्त करें। न्यायाधीश दो विद्वानों तथा न्यायसभा या ज्यूरी से मिल कर तत्व को ग्रहण करे।

सेनापति और सैनिकों के पक्ष में—वीर सैनिक वायु के समान तीव्र उत्तम रीति से शत्रु को काटने और प्रजा के पालक और उत्तम वेतन दिये जाकर बल और राष्ट्र को बढ़ाते हुए आज्ञा वचन सुनें। राजा, नियम पालक होकर विद्वानों और चतुरंग सेना और राजसभा से मिल कर राष्ट्र को वश करे, भोग करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[४५]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ १—१० अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । ५ उष्णिक् । २, ३, ७, ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त ।
यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् विद्वन्! तू इस संसार में वा राष्ट्र में बसने वाले, वर्ष के ब्रह्मचारी, प्राणों के नियन्ता, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी और ४८ तेजस्वी विद्वानों को अथवा ब्राह्मणों, क्षत्रियों और व्यापारी वैश्य को एकत्र कर। और हे राजन्! तू उत्तम यज्ञशील, आस्तिक और मननशील, आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके शास्त्रविज्ञान विद्वान् हुए, घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि पोषक पदार्थों के सेवन करने वाले तेजस्वी तथा विधिपूर्वक जन्मे और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए, स्नातक विद्वान् पुरुष को भी ऐश्वर्य प्रदान कर तथा उनका सत्संग कर।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! राजन् ! विविध प्रकार के शास्त्रों के ज्ञाता, विद्या के दाता, विद्वान् आचार्यगण भी भक्तिपूर्वक दान देने वाले शिष्य के लिए ही उत्तम विद्या आदि को प्राप्त करें । हे रक्तवर्ण के अश्वों या अश्वारोही सैनिकों के स्वामिन् ! हे स्तुति वाणियो के पात्र ! तू ही उन तैंतीस प्रकार के विद्वानों को प्राप्त कर ।

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे महान् कर्त्तव्य करने वाले ! अति सूक्ष्म मनोहर बुद्धि वाले प्रतिभावान् पुरुष के समान तीनों तापो से रहित, गुणयुक्त पुरुष के समान और नाना रूपों को धारण करने वाले बहुरूप के समान और अंगों में बलकारक प्राण के समान होकर उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् पुरुषों के उपादेय ज्ञानयुक्त वचन को श्रवण कर ।

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

भा०—बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पीगण और सबको सन्तुष्ट करने वाली, मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी अवध्य, अति प्रबल राजाओं के बीच में ज्ञानी, प्रतापी और अति शुक्ल, निष्पाप, अति उज्ज्वल तेज से चमकने वाले अति तेजस्वी, प्रतापी धर्मात्मा पुरुष को अपनी रक्षा के लिए राष्ट्र के लोग प्रधान राजा रूप से स्वीकार करें ॥ इसी प्रकार विद्वानजन रक्षा और ज्ञान के लिए ज्ञानी गुरु और परमेश्वर की स्तुति करें ।

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—घृत की आहुति लेकर अग्नि जिस प्रकार चमकता है उसी

प्रकार ज्ञान और तेज की आहुति से देदीप्यमान हे विद्वन् ! हे सुख प्राप्ति के कार्यों और साधनों मे कुशल, उत्तम ऐश्वर्यप्रद ! विद्वन् ! प्रभो ! जिन वेदवाणियों से मेधावी विद्वान् पुरुषों के पुत्र और शिष्यगण रक्षा और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये तेरी स्तुति करते हैं। तू इन वेदवाणियों को श्रवण कर और अन्यों को श्रवण करा, उपदेश कर। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः॥

त्वां चित्रश्रवस्तम् हवन्ते विक्षु जन्तवः।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोह्ळवे ॥ ६ ॥

भा०—हे अद्भुत ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्यों के धारण करने वाले ! सबसे उत्तम ज्ञानी, फलप्रद, ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! हे सब जनों को भरपूर तृप्त करने हारे ! सबके प्रिय ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! अग्ने ! हवि पदार्थ को समस्त वायु, जल आदि पदार्थों तक प्राप्त कराने के लिये जैसे प्रज्वलित अग्नि को प्राप्त करते हैं और रथादि को उठा ले चलने के लिये जैसे अश्व को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ग्रहण करने योग्य, उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये अति दीप्तियुक्त केशों के समान किरण समूहों से युक्त, तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी तुझको प्रजा जनों में सभी प्राणी तुझे ही पुकारते और प्राप्त करते हैं।

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रतापिन् ! ज्ञानवन् ! प्रभो ! यज्ञों में जिस प्रकार अग्नि का आधान करते हैं उसी प्रकार उत्तम ज्ञानों, ऐश्वर्यों और सुखों के देने वाले प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, एवं राजसभा के सदस्यों को एकत्र करने वाले, सबसे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, समस्त विद्याओं और प्रजा के कष्टों को श्रवण करने वाले, अति विस्तृत ज्ञान और विद्या से युक्त तुझ विद्वान् और शक्तिमान् को सभी उत्तम ज्ञानों और कामनाओं को प्राप्त करने के लिये कोष के समान सुरक्षित रूप से रखते और अपने हृदयों में स्थापित करते हैं।

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्त्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! प्रतापिन्! राजन्! जिस प्रकार विद्वान् लोग यज्ञशील, दक्षिणा के दाता यजमान के लिये हवि ग्रहण करके सोम सेवन करने वाले ऋत्विग् जन अग्नि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विविध पदार्थों, ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् पुरुष राष्ट्र को ऐश्वर्यमय बना कर मरणशील करप्रद या भृति के देने वाले प्रजा पुरुषों के हित के लिये ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को धारण करते हुए उत्तम अन्न और ज्ञान को प्राप्त करने का लक्ष्य रखकर बड़े भारी तेजस्वी तुझको शिष्य बनकर प्राप्त हों ।

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे बल को सम्पादन करने वाले! हे सज्जनों में कुशल सहनशील! हे श्रेष्ठ गुणों मे बसने वाले विद्वन्! यहां इस काल मे प्रातः ही आकर उपस्थित होनेवाले शिष्य गणों और दिव्य गुणों वाले विद्वानो के प्रिय पुरुष को भी ओषधि रसपान के लिये वैद्य जिस प्रकार रोगियों को आदर से बैठाता है उसी प्रकार उत्तम आसन पर सत्कार पूर्वक बैठा ।

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥ ३२ ॥

भा०—हे उत्तम ऐश्वर्यों को देनेहारे, दानशील पुरुषो! एव ज्ञान के दाता विद्वान् पुरुषो! यह ज्ञान का पिपासु, दीक्षा को प्राप्त शिष्य है। एक दिन के उपवास व्रत कर चुकने के अनन्तर प्राप्त हुए उसको तुम पालन करो, अपने भीतर ले लो। हे विद्वन्! तू अपने अभिमुख आये हुए विद्वानों के हितकारी जन को समानरूप से आदरपूर्वक सम्बोधन वचनों द्वारा अपने साथ मिला लो।

[४६]

१—१५ प्रस्कण्वः काण्व ऋषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १० विराड्गायत्री । ३, ११, ६, १०, १४ गायत्री । ५, ७, ६, १३, १५, २, ४, ८ निचृद्गायत्री ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

भा०—तेजस्वी सूर्य की प्रिय, मनोहर अपूर्व, अद्भुत, दिन में सबसे पूर्व प्रकट होने वाली उषाकाल जिस प्रकार प्रकट होकर अपने उत्पादक दिन रात्रि तथा सूर्य के उत्तम तेज को प्रकाश करती है उसी प्रकार यह अति कामना योग्य अपने अभिलषित कामना करने वाले पति को प्रिय लगने हारी सबसे प्रथम उसी को प्राप्त होकर विविध प्रकार से उत्तम गुणों को प्रकट करती है । हे परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री पुरुषो या गुरुजनो ! दिन और रात्रि या सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान तुम दोनों के मैं बहुत ही अधिक गुणों का वर्णन तथा उत्तम ज्ञान का उपदेश करूं ।

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

भा०—जो ये दोनो एक दूसरे के दुःखों को नाश करने वाले या एक दूसरे के प्रति दर्शनीय, सुन्दर, सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार महान् आकाश से प्रकट होते हैं उसी प्रकार तुम भी सिन्धु के समान गम्भीर माता पिताओं से रत्नों के समान उत्पन्न हुए अथवा महानदी से माता के समान सींचे गये, उत्तम क्षेत्रों या वृक्षों के समान, परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन या चित्तवाले ऐश्वर्यों के देने वाले, ज्ञानी, उद्योग और प्रज्ञा के बल से ऐश्वर्य धन या ज्ञान को प्राप्त करने वाले होकर रहो ।

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

भा०—हे उत्तम विद्वान स्त्री पुरुषो ! जब तुम दोनों का रथ, रमण विनोद करने का साधन पक्षियों के साथ अन्तरिक्ष में भी जावे । वृद्धावस्था में वर्त्तमान बड़े बूढ़े आदमी तुम दोनों को सदा उपदेश करते रहें ।

अध्यात्म में—जब वृद्ध जन तुम दोनों को सदा उपदेश करें तब ही

तुम दोनों का आत्मा परमहंस योगियों या प्राणों के साथ तापरहित, सुखमय अध्यात्म दशा में विचरे।

ह॒विषा॑ जा॒रो अ॒पां पिप॑र्ति॒ पपु॑रिर्नरा। पि॒ता कुट॑स्य चर्ष॒णिः ॥४॥

भा०—अपनी किरणों के ताप से जलों को सूक्ष्मरूप से खींच लेने वाला सूर्य जिस प्रकार सबका पालन करने वाला होकर पिता रूप से वृद्धि से अन्न उपजाकर, उससे सबको पालन करता है और समस्त कुटिल, टेढ़े मेढ़े मार्गों को प्रकाश से दिखाता भी है उसी प्रकार हे गृहस्थ के बीच नायक नायिका रूप से विद्यमान स्त्री पुरुषो! आप दोनों अन्न द्वारा प्रजाओं का पालन करो। कुटिल मार्ग के देखने वाले होकर अर्थात् विवेकशील बनकर आदर्श माता पिता के समान सन्तानों का पालन करो।

आ॒द॒रो वां॑ मती॒नां नास॑त्या मतवचसा। पा॒तं सोम॑स्य धृष्णु॒या ॥५॥३३

भा०—हे सदा सत्याचरण करने वाले, हे अभिमत, प्रिय, ज्ञान-युक्त वाणी के बोलनेवालो! आप दोनो का, वीर रथी और सारथि के समान मननशील बुद्धिमान् पुरुषों के बीच शत्रुओं का नाशक प्रभाव और आदर हो। उससे और शत्रुओं को धर्षण या पराजय करने वाले बड़े सामर्थ्य से आप दोनों राष्ट्र, ऐश्वर्य और शरीरस्थ वीर्य तथा उत्तम सन्तति का पालन करो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः।

या नः॒ पीप॑रदश्विना॒ ज्योति॑ष्मती॒ तम॑स्ति॒रः।ताम॒स्मे रा॑साथा॒मिष॑म् ॥६॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र या दिन और रात्रि के समान परस्पर अनुरक्त एवं उपकारक स्त्री पुरुषो! जो अन्न या उत्तम कामना या अभिलाषा, दिन रात्रि के बीच सन्धि वेला में उत्पन्न होने वाली प्रभातवेला उषा के समान कान्तिवाली उज्वल चित्ताकर्षक होकर हमें हमारे दुःख, शोक और दारिद्रयादि के चिन्ता रूप अन्धकार से पार उतार दे उस इच्छा, कामना और उद्योग, चेष्टा, सम्मति या अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि को हमें प्रदान करो।

आ नो॑ ना॒वा म॑ती॒नां या॒तं पा॒राय॒ गन्त॑वे। यु॒ञ्जाथा॑मश्विना॒ रथ॑म्॥७॥

भा०—हे विद्या मे निपुण स्त्री पुरुषो ! एवं शिल्प कला मे चतुर पुरुषो ! आप दोनों हमारे बुद्धिमान् मनुष्यों को पार, परले तट पर पहुं-चाने के लिए जल मे नौका से उपस्थित रहो और आया जाया करो और स्थल मे रथ मे बैल और घोड़े जोडा करो।

अ॒रित्रं॑ वां दि॒वस्पृ॒थु ती॒र्थे सिन्धू॑नां॒ रथः॑। धि॒या यु॑युज्र॒ इन्द॑वः॥८

भा०—हे शिल्प मे निष्णात स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों के आकाश के पार जाने के लिए और बहने वाले महा समुद्रों के पार जाने के लिए बड़ा भारी यान हो और पृथिवी पर जाने के लिए उत्तम रथ हो। जिसमें उत्तम कौशल से नाना द्रुतगति करने वाले चक्रादि पदार्थ लगाये जावें। अथवा समुद्र और भूमि के पार जाने के लिए बडी नाव, जहाज और पृथिवी पर बड़ा रथ हो। जिसमें अग्नि या विद्युत आदि पदार्थ और जलों को युक्ति से लगाया जावे। दया०।

सूर्य पक्ष में—नदियों या जलों के पार जाने के लिए बड़े नाव के समान मानो आकाश को पार जाने के लिए यह सूर्य रूप रथ है जिसमें अति वेगवान् किरणें या चन्द्र के समान नवग्रह बड़ी युक्ति के साथ लगे हैं अर्थात् गति कर रहे हैं।

दि॒वस्क॑ण्वास॒ इन्द॑वो॒ वसु॒ सिन्धू॑नां प॒दे। स्वं व॒व्रिं कुह॒ धित्स॑थः॥९

भा०—हे विद्वान् ज्ञानी स्त्री पुरुषो ! समुद्रों के परम गन्तव्य, गुप्त, गहरे स्थान में रक्खे वास योग्य भूमि ऐश्वर्य के समान एवं सूर्य की किरणों और सूर्य चन्द्र के समान, तुम दोनों सुन्दर, उज्ज्वल रूप या ऐश्वर्य को भी किस स्थान पर रखना चाहते हो॥ अथवा हे शिल्पियो ! जलों के बीच में, जल, अग्नि आदि तत्वों और अपने रूपवान् पदार्थों को या धन को कहां रक्खोगे।

अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! सूर्य की किरणों या आकाश में स्थित जलों के समान जो तुम्हारे ये प्राण या लिङ्गशरीर हैं। इनमें

सदा गतिशील प्राणो के परम गन्तव्य पद मे वास करने वाले वरण करने योग्य अपने सुन्दर आत्मा को तुम कहां धारण करते हो। उत्तर अगले मन्त्र में देखो।

अभूंदु भा उं अंशवे हिरंण्यं प्रति सूर्यः। व्यंख्यज्जिह्वयासितः॥१०।३४

भा०—जब सूर्य का प्रकाश सुवर्ण के समान धातु के बने दीप्तियुक्त पदार्थ पर पडता है तब उसकी ज्वालायें दीप्तिकिरणपुंज के रूप मे प्रकट होती हैं और काठ आदि के आश्रय रूप बन्धन से रहित, अग्नि ज्वाला रूप से प्रकट होता है। इस स्थल पर 'हिरण्य' प्रक्षेपक नतोदर दर्पण है। 'अंशु' का अर्थ फोकस है। जब सूर्य नतोदर दर्पण पर पडता है तब सूर्य की दीप्ति फोकस पर झुकती है। वहां अग्नि मकट होता है। वह अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों में बद्ध न होने से 'असित' कहाता है। वह तीव्र ज्वाला या 'जिह्वा' या किरणो के शंकु के रूप मे ही होता है। महर्षि दया० ने स्पष्ट लिखा है। विना बन्धन का दीप्ति रूप सूर्य प्रकाश अंशु के स्थान मे जिह्वा के रूप मे प्रकट होता है। इसलिए सूर्य के सन्मुख ही अपना सुवर्ण आदि धातु का बना दर्पण पदार्थ उचित स्थान पर रक्खे। प्रथम मन्त्र में प्रश्न था कि सूर्य की किरणें अपना रूप कहां प्रकट करती हैं इसका इस मन्त्र मे उत्तर स्पष्ट हो गया। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः।

अभूंदु पारमेतंवे पन्थां ऋतस्यं साधुया। अदंर्शि वि स्रुतिर्दिवः॥११॥

भा०—समुद्र के अपार जल के भी अच्छी प्रकार पार जाने के लिए मार्ग अवश्य है। और प्रकाश और सूर्य का भी गमन करने का मार्ग विविध उपायो से देखा जाता है। पूर्व के मन्त्र ९ में समुद्रों के बीच में बसने लायक स्थान कहा है और सूर्य और चन्द्र समुद्र के अतिरिक्त अपना रूप कहां रखते हैं? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट हुआ।

अध्यात्म मे—सत्य का ही मार्ग इस संसार सागर के पार जाने के लिए सबसे उत्तम है उसी मार्ग से परम मोक्ष या ज्ञानी आत्मा का मार्ग भी देखा जा सकता है या प्राप्त हो सकता है।

तत्त्विदृश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः १२

भा०—उपदेशक विद्वान् पुरुष, आनन्द और सुख को प्राप्त करने के लिए परम प्रेरक शक्ति या बल या ऐश्वर्य को पालन, पूरण करनेवाले सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि जल और उनके समान ज्ञानयुक्त शिल्पियों के उन उन, नाना प्रकार के विज्ञानों और सामर्थ्यों को प्रत्येक पदार्थ में ही देखना चाहता है अर्थात् अनुभव करता है।

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम्१३

भा०—सूर्य के आधार पर रहने वाले दिन और रात्रि जिस प्रकार जल और वायु के पान या उपभोग द्वारा शान्तिदायक तथा सुखप्रद होते हैं उसी प्रकार विविध शिष्यों या अन्तेवासी छात्रों के स्वामी, अथवा विशेष ब्रह्मचर्यादि के पालनार्थ रहने योग्य आचार्य गुरु के अधीन नित्य नियम से रहने वाले स्त्री और पुरुष, कन्या और कुमार दोनों वीर्य के पालन और वेदवाणी के अभ्यास द्वारा मननशील ज्ञानवाले होकर जन साधारण को शान्तिदायक एवं कल्याणकारी सौम्य होकर अपने घरों को आवें। इसी प्रकार राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों तेजस्वी राजा के आश्रय पर राष्ट्र के भोग और पालन द्वारा ज्ञानी पुरुषों से युक्त होकर शान्तिदायक हों।

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः ॥१४॥

भा०—बराबर व्यतीत होनेवाले दिन रात्रि के बीच जिस प्रकार शोभाकर उषा आती है उसी प्रकार समस्त देशों में यात्रा करने वाले तुम दोनों की राज्यसम्पदा के अनुरूप उसको बढ़ाने वाली ही उत्तम कामना या नव उदय होने का तेज तुम दोनों को प्राप्त हो। तुम दोनों सत्य व्यवहार वाले होकर बहुत दिनों तक ऐश्वर्य सम्पदा का भोग करो।

सभा-सेनाध्यक्ष के पक्ष में—सर्वत्र विपक्षी पर वार प्रहार करने वाले दोनों के राज्यलक्ष्मी के अनुरूप ही सूर्योदय के समान प्रताप का उदय होता है। वे सब दिन सत्य मार्गों का सेवन करें।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः १५

भा०—हे रथी और सारथी के समान एक दूसरे के अधीन राजा प्रजाजनो ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! या स्त्री पुरुषो ! आप दोनो ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का अति परिमित दोनो मिलकर भोग करो और तुम दोनों मिलकर आनन्दित और दृढ़ रक्षा के उपायों और व्यवहारो से हमे शरण और सुख प्रदान करो । इति पंचत्रिंशो वर्गः ।

इति तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४७]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषि. ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, ५ निचृत्पथ्या बृहती । ३, ७ पथ्या बृहती । ९ विराट् पथ्या बृहती । २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्ति । ४, १० सत पंक्ति ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे सत्य व्यवहार से बढ़ने वाले, सत्य के कारण यशस्वी आचार्य और उपदेशक तुम दोनों का यह शिष्य पुत्र के समान है । एवं हे आचार्य और उपदेशको ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! तथा राजा और पुरोहितो ! यह राष्ट्र राष्ट्रपति को अभिषेक किया गया है । वह पुत्र, शिष्य और राष्ट्रपति उत्तम ओषधि रस के समान ज्ञानवान्, मधुरभाषी, अति-बलकारी हो । उसको स्वीकार करो, एक रस कर लो और दानशील-पुरुष के लिए रमण करने योग्य उत्तम रत्नादि पदार्थ प्रदान करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि और जल दोनों के समान परस्पर उपकारक स्त्री पुरुषो ! एवं सभा, सेना दोनों के अध्यक्षो ! आप दोनों तीन प्रकार से बंधे, तीनों प्रकार के शिल्पों से बने अथवा आकाश, स्थल और जल

तीनों स्थानों पर चलने हारे उत्तम सुवर्ण, लोह, पीतल आदि धातु से जड़े, सुरूप रथ से यात्रा किया करो और विद्वान् पुरुष तुम दोनों को सत्य वेदज्ञान का उपदेश करें। अथवा विद्वान् जन तुम्हारे अन्नादि भोग्य पदार्थों को प्राप्त करावें। यज्ञ और प्रजापालन के कार्यों में तुम दोनों उन विद्वानों के स्तुति-वचन और आदरपूर्वक आमन्त्रण को अच्छी प्रकार आदर से श्रवण करो।

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त स्त्री पुरुषो! सभासेनाध्यक्षो! मधुर, सुखप्रद पदार्थों से युक्त ऐश्वर्य को सत्य से बढ़ानेहारे होकर आप दोनों ओषधि रस के समान गुणकारी, सुखप्रद रूप से सेवन करो और आज के समान सदा दुःखों के नाशक होकर राष्ट्र में बसे प्रजाजन का पालन पोषण करते हुए अथवा ऐश्वर्य को धारण करते हुए तुम दोनों रथ पर बैठकर ज्ञानप्रद, विद्वान्, यज्ञशील, दानशील राजा तथा कर-प्रद प्रजा पुरुष को प्राप्त होवो।

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त सभा-सेनापतियो! हे समस्त प्रकार के धनों, ऐश्वर्यों के स्वामियो! या ज्ञानी पुरुषो! आप दोनों तीनों समान कोटि के उच्च स्थानों पर स्थित प्रजाजन पर या पृथिवी निवासी लोगों के ऊपर शत्रुनाशक बल, अन्न और मधुर ऐश्वर्य या ज्ञान से पूज्य प्रजापति या राष्ट्र को संयुक्त करो या सेचन करो, उस पर अन्तरिक्षस्थ मेघ और विद्युत के समान ऐश्वर्य का वर्षण करो। सोम, सबके प्रेरक राजा का अभिषेक करने वाले विद्वान् पुरुष सब प्रकार से दीप्तियुक्त, तेजस्वी होकर अथवा शत्रुहन्ता वीर जन प्रतापी होकर तुम दोनों को स्वीकार करें, तुम पर अनुग्रह करें या तुम्हें अपनावें।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

भा०—हे राष्ट्र के व्यापक अधिकार वाले, राष्ट्र के भोक्ता के समान पूर्वोक्त सभा सेनाध्यक्षो ! हे उत्तम गुणो के पालक, हे सत्याचरण से बढ़ने वालो ! तुम दोनों जिन उत्तम कामनाओ और प्रेरित होने वाली या सञ्चालित सेनाओं से विद्वान् पुरुषो की अच्छी प्रकार से रक्षा करते हो उनसे ही हम सामान्य प्रजाजनों की भी सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करो और जिस प्रकार युद्ध के रथी, सारथी दोनो अपने आज्ञा देने वाले सेनापति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करो । या राजा की रक्षा करो । इति प्रथमो वर्गः ।

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—हे शत्रुओं के नाश करने मे तत्पर ! राष्ट्र में व्यापक अधिकार वालो ! आप दोनो उत्तम दास आदि भृत्यो से युक्त स्वामी के अधीन रह कर, अथवा उत्तम २ ऐश्वर्यों के देने वाले पुरुष के हितार्थ, नाना वासोपयोगी धनों, ऐश्वर्यों को अपने रथ में रख कर अति सुख और पुष्टि के देने वाले अन्न को प्राप्त कराओ और समुद्र और आकाश दोनों मार्गों से बहुत सी प्रजाओं से चाहने योग्य ऐश्वर्य को हमें प्रदान करो ।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे कभी असत्याचरण न करने हारो ! राष्ट्र के दो प्रमुख अधिकारियो ! चाहे तुम दोनों दूर देश मे हो और चाहे तुम दोनों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थो के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर शासन करते होवो तो भी इसी कारण से कि उत्तम गति से चलने वाले रथ से सूर्य की किरणों के साथ २ ही, अप्रमादी होकर हमारे पास आओ ।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा॥ ८॥

भा०—हे नेता पुरुषो! रथी और सारथी जनो! तुम दोनों के अश्वगण शत्रुओं से न मारे जाने वाले राजा की शोभाओं और नाना ऐश्वर्यों को भी प्रजा को प्राप्त करावें। तुम दोनों उत्तम धर्माचरण और न्याय के करने वाले और उत्तम सात्विक दानशील राजा के लिये प्रेरणा करने योग्य सेना और शस्त्रास्त्र समूह को अच्छी प्रकार सगठित करते हुए प्रधान नायक पद पर आकर विराजो अथवा संग्राम की शोभा बढ़ाने वाले अश्व ही ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले हो।

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये॥ ९॥

भा०—हे सत्याचरण वाले, सत्य मार्ग के प्रवर्त्तक अथवा नासिका के समान प्रमुख स्थान पर विराजने वाले! आप दोनों ऐश्वर्य को देने वाले राजा के अति मधुर ऐश्वर्य को ओषधि रस के समान उपभोग के लिये जिस रथ से सदा से, निरन्तर, स्थायी ऐश्वर्य, प्रजा के बसाने वाले राष्ट्र को प्राप्त कराते हो उस ही सबके प्रेरक, आज्ञापक राजा को, शरीर भोक्ता आत्मा को त्वचा या देह के समान सुरक्षित रखने वाले रथ से आया जाया करो।

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना॥१०॥२॥

भा०—हे सभापति और सेनापति! एवं रथी, सारथी! तुम दोनों को हे अति ऐश्वर्यों के स्वामियो! हम प्रजाजन ज्ञान प्राप्ति और रक्षा के लिये उत्तम वचनों, स्तुतियों और आदर सत्कार के पदार्थों और उपचारों से निरन्तर बुलाते हैं। आप लोग वीर पुरुषों की सेना और विद्वान् पुरुषों की प्रिय राजसभा दोनों स्थानों पर सदा ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र का पालन करो। इति द्वितीयो वर्गः।

[४८]

प्रस्कण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, ६ विराट् पथ्या बृहती । ५, ११, १३ निचृत् पथ्या बृहती च । १२ बृहती । १५ पथ्या बृहती । ४, ६, १४ विराट् सतः पङ्क्ति । २, १०, १६ निचृत्सतः पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिः ।

षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की कन्या के समान समस्त आकाश को अपने प्रकाश से पूर्ण करने वाली प्रभात वेला के समान ज्ञानों और गुणों से प्रकाशमान पिता माता की कन्या के समान अथवा कामना करने हारे प्रियतम पति की शुभ कामनाओं को पूर्ण करने वाली ! हे उष· ! समस्त पापों के जला देने वाली ! एवं हे कामना करने वाली तेजस्विनि ! तू सुन्दर, चाहने योग्य, उत्तम गुणों वाले योग्य पुरुष के साथ पत्नीरूप मे युक्त होकर हमारे बीच में अपने उत्तम गुणों को प्रकाशित कर । हे विशेष दीप्तियो से युक्त उषा के समान विचित्र उत्तम भावों और गुणों से युक्त ! हे देवि ! शुभ गुणों से युक्त ! दानशीले ! तू बडे तेज, कान्ति या अन्नादि भोग्य सम्पत्ति से और गौ आदि पशु ऐश्वर्य से उत्तम अन्न वस्त्र आदि नाना पदार्थों के देने वाली हो । इसी प्रकार राजसभाएं, राज्यसंस्थाएं भी उत्तम सभापति के साथ मिलकर तेजस्वी राजा की सब कामनाओं को पूर्ण करें । बड़े अन्न धन, पशु आदि सम्पदा से प्रजा को ऐश्वर्य देने वाली हो ।

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभातवेले ! उसके समान शुभ दर्शन और प्रेम से युक्त स्त्री ! तथा दुष्ट पुरुषों और राष्ट्र के पापों को जला देने वाली राज्य-संस्थे ! सुख से निवास करने के लिये अश्वों, अश्वारोहियो से युक्त सेना

और गौओं आदि पशु से युक्त सम्पदाएं और समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली भूमियां बहुत अधिक संख्या में प्राप्त की जावें। इस हेतु तू मुझे उत्तम ज्ञानों से पूर्ण वाणियां, आज्ञाओं का उपदेश कर और ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करा, स्त्री भी पति को शुभ तथा मधुर वाणियां कहे। उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

भा०—जब प्रभात वेला व्यापती है तब वह प्रकाश वाली होकर सब पदार्थों को प्रकट करती है। वह ही सब रथों या देहों में वेग देने वाली है, उसके प्रकट होने पर सब लोग अपने देहों और व्यापारी लोग अपने शकट आदि रथों को चलाने लगते हैं और जो धन की इच्छा करने वाले बड़े व्यापारी लोग हैं। वे भी इसके आगमनों के अवसरों पर समुद्र में अपने जहाजों को काबू करते हैं। उसी प्रकार ज्ञान की कामना करने वाले योगी जन इसके आगमनों के प्रभात कालों में अनेक आत्मानंद रसों के बहाने वाले परमेश्वर और आत्मा में धारण द्वारा अपने आपको स्थापित करते हैं। वह ज्योतिष्मती प्रज्ञा प्रकट होती है, वही प्रकाश वाली होकर आनन्द-रसों को वेग से उत्पन्न करती है। इसी प्रकार स्त्री पति की कामना करनेहारी होकर पति के साथ रमे। नित्य उसकी ही कामना करती हुई वह अपने नाना मनोरथों को उसके प्रति प्रकट करे। जो अन्न के समान भोगने योग्य काम्य-सुखों को चाहने वाले पुरुष इसके नाना आनन्द रसों के उत्पन्न करने वाले काम या अभिलाषा पर या गृहस्थ के निमित्त और स्त्री के आचरणों पर विशेष संयम या व्यवस्था रखते हैं उन ही को वह सब सुखों को देने वाली और रमण योग्य सुख-प्रद कार्यों, व्यवहारों को चलाने वाली होती है।

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभातवेले ! जो सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष हैं, वे तेरे आगमन के कालों में अपने आत्मा के बन्धनो को काट देने के लिए अपने चित्त को योगसमाधि में अच्छी प्रकार लगाते है। इस ही अवसर पर इन मनुष्यो के बीच जो उस आत्मज्ञान और परम परमेश्वर के नाम और उसके स्वरूप का स्वयं उच्चारण करता और अन्यों को उपदेश करता है वह बहुत ही बुद्धिमान्, विद्वान् होता है।

स्त्री के पक्ष मे—जो तेरे आगमन के अवसरो पर दान देने की इच्छा करते हैं वे विद्वान् हैं और वह बहुत बुद्धिमान् है, जो मनुष्यो को स्त्रियों का नाना प्रकार से आदर करने का उपदेश करता है।

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—निश्चय से उषा, प्रभातवेला भी स्त्री के समान ही उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली है। अर्थात् जिस प्रकार स्त्री पति को प्रेमपूर्वक कुमार्गों से हटाकर, कुव्यसनो से बचाकर सन्मार्ग मे ले आती है इसी प्रकार प्रभात वेला भी सुखपूर्वक प्राणियो को योग, उपासना आदि कार्य मे लगा देती है। स्त्री जिस प्रकार उत्तम उत्तम भोग प्रदान करती हुई अथवा पति और सन्तानो को व्रत, नियमादि का पालन कराती हुई प्राप्त होती है उसी प्रकार उषा भी उत्तम सुख प्रदान करती हुई और उत्तम व्रत, नियमों का पालन कराती हुई आती है। और जिस प्रकार स्त्री पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई गमन योग्य मार्ग को दोनों चरणो से चलती है उसी प्रकार उषा भी प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है और जिस प्रकार स्त्री घर की तथा अन्न की रक्षा के लिए पक्षियो को उड़ाती है अथवा अपने पक्ष वाले सम्बंधियों को उत्तम आदर प्राप्त कराती है। उसी प्रकार उषा भी अपने आगमन पर वृक्ष पर बैठे पक्षियो को जगा जगाकर आहार विहार के लिए उड़ाती है। इसी प्रकार ज्योतिष्मती

विशोका का उदय होने पर भी वह प्रज्ञा योगी की सुखप्रदात्री, पालक, पाप के नाश करने वाली ज्ञानस्वरूप होकर आती है और परम हंसों को ऊर्ध्वमार्ग, मोक्ष की तरफ ले जाती है। इति तृतीयो वर्गः।

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती॥ ६॥

भा०—अश्वों की सेना से युक्त संग्रामनेत्री स्त्री जिस प्रकार संग्राम को विविध प्रकारों से जाती है और नाना ऐश्वर्यों से युक्त सौभाग्यवती नायिका, नववधू जिस प्रकार पति के संग लाभ के निमित्त विविध मार्गों से जाती है, उसी प्रकार जो उषा प्रभात वेला भी दिन और रात्रि के संगम को दूर करती है और जिस प्रकार वह ऐश्वर्यवती श्री धन और अन्न के याचकों को उनके अभीष्ट पदार्थ प्रदान करती है और युद्ध-कुशल स्त्री जिस प्रकार अर्थनीति में कुशल युद्धार्थी शत्रुओं को भी विमुख कर देती है उसी प्रकार उषा भी स्तुति द्वारा प्रार्थनाशील पुरुषों को विविध मार्गों से प्रेरित करती है। जिस प्रकार युद्धकुशला स्त्री देश को रक्त से गीला करती हुई आगे बढ़ती है और जिस प्रकार नववधू स्त्री अचरा को आंसुओं से गीला करती हुई पति-गृह को प्राप्त होती है उसी प्रकार यह उषा भी ओस से भूलोक को गीला करती हुई आती है और युद्ध-कुशला सेना या स्त्री के विशेष शत्रुदाहकारी प्रतापक या उग्र हो जाने पर पक्षियों के समान भगोड़े शत्रु कभी नहीं ठहरते, वे भयभीत होकर भाग ही जाते हैं और जिस प्रकार नववधू के पति के प्रति विशेष कामना युक्त होने पर विशेष वेग से जाने वाले अश्व कहीं भी विश्राम न लेते हुए जाते हैं, उसी प्रकार हे उषः ! तेरे उदित हो जाने पर भी उड़ने वाले पक्षी कभी घोंसलों पर टिके नहीं रहते।

एषाऽयुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान्॥ ७॥

भा०—यह उषा, प्रभातकाल की सूर्य-प्रभा जिस प्रकार दूर वर्त्तमान सूर्य के उदय से पूर्व ही सैकड़ो रमणीय, मनोहर किरणो से सुखपूर्वक सेवन करने योग्य होकर मनुष्यो को प्राप्त होती है, उसी प्रकार यह उत्तम सेवनीय, ऐश्वर्य पितृगृह कल्याण से युक्त सुभगा नववधू सूर्योदय के पूर्व ही दूरदेश मे स्थित अपने पितृगृह से अपने रथ मे घोडे जोड़ कर आवे और सैकडो रथो सहित मनुष्यो की वस्ती को आवे।

विश्व॑मस्या नानाम॒ चक्ष॑से॒ जग॒ज्ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ।
अप॒ द्वेषो॑ म॒घोनी॑ दुहि॒ता दि॒व उ॒षा उ॑च्छ॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य को मानो कन्या के समान तेज से ही समस्त आकाश को पूर देने वाली प्रभातवेला जिस प्रकार अति तेजस्विनी होकर द्वेष करने वाले चोर आदि को और हिंसक जन्तुओ को दूर करती हुई प्रकट होती है और वह उत्तम दिन की नेत्री समस्त जगत् को नयनो द्वारा दिखाने के लिए समस्त संसार मे प्रकाश कर देती है और उसके देखते ही समस्त संसार भक्ति, प्रेम से ईश्वर को नमस्कार करता है उसी प्रकार तेजस्वी माता पिता की पुत्री 'सूर्या' अथवा कामना करने हारे पति के सब मनोरथो को पूर्ण करने वाली ऐश्वर्यो और सौभाग्यो से युक्त होकर स्वय पति की कामना करती हुई द्वेष करने वाले शत्रुओ को और हिंसकों को भी दूर करे, वह प्रभात वेला के समान सुशोभित हो। और वह उत्तम नायिका या उत्तम महिला हो। समस्त जगत् उसका विनय से आदर करे।

उष॒ आ भा॑हि भा॒नुना॑ च॒न्द्रेण॑ दुहितर्दिवः ।
आ॒वह॑न्ती भूर्य॒स्मभ्यं॒ सौभ॑गं व्यु॒च्छन्ती॒ दिवि॑ष्टिषु ॥ ९ ॥

भा०—हे उषः ! प्रभातवेले ! हे प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न मानो उसकी कन्या के समान ! एव प्रकाश से आकाश को पूर्ण करने वाली ! तू पूर्व दिशा मे सूर्य और पश्चिम दिशा में स्थित चन्द्र दोनो से प्रकाशित हो और सूर्य के आगमन कालो मे विशेष रूप से प्रकट होती हुई हमारे

लिए बहुत उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराती रह । इसी प्रकार हे कान्तिमति कमनीये ! कन्ये ! हे ज्ञानवन् पुरुष की पुत्री और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी तू सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर सर्वत्र प्रकाशित हो और गृहस्थोचित कामनाओं को पूर्ण करने के अवसरों में हमारे पितार्थ अपने उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई बहुत अधिक सौभाग्य, ऐश्वर्य को धारण करती हुई हमें प्राप्त हो ।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे उत्तम रीति से दिन को या सूर्य को लाने वाली नायिका-स्वरूप उषः ! जब तू विशेष तेज से प्रकट होती है तब तुझ पर ही समस्त जगत् का प्राण लेना और जीवन व्यतीत करना निर्भर है । हे अद्भुत ऐश्वर्य तेज से युक्त ! हे विशेष दीप्तिवाली ! वह तू बड़े भारी शक्तिमान, वेगवान आदित्य से युक्त होकर हमारी ईश्वर-स्तुति को श्रवण कर । इसी प्रकार हे उत्तम नायिके ! नववधू ! जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, जाना और आजीविका आदि निर्वाह निर्भर हो । वह तू हे विशेष कान्तियुक्ते ! विभा-वति ! हे अद्भुत नाना धनधान्यवति ! बड़े सुन्दर स्वरूप या बड़े भारी रथ के समान भार-वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर श्रवण करने योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन । इति चतुर्थो वर्गः ।

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

भा०—हे प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये ! जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल अद्भुत आश्चर्यजनक, संग्रह करने योग्य मनुष्यों के हित के लिये है । उस अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू प्राप्त

कर। उससे हे स्त्री ! तू उत्तम पुण्यवान्, न हिंसा करने योग्य, न पीडा देने योग्य, उन पूज्य पुरुषों को प्राप्त कर, जो अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे तेरे प्रति उपदेश करते हैं।

उषा और विद्वानों के पक्ष में—हे उषः ! जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेरे स्वरूप को देख कर भगवान् की स्तुति करते हैं तू उन पुण्यात्माओं को मनुष्यों के हित के लिये अद्भुत, आदर योग्य ज्ञान और बल प्रदान कर।

विश्वा॑न्दे॒वाँ आ व॑ह॒ सोम॑पीतये॒ऽन्तरि॑क्षादुषस्त्वम्।
सास्मासु॑ धा॒ गोम॒दश्वा॑वदु॒क्थ्य॑मुषो॒ वाजं॑ सु॒वीर्य॑म् ॥१२॥

भा०—हे उषा के समान उज्वल कान्तिमति ! कमनीये कन्ये ! अन्तरिक्ष, आकाश से जिस प्रकार प्रभात वेला, उत्तम वायु, जल और ओषधि रसों के पान करने के लिये समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है उसी प्रकार गृहस्थ में जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ और गार्हस्थ्य सुखों के उपभोग के लिये भीतर के अन्तःकरण से तू समस्त उत्तम गुणों को धारण कर। हे कमनीये ! पति की इच्छा करने हारी ! तू वह हममें भी पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी तथा भूमि और इन्द्रियों के बल से युक्त वेग वाले अग्नि आदि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न प्रशंसा योग्य उत्तम वीर्य और बल के देने वाले ऐश्वर्य और अन्न सम्पदा धारण कर, प्रदान कर।

यस्या॒ रुश॑न्तो अ॒र्चय॒: प्रति॑ भ॒द्रा अदृ॑क्षत।
सा नो॑ र॒यिं वि॒श्ववा॑रं सु॒पेश॑समु॒षा द॑दातु॒ सुग्म्य॑म् ॥१३॥

भा०—जिसकी प्रातःकालीन उषा के समान दीप्तियुक्त, एवं चोर, दस्यु और अन्धकार को नाश करने वाली किरणों के समान पापों को नाश करने वाले, उज्वल अति कल्याणकारी, सुखजनक गुण, प्रत्यक्षरूप से दीखते हों, वह पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, सबके मन को हरने वाले, सुखजनक, ऐश्वर्य सौभाग्य को हमें प्रदान करे।

लिए बहुत उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करती रह। इसी प्रकार हे कान्तिमति कमनीये! कन्ये! हे ज्ञानवन् पुरुष की पुत्री और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी तू सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर सर्वत्र प्रकाशित हो और गृहस्थोचित कामनाओं को पूर्ण करने के अवसरों में हमारे हितार्थ अपने उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई बहुत अधिक सौभाग्य, ऐश्वर्य को धारण करती हुई हमें प्राप्त हो।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे उत्तम रीति से दिन को या सूर्य को लाने वाली नायिका-स्वरूप उषः! जब तू विशेष तेज से प्रकट होती है तब तुझ पर ही समस्त जगत् का प्राण लेना और जीवन व्यतीत करना निर्भर है। हे अद्भुत ऐश्वर्य तेज से युक्त! हे विशेष दीप्तिवाली! वह तू बड़े भारी शक्तिमान्, वेगवान् आदित्य से युक्त होकर हमारी ईश्वर-स्तुति को श्रवण कर। उसी प्रकार हे उत्तम नायिके! नववधू! जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, जीना और आजीविका आदि निर्वाह निर्भर हो। वह तू हे विशेष कान्तियुक्ते! विद्यावति! हे अद्भुत नाना धनधान्यवति! बड़े सुन्दर स्वरूप या बड़े भारी रथ के समान भार-वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर ग्रहण करने योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन।

इति चतुर्थो वर्गः।

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

भा०—हे प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये! जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल अद्भुत आश्चर्यजनक, संग्रह करने योग्य मनुष्यों के हित के लिये है। उस अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू प्राप्त

कर। उससे हे स्त्री! तू उत्तम पुण्यवान्, न हिंसा करने योग्य, न पीडा देने योग्य, उन पूज्य पुरुषों को प्राप्त कर, जो अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे तेरे प्रति उपदेश करते हैं।

उषा और विद्वानों के पक्ष में—हे उषः! जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेरे स्वरूप को देख कर भगवान् की स्तुति करते हैं तू उन पुण्यात्माओं को मनुष्यों के हित के लिये अद्भुत, आदर योग्य ज्ञान और बल प्रदान कर।

विश्वा॑न्दे॒वाँ आ व॑ह॒ सोम॑पीतये॒ऽन्तरि॑क्षादुष॒स्त्वम्।
सास्मासु॑ धा॒ गोम॒दश्वा॑वदु॒क्थ्यं॑मु॒षो वाजं॑ सु॒वीर्य॑म् ॥१२॥

भा०—हे उषा के समान उज्ज्वल कान्तिमति! कमनीये कन्ये! अन्तरिक्ष, आकाश से जिस प्रकार प्रभात वेला, उत्तम वायु, जल और ओषधि रसों के पान करने के लिये समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है उसी प्रकार गृहस्थ में जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ और गार्हस्थ्य सुखों के उपभोग के लिये भीतर के अन्तःकरण से तू समस्त उत्तम गुणों को धारण कर। हे कमनीये! पति की इच्छा करने हारी! तू वह हममें भी पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी तथा भूमि और इन्द्रियों के बल से युक्त वेग वाले अग्नि यादि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न प्रशंसा योग्य उत्तम वीर्य और बल के देने वाले ऐश्वर्य और अन्न सम्पदा धारण कर, प्रदान कर।

यस्या॒ रुश॑न्तो अ॒र्चयः॒ प्रति॑ भ॒द्रा अदृ॑क्षत।
सा नो॑ र॒यिं वि॒श्ववा॑रं सु॒पेश॑समु॒षा द॑दातु॒ सुग्म्य॑म् ॥१३॥

भा०—जिसकी प्रातःकालीन उषा के समान दीप्तियुक्त, एवं चोर, दस्यु और अन्धकार को नाश करने वाली किरणों के समान पापों को नाश करने वाले, उज्ज्वल अति कल्याणकारी, सुखजनक गुण, प्रत्यक्षरूप से दीखते हों, वह पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, सबके मन को हरने वाले, सुखजनक, ऐश्वर्य सौभाग्य को हमें प्रदान करे।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान कमनीये! उज्वल गुणों वाली स्त्री! जो भी पूर्व के विद्वान् लोग ज्ञान आदि प्राप्त करने और गृहस्थ और व्रतादि के पालन करने के लिये तुझको उपदेश करते हैं वह तू उन हमारे उपदेश समूहों को स्वयं और अन्यों को उपदेश कर, पढ़, उनका स्वाध्याय कर और प्रकाश, तेज शुद्ध कर्म और धनैश्वर्य से युक्त हो।

उषा के पक्ष में—हे उषः! पूर्व के वेदज्ञ विद्वान् तुझे प्राप्त करके अपने ज्ञान वृद्धि और रक्षा के लिये परमेश्वर की जो स्तुति करते थे, अपने उज्वल प्रकाश और तेज से और आराधना योग्य इष्टदेव द्वारा उन स्तुति-वचनों का हमें भी उपदेश कर। अर्थात् वे भक्तिवचन प्रातःकाल हममें भी उठें, हम भी प्राप्त हों।

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥

भा०—हे उषा के समान कान्तिमती, तेजस्विनि स्त्री! जैसे वह उषा सूर्य के प्रकाश से आकाश के दोनों द्वार, पूर्व और पश्चिम के आने जाने के मार्गों को प्राप्त होती है उसी प्रकार तू भी सूर्य के प्रकाश से और अपने गुण प्रकाश से ज्ञानवान् पुरुषों के आने और जाने के मार्गों को अच्छी प्रकार खोला कर और हमें हिंसक प्राणी बिच्छू सर्पादि से रहित, अति विशाल घर और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न अन्नादि ऐश्वर्य को खूब प्रदान किया कर।

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥ ५ ॥

भा०—हे उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारी विदुषी स्त्री! तू हमें बड़े अधिक परिमाण वाले नाना प्रकारों के ऐश्वर्य से

हमारी वृद्धि कर, हम पर हरएक प्रकार की ऐश्वर्य की वर्षा कर जिससे हम बढे और उत्तम वाणियों, भूमियो, अन्न सम्पदाओ से हमें बढ़ा। समस्त शत्रुओ के नाशक एवं सेवको को शीघ्र से शीघ्र कार्य कराने मे समर्थ धन और प्रकाश, तेज, प्रभाव से युक्त कर। हे अति पूजनीये! हे ऐश्वर्यवती, उत्तम क्रिया और ज्ञान से युक्त! तू सग्रामो, ऐश्वर्यों और अन्नो से भी बढ़ा। इति पचमो वर्गः।

[४९]

प्रस्कण्व, काण्व ऋषि ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान सबको प्रिय लगने वाली कन्ये! तू कल्याणकारी गुणो और व्यवहारो से रहित अति उज्वल सूर्य से उषा के समान, तेजस्वी ज्ञानी कुल से हमे प्राप्त हो और जलो के सोखने वाले लाल रंग के किरण जिस प्रकार उषा को लाते है उसी प्रकार हे विदुषी कन्ये! तुझको लाल वर्ण के घोडे ऐश्वर्यवान् बलवीर्य से युक्त ब्रह्मचारी, प्रिय पति के घर तक सुखपूर्वक ले आवें।

अरुणप्सवः—प्सान्तीति प्सव अश्वाः, अरुणा रक्तगुणविशिष्टाश्च ते प्सवश्च इति।

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम्।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे उषा के समान कमनीये कन्ये! हे सूर्य-कन्या उषा के समान तेजस्वी माता पिता की पुत्रि! तू जिस सुखप्रद, अति अवकाश वाले विशाल उत्तम सुवर्ण आदि से बने, उत्तम रूप वाले रमण साधन रथ पर विराजती है अर्थात् बैठ कर जाती है उसी से आज, शुभ अवसर पर उत्तम ज्ञान, यश और ऐश्वर्य से युक्त, प्रिय जन अर्थात् पति को निर्विघ्न रूप से प्राप्त हो।

वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रभातवेला के समान सबको प्रयत्न और पुरुषार्थ मे लगानेहारी ! हे सबको गृह के उद्योगो मे प्रवृत्त करने वाली ! तेरे नाना आगमनो तथा पुरुषार्थों के साथ साथ जिस प्रकार ऋतुओं के अनुकूल आनेवाले पक्षीगण और दोपाये और चौपाये, नाना मनुष्य और पशुगण, आकाश के नाना प्रदेशों और भूमि के नाना प्रदेशों से आया करते है इसी प्रकार ऋतुओ के अनुसार तेरे गृह पर नाना ज्ञान विज्ञान से युक्त, परमहंस, परिव्राजक गण, दोपाये भृत्यजन और चौपाये गौ, अश्व आदि पशुगण भी पृथिवी के नाना प्रान्तो से अच्छी प्रकार आवें ।

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
ता त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

भा०—हे उषा के समान उत्तम गुण-रश्मियों से उज्ज्वल कन्ये ! जिस प्रकार किरणों से विविध दिशाओं को प्रकाशित करती हुई उषा समस्त संसार को रुचिकर, मनोहर और सुन्दर कर देती है उसको देखकर सबमे व्यापक परमेश्वर की कामना करते हुए विद्वान् पुरुष स्तुति करते है, उसी प्रकार तू भी गुण रूप किरणो से प्रकाशित होती हुई समस्त संसार या गृहस्थ को मनोहर कर देती है, उसे जगमगा देती है । उस तुझको स्वयं बसना चाहने वाले विद्वान् पुरुष उपदेश करें या तेरी गुण स्तुति करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[५०]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः । सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१-६ गायत्री (१, ६ निचृद् । २, ४, ८, ६ पिपीलिकामध्या निचृद् । ५ यवमध्या विराट ।) १०, ११ निचृदनुष्टुप् । १२, १३ अनुष्टुप ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥

भा०—रूप और गुणो का ज्ञान करानेहारे रश्मिगण जिस प्रकार समस्त संसार को सब कुछ प्रकाश मे दिखाने के लिए ऐश्वर्य तेज से युक्त प्रकाशमान, ताप और प्रकाश के दाता सूर्य को पास हैं उसी प्रकार उस प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान्, एवं वेदज्ञान मे निष्णात, अति कमनीय, एवं विवाह के अभिलाषी, तेजस्वी पुरुष को सब के प्रति अपने गुणो को प्रकाश करने के लिए, सबके समक्ष ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्रिया उद्वाह विधि से प्राप्त हो। अर्थात् विदुषी, गुणवती स्त्रियें विद्वान्, गुणवान् पतियो को प्राप्त करे और उत्तम ज्ञान और व्यवहार का प्रकाश करें।

परमेश्वर पक्ष मे—ज्ञानी पुरुष उस प्रकाशस्वरूप ज्ञानवान् परमेश्वर को सर्वोपरूप से धारण करे, अपनावे। और गुण-स्तुति द्वारा सूर्य की रश्मियो के समान उसके गुणो का प्रकाश करें। इसी प्रकार तेजस्वी राजा के अधीन ज्ञापक विद्वान् पुरुष उसकी आज्ञाओ का प्रकाश करने के लिए उसको उच्चपद पर स्थापित करें।

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑। सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥२॥

भा०—जिस प्रकार रात्रि के कालो मे नक्षत्र गण चन्द्र के साथ संगत होते हैं और दिन काल मे वे दूर हो जाते है, नही दिखाई देते, इसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करनेहारी स्त्रिया भी आह्लादकारी पति के साथ ऋतु-रात्रियो मे सगत हो और सबको ज्ञान और प्रकाश के दिखाने वाले तेजस्वी पति की वृद्धि के निमित्त नक्षत्रो के समान दिन मे दूर रहे। अर्थात् सन्तानार्थिनी स्त्रियें भी पुरुषो से दिन मे कभी संग न करें। 'तायृ सन्तानपालनयो.' भ्वादि.। अहोरात्रौ वै प्रजापतिः। तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः। प्राण वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रात्या संयुज्यन्ते। प्रश्न उप० १।१३॥

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑। भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥३॥

भा०—अति दीप्ति से चमकने वाली अग्नियां जिस प्रकार चमकती है उसी प्रकार इसके अन्यो को ज्ञान करानेवाले किरणो के समान गुण

समस्त जनों को प्राप्त हों, ऐसा मैं देखूं। इस प्रतापी पुरुष के ज्ञान प्रदान करनेवाले गुण सूर्य के किरणों के समान समग्र मनुष्यों के हित के लिए इस प्रकार प्रकाशित हैं जिस प्रकार देदीप्यमान अग्नियां हों। मैं ऐसी ही गुणबुद्धि से सदा अपने पालक को देखूं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्॥४॥

भा०—हे सूर्य! सर्वप्रकाशक परमेश्वर! सूर्य जिस प्रकार महान् आकाश को पार करने हारा, सब प्राणियों से देखने योग्य, सब विश्व को अपने प्रकाश से दिखाने वाला, ज्योति, प्रकाश को करने हारा होकर समस्त विश्व को रुचिकर रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार हे विद्वानो! वा परमात्मा भी सब को दुःखों से तारने वाला और स्वयं समस्त विश्व को पार कर सबसे परे विद्यमान है, वह सब का द्रष्टा, सब प्रकाशमान लोकों का रचने हारा है। और समस्त संसार में अति मनोहर रूप से प्रकट हो रहा है अथवा समस्त तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष कष्टों से तारक होने से 'तरणि', दर्शनीय होने से 'दर्शत', ज्ञान प्रकाश करने से 'ज्योतिष्कृत्' और तेजस्वी होने से सूर्य होकर सबके प्रति मनोहर रूप से प्रकट हो।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥ ५॥ ७॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य समस्त तेजस्वी पदार्थों और प्रजा तथा मनुष्यों को साक्षात् उदय होकर प्राप्त होता है और समस्त विश्व को पना प्रकाश और ताप प्रकट करने के लिये आता है उसी प्रकार हे मेश्वर और विद्वन्! तू दिव्य पदार्थों और विद्वानों की प्रजाओं और ननशील मनुष्यों के प्रति साक्षात् स्वरूप में उदय हो, उनको उत्तम रूप से प्राप्त हो। और सब प्रकार के प्रकाश, सुख और ज्ञानोपदेश को दर्शाने और उपदेश करने के लिये भी तू उनके प्रति प्रकट हो अर्थात् उनको प्राप्त हो। इति सप्तमो वर्गः॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

भा०—हे सबको पवित्र करने हारे ! हे सबसे श्रेष्ठ सब पापों और दुःखों को नाश करने हारे परमेश्वर ! तू जिस कृपा से पूर्ण चक्षु या प्रकाश से समस्त प्राणियों को धारण पोषण करने वाले इस भूलोक को सूर्य के समान और समस्त जन्तुओं के प्रति देखता है हम तेरी उसी कृपादृष्टि की याचना और स्तुति करते है ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥७॥

भा०—हे तेजोमय ! सबके उत्पादक, सञ्चालक ! परमेश्वर ! जिस प्रकार सूर्य रात्रियों के साथ साथ दिनों को भी उत्पन्न करता है और बड़े २ पृथ्वी लोक और अन्तरिक्ष को व्याप्त होता है और समस्त जन्तुओं को देखता जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू भी विशाल लोकों और आकाश को व्याप्त सर्वत्र व्यापक है और समस्त जन्मों को देखता है ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

भा०—सात या सर्पणशील, वेगवान् अश्व जिस प्रकार रथ मे लगाकर तेजस्वी पुरुष को उठा कर ले जाते हैं और जिस प्रकार सात किरणें प्रदीप्त किरणों वाले सूर्य को धारण करती हैं उसी प्रकार हे विविध विज्ञानों के दिखाने और विविध लोकों को विशेष रूप से देखने हारे जगदीश्वर ! राजन् ! हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! सात वेगवान् एवं व्यापक तत्व तुझको धारण करते हैं । आत्मा को सात प्राण, परमेश्वर को पाच भूत और महान् अहंकार ये सात विकार तथा राजा को राज्य के सात अंग धारण करते हैं ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार से सूर्य जल को न गिरने देने वाली और पदार्थों को शोधन करने वाली सात प्रकार की किरणों को अपने साथ लगाये रहता है और अपनी प्रेरक शक्तियों से ही उनके सहित सर्वत्र व्यापता है

और जिस प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी प्राणों को प्रेरणा करने हारा योगी भी सात शरीर के मलो को शोधन करने वाली रमण साधन इस देह को न गिरने देने वाली, देहपात न होने देने वाली, इसको चेतन बनाये रखने वाली प्राणवृत्तियों को योग द्वारा वश और एकाग्र करता है, उन अपने आत्मा की योजनाओं, प्रेरणाओं, एकाग्र वृत्तियों से ही परम पद में गति करता है और जिस प्रकार सेनाओं का सञ्चालक, प्रजाओं का प्रेरक, वीर राजा अपने रथ को न डिगने देने वाली सात या वेगवान् घोड़ियों को जोड़ता है और अपनी युक्तियों से उन द्वारा रण-मार्ग में जाता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी समस्त जीवों के रमण के साधन ब्रह्माण्ड को न नष्ट होने देने वाली पूर्व कही सात सुखों की धारक, तत्व शक्तियों को परस्पर संयुक्त करता है और उन अपने योजन करने की शक्तियों युक्त होकर उनके द्वारा सर्वत्र स्वयं व्यापन होकर सबको चला रहा है।

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १०॥

भा०—हम लोग समस्त अन्धकार, शोक, दुःख सबके ऊपर और सबके परे वर्तमान इन लौकिक पदार्थों की अपेक्षा उच्च संसार के प्रलय के बाद भी विद्यमान रहने वाले एवं प्रलयकारी प्रकाशवान् सूर्य को साक्षात् दर्शन करते हुए समस्त सुखों के देने वाले, एवं प्रकाशमान पदार्थों में से भी सबसे उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले परम आत्मा रूप परम ज्योति प्राप्त हों।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ ११॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन्! स्नेह युक्त, मित्र के समान पूजनीय! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! आत्मन्! उदय होता हुआ और उत्तर आकाश में आता हुआ या क्रमशः ऊंचा आता हुआ सूर्य जिस

प्रकार हृदग ये रोग को और पीलिया को नाश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे सबके प्रेरक ! सबके हृदयों के प्रकाशक, विद्या के द्वारा तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू भी हृदयाकाश मे उदित होता हुआ, हे विद्वन् ! उत्तम पद और दशा को प्राप्त होता हुआ और भी उत्तम ज्ञान प्रकाश को उन्नत था प्राप्त करता हुआ तू मेरे हृदय के पीडा देने वाले रोग के समान अज्ञान और सुखों के हरने वाले बन्धन को नाश कर।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

भा०—हम अपने देह के बल और सुख को अपहरण करने वाले रोग को शुक अर्थात् तोते के समान किये गये नाना प्रकार के कटु, तिक्त फलों के आस्वादन तथा नाना वृक्षों से युक्त प्रदेशों मे भ्रमण आदि कार्यों द्वारा और शरीर के पोषण करने वाली, लेपन करने योग्य ओषधियों द्वारा, उन ओषधियों के बल पर वश मे करें और दुःख पीडा को हरने और स्वत द्रव रूप एव देह के मलों को बहा कर निकाल देने वाले पदार्थों के बल से भी अपने देह के बलहारी, चेतनाहारी रोग को दूर करें। अथवा शुक, रोपणा का और हारिद्रव ये ओषधियों के विशेष वर्ग है जिनका स्पष्टीकरण देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य का० १ । सू० २२ । १–४ ॥ चेतना और ज्ञान के हरने वाले तामस आवरण को हम ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् और ज्ञानप्रद उपनिषद् की वल्लियों और अज्ञान मोह के हरने और भगा देने वाले उपदेशों द्वारा दूर करें।

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥ ८ ॥ ९ ॥

भा०—यह सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी, आत्मा का स्वरूप मोह आदि शत्रुओं को दबाने और पराजित करने वाले बल के साथ प्रतापी राजा और सूर्य के समान मेरे अप्रीति करने वाले रोग के समान देह और आत्मा पर प्रहार करने वाले शत्रु को विनाश करता हुआ

उदय को प्राप्त होता है। इसलिए जो मुझको नाश नहीं करे उसको मैं भी पीडित न करूं। प्रत्युत शत्रु के विनाश के लिये ही मैं उसको दण्डित करूं। अथवा मैं शत्रु के लाभ के लिये किसी को पीडित न करूं।

इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[५१]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६, १० जगती। ५, १३ विराड् जगती। २, ११, १२ निचृज्जगती। ३, ४, १८ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ७ त्रिष्टुप् (अभिसारिणी) १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग उस मेढे के समान अपने प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाले, मेघ और सूर्य के समान राष्ट्र पर अन्न, जल और ज्ञान, प्रकाश की वर्षा करने हारे, बहुत से प्रजाजनों से आदर प्राप्त करने वाले, अर्चना योग्य, स्तुतियों से मान करने योग्य, ऐश्वर्यों के रत्नाकर, समुद्र के समान अगाध गुणों के सागर रूप राजा और परमेश्वर की वाणियों और वेदवाणियों से स्तुति कर उसे प्रसन्न करो। जिससे मनुष्यों के हितकारी कर्म तथा सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी जन समस्त प्रजाजन के पालन के लिये विविध देशों में, विविध प्रकार से विचरते, फैलते और विस्तृत होते हैं उस अति दानशील, महान् प्रजाओं को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले, ज्ञानवान्, मेधावी पुरुष को सब प्रकार से साक्षात् कर स्तुति करो। सुखों का वर्षण करने से परमेश्वर 'मेष' है। ऋचाओं द्वारा स्तुति योग्य होने से 'ऋग्मिय' है। वह ऐश्वर्य का सागर है।

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम्।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२॥

भा०—उत्तम रक्षा करने हारे एव ज्ञानवान् शीघ्र कार्य करने मे कुशल विद्वान् तेजस्वी, अति ऐश्वर्यवान्, सत्यज्ञानी पुरुप बलशालिनी शक्तियो और सेनाओ से घिरे हुए सूर्य या मेघ जिस प्रकार अन्तरिक्ष को अपने तेज और अपने विस्तृत फैलाव से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार अपने और पराये राष्ट्र के बीच मे विद्यमान देश को भी अपने प्रभाव से और युद्ध-समय मे शरवर्षा से अन्तरिक्ष को पूरने वाले, उत्तम इच्छा, कर्म, सामर्थ्य वाले, उत्तम आशा और अधिकार को प्राप्त, शत्रु हनन करने वाले, ऐश्वर्यवान्, अपनी सेनाओं को हर्षित करने और शत्रुओ के गर्व को तोड़ने हारे, अनेको कार्य सामर्थ्यों और प्रज्ञाओ से युक्त वीर सेनापति को ही वेगयुक्त, बलवती, वाणी तथा आज्ञा प्रदान करने का अधिकार तथा बलप्रद अन्नादि देने वाली राजनीति प्राप्त हो और विद्वान् पुरुष, उत्तम कर्मसाधक शिल्पी जन उसको प्राप्त हो और तेजस्वी पुरुप उसकी रक्षा करें।

परमेश्वर पक्ष मे—समस्त ज्ञान उस उत्तम कामना से युक्त परमेश्वर को प्राप्त है। समस्त आकाश मे व्यापक बड़ी शक्तियो से युक्त परमेश्वर को ही सत्यज्ञानी, कुशल, अज्ञानान्धकार के नाशकारी योगी जन भजन करते है और उसी को वेगवती, सच्चे हृदय से निकली स्तुति प्राप्त होती है।

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित्।
ससेनं चिद् विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३

भा०—हे सेना से युक्त सेनापते! राजन्! सूर्य जिस प्रकार प्रकाशयुक्त किरणो से या प्राणो से युक्त प्राणियों के हित के लिये मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है और बरसा देता है उसी प्रकार तू भी प्राणधारी प्रजाजनों के हित के लिये अपनी भूमि को पालन करने वाले पर्वत या मेघ के समान वर्ग को या गौओं आदि पशु समूहों और ज्ञानयुक्त हितकारी आज्ञाओ को भी प्रकट कर और तीनो प्रकार के दुःखों से मुक्त करने के लिये, अथवा अपने राष्ट्र मे ही निवास करने वाले प्रजाजन के

हित के लिये तू सैकड़ों द्वारों, भूलभुलैया वाले गढ़ वा व्यूहों में भी सैकड़ों आवरण वाले मेघावयवों में सूर्य के समान मार्ग और भूमि को प्राप्त करने हारा होकर संग्राम में आच्छादन करने वाले मेघ के अच्छिन्न मेघ को जिस प्रकार वायु नचाता है उसी प्रकार राष्ट्र पर अपना वश करने वाले शत्रु के छिन्न भिन्न हुए बल समूह को भी अपने पराक्रम से नचाता हुआ विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिये ऐश्वर्य प्राप्त कर।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर विद्वानों के लिये वाणी समूह, वेद-राशि को प्रकट करता है। त्रिविध तापों से रहित जीव के लिये शत-आयु वाले जीवनों में मार्ग को दिखाता है। सूर्यों से युक्त जगतों के स्वामिन्! तू अति आनन्द के लिये जीवन सग्राम में निवास करने वाले मुमुक्षु जन के अच्छेद्य अज्ञान को भी दूर करता है। तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सूर्य जिस प्रकार जलों को आकाश में रखने वाले कारणों को दूर कर देता है उसी प्रकार तू प्रजाओं और आप्त विद्वानों के शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न किये बन्धनों को दूर कर। और जिस प्रकार सूर्य मेघ में और पर्वत पर दान देने योग्य और जीवन प्रदान करने वाले जल को धारण करता है, उसी प्रकार तू भी पर्वत के समान गम्भीर, स्थिर तथा मेघ के समान सबको निष्पक्षपात होकर सुखजनक पदार्थ देने वाले पुरुष को प्रजा के हित के लिये देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करा। और जिस प्रकार वायु बल से मेघ को आघात करता है और अनन्तर सबको प्रकाश से दिखाने के लिये सूर्य को स्वच्छ आकाश में स्थापित करता है, उसी प्रकार हे सेनापते! तू बलपूर्वक सब ओर से आघात करने वाले शत्रु, दस्यु आदि को नाश कर और उसके पश्चात् न्याय-प्रकाशन के पद, राजसभा के ऊपर व्यवहारों के देखने और न्याय

के मार्ग को दर्शाने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् पुरुष को उच्च पद पर स्थापित कर। परमेश्वर जलों को वर्षाता है, वह पर्वत में पाने योग्य बहुमूल्य रत्न उत्पन्न करता है, अपने बल से आवरक अज्ञान को दूर करता और सूर्य को आकाश में प्रकाश के लिये स्थापित करता है।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥९

भा०—जो दुष्ट, डाकू जन सोते हुए दूसरो के पदार्थों को हर लेते है, अथवा जो स्वार्थी छल कपटों से सब कुछ अपने भोग विलास मे ही फूंक देते है, उन मायावी, छली, कपटी पुरुषो को अपनी नाना उपाय युक्त या ज्ञानबुद्धियो द्वारा दूर मार भगा, उनको भयभीत कर या उपदेश कर। हे मनुष्यो को वश करने हारे! उन द्वारा मान, आदर योग्य, एवं मनुष्यों की चित्तवृत्ति के जानने हारे अथवा उनके हित में मनोयोग देने हारे! तू अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाले शत्रु के दुर्गों को तोड फोड़ डाल। और दस्युओं को मारने के अवसरो में, संग्रामों के बीच सरल, धार्मिक मार्गों पर चलने वाले उत्तम मनुष्य समूह या कुत्तो के समान सुशिक्षित अपनी इन्द्रियो और आधीन सैनिकों के वशकारी पुरुष की अच्छी प्रकार रक्षा कर। अथवा पालनकर्ता माता पिता के प्रति सरल व्यवहारकारी उत्तम प्रकृति के पुरुष की रक्षा कर।

परमेश्वर और विद्वान् गण के पक्ष मे—वे अपनी अमृतमयी ज्ञानवाली वाणी से जो लोग सब कुछ अपने भोग विलास मे फूंकते हैं उनको उपदेश करें। परमेश्वर शरीर को पालन करने वाले देही आत्मा के देहबन्धनों को काटे। धार्मिक जन की रक्षा करे। इति नवमो वर्गः॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

भा०—तू प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण और रक्त शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र बल को धारण कर। और सूर्य या वायु जिस प्रकार मेघ को अपने तेज और वेग से आघात करता है उसी प्रकार वज्र वा शस्त्रों के धारण करने वाले शत्रु सैन्य को पीड़ित कर और अतिथि या पूज्य पुरुषों के गमन करने योग्य या आश्रय लेने योग्य, उत्तम पुरुषों के हित के लिये या अतिथियों के आदर सत्कार के लिये बड़े भारी मेघ के समान दानशील, एवं असंख्यात ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से युक्त पद को अपने ज्ञान और सामर्थ्य से प्राप्त कर, पहुंच। और सदा ही दुष्ट पुरुषों के दलन के लिये तू उत्पन्न हो।

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या॥७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! सेनापते! तेरे ही अधीन समस्त बलवती सेना, सदा साथ रहने वाली, तेरे संग ही स्थिर है। तेरा चित्त सोमरस के समान राष्ट्र के ऐश्वर्य को भोग करने और अपने बल बढ़ाने के लिये उत्कण्ठित होता है। तेरी बाहुओं में स्थापित, तेरे शासन या वश में रहने वाला खड्ग, शस्त्र-बल सर्वत्र प्रसिद्ध है या सदा ओषधि के समान शत्रु रूप रोगों को दूर करने में समर्थ होता है। तू शत्रु के सब बलों को निर्मूल कर और अपने समस्त शस्त्रवर्षी सैन्य बलों की रक्षा कर।

परमेश्वर पक्ष में—हे प्रभो! तुझ में ही सुखों के बरसाने वाले समस्त सामर्थ्य हैं, वे तेरे आनन्द रस पान के लिये उत्कण्ठित करती हैं। तेरा बल समस्त विभूति या तेरी आराधना ही रोगों और कष्टों को दूर करती है। उच्छेद योग्य काम आदि के सब बलों को तू नाश कर। हमारे बल वीर्य की तू रक्षा कर।

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ८

भा०—हे विद्वन् ! सेनापते ! तू श्रेष्ठ पुरुषो को, सम्पत्ति के वास्तविक स्वामियो को भी विशेष विवेक से जान । और जो प्रजा के पीडक या वास्तविक स्वामी की सम्पत्ति को लूट खसोट लेने वाले, चोर, डाकू, दुष्ट पुरुष हैं उनको भी विवेक पूर्वक जान अर्थात् मालिक और चोर दस्युओं का विवेक भली प्रकार कर, जिससे राज्य मे न्याय उचित रीति से हो । अव्यवस्था फैल कर चोर डाकू गरीब निर्बलो को सता कर उनके माल के स्वयं स्वामी न बन जावें । हे राजन् ! तू व्रत, धर्म, नियम, सत्य, व्यवहार और सत्य भाषण आदि को पालन करने वाले, उद्दण्ड पुरुषो को प्रजा से युक्त राष्ट्र या भूस्वामी के हित के लिये शासन करता हुआ उनको दण्डित कर । तू कर देने वाले या तेरा मान आदर करने वाले, राष्ट्रवासी जन का तू आज्ञापक होकर शक्तिमान् होकर रह । तेरे उन उन नाना प्रकार के समस्त कर्मों और अद्भुत व्यवहारो के एक साथ मिल कर होने वाले हर्ष, विनोद और उत्सवो के अवसरो पर मैं प्रसिद्धि चाहता हूं ।

अनु॑व्र॒ताय॑ र॒न्धय॒न्नप॑व्रताना॒भूभि॒रिन्द्रः॑ श्न॒थय॒न्नना॑भुवः ।
वृ॒द्धस्य॑ चि॒द् वर्ध॑तो॒ द्यामि॒नक्ष॑तः॒ स्तवा॑नो व॒म्रो वि ज॑घान सं॒दिहः॑ ९

भा०—सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता राजा अनुकूल होकर व्रतों और नियमो को पालन करने वाले प्रजाजन के हित के लिए व्रत, नियमों को न पालन करने वाले, उद्दण्ड पुरुषो को दण्डित करता हुआ और अपने अधीन भूमियो के स्वामी माण्डलिक अधीशो द्वारा अथवा अधिक वैभव और सामर्थ्य वाले, समर्थ, बलवान्, वीर पुरुषो या सेनाओ द्वारा अपने मुकाबले पर न आ सकने वाली शत्रु-सेनाओं को विनाश करता हुआ स्तुति का पात्र होकर राष्ट्र की अच्छी प्रकार उपचय वृद्धि करने हारा वल्मीक के समान गुप्त सुरंगो से युक्त दुर्गों को रच कर या उसके समान संचयशील, प्रचुर कोशवान् होकर बढे हुए और बढते हुए और आकाश मे फैलते हुए मेघ के समान तेजस्विता मे बढने वाले शत्रु-बल को भी

विविध उपायों से नाश करे, मारे। सायण आचार्य की 'नम्र' और 'सदिह' नामक ऋषि की कल्पना निराधार है।

तन्नद्यत् तं उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः १०।१०

भा०—हे राजन्! जब तेरे बल को तेरी मैत्री और वृद्धि करने वाला सहायक मन्त्री या मित्र राजा अपने शत्रु-पराजयकारी बल से अति अधिक तीक्ष्ण कर देता है, तब अपने महान् सामर्थ्य से तेरा सैन्यबल आकाश और भूमि दोनों के समान स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को विविध प्रकार से पीड़ित करता है, दोनों को भयभीत करता है। हे नेता पुरुषो के प्रति मनोयोग देने हारे! अथवा प्रजा के हितों में दत्तचित्त! एवं प्रजाओं को वश करने हारे वायु के वेग से चलने वाले मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलने हारे तीव्र, वेगवान् अश्व और अश्वारोही भृत्यगण सब प्रकार से भरे पूरे, पूर्ण कोशवान् तुझको यश, धन और ऐश्वर्य सब तरफ से प्राप्त करावें। इति दशमो वर्गः॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद् वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः॥

भा०—जब समस्त राष्ट्र के वश करने में समर्थ सभापति या राजमन्त्री, विद्वानों के बीच सबसे मुख्यतम विद्वान्, क्रान्तदर्शी, महामात्य के कर्म और पदाधिकार पर स्थिर हो जाय तो उसके आश्रय पर ऐश्वर्यवान् राजा खूब चमक जाता है। खूब प्रभाववान्, तेजस्वी और यशस्वी हो जाता है, तब वह सब के साथ ही अति वेगवान्, अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वो पर महारथी के समान कुटिल चालों के चलने वाले और कुटिल चालों से युद्ध करने वाले, शत्रु और उदासीन राजाओं पर भी अपना शासन जमा लेता है। वेग से गमन करने वाले मेघ को जिस प्रकार वायु या विद्युत् अपने आघात से टकराकर उसके जलों को प्रवाह रूप से भगा देता है उसी प्रकार आक्रमण करने वाले शत्रु के प्राप्त सेनाओं

को बहते प्रवाह के समान वेग से मैदान से निकाल देता है, भगा देता है और स्वय अपने बल को बढ़ा कर वह राष्ट्र के शोषण करने वाले शत्रु के गढ़ों या दुर्गों को विविध रीतियो से कंपा देता है, नाश करता है।

'मन्दिष्ट' इति पाठ. श्रीमद्दयानन्दपादाभिमतश्चिन्त्य. ।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥

भा०—हे शत्रुओ के नाशक और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू जब मेघ के समान शरवर्षण करने वाले वीर पुरुषो के योग्य बलकारी ऐश्वर्यों, रसो, पदार्थों के पान और उपभोग और प्राप्ति और परिपालन के अवसरो मे रथ पर जमकर बैठता और जिनके बल पर तू सब आनन्द विनोद प्राप्त करता या युद्ध मे पयाण करता है वे भी शरो से मारने योग्य, शत्रुओं के बीच मे विचरने के अवसर, सग्राम आदि के लिए अच्छी प्रकार तेरे द्वारा वेतन और अन्न द्वारा भरण पोषण किये जाय। जिस प्रकार से तू अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यों या अभिषिक्त राजाओ के बीच प्रतिद्वन्दी वीर से रहित, अद्वितीय राष्ट्र को प्राप्त करना चाहता है। उसी प्रकार राजसभा और विद्वानो के बीच भी स्तुति वाणी को या स्तुति योग्य यश, ख्याति या उत्तम पद को प्राप्त कर ।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! राजन् ! जिस प्रकार बड़े गुणो से युक्त एव ज्ञानोपदेश के वचनो की इच्छा करने वाले उत्तम सिद्ध हस्तांगुलियों वाले, प्रवीण, क्रियाकुशल शिष्य को आचार्य थोड़ा ही विवेचनकारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या का उपदेश करता है और वही उपदेशयुक्त वाणी से वेगवान्, बलवान् अश्व या उपकरणो के स्वामी को प्रेरणा कार्यों मे करनी आवश्यक होती है उसी प्रकार हे राजन् ! तेरी आज्ञा को चाहने वाले अगल बगलों के बन्धनों से कसे अश्व के समान

पार्श्वों की सेनाओं से युक्त बड़े भारी सेना के शासक पुरुष को भी तू छोटी सी ही छेदन भेदन करने की संक्षिप्त आज्ञा को संकेतरूप से दिया कर। हे उत्तम कर्म और प्रज्ञा सामर्थ्य वाले पुरुष ! तेरी मान करने योग्य आज्ञा जब बलवान्, वेगवान् अश्वों वाले वीर पुरुष के प्रेरण या शासन के कार्यों में भी अच्छी प्रकार दी जाती है तब तू समस्त कार्यों के करने में समर्थ होता है।

इन्द्रो॑ अश्रायि सु॒ध्यो॑ निरे॒के व॒ज्रेषु॒ स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूपः॑।
अ॒श्व॒युर्ग॒व्यू र॑थ॒युर्व॑सू॒युरिन्द्र॒ इद्रा॒यः क्ष॑यति प्रय॒न्ता ॥ १४ ॥

भा०—स्तुति करने योग्य वचनों या स्तुति के कार्यों में जिस प्रकार वेद के सूक्त मुख्य रूप से ग्रहण करने योग्य है और द्वार पर स्थित मुख्य स्तम्भ जिस प्रकार घर के आश्रय के लिये मुख्य है उसी प्रकार सन्देहरहित होकर अथवा समस्त भोग योग्य विषयों को सर्वथा त्याग कर, केवल एकमात्र सुखपूर्वक ध्यान चिन्तन करने योग्य वह परमेश्वर ही आश्रय करने और भजन सेवन करने योग्य है इसी प्रकार सब धनों के व्यय हो जाने पर युद्ध आदि कार्यों में सैनिक समूह तथा द्वारस्थ स्तम्भ के समान या शत्रुओं को वारण करने वाले सैनिकों का एकमात्र स्तम्भ, उत्तम रीति से चिन्तन या मनन करने में कुशल ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, विद्वान् पुरुष ही आश्रय करने योग्य है। और वह ऐश्वर्यवान् राजा ही अश्वों का स्वामी, गवादि पशुओं, आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी समस्त राष्ट्र वासी प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी और अन्यों को अश्व, रथ, गौ, ऐश्वर्यादि देना और स्वयं प्राप्त करना चाहता हुआ धनैश्वर्य का ऐश्वर्य को अच्छा देने वाला होकर और अपने पास रखता है। अथवा उत्तम बुद्धिशाली पुरुषों को उस परमेश्वर का या राजा का आश्रय लेना चाहिये। 'अश्वयुः इत्यादि'—इदयुरिदं कामयमानोऽथापि तद्वदर्थे भाष्यते। अश्वयुर्गव्युरि-त्यपि निगमो भवति। (निरु० ६।६।३)।

इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥११

भा०—सुखों और समस्त ऐश्वर्यों को वर्षण करने वाले परमेश्वर और शत्रु पर शस्त्रादि वर्षाने वाले बलवान् सर्वश्रेष्ठ, सत्य के बल वाले या सदा विद्यमान, सज्जनों के हितकारी बलवाले स्वयं अपने तेज से देदीप्यमान, प्रतापी, महान बलवान् पुरुष यह नमस्कार अर्थात् आदर वचन कहा जाता है। हे ऐश्वर्यवन्! इस शत्रु और कष्टों के निवारण के अवसर पर संग्रामादि कार्य में इस तेरे शत्रुवारक बल पर हम समस्त वीर गण विद्वान् तेजस्वी नायक पुरुषों सहित तेरे उत्तम शरण या आश्रय में रहें। इत्येकादशो वर्गः ।

[५२]

सव्य आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप् १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप । २—४ निचृज्जगती । ६, ११ विराड् जगती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुष! तू मेघ जिस प्रकार भूमियों पर जलों की वर्षा करता है जिसके वर्षण के साथ २ ही सैकड़ों उत्तम उर्वरा भूमियों के स्वामी किसान गण एक साथ हल चलाते हैं उस सुखकारी मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले अथवा मेंढे के समान शत्रुओं से मुकाबला लेने वाले, दृढ़ उस राजा का अच्छी प्रकार आदर कर जिसके अधीन रहकर सैकड़ों उत्तम भूमिपति एक साथ ही युद्ध यात्रा करते हैं। अथवा जिसके बल से सैकड़ों अच्छे अच्छे भूमिपति कांप जाते।

परमेश्वर के पक्ष में—उस परमेश्वर की उपासना कर जिसके आश्रय में या जिसको प्राप्त करने के लिये सैकड़ों उत्तम कोटि के, अति सामर्थ्यवान् पुरुष यत्न करते हैं या जिसके भय से उत्तम २ बलशाली लोग भी

कांपते हैं। मैं प्रजाजन वेगवान् अश्व के समान गमन करने योग्य मार्ग पर वेग से जाने वाले, एव शत्रु के ललकार पर वेग से आक्रमण करने वाले रथारोही, शत्रुहन्ता राजा को उत्तम शत्रुओं को पराजय करने वाले शक्तियों सहित अपनी रक्षा के लिये वरण करु। अथवा भक्त के आह्वान, पुकार और स्तुति पर ही करुणा मे द्रवित होने वाले, अति-दयालु, रस स्वरूप, परमरमणीय, परमेश्वर को मैं उत्तम हृदयग्राही स्तुतियों द्वारा प्राप्त करु।

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

भा०—ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् सूर्य या विद्युत् या वायु जब समस्त आकाश को घेरने वाले, अति वेग से वहने वाली नदियों के वहाने वाले मेघ को आघात करता है तब वह जलों को नीचे फेंकता हुआ और प्रचुर अन्न सामग्री मे जगत् भर को हर्षित करता है। वह विद्युत या सूर्य भी मेघ के धारक जलों या वायुओं में ही रह कर, नीचे न गिर कर अर्थात् विजयी बनकर सहस्रों दीप्तियों से युक्त होकर बडी बलवती शक्तियों के रूप में बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार शत्रुघाती ऐश्वर्यवान् बलवान् राजा जो नदियों से घिरे या समृद्धियों से भरे पूरे नगर को घेरने वाले शत्रु को मार लेता है वह जलों के समान ऐश्वर्यों को या समस्त जनों को नमाता हुआ, गिराता या दबाता हुआ, ऐश्वर्य और अन्नादि भोगयोग्य पदार्थों से सबको हर्षित करता हुआ पर्वत के समान अचल और नाना पालक सामर्थ्यों से युक्त होकर वह राष्ट्र के धारण करने वाले नाना मुख्य पुरुषों के बीच में कभी भी कर्त्तव्यच्युत या पराजित न होकर, एवं स्वतः पूर्ण अस्खलित, बल वीर्य वाला, ब्रह्मचारी रहकर सहस्रों ज्ञानों और रक्षाकारी साधन सेना आदि बलों और तेज प्रभावों से सम्पन्न होकर सेनाओं के आधार पर बढे।

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३॥

भा०—वह राजा संवृत, गुप्त रखने योग्य व्यवहारो और राज-कार्यों मे अत्यन्त संवृत, गुप्त, गम्भीर, गुप चुप रहने वाला, कूप के समान गहरा और शीतल जल वाला या अन्धकार से छुपे गार के समान अगम्य भाव हो कर रहे । और उषा-काल मे चन्द्र को अन्तरिक्ष मे रखने वाले सूर्य के समान रजत, स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने मूल आश्रय मे रखने वाला तेजस्वी एव कोष सम्पन्न होकर विद्वान् मननशील पुरुषो के द्वारा स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, अति उत्तम दानशील, उत्तम धर्म कर्मानुष्ठान से युक्त, बुद्धि या ज्ञान से युक्त इस पुरुष को मै 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् एवं दयालु ज्ञानी उपदेशक आचार्य 'इन्द्र' करके पुकारता हूं । वह ही अन्न, जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला है ।

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अहुतप्सवः ॥४॥

भा०—उत्तम वेग और बल से बहने वाली नदिया जिस प्रकार समुद्र को सब तरफ से पूर्ण करती हैं उसी प्रकार जिस पुरुष को सब प्रकार की कामना वाली पूर्ण अपनी ही प्रजाए और राजसभा भवन मे उत्तम आसन पर विराजने वाले विद्वान् पुरुष सब प्रकार से पूर्ण करते हैं रक्षाकारी, बलवान्, प्रतिकूल शत्रुओ से रहित, कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाले वीर पुरुष विघ्नकारी शत्रु के विनाश के कार्य में सेनापति, सभाध्यक्ष के ही पीछे पीछे हो जावें । अर्थात् उसके अनुयायी और अनु-गामी होकर रहें ।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः॥५॥१२

भा०—इस सेनाध्यक्ष के अति आवेश और उत्साह पूर्वक युद्ध करते हुए अपने बाणों और ऐश्वर्यों की वृष्टि के सामने उसको लक्ष्य करके, अति

वेग से वहने वाली नदियें जिस प्रकार नीचे स्थान में वह जाती हैं उसी प्रकार उसकी प्रचण्ड वेग से जाने वाली रक्षाकारी सेनाएं भी अपने से दवने वाले शत्रु पर या उत्कृष्ट कोटि के ऐश्वर्य पर टूट पड़ती हैं। जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ के पटलों को ऊपर, आडे और तिरछे तीनों प्रकारों से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार वलवान्, खङ्ग आदि शस्त्रों के धारण करने हारा शत्रुघाती, सेनापति त्रिगुण सैन्य से युक्त होकर शत्रुओं का वलपूर्वक पराजय करता हुआ वलवान् शत्रु के चारों ओर स्थापित रक्षा पुरुषों को अन्धकार को दूर करने वाले तेज के समान तीक्ष्ण वल से तथा अन्नादि उपभोग्य पदार्थों के प्रलोभन द्वारा छिन्न भिन्न करे अर्थात् उनमें दान और दण्ड के उपायों से भेद का प्रयोग करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार मेघ जलों को अपने भीतर थाम कर आकाश के ऊपर के तल में फैल जाता है और जिसका फैलाव या विस्तार वेरोक हो उस मेघ के अगले पिछले मुखों या छोरों पर वायु विस्तृत वज्र रूप विद्युत् का प्रहार करता है। तब दीप्ति सवत्र फैलती है और उसका प्रवल वल भी चमकता और प्रकाश के लिए होता है। ठीक उसी प्रकार जव त्रु राजा भी आप्त प्रजाओं को घेर कर इस पृथ्वी लोक के वाधने वाले य राजधानी पर चारों तरफ से घेरा डाल कर बैठ जावे तव उत्तम दल के वल पर या प्रयाण काल में जिसके फैलने वाले और कुत्तों के ान टुकड़ों पर जीने वाले वेतनधारी नौकर या भेदू लोग भी किसी र काबू न आ सकें, ऐसे वडे हुए वल वाले शत्रु के प्रवल हननकारी स्व सेना के भागों पर ही हे राजन्! तू विद्युत् के समान गर्जनाकारी अस्त्र का प्रयोग करके शत्रु पर प्रहार कर। और तव सूर्य की चमक के

समान तेरी दीप्ति, तेज भी सब तरफ फैले और तेरा बल भी खूब प्रकाशित हो कर चमके।

अध्यात्म में—जब अज्ञान का मेघ प्राण वृत्तियों या लिंगशरीर को घेर कर रजोगुण के मूल या प्राणों के आश्रय रूप चित्त को घेर लेता है तब अदम्य, बेकाबू इन्द्रियों रूप कुक्करों के स्वामी बढ़ते हुए काम के भोगसाधन जीभ और कामांग दोनों पर ज्ञानी पुरुष प्रबल आघात करें, उन पर नियन्त्रण करें, तब उसका तेज, प्रभा और बल बढ़ता और फैलता है।

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

भा०—तरंगें जिस प्रकार आप से आप, स्वभावतः जलाशय को प्राप्त होती हैं, अथवा जिस प्रकार नाना जलधाराएं बड़े जलाशय को प्राप्त होती हैं, उसी में आ मिलती हैं और उसके स्वरूप को बढ़ा देती हैं उसी प्रकार हे परमेश्वर! जितने भी ये वेदमन्त्र अथवा बड़े पृथ्वी, आकाशादि पदार्थ हैं वे सब स्वभावतः निश्चय से तेरी ही महिमा को बढ़ाने वाले हैं, तेरे ही गुणों का प्रकाश करने वाले हैं। इसी प्रकार हे राजन्! जिस प्रकार जलतरंग जलाशय को प्राप्त होते हैं और उसको बढ़ाते हैं उसी प्रकार समस्त बड़े ऐश्वर्य अन्नादि भोग्य पदार्थ, बड़े बड़े राष्ट्र, ब्राह्मण वर्ग और वेद के अनुशासन जितने भी हैं वे सब तुझे ही बढ़ाने वाले, तेरी शक्ति सामर्थ्य की वृद्धि करने हारे हों। जिस प्रकार मेघ या जल के अवयव अवयव को सूक्ष्म सूक्ष्म कणों में छेदन भेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् संयोग से प्राप्त होने वाले और रथादि संचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को बढ़ाता है और सब शत्रुओं के पराजय करने वाले ओज, पराक्रम या परम बल को धारण करने वाले प्रबल शक्तिमान् अस्त्र को भी बना सकता है उसी प्रकार कान्तिमान्, सर्व सृष्टि का रचयिता परमेश्वर योग समाधि से प्राप्त होने वाले बल को बढ़ाता है और सब प्रकार के

काम, क्रोध आदि भीतरी तथा वाहरी शत्रुओ को भी दवा लेने वाले तथा समस्त ऐश्वर्यों और पराक्रम को धारण करने वाले वल को पैदा कर देता है। उसी प्रकार हे राजन्! वढ़ई या शिल्पी तेरे अनुरूप, तेरे योग्य सहकारी शस्त्रास्त्र—वल को भी वढ़ावें और शत्रुओं को दवाने, पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वज्र या महास्त्र को भी वनावें।

जुघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतुविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा वाह्वोर्वज्रमायुसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने मे एकत्र धारण करने हारे! हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! जिस प्रकार सर्व साधारण जनों के उपकार के लिए जलो को पृथ्वी पर डालता हुआ सूर्य या विद्युत्, किरणो और वेगवान् आघातो से मेघ को आघात करता है और भुजाओं के समान वल और आकर्षण दोनो पर आश्रित अति वेगवती गति से वने वज्र या प्रवलशक्ति को धारण करता है और आकाश में सव पदार्थों को दिखाने के लिए प्रकाशमान सूर्य को धारण करता है, उसी प्रकार हे समस्त 'क्रतु' अर्थात् कर्ता जीवो को अच्छी प्रकार भरण पोपण करने हारे! हे इन्द्र! ऐश्वर्यवन्! तू समस्त अज्ञानो और दुःखों को हर लेने वाले विद्वान्, परोपकारी पुरुषो तथा सुखप्रद पृथिवी, वायु आदि तत्वों से मननशील प्राणियों के उपकार के लिए मेघ के समान जलों को पृथ्वी पर फेंकता हुआ अथवा मनुष्य जन्म धारण करने के लिए प्राणो या लिंग शरीरो को भूलोक पर भेजता हुआ ज्ञान पर आवरण डालने [illegible]ले, वढ़ते हुए अज्ञान-वन्धनों को नाश करता है। राजा जिस प्रकार [illegible]थों में लोहे के वने शस्त्रास्त्र को धारण करता है उसी प्रकार दुःखों को [illegible]धने वाले ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा पापो से निवारक वल को प्रदान कर और ज्ञान के प्रकाश मे देखने या दिखाने के लिए आकाश में सूर्य के समान सवको प्रेरक अपने ज्ञान विद्या प्रकाश को धारण करा। इसी प्रकार इन्द्ररूप आचार्य भी पूर्ण ज्ञानी होकर अपने शिष्यों द्वारा

अज्ञान को नाश करे। मनुष्य समाज के उपकार के लिये उत्तम कर्मों और ज्ञानो का उपदेश करे। बलवीर्य को धारण करे और सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्मचारी को अपने सावित्री के गर्भ मे धारण करे। इसी प्रकार राजा वेगवान् अश्वो और अश्वारोहियो से शत्रु को मारता हुआ मानवो के उपकार के लिए आप्त पुरुषों को पृथ्वी पर या सब मार्गों मे भेजता हुआ और पृथ्वी को वश करता हुआ, शत्रुओ के बाधक बाहुओ या क्षत्रियो मे लोहादि के बने शस्त्रास्त्र धारण करावे। वह न्यायसभा मे व्यवहारो को न्यायपूर्वक देखने और निर्णय करने के लिए सूर्य के समान सत्यासत्य के विवेकशील ज्ञानी पुरुष को स्थापित करे।

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

भा०—जो सांसारिक दुःखो से भय खाकर मनुष्यो के हितार्थ उत्तम उत्तम धनों का संग्रह करने हारे, सम्पन्न पुरुष उस महान्, स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक, उत्तम ज्ञान सम्पन्न, सब दुःखो के काटने हारे, स्तुति योग्य ब्रह्म की स्तुति करते हैं तब वे आकाश के बीच उदय होने वाले सूर्य के समान देदीप्यमान एव ज्ञान और प्रकाश के प्रदान करने वाले परमेश्वर को वे अपने समस्त प्राणो पर वश करने हारे, उनको एकाग्र करने वाले विद्वान्जन साक्षात् कर बडे प्रसन्न, हर्ष, आनन्द और सुख अनुभव करते हैं। इसी प्रकार मनुष्यो मे धनसम्पन्न पुरुष प्रजाओं के रक्षक विद्वान् और वीर लोग बहुत से मनुष्यो का समवाय बनाकर, अथवा नेताओं पर आश्रित होकर शत्रु के भय से जब जब भी अपने में से बड़े, अपने अनुयायी प्रजा के आह्लादक, प्रजारंजक स्तुति योग्य, पुरुष को समस्त विजयशील सेना और ज्ञानयुक्त सभा के ऊपर, आकाश मे उदय होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी शासक रूप से बना देते हैं तब वे उस ऐश्वर्यवान् स्वामी के साथ साथ ही स्वयं भी बडे सुख या स्वर्ग समान समृद्ध राष्ट्र का उपभोग करते हैं।

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः॥१०॥१५

भा०—हे राजन्! सेनापते! बलवन् सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार मेघ के जल को छिन्न-भिन्न कर देता और नीचे गिरा देता है। और इस वज्र, विद्युत् के शब्द को सुनकर मारे भय के मानो मेघ भी कांप जाता है। उसी प्रकार हे राजन्! तेरा तेजस्वी, बलवान् सेनाबल, शस्त्रास्त्रबल आकाश और भूतल दोनों को बांधने या घेरने वाले बल मे बढते हुए शत्रु के शिर, मुख्य भाग को राज्यैश्वर्य के हर्ष मे ही उत्पन्न बल से तोड दे। राज्यैश्वर्य के सुख के निमित्त शत्रु के मुख्य बल मे भी राजा भेद-नीति का प्रयोग करे और इस बलवान् वज्र या शस्त्रास्त्र बल के कडकडाते शब्द से भय द्वारा छिन्न-भिन्न करे। शत्रु को दान और दण्डभय दोनो उपायो से तोडे। इति त्रयोदशो वर्गः।

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत्॥११॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभापते! जो यह पृथिवी है, वह निश्चय से 'दशभुजि' है। अर्थात् वह प्रकृति के समान दशों इन्द्रियों से जीवो द्वारा भोग करने योग्य है, अथवा दशों दिशाओं के वासी प्राणियों द्वारा भोग करने या राजा द्वारा दशों दिशाओं मे रक्षा करने योग्य है। समे सब दिनों, सदा ही अन्नादि को उत्पन्न करने वाले प्रजाजन सदा फैलें या इसको विस्तृत करें अर्थात् वे जंगल आदि काटकर, विस्तृत क्षेत्र यार करें जिससे प्रचुर अन्न हो। ऐश्वर्यवन्! हे राजन्! निश्चय से इस वी पर बल से, पराक्रम से और प्रजा को बढ़ाने वाले उद्योग से तेरे त्रु को पराजित करने वाला बल भी सूर्य के प्रकाश के समान नूर सिद्ध हो।

परमेश्वर के पक्ष मे—हे परमेश्वर! यही पृथ्वी दशों दिशाओं और इन्द्रियों से भोग योग्य है। प्रजाएं इस पर बढ़ती चली जा रही हैं।

तेरे बल, प्रजा और बुद्धि के कार्य से तेरा यश, ख्याति प्रकाश के समान या विस्तृत-आकाश के समान विस्तृत है।

त्वम॒स्य पा॒रे रज॑सो॒ व्यो॑मनः॒ स्वभू॑त्योजा॒ अव॑से धृषन्मनः।
च॒कृ॒षे भूमिं॑ प्रति॒मान॒मोज॑सो॒ऽपः स्वः॑ परि॒भूरे॒ष्या दिव॑म् ॥१२॥

भा०—सबके सकल्प विकल्प करने वाले चित्तो को अपने ज्ञान, विवेक और अद्भुत अज्ञेय रचना से धर्षण या पराजित करने हारे परमेश्वर! तू स्वतः विना किसी के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य और पराक्रम से सम्पन्न होकर इस भूलोक या अन्तरिक्ष और विस्तृत आकाश के परले पार भी रक्षण करने के लिये विद्यमान है। तू ही अपने बल के अनुरूप ही सब प्राणियो तथा चराचर के उत्पन्न करने वाली भूमि या प्रकृति को बनाता अर्थात् विकृत या विविध रूपों मे प्रकट करता है। और तू ही सर्वव्यापक होकर प्राणों को या जलो को समस्त सुखो और अन्तरिक्ष या वायु को और महान् आकाश या प्रकाश, तेजस्तत्व को भी व्याप रहा है।

राजा के पक्ष मे—अपने ऐश्वर्य और पराक्रम से युक्त होकर तू ही विविध रक्षा वाले लोक समूहो से पार वा दूर, देशान्तर मे भी रक्षा करने के लिये समर्थ है। तू इस पृथिवी को बल पराक्रम का मापक बनाता है। जो राजा जितनी पृथ्वी का स्वामी है उसका उतना ही पराक्रम या शासन है। प्रजाओ को सुखैश्वर्य और ज्ञान प्रकाश, सबको तू प्राप्त कर। शत्रुओ के 'मन' अर्थात् स्तम्भन बल को पराजित करने से राजा 'धृषन्मना' है और सर्वोपरि सामर्थ्यवान् होने से 'परिभू' है।

त्वं भु॑वः प्रति॒मानं॑ पृथि॒व्या ऋ॒ष्ववी॑रस्य बृह॒तः पति॑र्भूः।
विश्व॒माप्रा॑ अ॒न्तरि॑क्षं महि॒त्वा स॒त्यम॒द्धा नकि॑र॒न्यस्त्वावा॑न् ॥१३॥

भा०—हे परमेश्वर! तू ही अति विस्तृत समस्त चराचर के मूल कारण प्रकृति और भूमि का प्रत्यक्ष देखने वाला और भूमि के परिमाण का कर्ता और बड़े भारी बडे २ सामर्थ्यों वाले सूर्यादि लोकों और बड़े २:

वीर पुरुषों से युक्त और राजाधिराजों का भी पति, पालक और स्वामी है। तू ही महान् सामर्थ्य से समस्त संसार को और महान् अन्तरिक्ष, सूर्यों और भूमियो के बीच के अवकाश भागों को और सत्-रूप मे व्याप्त हुए और सत् पदार्थों मे विद्यमान यथार्थ तत्व को भी सब तरफ से और सब तरह से पूर्ण कर रहा है। सचमुच तुझ जैसा और कोई दूसरा नहीं, तू एक, अद्वितीय है।

राजा के पक्ष मे—तू पृथिवी को मापने वाला या उसका प्रतिनिधि है। तू बडे २ दर्शनीय वीर पुरुषो का पालक है। सबके हृदय को वा पक्ष प्रतिपक्ष के मध्यस्थ पद को और सत्य व्यवहार को पूर्ण करता है। तुझसा दूसरा कोई नहीं। तू ही सर्वोपरि अध्यक्ष है।

न यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः।
नोत स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृषे॒ विश्व॑मानु॒षक्॥१४॥

भा०—जिस परमेश्वर के समस्त पदार्थों मे तदनुरूप होकर सत्ता-रूप से विद्यमान व्यापन सामर्थ्य को सूर्य और पृथिवी भी अन्त नहीं पा सकते और उस रजस् स्वरूप, ऐश्वर्यवान्, लोक-विभूतिमय परमेश्वर के विस्तृत व्यापन या महान् स्वरूप का प्राणगण, आकाश, समुद्र आदि भी अन्त नहीं पा सके। और वीर योद्धा के समान सबके साथ काल रूप मे संग्राम करते हुए इसके आनन्द राशि मे इसकी अपने ऐश्वर्यादि गुणों की वृष्टि का भी उपरोक्त पदार्थ नहीं पा सके। और वह अकेला सब मे अनुरूप होकर, सूक्ष्म या व्यापक होकर समस्त ससार को और जीव को अपने से भिन्न या जुदा प्रकट करता या रखता है। इसी प्रकार प्रजानु-रागी राजा के विशेष महान् सामर्थ्य को, न राजा प्रजा वर्ग या ज्ञानी अज्ञानी, और न नदी समुद्र ही पार पाते है। युद्ध करते समय भी इसके ऐश्वर्य और शस्त्र वृष्टि के पार को शत्रुगण नहीं पा सके। वह अकेला समस्त जगत् का शासन प्रेमपूर्वक, उनके अनुकूल, उनसे मिल कर करे।

आर्चन्नत्र मुरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदुन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५।१४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! उस परम प्राप्तव्य, परम पद के निमित्त इस लोक मे विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं । समस्त देव जन, विद्वान् गण तेरे ही आश्रय मे रह कर खूब हृष्ट और प्रसन्न रहते हैं । क्योंकि तू पापो को भून डालने वाले अज्ञान नाशक प्रकाश से शत्रु के बाधक बल के जीवन या प्रमुख भाग को ही नाश कर देता है ।

सेनापति के पक्ष मे—वेगवान्, तीव्र, बलवान्, शत्रुमारक वीर पुरुष और प्रजास्थ विद्वान् जन इस और सभी युद्धों मे तेरा आदर सत्कार करें और समस्त विद्वान् तेरी प्रसन्नता मे प्रसन्न रहे । शत्रुओ को भून देने वाली, तेजस्वी नीति और शस्त्र युक्त वध आदि दण्डो और शस्त्रास्त्रो से तू शत्रु के जीवन, प्राण तक को नष्ट कर। इति चतुर्दशो वर्गः ।

[५२]

सव्य आंगिरस ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द —१, ३ निचृज्जगती । २ भुरिग्-जगती । ४ जगती । ५—७ विराड्जगती । ८, ९ त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप । ११ (त्रिष्टुप्) विराट्-स्थाना । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

न्यू३षु वाचं प्र मुहे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससुतामिवाविदन् न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम विद्वान् जन सूर्य के प्रकाश मे, भक्त जनो के समान विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर की परिचर्या करने हारे पुरुष के घर मे या एकत्र मिलकर बैठने के स्थान मे उस महान् परमेश्वर के लिये या बडे भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ही उत्तम वेदवाणी को और नाना अन्य स्तुतियो को भी उत्तम रीति से धारण करें। सोते हुए आलसी लोगों के रमण योग्य धन और ऐश्वर्य के सुखों को जैसे अन्य लोग हर लेते हैं और सोते हुए लोग ऐश्वर्य से वञ्चित हो जाते हैं उसी प्रकार वह ज्ञानी और विद्वान् पुरुष भी ऐश्वर्य और ज्ञान के कोश को प्राप्त करे और औरो को

प्राप्त करावे। सुवर्ण आदि धनों और विद्या आदि सात्विक दान योग्य ज्ञानों को देने हारे स्वामी और आचार्य पुरुषों के लिये बुरे वचन कभी न कहने चाहियें।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि २

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्वों का दान करने हारा है। तू गौवों का देने हारा है। तू जौ आदि अन्न का दाता है और तू समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है। तू शिक्षा देने वाला नायक आचार्य के समान आदि गुरु है। तू काम अर्थात् सत् संकल्पों को कृश न करने हारा, यथोचित विवेकी है। तू समस्त मित्रों का परम मित्र है। वह तू उत्कृष्ट ज्ञान का भी पालक, अथवा अति पुरातन, पुराण पुरुष है। हे परमेश्वर! इस तुझको ही हम इस प्रकार से तेरी स्तुति करें और अन्यों को उसका उपदेश करें।

शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः॥३॥

भा०—हे उत्तम बुद्धि, उत्तम कर्म और उत्तम वाणी वाले हे ऐश्वर्यवन्! हे प्रजाओं के बहुत से कामों, सुखों और प्रजाओं को भी उत्पन्न करने हारे! हे प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों मे सर्वश्रेष्ठ राजन्! सभाध्यक्ष! परमेश्वर! यह सब और जितना ऐश्वर्य या बसने वाला जीव संसार है यह सब तेरा ही है, ऐसा ही सब कोई जानता है। इस कारण या इस राष्ट्र से हे शत्रुओं का पराजय करने हारे! अथवा हे सब तरफ की नाना विभूतियों, ऐश्वर्यों के स्वामिन्! उस समस्त ऐश्वर्य को, या कर को संग्रह करके मुझ प्रजाजन को ऐश्वर्य से पूर्ण कर या पालन पोषण कर। तुझे चाहने वाले स्तुति-वचनों के करने वाले विद्वान् पुरुष के अभिलाषा को तू कभी नष्ट मत होने दे। उसकी अभिलाषा को अवश्य पूर्ण कर। अथवा तेरा आश्रय लेकर मैं रहूँ। तू मुझे ऐश्वर्य से पूर्ण कर

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

भा०—जो पुरुष शुभचित्त वाला, उत्तम ज्ञानवान् और ज्ञान वाणियों से हमारे अज्ञान, अविद्या या दारिद्रय दशा को रोकने वाला है, उसके साहाय्य से और इन नाना प्रकार के प्रकाशयुक्त द्रव्यो औ उत्तम गुणो से, और इन ऐश्वर्यों, आह्लादक, सुखजनक पदार्थों और वे। वेग से जाने वाले वीर पुरुषो से और अश्व, अग्नि, जल आदि से युक्त रथ-बल तथा अश्व अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति से और शत्रुओ के नाशक, विद्युत् से बने अस्त्र से हम लोग प्रजा के नाशक, अत्याचारी डाकू लोगों को भयभीत करते हुए और उसको मारते काटते हुए और अति वेगवान्, द्रुतगामी वीरों द्वारा शत्रुओं को सदा के लिए दूर करके या ज्ञानवान्, उत्तम विद्वानो के द्वारा परस्पर के द्वेष के भावो को दूर करके अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करें। अथवा जलों और अन्न के एक साथ उपभोग द्वारा परस्पर के द्वेष के भावों को दूर करके एकत्र मिलकर, संगठित होकर कार्य आरम्भ करें।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५॥१५॥

भा०—हे सभाध्यक्ष ! सेनाध्यक्ष ! हम लोग ऐश्वर्य से युक्त होकर एक साथ मिलकर कार्य करें। अन्न और प्रबल इच्छा से युक्त होकर संग्राम तथा अन्य कार्य प्रारम्भ करें। वेगवान् अश्वो, यानों से और सब तरफ और सब प्रकार के ज्ञानों और प्रकाशों से युक्त होकर हम लोग मिलकर बहुतों के आह्लादक, एवं अति अधिक सुवर्णादि धनसम्पन्न ऐश्वर्यों से युक्त होकर संग्राम आदि कार्य प्रारम्भ करें। विजय करने वाली उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्वानो को प्रमुख रखने वाली, एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामने वाली, पुरुषों तथा शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से

युक्त भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाली और अश्वों और अश्वारोही वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से प्रबल होकर हम भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें और लौकिक अन्य २ बड़े कार्यों को भी हम ऐश्वर्य, अन्न और धन और उत्तम मतिवाली वीर सेना से युक्त होकर करें।

गृहस्थ पक्ष में—उत्तम बुद्धि वाली वीर्यवान् पति या पुत्र के बल से युक्त उत्तमवाणी तथा गौ आदि पशु सम्पदा को पालन करने वाली, अश्वादि पशुओं के उपयोग जानने वाली स्त्री के सहित गृहस्थ कार्य सम्पन्न करें। इति पञ्चदशो वर्गः।

ते त्वा मदा॑ अमद॒न् तानि॒ वृष्ण्या॒ ते सोमा॑सो वृत्र॒हत्ये॑षु सत्पते।
यत्का॒रवे॒ दश॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ति ब॒र्हिष्म॑ते॒ नि स॒हस्रा॑णि ब॒र्हयः॑ ॥६॥

भा०—हे सज्जनों के पालन करने हारे सेनापते ! जब तू विज्ञान, राज्यासन तथा प्रजाजनों से युक्त राज्यकर्त्ता, राजा की रक्षा के लिए दस हजारों व बहुत, असंख्यात. शत्रुओं के विघ्नकारी कार्यों और सैनिकों को विनाश करने मे समर्थ होता है तब वे अति हर्षित होने वाले उन-उन बलयुक्त प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने के कार्यों को करते हुए सेना दलों के आज्ञापक, नायकगण शत्रुओं के हनन करने के कार्यों मे तुझे भी हर्षित करें। तेरे चित्त को वे अपनी वीरता से प्रसन्न कर दें।

आचार्य के पक्ष मे—आसन पर बैठने वाले कर्मनिष्ठ पुरुष के सहस्रों विघ्नों को आचार्य दूर करे। और अज्ञान आदि विघ्नों को दूर करने में स्वयं प्रसन्न रह कर ज्ञान के इच्छुक शिष्यगण नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करते हुए तुझ आचार्य को प्रसन्न करें।

यु॒धा युध॒मुप॒ घेदे॑षि धृष्णु॒या पु॒रा पुरं॒ समि॒दं हं॒स्योज॑सा।
नम्या॒ यदि॑न्द्र॒ सख्या॑ परा॒वति॑ निब॒र्हयो॒ नमु॑चिं॒ नाम॑ मा॒यिन॑म् ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! तू जिस कारण शत्रु को दबा लेने

मे समर्थ, एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने वाले मित्र से मिलकर, उसकी सहायता से कभी जीता न छोडने योग्य, अवश्य वध करने योग्य, सबसे प्रसिद्ध और प्रबलतम, अति छल-कपट की मायाओं को करने वाले शत्रु को दूर देश मे ही विनाश करता है और तू शत्रु पर प्रहार करने वाले वीर पुरुष से योद्धा शत्रु को ही जा पकडता है और शत्रु को दबा देने वाले, अदम्य, अपने प्रबल दुर्ग से शत्रु के दुर्ग को और पराक्रम से इस प्रत्यक्ष आंखो के सामने खडे शत्रु बल को भली प्रकार मारने में समर्थ होता है इसी से तू उत्तम सेनापति है। अथवा रात्रि के समान या रात्रि-काल मे धर्षणशील, योद्धा, पराक्रम और मित्र वर्ग से मिलकर मायावी शत्रु को तू विनाश कर।

त्वं कर॑ञ्जमु॒त प॒र्णयं॑ वधी॒स्तेजि॑ष्ठयातिथि॒ग्वस्य॑ वर्त॒नी।
त्वं श॒ता वङ्गृ॑दस्याभिन॒त् पुरो॑ऽनानु॒दः परि॑षूता ऋ॒जिश्व॑ना॥८॥

भा०—हे सेनापते! तू प्रजाजनो पर शस्त्रो के फेंकने वाले और दूसरो के प्राप्त किये देह वा पालन योग्य पदार्थों को चोरने वाले, अथवा प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करने वाले शत्रु को अतिथि के समान पूजनीय पुरुषो को प्राप्त होने वाले प्रजाजन की रक्षा के लिये अति तेजस्विनी, अग्नि से दीप्त होने वाली, शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकनेवाली बन्दूक और तोप जैसी शक्ति से विनाश कर। और तू टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलने वाले और अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाले दुष्ट शत्रु पुरुष के सैकडो दुर्गों को सधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्ती सेना बल द्वारा घेर कर तोड़ डाल। अथवा अनुकूल कर न देने वाले कुटिलाचारी शत्रु पुरुष के नगरों को तोड और सधे हुए कुत्तों के समान आज्ञाकारी भृत्यो के स्वामी के साथ मिलकर अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थों की रक्षा कर।

त्वमे॒तां ज॑नरा॒ज्ञो द्विर्दशा॑बन्धु॒ना सु॒श्रव॑सोपज॒ग्मुषः॑।
ष॒ष्टिं स॒हस्रा॑ नव॒तिं नव॑ श्रु॒तो नि च॒क्रेण॒ रथ्या॑ दु॒ष्पदा॑वृणक्॥९॥

भा०—हे राजन् ! वीर सेनापते ! प्रसिद्ध यशस्वी तू बन्धुओं से रहित और उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, राष्ट्रपति या प्रजाजन के साथ युद्ध करने के लिये इन तेरे प्रति या युद्ध के लिए जाने वाले बीसों धार्मिक राजा जनों तथा जनपदों के राजाओं को ६००९९ साठ हज़ार निन्यानवे पुरुषों को दुष्प्राप्य, अति प्रबल रथों या महारथियों से बने चक्र या चक्र-व्यूह द्वारा रक्षा करके शत्रुओं को भी दूर करने में समर्थ हो। बीसों राजाओं के मुकाबले पर ६००९९ का एक प्रबल रथों का चक्रव्यूह रक्षा के लिए पर्याप्त है।

त्वमा॑विथ सु॒श्रव॑सं॒ तवो॒तिभि॒स्तव॒ त्राम॑भिरिन्द्र॒ तूर्व॑याणम् ।
त्वम॑स्मै॒ कुत्स॑मतिथि॒ग्वमा॒युं म॒हे राज्ञे॒ यूने॑ अरन्धनायः ॥१०॥

भा०—हे सेनापते ! तू उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति को अपने रक्षा साधनों से सुरक्षित रख। हे शत्रुहन्तः ! तू हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर सैनिकगण को भी देहों के रक्षक, कवच आदि साधनों से सुरक्षित रख और इस बड़े भारी सबको अपने साथ मिलाने हारे या सबसे पृथक् हुए राजा के लिए वज्र अर्थात् सेना, शस्त्रास्त्र बल को और अतिथि के समान पूज्य राजा के प्रति सर्वसमर्पण कर इसकी शरण में आने वाले प्रजाजन को तू अपने वश कर और पर्याप्त ऐश्वर्यवाला बना।

य उ॒दृचीन्द्र दे॒वगो॑पाः॒ सखा॑यस्ते शि॒वत॑मा असा॑म ।
त्वां स्तो॑षाम॒ त्वया॑ सु॒वीरा॒ द्राघी॑य॒ आयुः॑ प्रत॒रं दधा॑नाः ॥११।१६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभापते ! सेनाध्यक्ष ! जो विद्वानों और विजिगीषु, वीर पुरुषों से सुरक्षित तेरे मित्रगण हैं वे और हम तेरे लिए अत्यन्त कल्याणकारी होकर रहें। हम उत्तम वीरजन तेरे साथ सौ वर्षों से भी अधिक दीर्घ जीवन को खूब अच्छी प्रकार धारण करते हुए तेरी युद्ध-यज्ञ की समाप्ति पर अथवा संग्राम के अनन्तर उत्तम फल प्राप्त

कर लेने पर अथवा ऊंचे स्वर से गान करने योग्य स्तुति द्वारा तेरी स्तुति करें। इति षोडशो वर्गः ।

[५४]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, १० विराड्जगती ॥ २, ३, ५ निचृज्जगती । ७ जगती । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

मा नो॑ अ॒स्मिन्म॑घवन्पृ॒त्स्वंह॑सि न॒हि ते॒ अन्तः॒ शव॑सः परी॒णशे॑ ।
अक्र॑न्दयो न॒द्यो॒३॒॑ रोरु॑व॒द्वना॑ क॒था न क्षो॒णीर्भि॒यसा॒ समा॑रत ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! तेरे बल और शक्ति का अन्त या पार नहीं पाया जा सकता । तू हमें पाप में और नाना संग्रामों या नाना पीडाजनक आयासों में मत रुला, मत पीड़ित कर । अथवा हमें सब प्रकार से लुप्त कर देने वाले, मिटा डालने वाले पाप में मत रुला । तू जगलों में नदियों के समान भ्रमा २ कर मत रुला । भय के मारे त्रस्त हुए पृथ्वी निवासी जन भी क्यों न एक संग मिलकर तेरी शरण में आवें । इसी प्रकार राजा भी प्रजाओं को पापाचार के कार्यों में या संग्रामों में पीड़ित न करे । उनको जंगलों में न भटकावे । भयार्त होकर क्यों न प्रजाएं एकत्र संगठित होकर रहें ?

अर्चा॑ श॒क्राय॑ शा॒किने॒ शची॑वते शृ॒ण्वन्त॒मिन्द्रं॑ म॒हय॑न्न॒भि ष्टु॑हि ।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ रोद॑सी उ॒भे वृषा॑ वृष॒त्वा वृ॑ष॒भो न्यृ॒ञ्जते॑ ॥२॥

भा०—हे प्रजाजन ! तू शक्ति से भरे हुए, बलवान् पदार्थों और पुरुषों के स्वामी, स्वतः भी अति शक्तिशाली और प्रज्ञावान् कर्मशक्ति से सम्पन्न और शक्तिशालिनी सेनाओं के स्वामी परमेश्वर की स्तुति कर । सब स्थानों और सब कालों में वह परमेश्वर सुन रहा है, ऐसा जान कर ईश्वर के प्रति आदर और श्रद्धा से पूजन और अर्चन करता हुआ तू साक्षात् सा जान कर उसकी स्तुति किया कर । इसी प्रकार प्रजाओं के न्याय-व्यवहारों और कष्टों को सुनते हुए का आदर करता हुआ राजा की

साक्षात् स्तुति कर। जो मेघ के समान प्रजाजनों पर, जल के समान सुखों की और विजुलियों के समान शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने हारा है, वह सर्व-सुखवर्षक होकर ही आकाश और पृथ्वी दोनों को सूर्य के समान अपने वर्षण सामर्थ्य या बांध लेने वाले आकर्षण सामर्थ्य से राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को अपने अधीन, वश करता है।

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः॥३॥

भा०—शत्रुओं के पराजित करने हारे जिसका मन, चित्त और ज्ञान और स्तम्भन बल या शासन और अपना क्षात्रबल दोनों शत्रु को पराजित करने वाले हैं और जिसकी वाणी, वचन या आज्ञा भी बलयुक्त और सुखजनक है उस बड़े भारी तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी राजा का आदर कर। वह बड़े भारी यश, कीर्ति, अन्न और ज्ञान से युक्त, प्राण बल से युक्त, अन्य शत्रुओं को परास्त करने हारा, बड़े भारी सैन्य बल से अपना मुख्य सर्दार बनाया जावे। वह बलवान् पुरुषों को प्रिय अथवा स्वयं सर्वश्रेष्ठ, सुखों का वर्षक होकर दो प्रबल अश्वों से युक्त रथ के समान दो विद्वान् पुरुषों से सहायवान् होकर अति वेगवान्, बलशाली हो।

त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि॥४॥

भा०—जो तू शत्रुओं का पराजय करने और दबाने में समर्थ होकर समूह बना कर रहने वाले मायावी पुरुषों को अति हृष्ट, प्रसन्न चित्त से सेना द्वारा उनको पराजित करना चाहता या स्वयं अपने अधीन सेना रखना चाहता है, तब तू जिस प्रकार सूर्य मेघ पर अपनी किरण या दीप्ति को फेंकता है उसी प्रकार जो अति तीक्ष्ण अपने हाथों से काबू करके चलाने योग्य विद्युत् के बने सर्वसंहारक अस्त्र को छोड़े और बड़े भारी आकाश और सूर्य के प्रकाश को रोक लेने वाले मेघ को धर्षण या पराभव करने वाले अपने तेज से सूर्य या वायु जिस प्रकार छिन्न भिन्न करता या

बिजुली जिस प्रकार अपने तीव्र सामर्थ्य से ही जल को नीचे गिरा देता है उसी प्रकार बड़े भारी ज्ञानी या तेजस्वी राजा के ऐश्वर्य को भोगने वाले शान्ति के नाशकारी, दुष्ट पुरुष को क्रोध और आवेश से हीन, गर्व रहित, निर्वीर्य करे और नीचे तोड गिरावे ।

नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥१७॥

भा०—हे परमेश्वर ! जो तू आज भी बराबर पूर्व कालों के समान सब के प्राणप्रद वायु के और किरण समूहों से युक्त पृथ्वी के जलों को शोषण करने वाले सूर्य के भी शिर पर, उसके भी ऊपर अधिष्ठाता होकर अति प्राचीन, सनातन से चले आये संसार की वृद्धि करने वाले ज्ञान से सबको उपदेश या गर्जना करता हुआ जलों और ज्ञानों को नीचे गिराता या देता है तब आज भी तुझे छोडकर कौन दूसरा ऐसा करने में समर्थ है, तेरे सिवाय कोई नहीं । उसी प्रकार हे राजन् ! प्राणि के श्वासों या जीवनों के दाता और दुष्ट पुरुषों के जत्थे के स्वामी, प्रजा के रक्तशोषी बलवान् पुरुष के भी शिर पर तू विराज कर प्रजाओं को उत्तम उपदेश या आज्ञा करता है और शत्रुओं को रुलाता हुआ भोग योग्य ऐश्वर्यों के जलों के समान मेघवत् वर्षा दे और आगे की तरफ बढ़ने वाले, शत्रु के नाशकारी अपने स्तम्भन बल या प्रबल चित्त से जो तू करता है उसको तुझ से दूसरा कौन हो जो कर सके। इति सप्तदशो वर्गः ।

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! हे परमेश्वर ! हे सैकडों वीर कर्मों और प्रज्ञानों के स्वामिन् ! तू समस्त मनुष्यों के हितकारी, उनमें श्रेष्ठ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पर वश करने हारे ! उन चारों की इच्छा करने हारे, अथवा शत्रुओं के नाशकारी, यत्नशील, शत्रुओं के मारने में कुशल, कान्तिमान्, तेजस्वी या ज्ञानवान्, रथों पर चढ़ने हारे और रथों और

घोड़ों, रथारोही घुड़सवारों को संग्राम करने के निमित्त रक्षा कर। और शत्रु के ९९ निन्यानवे अर्थात् अनेकों पुरों को विनाश कर।

स वा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः॥७॥

भा०—वह ही निश्चय से राजा है जो मनुष्य और सज्जनों का पालक होकर राष्ट्र की वृद्धि करे और उस पर अपनी आज्ञा चलावे। और जो उत्तम २ अन्न आदि ग्रहण करने और दान करने योग्य पदार्थों का दान करता हुआ शासन करने के साधन न्याय और दमन को प्रतिक्षण, प्रतिदिन और प्रत्येक जन के प्रति यथावत्, विना प्रमाद और अन्याय के करता है और जो उत्तम वेदानुकूल वचनों को अन्यो को उपदेश करे और अपने ऐश्वर्य और धन से दानशील होकर इस राष्ट्रवासी प्रजा के हित के लिए आकाश से बरसे मेघ के समान उन पर ऐश्वर्यों और सुखों का वर्षण करे।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेरा राष्ट्रीय सेना बल अनुपम, सबसे बढ़कर और बुद्धिबल या मंत्रबल या ज्ञानबल भी अनुपम, सबसे बढ़ चढ़ कर हो। जो वेतन, आजीविका आदि देने वाले तेरे अधीन रहकर, तेरे बहुत बड़े बल को और ऐश्वर्य को और स्थिर करने और बढ़ाने मे समर्थ हों वे सब अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्यों सहित अन्न, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, ज्ञान और ओषधि आदि रस का पान, पालन, प्राप्ति और उपभोग करते हुए अच्छी प्रकार सुख से रहें।

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व॥९॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! मेघों की वर्षाओं से जिस प्रकार भरे पूरे पर्वती नाले वेग से बेरोक तटों और वृक्षों को तोड़ते फोड़ते हुए

निकलते हैं। उसी प्रकार ये सेनाओ में विराजमान वीर सैनिक गण भी मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षाने वाले, उदार स्वामियो से दिये गये ऐश्वर्यों से और पर्वतो के समान दृढ़ राजाओं से पालित पोषित हैं। वे पात्रो के समान राष्ट्र के बहते और अस्थिर ऐश्वर्यों को भी धारण करने और राष्ट्र-ऐश्वर्यरूप भोग्य रस को भोग करने के साधन होकर ऐश्वर्य से समृद्ध, राष्ट्र और राष्ट्रपति के पद को पालन और उपभोग करने मे समर्थ हैं। वे सब बहुत से ऐश्वर्यों को शत्रु देश से ले आने वाले बहुत संख्या में तेरी ही रक्षा और वृद्धि के लिए हों। तू इनके आधार पर राष्ट्र को विविध प्रकार से प्राप्त कर, उसमे व्याप जा। और इन अधीन पुरुषो को भी भृत्य के समान नियुक्त कर और इनके चित्त को देने योग्य धन अर्थात् वेतन, पुरस्कार आदि के लिए उत्सुक बनाये रख। अर्थात् उनको दान उपाय से वश कर।

अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हि ता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

भा०—आश्रय देने वाले, आधारस्वरूप, कुटिल, टेढ़े मेढ़े स्थान जिनमें सूर्य या विद्युत् का प्रकाश तुरन्त नहीं पहुंचता, वहां का सा अन्धकार जलों के बीच रहता है और जल को अपने भीतर, गर्भ मे धारण करने वाले और पुन: द्रवरूप से उत्पन्न करने वाले सूक्ष्म रूपों के भीतर ही ऊंचे कन्धे वाला मेघ पर्वताकार सा होकर दीखा करता है। गर्जना करने वाली बिजुलिया भी सब आवरण करने वाले मेघ के रूप से भीतर रहती हैं इनको वायु या विद्युत् ही एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तहो को भी आघात करके नीचे प्रदेशों में गिरा देता है। इस प्रकार निरन्तर जल बरसा करते हैं। ठीक इसी प्रकार राष्ट्र मे भी अन्धकार प्रजाओं के बीच आश्रय देने वाले बडे २ लोगों की आड मे कुटिलतापूर्वक, दीवट के नीचे अन्धकार के समान, रहा करता है। राजा उसको सूर्य के समान नाश करे। बढ़ते हुए राष्ट्र के उत्पन्न या प्रकट करने वाले राष्ट्र के अवयवों

के भीतर ही राष्ट्र के पालनकारी साधनों का स्वामी, पर्वत के समान अचल और मेघ के समान सुखों का वर्षक होकर रहे। मेघ या विद्युत् जिस प्रकार जल-धाराओं को नीचे के प्रदेशों में बहाता है उसी प्रकार वरण करने योग्य, चाहने योग्य सुन्दर रूप वाली सुवर्ण आदि के रूप में रक्खी हुई समस्त समृद्धियों को अनुकूल, कर्मानुकूल या नियमानुकूल रखकर अपने आगे झुकने वाले विनीत भृत्यों में प्राप्त करावे, प्रदान करे। अर्थशास्त्र या प्रजापालन की यही नीति है—"अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितविवर्धिनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी च [कौ० अर्थ०]। दण्डनीति अलब्ध को प्राप्त करे, प्राप्त की रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे, बड़े ऐश्वर्य को तीर्थों अर्थात् अधीन सेवकों में प्रदान करे।

स शेवृ॑धमधि॑ धा द्युम्नम॒स्मे महि॑ क्ष॒त्रं ज॑ना॒षाळि॑न्द्र॒ तव्य॑म्।
रक्षा॑ च नो म॒घोनः॑ पा॒हि सू॒रीन् रा॒ये च॑ नः स्वप॒त्या इ॒षे धाः॥११॥८॥

भा०—हे राजन्! वह तू समस्त जनों को अपने वश करने में समर्थ होकर शान्ति और सुख को बढ़ाने वाले ऐश्वर्य को और बड़े भारी बल-शाली क्षत्रिय बल को हमारी रक्षा के लिए खूब अधिक मात्रा में रख और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए और उत्तम, गुणशाली पुत्रों को भरण पोषण करने वाले अन्न की वृद्धि और रक्षा के लिए हममें से ऐश्वर्य-वान् विद्वान् पुरुषों की भी रक्षा कर, नियुक्त कर और पालन कर। इत्यष्टादशो वर्गः।

[५५]

सव्य आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः जगती। २, ५—७ निचृत्। ३, ८ विराट्। अष्टर्चं सूक्तम्॥

दि॒वश्चि॑दस्य वरि॒मा वि प॑प्रथ॒ इन्द्रं॒ न म॒ह्ना पृ॑थि॒वी च॒न प्रति॑।
भी॒मस्तुवि॑ष्माञ्चर्ष॒णिभ्य॑ आत॒पः शिशी॑ते॒ वज्रं॒ तेज॑से॒ न वंस॑गः॥१॥

भा०—जिस प्रकार इस सूर्य की वरिमा, श्रेष्ठ गुण या तेज या बड़प्पन आकाश के भी पार तक विविध दिशाओं में फैल जाता है।

और सूर्य के अपने महान् वैभव से पृथिवी भी बराबरी नही करती। ठीक उसी प्रकार उस राजा के श्रेष्ठ गुण प्रकाशमान सूर्य या विस्तृत आकाश एवं बडी विद्वद्-राज-सभा से भी अधिक विशेष रूप से विस्तृत हो। और समस्त पृथिवी वासी प्रजा अपने बड़े बल से भी शत्रु नाशक राजा का प्रतिपक्षी न हो। वह राजा अति भयानक बलशाली होकर समस्त मनुष्यो के हित के लिये सूर्य के समान तेज से शत्रु को सताप देने वाला होकर बलीवर्द जिस प्रकार भोग्य गोगण पर जाता है उसी प्रकार वह भूमियो का भोग करे। और उत्तम भोग्य अन्नो को प्राप्त कराने वाला मेघ जिस प्रकार भूमियो पर वर्षा करता है उसी प्रकार प्रजाओ को भोग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करने हारा हो। सूर्य जिस प्रकार प्रकाश करने के लिये अपने अन्धकार-वारक किरण समूह को तीव्र करता है और मेघ जिस प्रकार प्रकाश के लिये विद्युत् को तीक्ष्ण करता है, उसी प्रकार राजा भी अपने और पराक्रम और प्रभाव की वृद्धि करने के लिये अपने शस्त्रास्त्र बल को सदा तीक्ष्ण, सदा तैयार और अति वेगवान् उग्र, बलवान् बनाये रक्खे।

परमेश्वर पक्ष मे—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य आकाश से भी दूर तक फैला है। पृथिवी उस की समानता नही करती। वह सर्व शक्तिमान् प्रजा के हित के लिये दुष्टों का संतापक है। वह तेज के प्रसार के लिये अन्धकार के नाशक सूर्य आदि पदार्थ को तीक्ष्ण बनाता है।

सो अ॒र्ण॒वो न न॒द्य॑: समु॒द्रिय॒: प्रति॑ गृभ्णाति॒ विश्रि॑ता॒ वरी॑मभिः।
इन्द्र॒: सोम॑स्य पी॒तये॑ वृषायते स॒नात्स यु॒ध्म ओज॑सा पनस्यते ॥२॥

भा०—जिस प्रकार समुद्र नदियो को अपने भीतर ले लेता है, उसी प्रकार सूर्य भी अव्यक्त शब्द करने वाले, गर्जनाशील, विविध प्रकारों और रूपों मे स्थित जलों को नाना रोकने वाले कारणो या किरणो द्वारा अथवा अति अधिक शक्ति वाले किरणो से ले लेता है। वही समुद्र अर्थात् महान् आकाश या अन्तरिक्ष प्रदेश मे उत्पन्न सूर्य जल को अपने

किरणों द्वारा पान कर लेने के कारण ही बाद में वर्षा करने वाले मेघ के समान, मेघ का रूप होकर बरसता है। मानो सूर्य ही मेघ रूप में बदल जाता है। वह सदा से ही प्रहार करने वाला विद्युत् होकर अपने पराक्रम या बलकर्म से नाना व्यापार अर्थात् वर्षण, गर्जन, विद्युत् आदि के कार्य करता है। ठीक उसी प्रकार यह राजा समुद्र से उत्पन्न रत्न के समान उज्वल होकर भी जिस प्रकार सागर अपने भीतर जल से भरी पूर्ण नदियों को ले लेता है उसी प्रकार वह गर्जना करने हारी सेनाओं तथा समृद्धिशाली उन उन नाना प्रजाओं को भी ले लेता है, अपने वश कर लेता है, जो नाना रक्षा साधनो और बड़े बड़े सामर्थ्यों से विविध उपायों, स्वार्थों तथा विविध देशो, दिशाओ और कार्यों मे आश्रय पा रही हैं। ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, ऐश्वर्य के भोग, राष्ट्र के पालन और ओषधि आदि रस पान के लिए वर्षणकारी मेघ या सूर्य के समान आचरण करे और सदा वह अपने पराक्रम से, शत्रुओं पर प्रहार करने हारे योद्धा के समान सदा सन्नद्ध होकर स्तुति का पात्र हो, अथवा राज्य के समस्त व्यवहार करे।

त्वं तमि॑न्द्र॒ पर्व॑तं॒ न भोज॑से म॒हो नृ॒म्णस्य॒ धर्म॑णामिरज्यसि।
प्र वी॒र्ये॑ण दे॒वताति॑ चेकिते॒ विश्व॑स्मा उ॒ग्रः कर्म॑णे पु॒रोहि॑तः ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! जिस प्रकार मेघ को सूर्य, विद्युत् या वायु समस्त प्रजाओं के पालन के लिये आघात करता, छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त अथवा पर्वत के समान अभेद्य दृढ़ शत्रु को भी तू प्रजाओं के पालन और ऐश्वर्य भोग के लिये आघात करता है। और तब तू बड़े भारी मनुष्यों को वश करने में समर्थ, उनके मनों को हरने वाले ऐश्वर्य के धारण करने वाले, बड़े २ धनाढ्य पुरुषों के बीच में भी ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। वीर्य या वीरोचित प्रताप या विविध प्रकार से शत्रु को उखाड़ फेंकने के बल से तू समस्त दानशील स्वामियों और विजय करने वाले सेनाजनों में से भी

सबसे बढ़ कर जाना जाता या स्वयं जानता है। तभी तू सब कर्मों के लिये, बड़ा प्रबल, भयकारी, आगे स्थापित साक्षी, द्रष्टा, निरीक्षक, शासक के रूप में स्थापित हो। अथवा तू पर्वत या मेघ के समान शत्रु राजा को भी अपने भोग के लिये आघात न कर, प्रत्युत प्रजा के सुख के लिये उसे दण्डित कर।

स इद्वने॑ नम॒स्युभि॑र्वचस्यते॒ चारु॒ जने॑षु प्रब्रु॒वा॒ण इ॑न्द्रि॒यम्।
वृषा॒ छन्दु॑र्भवति हर्य॒तो वृषा॒ क्षेमे॑ण॒ धेना॑म् म॒घवा॒ यदिन्व॑ति ॥४॥

भा०—जिस प्रकार नमस्कार करने वाले, विनयशील विद्यार्थियों के समान भक्तजनों द्वारा परमेश्वर अरण्य में, एकान्त में स्तुति किया जाता है और वह जनों और जन्तुओं में अति उत्तम उपभोग योग्य ऐश्वर्य और ज्ञान का आचार्य के समान उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र होता है, इसी प्रकार वह राजा ही भोगने और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के लिये उसके प्रति झुक २ कर आदर करने वाले विनीत सेवकों द्वारा उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करे। और वह सर्वसाधारण जनों पर उत्तम भोग्य, ऐश्वर्य, राज्य समृद्धि को प्राप्त करने का उनको उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र हो। जब भी राजा सब प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारा, दानशील, मेघ के समान उदार या महा वृषभ जिस प्रकार गौ को प्राप्त करता है उसी प्रकार वह समस्त रसों के पान कराने वाली आज्ञापक वाणी और भूमि को या प्रजा की स्तुति को प्राप्त करता है, तब वह वर्षक मेघ के समान उदार प्रजा का मनोरंजक और प्रजा के कुशल क्षेम, परम हित करने से भी सबके मनो के हरण करने वाला प्रजा के रक्षण द्वारा ही प्रजाओं के मन हरने वाला, एवं स्वयं स्वतन्त्र मुख्य हो जाता है।

स इन्म॒हानि॑ समि॒थानि॑ म॒ज्मना॑ कृ॒णोति॑ यु॒ध्म ओज॑सा॒ जने॑भ्यः।
अधा॑ च॒न श्रद्द॑धति॒ त्विषी॑मत॒ इन्द्रा॑य॒ वज्रं॑ नि॒घनि॑घ्नते व॒धम् ॥५॥

भा०—वह राजा या सेनापति ही राष्ट्र कार्य में बाधा उत्पन्न करने

वाले कष्टकों को शोधन करने में समर्थ, सैन्यबल में और बड़े पराक्रम, उत्साह और साहस से शत्रु पर प्रहार करने में समर्थ, योद्धा होकर प्रजाजनों के हित के लिये बड़े २ संग्राम करता है। और शत्रुओं के वारण करने वाले उनको आघात करने वाले शस्त्र तथा बध, अगच्छेदन आदि दण्ड का भी प्रयोग करता है। तभी कान्तिमान्, सूर्य के समान तेजस्वी उस शत्रुहन्ता राजा के ऊपर भी लोग श्रद्धा करते हैं और विश्वास करते हैं। अर्थात् राष्ट्र की शासन-व्यवस्था के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के कण्टकों के शोधन करने वाले विजयी राजा पर ही प्रजाजन को अपने जान, माल की रक्षा का विश्वास जमता है। दूसरे, वह यह सब दमन का कार्य भी अपने स्वार्थ से न करे।

विद्वान् ज्ञानी पक्ष में—अज्ञान और मलों का शोधन करने वाले ज्ञान बल और तप से लोगों के हित के लिये योद्धा वीर के समान बड़े बड़े विज्ञानों को सम्पादित करे। अज्ञान-नाशक ज्ञान रूप अस्त्र का सदा प्रयोग करे, तभी उस तेजस्वी आचार्य पर लोग श्रद्धा और विश्वास करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्। ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥९॥

भा०—वह निश्चय से यश प्राप्त करने की इच्छा से नाना प्रकार के शिल्पों द्वारा बनाये जाने वाले आश्रय गृह, दुर्ग, उपवन, रथ आदि बनवावे। और वह अन्न सम्पदा को प्राप्त करने की इच्छा से कृत्रिम, नये २ जलों, जलाशय, सेतु और नहरों को बनवावे। और भूमि सम्पत्ति और जनपद-वासी प्रजा के द्वारा बढ़ता हुआ और पराक्रम से शत्रुओं के बनाये गृहों, आश्रय स्थान, दुर्ग और जलाशय, सेतु, बन्ध आदि पदार्थों को विनाश करता रहे। जिस प्रकार वायु अपने प्रबल झोकों से आकाश में प्रकाशमान पिण्ड, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आदि को मेघ आदि के आवरण से रहित कर देता और आकाश को स्वच्छ कर देता है उसी

प्रकार राजा भी राज्य मे चोरो से रहित और भेड़िया, सिंह, बिलाव आदि रात्रिचारी प्राणियों के भय से रहित प्रकाश के साधन, बड़े २ लैम्पों, ज्योति-स्तम्भों को नगरो और मार्गों मे करता रहे। जिस प्रकार यज्ञ करने वाले के लिये मेघ या सूर्य नीचे बहने के लिये जलों को नीचे बहाता है। उसी प्रकार राजा भी शिल्प या एञ्जिनीयरी के कार्यों के करने में कुशल होकर, राष्ट्र मे बहने और एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिये जलो, नहरों और जल-मार्गों को बनावे॥ विद्वान् पुरुष भी ज्ञान की कामना करके कृत्रिम गृहो को बना कर भूमि या गृह, कलत्र आदि से सन्तानों को बढ़ाता हुआ, पराक्रम से अपने विरोधियो को नाश करता हुआ, छलादि रहित ज्ञान-प्रकाशो को प्रकट करता हुआ उत्तम ज्ञानवान्, कर्मनिष्ठ होकर लोक यात्रा के लिये उत्तम कर्मों को करे और ज्ञानों को प्रदान करे।

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ७

भा०—हे ऐश्वर्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और अभिषिक्त राज्यपद के रक्षक राजन्! विद्वन्! तेरा मन सदा ज्ञान देने के लिए हो और तेरा मन अर्थात् स्तम्भन बल, पराक्रम शत्रुओं के खण्डन, विनाश के लिए हो। हे स्तुति और अभिवादन को प्रेम और आदर से श्रवण करने हारे! तू अपने दोनों अश्वों को आगे, अपने अधीन चलने हारा कर। हे राजन्! जो नियन्त्रण करने मे कुशल, रथियों के साथ बैठने वाले सारथी लोग और उनके समान सहयोगी नियम व्यवस्था के अधिकारी हैं, वे ज्ञान वाले और प्रजा के पालन पोषण करने वाले होकर तुझ को विनाश न करें। प्रत्युत सारथियों के समान वे भी राष्ट्र और राजा रूप मुख्य स्वामी की रक्षा करें।

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८॥२०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः राजन् ! सेनापते ! सभाध्यक्ष तू अपने हाथों मे, अपने अधीन अक्षय ऐश्वर्य को धारण कर। और खूब प्रसिद्ध, यशस्वी, कीर्तिमान् होकर अपने शरीर मे तथा अपने विस्तृत राष्ट्र में शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाले, अदम्य बल को धारण कर। तेरे शरीरो के समान सुदृढ़ राज्यतन्त्रों मे बहुत से क्रियाशील पुरुष तथा कर्मवान् और प्रज्ञावान् पुरुष भी ऐसे हों जो रक्षाकारी, ज्ञानी पुरुषो या जल से पूर्ण जीवनप्रद कूपो या छिपे खजानो के समान कर्म कर, अधीनस्थ, कर्म कुशल पुरुषो से घिरे हुए, सुरक्षित रहे। इति विंशो वर्गः॥

[५६]

सव्य आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृज्जगती । २ जगती विराड् जगती । ५ त्रिष्टुप् । ६ भुरिक त्रिष्टुप् ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥१॥

भा०—अश्व जिस प्रकार घोडी को प्राप्त हो, अथवा जिस प्रकार स्वयवर मे बल, शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा मे सबसे अधिक बढ़ जाने वाला पुरुष ही भरण-पोषण करने हारा पति होकर स्वयवरा कन्या को विवाह लेता है उसी प्रकार राष्ट्र को धारण पोषण करने मे समर्थ बल-शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा मे सबसे अधिक बढ़ जाने हारा यह वीर राजा भी उस राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ, अग्रगण्य पात्रों मे रखी, भरी पूरी, योग्य सम्पदाओं के समान सेनाओं मे आज्ञा पर चलने वाली, सर्वश्रेष्ठ अग्रगण्य, बल में परिपूर्ण सेनाओं को अपने अधीन करके उन पर शासन कर नियम में चलाता है। और वह बहुत अधिक दीप्ति के साथ तीव्र बाण आदि अस्त्रों को फेंकने मे समर्थ अश्वो द्वारा जोते जाने वाले लोह के बने रथ या तोप को प्रयोग करके बडे भारी विजय कार्य करने के लिए बल या क्रिया-सामर्थ्य को सुरक्षित रखता है।

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२॥

भा०—उद्यमशील या उपदेशो से युक्त, लज्जा से विनीत और हृदय से पति को चाहने वाली, शुभ नासिका वाली सुन्दर स्त्रिया जिस प्रकार पति को प्राप्त होती है। और जिस प्रकार उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाले धनाभिमानी पुरुष परदेश में जाने के लिए समुद्र का आश्रय लेते हैं, अथवा अपने मार्गों पर चलते समय पृथक् पृथक् बंटे हुए मार्गों को स्वीकार करने वाली नदियां जैसे समुद्र को प्राप्त होती हैं और विद्वान् पुरुष जिस प्रकार पर्वत के समान अचल और ज्ञानोपदेश के करने वाले मेघ के समान अचल ज्ञानवर्ती गुरु को ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त होकर प्राप्त होते हैं, और कामनाशील स्त्रियां जिस प्रकार विवाह के अवसर पर बड़े साहस से शिलाखण्ड पर पैर रख देती हैं उसी प्रकार स्तुतिशील आदर से झुकने और अपने स्वामी को चाहने वाली तथा अपने नायक पति द्वारा प्रेरित होना चाहने योग्य बहुतसी, एव बहुत से देशो में बसने वाली प्रजाए अथवा आगे आगे बढ़ने वाली सेनाएं, ज्ञान और बल के और संग्राम और ऐश्वर्य के पालक शत्रुविजयी बलवान् पुरुष को प्राप्त कर अपने तेज से उस पर आरूढ़ हों, उस पर आश्रय करें। कामनायुक्त स्त्री के विवाहकाल मे शिलाखण्ड पर पैर रखना भी पर्वत के समान अचल पति पर आश्रय लेकर स्वयं अचल होने की प्रतिज्ञा लेने के भाव को दर्शाता है। उसी प्रकार प्रजागण और सेनागण युद्ध मे एक साथ प्रयाण करने में भी अपने स्वामी राजा पर आश्रय ले, अपने यत्न से उसके आश्रय में स्थिर बनी रहे।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

भा०—वह वीर पुरुष शीघ्र सुखजनक, एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने और सभी जन को शीघ्र सुखी करने वाला, अथवा शत्रुओं को शीघ्र नाश

करने वाला, गुणों से महान्, आदर योग्य, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला, स्वतः बलों मे पूर्ण, दुष्टों को अपने अधीन रखने मे समर्थ और उनके वश मे न आने वाला विज्ञान से युक्त अथवा कवच और शस्त्रास्त्र से युक्त, प्रबल और सुरक्षित है, जो पौरुष कर्म और पुरुषत्व के योग्य यौवनकाल मे सब दुःखों और विरोधियों का नाशक निर्दोष अवध्य बल है, जिस बल से वह स्वयं मेघ से गिरने वाली अति तीव्र वृष्टि या विद्युत् के समान प्रतापशाली या पर्वत के समान ऊंचे शिखर के समान चमकता है, उस बलवान् नाना प्रज्ञाओं से युक्त पुरुष को हे पतिवरे कन्ये ! तू दृढ़ता से बांधने वाले गृहस्थ बन्धन मे अच्छी प्रकार बाध ले। और वह तुझे सब प्रकार की विभूतियो, ऐश्वर्यों और भूमियो मे या देशों में हर्ष मे अति प्रसन्न रक्खे। अथवा उसका दुःखनाशक, सबको सुभूषित करने वाला आनन्दप्रद बल है जिससे तू उसे गृहस्थ बन्धन मे बांधे और वह तुझे बांधे।

सेनापति के पक्ष मे—वीर सेनापति जिस बल से मायावी बलवान् शत्रु को बन्धन मे, कारागार मे डाले।

दे॒वी यदि॒ तवि॑षी॒ त्वावृ॑धो॒तय॒ इन्द्रं॒ सिष॑क्त्यु॒षसं॒ न सूर्यः॑।
यो धृ॒ष्णुना॒ शव॑सा॒ बाध॑ते॒ तम॒ इय॑र्ति रे॒णुं बृ॒हद॑र्हरि॒ष्वणिः॑ ॥४॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! यदि बलवती सेना तुझे अपने बलवीर्य और पराक्रम मे बढाने वाली और विजय की कामना करने हारी होकर कामनायुक्त, बलवती महिला के समान ऐश्वर्यवान् अपने पति को प्राप्त होती है, पति या स्वामी का आश्रय लेती है तब जो वीर पुरुष शत्रुओं को पराजित करने वाले, प्रबल बल से सूर्य जिस प्रकार अन्धकार को नाश करता है उसी प्रकार शत्रुबल को नाश करता है और जो पूज्य और शत्रुओं का विवेक करने हारा अथवा वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने या गुआ देने वाला होकर बडे उद्योग से उत्तम रजोरेणु के समान गुणवती तुझको प्राप्त हो। सूर्य जिस प्रकार उषा के

पीछे पीछे अनुगमन करता है उसी प्रकार अपनी सेना के पीछे २ चलता है और उसी प्रकार वह स्वामी भी अपनी स्त्री का अनुगमन करे ।

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार जो सबको अपने अधीन रखने हारा सूर्य दिशाओं मे अपने प्रकाश और आकर्षण द्वारा अविनाशी, अपने स्थान से न डिगने वाले समस्त चराचर के आश्रय रूप पृथिवी आदि लोक को भी अधर आकाश मे स्थापित करता है और जो सूर्य सबके हर्षकारी सुखों और जल वर्षाने वाले अन्तरिक्ष मे हर्षों के जनक, वृष्टि, विद्युत् आदि कार्यों को उत्पन्न करता हुआ जलो को रोकने वाले मेघ को आघात करता है और जल को नीचे गिरा देता है । इसी प्रकार सब शत्रुओ को अपने अधीन करने मे समर्थ सेनापति राष्ट्र के धारण करने वाले आश्रय-रूप बडे भारी लोकसमूह या राजगण को समस्त दिशा मे अपने अधीन स्थापित करता है और यही शत्रुनाशक राजा सुखपूर्वक आनन्द के अव-सर मे प्रजाजनों को हर्षित करने वाले न्याय, शासन आदि कार्यों को करता हुआ जल के सागर रूप मेघ को सूर्य के समान शत्रु के अपार सैन्यबल को भी मार गिराता है ।

गृहस्थ पक्ष मे—इसी प्रकार सन्तान के वृद्धिजनक, अखण्ड आश्रय-रूप वीर्य को ज्ञान प्रकाशरूप मस्तक या ज्ञानोपयोगी इन्द्रियों में पूर्ण वश करे । स्वामी हर्ष के सुखप्रद अवसर में पत्नी के प्रसन्नकारक कर्मों को करता हुआ जलो को भूमि पर मेघ के समान गृहस्थोचित पुत्रोत्पादन आदि नाना सुख रूप जलों का वर्षण करे ।

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्या रुजः ॥६॥२१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभाध्यक्ष ! जिस प्रकार सूर्य या मेघ पृथिवी के नाना प्रदेशों में अपने बल से आकाश से जल प्रदान कर

है उसी प्रकार तू महान् शक्तिशाली होकर अपने पराक्रम से पृथिवी के प्रजाओं के रहने, बसने योग्य गृहों और नगरों में उत्तम प्रकाश और ज्ञान वाले विद्वज्जनों से सब प्रजा को धारण करने वाले ज्ञान तथा न्याय व्यवस्थापन को धारण करता है। और तू अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्याधिकार के हर्ष और उत्साह मे आप्त प्रजाजनों को प्राप्त कर। और समयानुसार, बीच बीच में यथावसर शत्रुगणों के पीस डालने या चकनाचूर कर देने के उपाय से बढ़ते हुए शत्रु को, विद्युत् या वायु जिस प्रकार मेघ को समय समय पर आघात करता है उसी प्रकार विविध उपायों से आघात कर और शत्रु के बल को तोड़। इत्येकविंशो वर्गः॥

[५७]

सव्य आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—जगती (३ विराट। ६ निचृत्) ५ भुरिक्, व्यूहेन स्वराट् त्रिष्टुप् विराट् जगती वा। षड्च सूक्तम्॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम्॥१॥

भा०—नीचे प्रदेश मे वेग से आते हुए जलों के वेग को जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, उसी प्रकार अपने आगे विनय से रहने वाले भृत्य आदि जनों को प्राप्त होने वाला जिस वीर, सभा और सेना आदि के अधिपति राजा का समस्त आयु भर बल की वृद्धि के लिये खुला हुआ, बेरोक बहाता हुआ धनैश्वर्य का प्रवाह भी ऐसा प्रबल हो, जिसको प्रतिपक्षी शत्रु रोक न सके। ऐसे बड़े भारी दानशील, गुणों में महान्, बड़े भारी वेग वाले, सत्य के बल वाले, अथवा सज्जनों के उपकार के लिये बल का प्रयोग करने वाले, बलवान् पुरुष के लिये मैं ज्ञान, स्तुति और अधिकार प्रदान करूं।

अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः॥२॥

भा०—जिस प्रकार जल-प्रवाह नीचे स्थानों पर आप से आप बहे आते हैं उसी प्रकार उत्तम, ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष के ज्ञान और ऐश्वर्यों के वश मे अपनी उत्तम कामनाओ को पूर्ण करने के लिये समस्त जगत् रहे। और सूर्य को अन्धकार का नाश करने वाला ज्योतिर्मय, प्रकाश रूप वज्र जिस प्रकार अति कान्तियुक्त होकर मेघ में व्यापता और उसको छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर सेनापति का ऐश्वर्यमय और लोह आदि धातु का बना शस्त्रास्त्र बल अति वेगवान्, दर्शनीय, अद्भुत, पर्वत के समान अचल और मेघ के समान अस्त्रवर्षी शत्रु पर भी अच्छी प्रकार व्यापे, उस पर वश करे और उसका हनन करके उसे शिथिल करने वाला हो।

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

भा०—जो शोभा युक्त प्रकाश के करने में प्रभात वेला के समान होकर शोभायुक्त, सुखजनक, उत्तम हिंसा रहित प्रजापालन के कार्य में सूर्य के समान, शत्रु और दुष्ट पुरुषो के असत्य व्यवहार छल, कपट आदि को दूर करने हारा है और जिसका तेज और धारण सामर्थ्य, ख्याति और शत्रुओं को नमाने वाला बल, ऐश्वर्य और राजपद, प्रकाश, न्याय और विज्ञान भी दिशाओं के समान उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है उस बलों के लिये अति भयकर, अति स्तुति योग्य एवं उत्तम कार्यकुशल पुरुष के लिये आदर पूर्वक भरण पोषण कर।

इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४॥

भा०—हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति किये जाने हारे! हे सबके स्वामिन्! और सबको वास और आश्रय देने हारे! जो हम लोग तेरा आश्रय लेकर और प्रथम मंगलरूप से तेरा नाम लेकर सब कार्य, धर्मानुष्ठान आदि करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! वे ये हम सब तेरे ही हैं। जिस

और सब प्रकार से ईश्वर की उपासना करता और नाना ऐश्वर्यों का सेवन करता है।

(२) अग्रणी, राजा के पक्ष में—वह बल से प्रसिद्ध, कभी न मारे जाने वाला, समस्त अधिकारों और ऐश्वर्यों का देनें और लेने वाला, विविध ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र का सेवक, प्रतिनिधि, दूत होता और शत्रुओ को पीड़ित करता है। (३) अथवा नाना तेजो से युक्त सूर्य का प्रतिनिधि अर्थात् सूर्य जिस प्रकार तापकारी और पुनः वर्षा जल का देने वाला है उसी प्रकार प्रजा को कर से पीड़ित कर ऐश्वर्य के लेने और पुनः उन पर सुखों का वर्षाने वाला हो। वर अति उत्तम मार्गों से समस्त लोकों या देशों को विविध परिमाण मे, प्रान्तों में विभक्त करे और विद्वानों के बीच में अपनी आज्ञा से या अन्न द्वारा समस्त जनों की सेवा करता हुआ उनका पालन करे। (४) परमेश्वर भी सर्वशक्तिमान् प्रसिद्ध होने से 'सद्योजाः', अमर होने से 'अमृत', दुष्टों का तापकारी होने से दूत होकर सूर्य के समान तेजस्वी है। वह दुष्टों को पीड़ित करता है, उत्तम मार्गों और व्यवस्थाओं से लोकों को बनाता और चलाता है। वह समस्त दिव्य पदार्थों मे अपने आदान अर्थात् वशकारी सामर्थ्य से सब प्रकार आच्छादित करता, व्यापता है।

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्॥२॥

भा०—अपने भोग्य कर्मफल को भोग्य अन्न के समान प्राप्त करता हुआ, जरा से रहित आत्मा शीघ्र ही काष्ठों के बीच अग्नि जिस प्रकार उनका भोग करता हुआ भी उनके ही आश्रय मे रहता है, उसी प्रकार व्यापक, आकाश, पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही और शीघ्र ही पिपासित के समान उन ही पदार्थों का भोग करता हुआ उनके ही बीच में रहता है और जिस प्रकार वेगवान् अश्व मार्ग को पार करता अच्छा मालूम होता है और जिस प्रकार अति अधिक दाहकारी अग्नि का ऊपर

का भाग अति उज्वल होता है उसी प्रकार अति तेजस्वी, सब पापों को भस्म कर देने हारे इस जीवात्मा का आनन्द सेवन करने वाला स्वरूप भी बहुत ही प्रिय प्रतीत होता है। आकाश में स्थित मेघ के खण्ड के समान वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करने वाला जीव भी गर्जते मेघ के समान ही अन्तर्नाद करता है।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार वसु और रुद्र नामक ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुषों द्वारा वरा जाकर, पुरोहित हो, उसी प्रकार प्राणों द्वारा और देह में और ब्रह्माण्ड में वास के आश्रय पृथिवी आदि तत्वों द्वारा सबसे प्रथम अपने भीतर धारण किया जाकर समस्त ग्राह्य, भोग्य रूप आदि विषयों का ग्रहण करने हारा है और कभी मृत्यु द्वारा भी विनाश न होकर, स्थिर रह कर बल और वीर्य, रयि अर्थात् दैहिक विभूतियों को अपने वश करता है। वही जीव एक देह से दूसरे देह में जाने वाला और अपने को प्रिय लगने वाला, रस स्वरूप या स्वतः आनन्दमद प्रजाओं में रथी के समान सब कार्यों को सहज ही में साधता हुआ बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि आयु की नाना दशाओं में अनुकूल या निरन्तर, एक समान परिवर्तन रहित रह कर सुखप्रद, स्वयं द्रष्टा होकर नाना वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं विविध उपायों से प्राप्त करता और भोगता है।

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

भा०—वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जिस प्रकार तृणों और काष्ठों में विविध रूप से फैलता है उसी प्रकार यह आत्मा भी प्राणों द्वारा वेगवान्, गतिमान् पृथिवी, वायु, जल आदि तत्वों में भी विविध देहों को धार कर विविध रूपों में स्थित है और जिस प्रकार ज्वालाओं द्वारा और अपने वेग से गमन करने की शक्ति से अग्नि चटचटा आदि बहुत प्रकार

स्तुति करने योग्य, वीर्य स्वरूप जान कर तुझे धारण करते हैं और सब को सुख और विविध ऐश्वर्य के देने वाले, अतिथि के समान देह रूप गृह में अकस्मात् आने और चले जाने वाले, अथवा देह से देहान्तर में जाने वाले वा अतिथि के समान पूजा और आदर के योग्य, सबसे अधिक वरण करने योग्य, अत्यन्त प्रिय और मित्र के समान सुखकारी, तुझको दिव्य, तेजोमय, सात्विक जन्म लेने के लिये अथवा ज्ञान प्रकाश से युक्त जन्म ग्रहण करने के लिये तुझे धारण करते हैं।

वीर सेनापति के पक्ष में—जनपदों के हितार्थ शत्रुओं को भून देने वाले प्रतापी वीर जन भी उत्तम सुखदाता, स्तुति योग्य तेरी खजाने के समान रक्षा करते हैं। वेतन, अन्न, पदाधिकार के दाता, पूज्य, सर्वश्रेष्ठ मित्र के समान तेरे दिव्य रूप से प्रादुर्भाव अर्थात् राज्यारोहणादि के लिये तुझे स्थापित करते हैं।

होतारं सप्त जुह्वो॒३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥

भा०—यज्ञों में जिस प्रकार सात ऋत्विक्, आहुति देने हारे, ज्ञानवान्, यज्ञ को सबसे उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को होता रूप से वरण करते हैं। उसी प्रकार हिंसा रहित प्राणों द्वारा शरीर के पालन आदि कार्यों में गन्धादि विषयों को ग्रहण करने वाले सातों प्राण विद्वान् ऋत्विजों के समान गतिमान् होकर जिस सबसे उत्तम, बल देने वाले आत्मा को ही अपने होता, मुख्य बलों, सुखों के दाता रूप से वरण करते हैं उसको प्रमुख कर उसके अधीन रहते हैं मैं उसी अग्नि के समान देह में अव्यक्त रूप से रहने वाले समस्त प्राणियों के बीच में विद्यमान, उस जीवात्मा को प्रकाश स्वरूप जान कर उसका नित्य अभ्यास करूँ और उसी परम रमणीय, परम सुन्दर, मनोमोहक एवं अति सुखप्रद आत्मा को प्राप्त होऊँ और रमण योग्य सुख की प्रार्थना करूँ।

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे बल के उत्पन्न करने हारे या विद्यादि से उत्पन्न होने वाले, हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! और हे स्नेहवान् पुरुषो के आदर करने हारे ! आज के समान सदा, सत्य गुणो के वर्णन करने वाले विद्वानो को तू त्रुटिरहित, कभी विच्छिन्न न होने वाले सुख को प्रदान कर । हे अग्नि के समान विद्या के प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे विद्वन् ! आत्मन् ! तू बल के कारण कभी भी शिष्ट मर्यादा से न गिरता हुआ, स्वयं दृढ़ रह कर स्तुति करने वाले को राजा जिस प्रकार लोह की बनी या शस्त्रों से सजी परकोटों से प्रजाजन की रक्षा करता है उसी प्रकार तू ज्ञान-साधनो से बनी पालन करने वाली साधनाओं से पाप और पाप से उत्पन्न हुए दुःख से रक्षा कर ।

राजा भी बल पराक्रम के कारण अभिषेक योग्य होने से 'सहसः सूनु' है । मित्र राजाओ के आदर करने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'मित्रमहः' है । वह स्तुतिकर्त्ता विद्वानों को त्रुटि रहित सुख दे । पराक्रम से कभी पछाड़ न खाने वाला होने से 'ऊर्जः नपात्' है । वह लोह के शस्त्रो से सुसज्जित पुरियों या पालनकारी सेनाओ से रक्षा के प्रार्थी प्रजाजन की रक्षा करे ।

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवंद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥२४॥

भा०—हे विशेष प्रभायुक्त, तेजस्विन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! आत्मन् ! स्तुति करने हारे पुरुष के लिये सब शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य के समान सब विघ्नों के दूर करने वाला और गृह के समान शरणप्रद हो । तू ऐश्वर्यवान्, विद्वानो और धनाढ्यों को भी सुख-शान्तिदायक हो । तू पाप और हत्या आदि पापाचरण करने हारे, दुष्ट पुरुष से भी हे ज्ञानवन् ! प्रतापिन् ! आचार्य ! ईश्वर ! राजन् ! स्तुतिशील

पुरुष की रक्षा कर। और प्रातःकाल ही ज्ञान और कर्म से हृदय में बसाने योग्य हे प्रभो! और ज्ञान और उत्तम कर्म न्यायाचरण से ऐश्वर्य प्राप्त करने हारा हे राजन्! बुद्धि और ज्ञान का धनी हे विद्वन्! और बुद्धि या मनोबल से प्राणों के स्वामिन्! या धारण करने वाली चिति रूप से देह में बसने हारा हे आत्मन्! तू शीघ्र ही हमें प्राप्त हो, दर्शन दे। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[५६]

नोधा गौतम ऋषिः॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ निचृत्। २, ४ विराट्। ३ पंक्ति। सप्तर्चं सूक्तम्॥

व॒या इद॑ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे विश्वे॑ अ॒मृता॑ मादयन्ते।
वैश्वा॑नर॒ नाभि॑रसि क्षिती॒नां स्थूणे॑व॒ जनाँ॑ उप॒मिद् य॑यन्थ॥१॥

भा०—हे सबको प्रकाशित करने हारे, सबके धारक परमेश्वर! तेरे से अतिरिक्त सब अग्नियें, सूर्य, नक्षत्र, अग्नि, विद्युत् आदि तथा ज्ञानी, आचार्य, विद्वान् जन भी तेरे शाखाओं के समान हैं। सब अविनाशी आकाश आदि पदार्थ और कभी मृत्यु को न प्राप्त होने वाले जीवगण तेरे आश्रय पर स्थिर होकर आनन्द अनुभव करते हैं। हे समस्त पदार्थों के संचालन करने हारे, सब जनों के हितकारी, सब में व्यापक! तू समस्त मनुष्यों और पृथिवी आदि तत्वों का भी आश्रय, सबका केन्द्र, सबको अपने भीतर नियम-व्यवस्था में बांधने हारा है, बीच का स्तम्भ जिस प्रकार समस्त गृह के अवयवों को थामे रहता है उसी प्रकार तू सबको आश्रय, सर्वज्ञ, सबको ज्ञानोपदेश करने वाला या सबका सञ्चालक होकर सब जनों और जन्तुओं को नियम में रखता है। इसी प्रकार हे राजन्! अन्य सब नायक तेरे अधीन, तेरे ही शाखा-प्रशाखा के समान हैं। सब जीव तेरे आधार पर प्रसन्न हों, तू सब भूमि वासियों का केन्द्र है। तू मुख्य आधार-स्तम्भ के समान सबको ऊपर उठाये रखने वाला, सबको नियम में रख।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥

भा०—वह सबका अग्रणी, सबका प्रकाशक परमेश्वर आकाश और सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का भी सूर्य के समान शिर, सबसे मुख्य, सबसे उच्च, सबका अधिष्ठाता है। वही पृथिवी के भी बीच मे केन्द्रवत् अग्नि या विद्युत् के समान उसको धारण करने वाला और भूमि और सूर्य प्रकाशित और अप्रकाशित दोनो प्रकार के लोको का स्वामी, उनको धारण करने हारा है। हे समस्त लोको के चलाने हारे! उस तुझ सबके दाता और प्रकाशक परमेश्वर को ही विद्वान् ज्ञानी पुरुष उत्तम गुण स्वभाव वाले पुरुषों के लिये सूर्य के समान ज्ञान-प्रकाश देने वाला प्रकट करते या साक्षात् करते हैं।

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य मे जिस प्रकार किरणें स्थिर रूप से हैं, उसी प्रकार समस्त विश्व के पदार्थों के सञ्चालक एवं समस्त नायकों और मनुष्यो के स्वामी सर्व-प्रकाशक, सबके आगे विद्यमान, सर्वज्ञ परमेश्वर मे, विद्युत् मे समस्त ऐश्वर्यों के समान समस्त जीवो के जीवनोपयोगी पृथिवी, जल आदि तत्व और अपने में प्रजाओ को बसाने वाले लोक गण और समस्त ऐश्वर्य स्थित है। जितने ऐश्वर्य पर्वतो मे, मेघो मे और ओषधियों मे और जलो मे और जितने ऐश्वर्य मनुष्यों मे विद्यमान हैं, हे परमेश्वर! तू उस सबका प्रकाशक, राजा या स्वामी है।

राजा के पक्ष मे—सूर्य मे किरणों के समान नायक राजा में सब ऐश्वर्य स्थापित हो। पर्वत, ओषधि, जल, समुद्र, मनुष्य सब मे स्थित रत्नों और धनो का वह राजा रक्षक है।

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीवैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥

भा०—माता और पिता दोनो जिस प्रकार अपने पुत्र के लिए बड़े उपकारक और उसकी वृद्धि करने वाले होते हैं, इसी प्रकार सूय और पृथिवी या आकाश और पृथिवी दोनों ही अपने उत्पादक परमेश्वर के लिए बडी विशाल होकर विद्यमान है। वे दोनों ही उस परमेश्वर की विशाल महिमा को बतलाते है। जिस प्रकार साधारण मनुष्य पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के लिए बड़ी स्तुतिया गाता है उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् चतुर, क्रियाकुशल पुरुष भी अनन्त सुख और आकाश और प्रकाश के स्वामी सत्य के बल से बलवान् अथवा समस्त सत् पदार्थों मे बल-रूप से विद्यमान, समस्त पदार्थों के संचालक, सबके हितकारी, नायक, गुरु, आचार्य, राजा आदि मे सबसे श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम के वर्णन और उपासना के लिए पूर्ण रूप से उसका वर्णन करने वाली बड़ी भारी, विशद अर्थों से युक्त वेदवाणियों का पाठ करे। उन वेद-वाणियो से परमेश्वर की स्तुति करे।

दि॒वश्चि॑त् ते बृह॒तो जा॑तवेदो॒ वैश्वा॑नर॒ प्र रि॑रिचे महि॒त्वम् ।
राजा॑ कृष्टी॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥ ५ ॥

भा०—हे समस्त लोकों के नेता ! समस्त मनुष्यों मे व्यापक ! हे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! वेदों को उत्पन्न करने, जानने और जनाने हारे ! समस्त उत्पन्न पदार्थों मे सत्ता और नियामक बल रूप से विद्यमान ! तेरा महान् सामर्थ्य बडे भारी सूर्यादि लोकों से मण्डित आकाश से भी बहुत अधिक बड़ा है। हे परमेश्वर ! तू मननशील प्रजाओं का भी राजा, स्वामी, उनमें ज्ञान-प्रकाश का करने हारा है और तू ही विद्वानों और विजय की कामना करने वाले वीरों को युद्ध या परस्पर प्रबल प्रहार करने के सामर्थ्य द्वारा उत्तम उत्तम धनैश्वर्य प्रदान करता है।

सभापति और सेनापति के पक्ष मे—हे विद्वन् ! सर्व-हितकारी नेतः ! तेरा महान् सामर्थ्य ज्ञानवान् विद्वानों से बनी राजसभा से भी बड़ा है। तू समस्त मनुष्यों और प्रजाओं का राजा है, तू युद्ध द्वारा ही दानशील

पुरुषो या विद्वानो को धन प्रदान करता है। अथवा विजयेच्छु वीर पुरुषो को युद्ध करने के हेतु ही धन. उनको भृति वेतन आदि देता है।

प्र नू म॑हि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ वोचं॒ यं पू॒रवो॑ वृत्र॒हणं॒ सच॑न्ते ।
वै॒श्वा॒न॒रो दस्यु॑म॒ग्निर्ज॑घ॒न्वाँ अधू॑नो॒त् काष्ठा॒ अव॒ शम्ब॑रं भेत् ॥६॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष मे—जिस विघ्नकारी, बाधक शत्रु के नाश करने हारे परमेश्वर का समस्त मनुष्य आश्रय लेते हैं। उस जलो के वर्षक, मेघ के समान सब सुखो के वर्षक और शकटवाही वृषभ के समान समस्त ब्रह्माण्ड के धारक परमेश्वर के बडे भारी सामर्थ्य का निरन्तर मै उपदेश करता हूँ। समस्त विश्व का प्रणेता, सब मनुष्यो का हितकारी, ज्ञान-स्वरूप, सबका प्रकाशक प्रभु प्रजापीड़क का नाश करे। जलो के प्रदान करने वाले मेघ को बिजुली के समान अज्ञान को नाश करता और समस्त दिशाओ को कँपा देता है। अथवा तेजस्वी, प्रकाशमान् सूर्यादि लोको और समस्त प्राणियो को संचालित करता है।

(२) अध्यात्म मे—इन्द्रियगण समस्त प्राणियो मे रहने वाला आत्मा अन्त.करण को ढकने वाले अज्ञान को, प्राणो को। (३) राजा के पक्ष मे—जिस पुरुष के नायक को शत्रुहन्ता जान कर मनुष्य प्रजाएं आश्रय कर लेती हैं उस नर-श्रेष्ठ के गुणो का मै उपदेश करता हूँ। वह सर्व लोक-हितकारी अग्रणी होकर प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुषो को दण्डित करे। प्रजा को घेरने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करे। दिशाओ के वासियो को भी प्रभाव से कंपाता रहे।

वै॒श्वा॒न॒रो म॑हि॒म्ना वि॒श्वकृ॑ष्टिर्भ॒रद्वा॑जेषु यज॒तो वि॒भावा॑ ।
शा॒त॒व॒ने॒ये श॒तिनी॑भिर॒ग्निः पु॑रुणी॒थे ज॑रते सू॒नृता॑वान् ॥७॥२५॥

भा०—परमेश्वर या राजा अपने महान् सामर्थ्य से सब मनुष्यो का हितकारी, सब का नेता, सचालक और समस्त मनुष्यादि प्रजाओं का स्वामी, भरण पोषण करने वाले और ज्ञानोपदेश करने वाले, सम्पन्न और विद्वान् पुरुषो मे भी सबका उपास्य, सबको दान देने वाला

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुपासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥

भा०—हृदय के प्रिय, मित्रगण प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, राष्ट्र में ऋतुओं के समान मुख्य पदो के अधिकारी, देह में प्राणो के समान प्रधान सभासद्, मननशील, उत्तम कोटि के ज्ञानवान्, सब प्रकार से तत्वो को पृथक् पृथक् करके देखने वाले, विवेचक और दीर्घायु पुरुष जिसको अधर्म, शत्रु और दुर्व्यसनो के वारण करने के अवसर या कर्त्तव्य पथ पर मुख्य रूप से बना देते है, नियुक्त कर देते है, उस सब दिशाओ मे उदय को प्राप्त होने वाले मधुरभाषी पुरुष को नई नई स्तुति या नई राज्य-लक्ष्मी या प्रजा प्राप्त हो और वह तू हमारे बीच उत्तम ख्यातिमान होकर उस नई राज्यलक्ष्मी को भोग करे। अर्थात् उगते हुए सूर्य के समान नव-पराक्रमी विजेता को नई उत्तम कीर्त्ति प्राप्त हो, वह कीर्त्तिमान् होकर नये राष्ट्र का भोग करे।

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—प्रजाओ को हृदय से चाहने वाला, कान्तिमान्, तेजस्वी, अग्नि के समान समस्त मलो, कण्टको और बाधक दुष्ट पुरुषो को दूर करने हारा, मनुष्यों के बीच मे सबको समान रूप से बसानेवाला, सबको वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है। वही समस्त ऐश्वर्यों और अधिकारो के स्वामी और प्रदान करने हारे के रूप मे प्रजाओं के ऊपर स्थापित किया जाय और वही सबको दमन करने वाला और स्वयं भी जितेन्द्रिय और अपने मन पर काबू करने वाला, गृहस्वामी के समान राष्ट्रवासी प्रजाओं को अपनी सन्तान के समान पालन करने वाला दीपक या तेजस्वी सूर्य के समान सबका अग्रणी हो। वही समस्त ऐश्वर्यों का पालक भी बनाया जावे।
इति षड्विंशो वर्गः ।

तं त्वा॑ व॒यं पति॑मग्ने रयी॒णां प्र शं॑सामो म॒तिभि॒र्गोत॑मासः ।
आ॒शुं न वा॑जम्भ॒रं म॒र्जय॑न्तः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात् ॥५॥२६॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! ऐश्वर्यों के पालक उस तेरी हम उत्तम स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष ज्ञानशील पुरुषो से मिलकर तुझे उत्तम वचनो का उपदेश करें और तेरी स्तुति करें। संग्राम मे अपने बलवान् स्वामी को ले जाने हारे अश्व को जिस प्रकार झाड़ पोंछकर, थपक थपक, सजा धजाकर तैयार करते हैं उसी प्रकार अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले, युद्ध मे जाने वाले या युद्ध के लिए नाना ऐश्वर्यों को धारण करने वाले और युद्धार्थ नाना सेनादलों को भरण-पोषण करने हारे तुझ राजा को परिशोधित और सुशोभित करते हुए और लोभ, काम आदि उपधाओ द्वारा परीक्षित या शोधित करते हुए हम तेरी प्रशंसा करें, तुझे उत्तम मानकर तेरे गुणो का वर्णन करें। और जिस प्रकार बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष अपने सब उत्तम कार्यों मे प्रातःकाल ही फुर्ती से लग जाता है उसी प्रकार प्रातःकाल ही, दिन प्रारम्भ होते ही, वह विद्वान्, ध्यानी पुरुष अति शीघ्र, सबसे प्रथम अपने धारणावती दृढ बुद्धियों और कर्म सामर्थ्यों से अपने भीतर बसने वाला, दृढ निश्चयी और उद्योगी होकर कार्य मे लग जावे। इति षड्विंशो वर्गः।

[६१]

नोधा गौतम ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ७, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ८, १०, १२ पंक्ति। ३, ५, १५ विराट् पंक्ति। ८, ११ भुरिक् पंक्ति। १३ निचृत् पंक्तिः। षोडशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒स्मा इदु॒ प्र त॒वसे॑ तु॒राय॒ प्रयो॒ न ह॑र्मि॒ स्तोमं॒ माहि॑नाय ।
ऋची॑षमा॒याध्रि॑गव॒ ओह॒मिन्द्रा॑य॒ ब्रह्मा॑णि रा॒तत॑मा ॥ १ ॥

भा०—अति आदर और स्नेह से दिये जाने योग्य अन्न और ज्ञान या अर्घ, पाद्य आदि जल जिस प्रकार योग्य उत्तम पुरुष को दिया जाता

निमित्त मैं वेद स्तुति समूह को उच्चारण करूं। उसी परमेश्वर के लिए मैं विश्वव्यापक, पापनाशक स्तवन करूं, वही सब ज्ञानों का दाता है।

अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा॒समञ्जे।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—रथ के संचालन के लिए जिस प्रकार वेगवान् घोड़े को लगाया जाता है उसी प्रकार इस परम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, राष्ट्र के पालक या सैनापत्य पद को अच्छी प्रकार संचालन करने के लिए अपनी वाणी या आज्ञा से स्तुति योग्य, अथवा सूर्य के समान तेजस्वी शत्रुओं को उखाड़ देने मे समर्थ, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् दान देने योग्य ऐश्वर्यों के एकमात्र आश्रय स्थान, गुरु के श्रवण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाले अथवा अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले या यशस्वी, शत्रुओं के प्रकोटो और मोर्चों, नगरो और दुर्गों के तोड़ने हारे पुरुष को प्रस्तुत करने के लिये अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि कामना से मै सबके सामने प्रकट करूं और उसे मुख्य पद पर स्थापित करूं।

परमेश्वर के पक्ष में—वह सर्व शक्तिमान्, ज्ञानो का एकाश्रय, ज्ञानोपदेशों का परम गुरु और देह-बन्धनों का तोड़ने हारा है। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से उसकी स्तुति के लिए वाणी से स्तुति का प्रकाश करूं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं॒रणाय।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६॥

भा०—इस ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्रपति के विजय के लिए ही शिल्पीगण सूर्य जिस प्रकार अपने तेजस्वी किरण समूह को प्रकट करता है उसी प्रकार उत्तम, अति अधिक क्रियासामर्थ्य से युक्त, अति वेगवान्, तीव्र, अति तापजनक, अग्निमय शत्रु वर्जन करने वाले ऐसे शस्त्रास्त्र समूह को गढ़ गढ़ कर बनावे, जिस हिंसाकारी, घात करते हुए, प्रयुक्त अस्त्र से शत्रुओं का नाश करता हुआ कितने ही शत्रु दलों को

थामने और कितने ही असंख्य बलों और शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, बलवान् सेनापति अपने बढ़ते हुए या वर्तमान शत्रु के मर्मों तक को पहुंच जाय और छिन्न-भिन्न करके विजय करले।

परमेश्वर के पक्ष में—वह तेजोमय प्रभु इस जीव के हित के लिए उपदेशमय, पापनिवारक ज्ञान वज्र का उपदेश करता है। जिससे वह बलवान् इन्द्रियों का स्वामी होकर बढ़ते अज्ञान के मर्मों का भी नाश करे।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥७॥

भा०—अपना मुख्य पदाधिकारी नियत करने वाले इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ही अभिषेकों या ऐश्वर्यों के आश्रय पर व्यापक अधिकार वाला होकर सेनापति और राष्ट्रपति शीघ्र ही पालन करने वाले राज्यपद को और उत्तम उत्तम अन्नों और योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करे। और वह शत्रुओं को परास्त करने में सबसे अधिक बलवान् होकर परिपक्व राष्ट्र के ऐश्वर्य को गाढ़ रूप से लेता हुआ बाणों के फेंकने में कुशल धनुर्धर जिस प्रकार शूकर को एक ही प्रहार से वेध देता है और सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार वह वीर सेनापति, शत्रुओं पर शस्त्रास्त्र प्रहार करने में चतुर होकर अपने उत्तम खाद्य के समान सुगमता से जीत लेने योग्य शत्रु को प्राप्त करके, पर्वत को वज्र के समान, अथवा पर्वत के समान अभेद्य शत्रु को भी वेध डाले अथवा अखण्ड शस्त्र का प्रहार करे।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार ऋतु-काल में गमन करने वाली, कमनीय पतियों की स्त्रियां अपने अपने ऐश्वर्य या सौभाग्यवान् पति की वृद्धि के लिये तेजस्वी पुत्र-सन्तति को बढ़ाती हैं और जिस प्रकार ज्ञान करने योग्य विद्वानों करके पालने योग्य वेद-वाणियां ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की महिमा को प्रकाश करने के लिये अर्चना योग्य स्तुति-सूक्त को प्रकट करती हैं उसी

होकर वेग से बहता हुआ उसे धारण किये रहता है उसी प्रकार सभा और सेना का अध्यक्ष भी अति शीघ्रकारी, विना विलम्ब के कार्य करने मे चतुर, शत्रु पर प्रहार करता हुआ, शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान्, कितने ही ऐश्वर्यों और बलो का धारण करने वाला, अथवा पराक्रम करते हुए समस्त राष्ट्र को धारण करने मे समर्थ होकर इस प्रत्यक्ष मे आगे खड़े, शक्ति और बल मे बढ़ते हुए शत्रु के विनाश के लिए तू शस्त्रास्त्रयुक्त सेना-बल का प्रयोग कर। सूर्य जिस प्रकार सूक्ष्म जलो के संयोग से जल-प्रवाहो को वहा देने के लिए अपने तिरछे प्रकाश और वेग से मेघ के अङ्ग अङ्ग को छिन्न भिन्न कर देता है। और तिरछी चाल से चर्मकार तिरछे शस्त्र से जिस प्रकार मृत पशु का जोड़ जोड़ काटता है और वक्ता जिह्वा आदि के तिरछे आघात से वाणी के प्रत्येक अङ्ग अङ्ग अर्थात् प्रत्येक वर्णो वा पर्वों को ज्ञानपूर्वक विभक्त करता है उसी प्रकार शत्रु की प्राप्त सेनाओं के प्रवाहों को भगा देने के लिए शत्रु बल के पोरु पोरु, अङ्ग-प्रत्यङ्ग को जानता हुआ विविध प्रकार से काट।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून्॥ १३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष! जो वीर पुरुष शत्रुओं का नाश करने वाले योद्धा के समान अभ्यास करने वाला नया ही शस्त्रो और अस्त्रो का अभ्यास करता हुआ संग्राम के विजय के लिए शत्रुओ के नाश का नित्य अभ्यास करे हे विद्वन्! तू उस अति शीघ्रकारी क्रियाकुशल पुरुष को पूर्व पुरुषों को आविष्कार किये हुए अथवा वर्तमान के शिष्यों की अपेक्षा पूर्व के शिक्षित और विद्याकुशल गुरुओ द्वारा रचे हुए युद्धोपयोगी कार्यों के प्रवचनों द्वारा अच्छी प्रकार उपदेश कर, शिखा। अर्थात् नव प्रविष्ट युद्ध-शिक्षाभ्यासियों को विद्वान् पुरुष पूर्व के आचार्यों द्वारा रचे कर्तव्यों और कर्मों की शिक्षा दें और वे तदनुसार शस्त्रास्त्रो का युद्ध मे शत्रुओं पर आक्रमण करने मे प्रवल होने के लिए ही पुनः पुनः अभ्यास करें।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४॥

भा०—जिस प्रकार दृढ़ पर्वत भी विद्युत् के उग्र बल से कांप जाते हैं उसी प्रकार इस अति कान्तिमान्, तेजस्वी, विद्वान् सेनापति के भय से दृढ़ पर्वत के समान अचल शत्रुगण भी कांपें और आकाश और भूमि तथा उनके समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा अन्य जन भी कांपे। तेजस्वी, विद्वान् आचार्य का अज्ञान को दूर करने वाला ज्ञानधारी और व्रतधारी शिष्य जिस प्रकार शीघ्र ही ब्रह्मचर्य, व्रतपालन और शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल वीर्य को प्राप्त करने मे समर्थ होता है उसी प्रकार उस तेजस्वी सभापति, सेनापति के दुःखनाशक रक्षण के अधीन रहकर उसके साथ मन्त्रणा करता हुआ नायको का धारक पोषक, प्रेरक आज्ञाओ या उसकी वाणियो का धारण करने वाला प्रजागण या अधीन उप-अधिकारी भी शीघ्र ही आप ही बलवृद्धि करने मे समर्थ होता है।

अध्यात्म मे—परमेश्वर की स्तुति करने वाला जीव उसके आश्रय से शीघ्र बलवान् हो जाता है।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

भा०—जो पुरुष बडे भारी ऐश्वर्य और संख्या में बहुत अधिक दलो का स्वामी है और जो अकेला इन समस्त प्रजाओ और अधीनस्थ भृत्यों का भोग करता है, उन पर शासन करता है वह ही परम ऐश्वर्य-वान् पुरुष है। उसको ही यह सर्वोच्च राष्ट्रपति का बड़ा भारी पद योग्य जानकर प्रदान किया जाता है। उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य के साथ स्पर्धा करने वाले अर्थात् तेज और पराक्रम मे सूर्य के समान तेजस्वी और उत्तम अभिषेक योग्य, अश्व के समान निर्भीक, पराक्रमी तथा राष्ट्र-पति पुरुष को ही वह राष्ट्रचक्र प्राप्त होता और उसकी रक्षा करता है।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६।२६।३॥

भा०—हे रथ मे अश्वो को जोड़ने वाले सारथी या महारथी के समान! हे प्रजा के दुःखहारी विद्वानो की नियुक्ति और प्रबल उपायों का आयोजन करने वाले राजन्! वेगवान् सैनिको के नियोक्ता, आज्ञापक तथा प्रबल तुरंगो और अश्वारोही वीरो और आग्नेयादि अस्त्रो के संचालक वीर सेनापते! विद्वन्, ऐश्वर्यवन्! जिस प्रकार मेघ के बल पर कृषक गण अन्नो को उत्पन्न करते है उसी प्रकार बड़े वाणियो के धारक विद्वान् पुरुष तेरे ही बड़े सुखकारी, ज्ञानमय वेदमन्त्रो के समान, उत्तम, बलप्रद अन्नो, ऐश्वर्यों और बलो को उत्तम रूप से सम्पादित करते है, प्राप्त करते है और औरो को प्राप्त कराते है। अपने प्रज्ञा और कर्म के बल से राष्ट्र में स्वयं बसने और प्रजा को बसाने और ऐश्वर्य सम्पादन करने हारा तू इन अधीनस्थ प्रजाजनो मे सब प्रकार के सुवर्ण आदि नाना धनो के देने वाले ज्ञान और कर्म सामर्थ्य का जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल अपना प्रकाश और आचार्य प्रातःकाल शिष्यो मे अपना ज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार शीघ्र ही प्रदान कर, धारण करा। जिससे वह प्रजाजन सब सुखों और विद्याओ को प्राप्त हो। इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः।

इति चतुर्थोऽध्यायः।

अथ पञ्चमोऽध्याय ।

[६२]

नोधा गोतम ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—त्रिष्टुप् (१, ४, ६ विराट्। २, ५, ६ निचृत्। ३ विराड्रूपा। ७, ८ विराट्स्थाना (अथवा ३, ७, ८। भुरिगार्षी पंक्तिः)। त्रयोदशर्चं सूक्तम्॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १॥

भा०—हम लोग ज्ञान बल से युक्त समस्त स्तुति प्रार्थनाओ को स्वीकार करने वाले, सत्य ज्ञान को स्पष्ट रूप से सबके आगे प्रकट करने वाले, ऋचाओ द्वारा अन्यो को उपदेश करने वाले, विविध गुणो के कारण नाना प्रकार से श्रवण करने योग्य, सबके नायक, सचालक परमेश्वर के बल और यश बतलाने वाले, समस्त ज्ञानो के उपदेश करने वाले, अर्चना करने योग्य, शरीर मे प्राणो के समान सर्वत्र स्थित, अथवा सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों के स्वामी तथा ज्ञानी पुरुषों के स्तुत्य रूप को अच्छी प्रकार से दोषो और भीतरी मलो को दूर करने वाली साधनाओ, स्तुतियो से हम लोग स्तुति करें, उसका वर्णन करें। इसी प्रकार बलशाली, बल से पराक्रमी, स्तुति योग्य, सत्य ज्ञान के उपदेष्टा, विविध गुणो से प्रसिद्ध, वेद-ऋचाओ के ज्ञाता पुरुष के बलयुक्त आघोषणा वचन कहे और देह मे प्राण या बल के समान पदाधिकारी की और स्तुति योग्य तेजस्वी रूप की हम स्तुति करें।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यं॑ शवसा॒नाय॒ साम॑ ।
येना॑ न॒: पूर्वे॑ पि॒तर॑: पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगो मे से भी पहले के, पूर्व शिक्षित मा बाप के समान विद्या आदि देने वाले प्रत पालक गुरुजन प्राप्त करने या धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों के जानने हारे, ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी तथा शरीर मे प्राणो के समान समाज और राष्ट्र मे जीवन-जागृति धारण कराने वाले विद्वान्, पराक्रमी जन जिसके द्वारा स्तुति, प्रार्थना और सत्कार करते हुए उत्तम वाणियो को प्राप्त करते, उनका ज्ञान और सत्य साक्षात् करते हैं आप लोग उस ही बडे विज्ञान प्रवचन के लिए उत्तम प्रतिस्पर्द्धी अज्ञान के नाशक नमस्कार रूप भक्ति-भाव को बडे बलशाली विज्ञानमय परमेश्वर के लिए उच्चारण करो।

इसी प्रकार बडे बलवान् राजा या सभाध्यक्ष के लिए बडे भारी शत्रु नाशक, शत्रुओं को नमाने वाला बल और भोग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और

उसका बड़ा आदर करो। जिससे हमारे पूर्व के परिपालक, प्राप्तव्य पद के वेत्ता और ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार करते हुए ही वाणियों के समान भूमियों और पशु-सम्पदाओं को भी प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॑स्याङ्गि॑रसां चे॒ष्टौ वि॒दत् स॒रमा॒ तन॑याय धा॒सिम्।
बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः समु॒स्रिया॑भिर्वावशन्त॒ नरः॑ ॥३॥

भा०—उत्तम ज्ञानवती माता जिस प्रकार पुत्र के लिए पोषक अन्न प्राप्त करती है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा या सभाध्यक्ष और बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के इच्छानुकूल संचालित नीति के युद्ध मार्ग में चलती हुई वेग से आगे बढ़ने वाली सेना और अपने सन्तान के लिए अन्न आदि शरीर धारक भोग्य पदार्थ को प्राप्त करे। और सूर्य जिस प्रकार मेघ को किरणों से छिन्न भिन्न करता है बड़े भारी बल और राष्ट्र का स्वामी, उसी प्रकार पर्वत के समान अचल शत्रु को भी उदय को प्राप्त होने वाली, सहोत्थायी वीर सेना द्वारा तोड़ डाले। जिस प्रकार सूर्य मेघ के छिन्न भिन्न हो जाने पर अपनी किरण को पुनः तेजोरूप से प्राप्त करता है उसी प्रकार वह राजा भी नाना भूमियों को प्राप्त करे। और नायकजन उसको एक साथ ही मिलकर प्रकाशित करें।

स सु॒ष्टुभा॒ स स्तु॒भा स॒प्त विप्रैः॑ स्व॒रेणाद्रिं॑ स्व॒र्यो॑३ नव॑ग्वैः।
स॒र॒ण्युभिः॑ फलि॒गमि॑न्द्र शक्र व॒लं रवे॑ण दरयो॒ दश॑ग्वैः ॥ ४ ॥

भा०—ताप और प्रकाशों को उत्पन्न करने वाला सूर्य जिस प्रकार नये कोमल कोमल ताप से प्रवेश करने वाले और दशों दिशाओं में फैलने वाले, वेग से जाने वाले, किरणों से और स्थिर ताप से कण कण हुए जलों के देने वाले, अखण्डित पर्वताकार, अपने भीतर जलों को और अपने विस्तर से आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को छिन्न-भिन्न करता है। अथवा जिस प्रकार सूर्य किरणों से शब्दकारी विद्युत् कोमल गतियों से और वायु अपने प्रसरणशील झकोरों से क्रम से अखण्ड, सूक्ष्म और वाष्परूप या कण कण रूप जल बरसाने वाले और साकाश के

आच्छादक इन तीनो प्रकार के मेघो को विदीर्ण या छिन्न-भिन्न कर देते हैं उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे शक्तिशालिन्! तू भी वह उत्तम द्रव्य गुण क्रिया से स्थिर करने वाले स्थायी प्रबन्ध से और राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूरने वाले सात विद्वान् पुरुषो के द्वारा और बडे उपदेश से और नये-नये प्रदेशो और ज्ञान मार्ग से जाने वाले और दश दिशाओ मे जाने वाले राज-पुरुषो और वेग से जाने वाले सैनिको के द्वारा पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रवर्षी फल वाले बाणो के फेंकने वाले योद्धा और शस्त्र वर्षा द्वारा आकाश को रोक लेने वाले तथा नगर को घेरने वाले बलवान् शत्रु को दुन्दुभि आदि के घोर शब्द तथा संताप जनक आग्नेयास्त्र की घोर गर्जना से भयभीत कर और छिन्न-भिन्न कर। इस मन्त्र मे अद्रि, फलिग और वल ये तीनो नाम मेघ के छिन्न-भिन्न दशा के सूचक है। इसी प्रकार वे शत्रु की तीन अवस्थाओ को दर्शाते हैं।

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥५॥१॥

भा०—जैसे जीव प्राणों के द्वारा अन्न का परिपाक करता है और जिस प्रकार दिन के पूर्व भाग, प्रभात द्वारा और सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार हे दर्शनीय दुष्टो के नाशक! हे ऐश्वर्यवन्! तू ज्ञानवान् पुरुषों और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् प्रतापी और सैनिको से उपदेश करता हुआ और स्तुति किया जाता हुआ शत्रु के संताप देने वाले तेज से और आज्ञावाणियो और भूमियो से अन्न, ऐश्वर्य को विशेष रूप से प्रकट कर। अथवा ज्ञान के प्रखर तेजस्वी विद्वान् पुरुष द्वारा और ज्ञानवाणियो द्वारा अज्ञान अन्धकार को दूर कर। हे राजन्! तू भूमि के उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को विस्तृत कर। आकाश और प्रकाश के समान विद्वानो की बनी सभा को और लोक समूह को और मेघ के समान उन पर ज्ञानो और धनैश्वर्यों के दाता विद्वानो और समृद्ध जनो को भी शिक्षक और पोषक रूप से स्थापित कर। इति प्रथमो वर्गः।

तदु प्रयंक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस मेघ को छिन्न-भिन्न तथा दुःखों के नाश करने वाले विजुली रूप इन्द्र का यही सबसे अधिक प्रशंसनीय और प्रत्यक्ष उत्तम कर्म है कि आकाश में ही चारों मेघयुक्त दिशाएं मधुर जल से युक्त होकर तृप्त हो सींचती है और मधुर जल से पूर्ण नदियां भी जल सींचती है। उसी प्रकार शत्रुओं और प्रजापीड़कों के नाश करने वाले दर्श-नीय सभा सेनाध्यक्ष इस राजा का यह ही अति आदर करने योग्य कार्य है और यही सबसे श्रेष्ठ, सुखप्रद, दर्शनीय कर्म है कि इस आश्रय योग्य भूप्रदेश पर चारों दिशाओं की प्रजाएं मेघ बरसने पर मधुर जल से भरी नदियों के समान खूब ऐश्वर्य से भरपूर हो सबको तृप्त करती है।

आचार्य के पक्ष में—यही पूज्यतम अन्धकार के नाशक आचार्य का विद्या का उपदेश करना दर्शनीय और सर्वश्रेष्ठ कार्य है कि जिसके आश्रय में रहकर चारों दिशाओं के वासी जन हर्षप्रद ज्ञान से युक्त होकर संतुष्ट हो दान करते हैं।

द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥

भा०—मुख्य प्राण जिस प्रकार अङ्गों द्वारा एक आश्रय पर रहने वाले चिरकाल से विद्यमान, प्राण और अपान दोनों को प्रकट करता है और अपने वश रखता है और जिस प्रकार मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य किरणों से समान आश्रयवाली सदा से विद्यमान आकाश और भूमि दोनों को विशेष रूप से व्यापता है उसी प्रकार मुख्य रूप से स्थापित, अनायास समस्त कार्यों को सिद्ध करने हारा अथवा बड़े बड़े युद्ध आदि प्रयत्नों में भी शत्रु द्वारा वीर सेनापति और सभापति सत्य ज्ञानों का उपदेश करने वाले अथवा स्तुत्य सूर्य के समान तेजस्वी अर्चनीय विद्वानों और वीर पुरुषों द्वारा उनकी सहायता से अति शाश्वत काल से चले आए, एक ही

आश्रय, राष्ट्रभूमि पर बसने वाले राजा और प्रजा दोनो वर्गों को विशेष-रूप से पालन करता और उन दोनो से स्वयं वरण किया जाता है। सूर्य जिस प्रकार प्रकाश, वर्षा आदि उत्तम कार्यों को करता हुआ आकाश में, आकाश और पृथिवी दोनो को धारण और पोषण करता है। उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् प्रजा के लिए शुभ कार्यों को करने वाला श्रेष्ठ, आचारवान् पुरुष मान आदर करने योग्य अपने आश्रय पर उठाये रखने योग्य राजा प्रजावर्ग दोनो की रक्षा करने हारे सर्वोच्च राजपद पर स्थित होकर धारण करे, उनको वश करे।

सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

भा०—रात्रि काले अन्धकार से बने रूपों से और दिन-वेला कान्तिमय रूपों से एक दूसरे के पीछे क्रम से आती जाती हैं। और वे दोनो सनातन, अनादि काल से एक दूसरे से भिन्न रूप या कान्तिवाली पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर अपने आगमनो, व्यवहारों से सूर्य और पृथ्वी की सेवा या परिक्रमा करते अर्थात् उन पर आश्रित हैं। सूर्य के उदय से दिन और पृथ्वी की आड से रात्रि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार एक दूसरे से सम्बद्ध होकर युवावस्था मे स्थित स्त्री पुरुष दोनो अनादि कारण से और अनादि काल से सूर्य और पृथ्वी के समान अपने कार्य व्यवहारों से परस्पर आचरण करें। वे दोनो शरीर रचना मे एक दूसरे से भिन्न आकृति, रुचि और चेष्टा वाले, वार वार एकत्र रहने वाले तथा सन्तान रूप मे पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले हों। उन दोनो मे से स्त्री, रात्रि के समान नाना गुणो और प्रेमों को प्रकट करने वाली और स्नान, अनुलेपन तथा अभ्यंग और उज्वल आभूषणादि से कान्तिमती होकर आकर्षण करने वाले रूपों से युक्त हो। और दिन या सूर्य के समान प्रतिपक्षियों को तापकारी और स्त्री के प्रति कामनावान् अभिलाषायुक्त होकर पुरुष उज्वल कान्तिमय स्वरूपों से युक्त होकर रहे। और वे दोनो एक

दूसरे के प्रति सब प्रकार से अनुकूल आचरण करें। इसी प्रकार राजा प्रजा या राजा और भूमि भी सूर्य और पृथिवी या दिन और रात्रि के समान भिन्न रुचि होकर भी अपने व्यवहारों को वार वार मिलावें। ऐश्वर्य आदि आकर्षण गुणों से प्रजा और पराक्रम आदि तेजोमय रूपों से राजा रहे। वे एक दूसरे के उपकार करते रहें।

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार नाना उत्तम कर्मों को करने वाला अपने बल से सबका प्रेरक होकर आकाश और पृथिवी को धारण करता है उसी प्रकार पुत्र भी उत्तम सदाचारी होकर अपने बल और ज्ञान से माता पिता का भरण पोषण करे, उसी प्रकार राजा सबका आज्ञापक होकर अपने बल, पराक्रम से राष्ट्र के शासकवर्ग और शास्य प्रजावर्ग दोनों का पोषण करे। और जिस प्रकार सूर्य वर्षण आदि उत्तम कर्मों का आचरण करता है, सनातन से लोकों पर प्रेम-भावनायें रखता है उसी प्रकार राजा भी उत्तम आदर योग्य उपकार करता हुआ पुराने, राजपरम्परा से चले आये मित्रता और प्रेम भाव को सदा बनाये रक्खे। सूर्य जिस प्रकार कच्ची, कोमल लताओं में पकने योग्य रस को प्रदान करता है और सूर्य रसों को आकर्षण कर लेने वाली गहरे रंग की लताओं में अति दीप्तिकारक, तीव्र रस प्रदान करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी अपक्व, सन्तति-प्रसन्तति से बढ़ने वाली प्रजाओं में से कच्ची उमर की प्रजाओं में पकने योग्य, अन्न के समान अभ्यास द्वारा पका लेने योग्य बल धारण करा। और शत्रुओं का वर्षण अर्थात् विनाश करने में समर्थ प्रजाओं में अति तेजस्वी, उग्र बल धारण करा।

सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥२

भा०—एक ही आश्रय में रहने वाली भूमिवासिनी प्रजाएं भी

अंगुलियों के समान रह कर शत्रु पराजयकारी बलो से युक्त होकर कभी नाश को प्राप्त नहीं होती। और वे प्रतिपक्ष या प्रबल शत्रु रूप प्रचण्ड वायु से रहित होकर अपने अपने कर्त्तव्यो और नियम धर्मों का पालन करती हैं। इसी प्रकार बलों से नाश को न प्राप्त होने वाले विद्वान् और रक्षक भूपतिगण एक ही देश मे रहने वाले, सदा ही आपस मे स्थिर धर्मों, कर्त्तव्यो का पालन करें। पुत्रोत्पादक, समर्थ पुरुष जिस प्रकार अपनी स्त्रियो की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे भूपति लोग सहस्रो भूमियों की रक्षा करें। बहिनें जिस प्रकार विना सकोच के आने जाने वाले भाई की सेवा सत्कार करती हैं उसी प्रकार बहिनो के समान या धनों को प्राप्त करने वाली वे प्रजाएं भी विना संकोच और भय के शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर नृपति की परिचर्या करें, उसके अधीन रहे। इति द्वितीयो वर्गः ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥

भा०—हे दर्शनीय! हे प्रजा के दु:खों के नाश करने हारे! तू स्तुति करने योग्य है। कामना युक्त पत्निया जिस प्रकार कामना युक्त अपने पति के पास जाती और उससे आलिंगन करती हैं उसी प्रकार हे बलवन्! मननशील, विज्ञानयुक्त, सनातन से चले आये, अनादि-सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों के करने हारे, ऐश्वर्य के इच्छुक, मननशील, विद्वान् गण कान्तिमान्, प्रजा के इच्छुक तुझ प्रजा के पालक को स्वय कामनायुक्त होकर प्राप्त हों और तुझे बलपूर्वक पकड लें, तेरा दृढ़ता से आश्रय लें।

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः॥१२॥

भा०—हे परमेश्वर एव राजन्! दुःखो और दुष्ट शत्रुओं के नाशक! अनादि काल से ही तेरे हाथ मे, तेरे वश मे विद्यमान ऐश्वर्य कभी क्षीण नहीं होते, वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। तेरे ऐश्वर्य सदा अक्षय

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभा-सेनापते! तू सज्जनो में श्रेष्ठ, सत्य व्यवहार वाला होकर इन समस्त शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ हो। सत्य से भासित, महान् सामर्थ्य वाले विद्वानों और बड़े तेजस्वी वीरों और शिल्पियों के बीच में उनका स्वामी होकर रहने वाला, सबमें महान्, सब नरों में श्रेष्ठ, सबका हितकारी, उत्तम नेता तू सबको पराजय करनेवाला बलवान् हो। तू शत्रुओं को वर्जन करने वाले, मित्र शत्रु सबको एकत्र मिला देने वाले, घमासान अतितुमुल युद्ध में जवान, वज्रधारी शस्त्रास्त्र से युक्त तेजस्वी सेना बल को अपना बल प्रदान कर और एक समवाय या संघशक्ति से आक्रमण करके शत्रुओं का नाश कर। अथवा शत्रुओं को परे हटाने के काम में जवानों में बल देकर शत्रुओं का नाश कर। या भिड़ने के काम में खड्गधारी बल को उत्तेजित कर और घोर गर्जनायुक्त तोपों की लड़ाई में कान्तियुक्त आग्नेय अस्त्रों के वेत्ता पुरुषों को अधिकार और बल देकर शत्रुओं का नाश कर। अथवा जवान शस्त्रधर और तेजस्वी पुरुषों के बल से प्रजा के शोषणकारी शत्रु का नाश करे।

त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सेनापते! निश्चय से तू ही उस दूरस्थ मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को भी दूर से ही परास्त कर। हे वर्षणशील मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों और शत्रुओं पर शस्त्र-अस्त्रों की वर्षा करने हारे! हे उत्तम शस्त्र-अस्त्रों से युक्त! तू सबका मित्र है। हे शूरवीर! हे शूरवीरों के समान उदारचित्त वाले! अथवा शूरों की व्यवस्था को जानने हारे! उनकी वृद्धि में दत्तचित्त! जिससे तू अनायास ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर प्रजापीड़कों को उनके घर में

ही विविध उपायों से छेदता भेदता, नाश करता है, इसलिये तू आदर करने योग्य है।

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥५॥४॥

भा०—हे शत्रुहन्तः! राजन्! सभाध्यक्ष! तू उस दृढ़, प्रबल शत्रु को स्वयं न मारना चाहता हुआ भी केवल प्रजा पुरुषों के अप्रीतिकारक होने से दिशाओं के विजय के लिये हमारे घोड़ों के लिये मार्ग खोल, उनको विजय करने की आज्ञा दे। हे वीर्यवन्! बलशालिन्! जिस प्रकार हतौड़ों से दृढ़ लोह को भी कूट डाला जाता है उसी प्रकार शत्रुओं को हनन करने वाले नाना राजनैतिक साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर! शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! सेनापते! परमेश्वर! राजन्! जलों के प्राप्त कराने और जल के वर्षण आदि के अवसर पर जिस प्रकार लोग विद्युत् और मेघों को ला बरसाने वाले वायुओं को चाहते हैं उसी प्रकार वीर नायक पुरुष धन प्राप्त कराने वाले सुखों के वर्षण करने वाले युद्धकाल में तुझको ही पुकारते और स्मरण करते हैं। हे स्वयं समस्त राष्ट्र के धारण करने के सामर्थ्य से युक्त! हे वज्रवन्! हे जलों के धारक मेघ के समान अन्नों के स्वामिन्! हे जीवों के स्वामिन्! संग्राम में और ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने के अवसरों में तेरा यह प्रजा के रक्षा करने का कार्य बराबर चलता रहे।

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! सेनापते! हे उत्तम शस्त्र समूह के स्वामिन्! हे तेजस्विन् राजन्! तू निश्चय से युद्ध करता हुआ बहुत से शस्त्रास्त्रों के स्वामी या बहुत से शत्रुओं को उखाड़ देने वाले वीर राजा के लिए,

अथवा बहुत से शत्रुओं के आक्रमणों से पीड़ित और उत्तम उत्तम ऐश्वर्यों के देने वाले, विजय करने और प्राप्त करने योग्य राष्ट्र के समस्त प्रजाजन को पालन करने वाले, जनपदवासी राज प्रजावर्ग की रक्षा के लिए सभा, सभासद्, सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य और प्रजागण इन सातों, अथवा सहायकगण, साधन और साम, दाम, भेद और दण्ड और देश-विभाग और काल-विभाग इन सातो के द्वारा अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र और दुर्ग और सेनाबल इन सातो के द्वारा शत्रु के इन सातों को और उसके नगरियो, गढ़ो और क़िलों को तोड फोड़ डाल।

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन्।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन्! वीर सेना-सभाध्यक्ष! जिस प्रकार मेघ या विद्युत् इस पृथ्वी के ऊपर जलों को वर्षाता, सबको बढ़ाता है। जल के रूप में सब तरफ़ बहने के लिए अपने को त्याग देता है उसी प्रकार हे दानशील राजन्! तू भी इस पृथवी पर जलों के समान उस उस, नाना प्रकार की अद्भुत अद्भुत अन्न समृद्धि तथा सेनाओं को बढ़ा। हे शूर-वीर! जिसके द्वारा तू हमारे उपकार और रक्षा के लिए अपने को अन्न के समान दूसरों के उपकारार्थ समर्पित करता है अर्थात् जिस प्रकार अन्न अपनी सत्ता को खोकर अन्य प्राणियों के देहो को पुष्ट करता है उसी प्रकार हे राजन्! तू हम प्रजाओं की रक्षा और पुष्टि के लिए युद्धादि में अपने आपको बलि कर। हे समस्त राष्ट्र को धारण करने हारे! तू अन्न और जल के समान ही बहने और सर्वत्र पराक्रम और त्याग द्वारा बरसने के लिए तैयार रह।

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम्।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९॥५॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! उत्तम किरणों से जिस प्रकार अन्न की वृद्धि के साथ साथ ऐश्वर्य और नाना सुख भी उत्पन्न होते हैं उसी

प्रकार विद्वान्गण तेरे हरणशील अश्वो के समान आगे बढ़ने वाले बल और पराक्रम दोनो की वृद्धि के लिए आदर, सत्कार और अन्नादि के साथ साथ स्तुति, ज्ञानोपदेश और नाना धन भी प्रस्तुत करते हैं। तू हमारे लिए कर्म, शक्ति और प्रज्ञा के बल से स्वयं प्रजा मे रहने और राष्ट्र मे सुख से प्रजा के बसाने वाला होकर प्रतिदिन या शीघ्र ही या अपने राज्य के प्रारम्भ काल मे ही उत्तम सुवर्ण आदि धनो और गौ आदि पशुओ से सम्पन्न ऐश्वर्य को प्राप्त करा। और शीघ्र ही हमे पुनः पुनः प्राप्त हो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६४]

नोधा गौतम ऋषि ॥ अग्निर्मरुतश्च देवताः। छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ६, ६, १४ विराट् जगती। २, ३, ७, १०, ११, १३ निचृज्जगती। ८, १२ जगती। १५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

वृष्णे॒ शर्धा॑य सु॒म॑खाय वे॒धसे॒ नोधः॑ सुवृ॒क्तिं प्र भ॑रा म॒रुद्भ्यः॑।
अ॒पो न धीरो॒ मन॑सा सु॒हस्त्यो॒ गिरः॒ सम॑ञ्जे वि॒दथे॑ष्वा॒भुवः॑ ॥१॥

भा०—हे यथार्थ सत्य विज्ञान के उपदेश और प्रवचन को धारण करने हारे विद्वन्! तू जल वर्षण करने वाले मेघ और घोर गर्जन करने वाले विद्युत्, पृथ्वी से सूर्य की किरणो द्वारा जल का वायु मे आना और और फिर वृष्टि द्वारा बरसना, अन्न का उत्पन्न होना, पुनः प्राणियों द्वारा खाया जाकर जीव सन्तति रूप से उत्पन्न होना आदि उत्तम यज्ञ के लिये और विविध जल आदि पदार्थों के धारण करने के लिये वायुओ की उत्तम रीति से अज्ञान को दूर करने वाली स्तुति या वर्णन किया कर। इसी प्रकार सब सुखो को वर्षाने वाले राजा की वृद्धि के लिये, राष्ट्र की बल वृद्धि के लिये, राष्ट्र मे उत्तम यज्ञों, धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये और राष्ट्र मे विविध ऐश्वर्यों और व्यवस्थाओ के धारण के लिये विद्वान् और वायु के समान बलशाली वीर पुरुषो के उत्तम, दोष-निवारक गुण स्तुति को प्रकट कर। बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार मन से विचार कर

ज्ञान-वाणियों को प्रकट करता है और उत्तम हस्त क्रियाओं में कुशल पुरुष जिस प्रकार नाना कर्मों, विज्ञानो तथा हाथों द्वारा बनाये जाने योग्य उत्तम शिल्पो को प्रकट करता है उसी प्रकार से उत्तम हस्त क्रियाओं मे कुशल, सिद्धहस्त होकर संग्राम आदि कार्यों से सब तरफ सामर्थ्य प्रकट करते वाले, कर्म-कौशलों और शस्त्र-संचालन, सेना-सचालन आदि क्रियाओं को प्रकट करूं और मैं ही धीर, सयमी, वाग्मी होकर ज्ञानपूर्वक सब प्रकार से सफल होने वाली आज्ञाओ और वाणियों का प्रकाश करूं।

ते ज॑ज्ञिरे दि॒व ऋ॒ष्वास॑ उ॒क्षणो॑ रु॒द्रस्य॒ मर्या॒ असु॑रा अरे॒पसः॑।
पा॒व॒कासः॒ शुच॑यः॒ सूर्या॑ इव॒ सत्वा॑नो॒ न द्र॒प्सिनो॑ घो॒रव॑र्पसः ॥२॥

भा०—वे वायुओं के समान प्रबल, वीर और विद्वान् जन सूर्य के प्रकाश से प्रेरित होकर जिस प्रकार वायुएं प्रबल हो जाती है उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश से युक्त आचार्य और तेजस्वी राजा या सेनापति से दीक्षित और प्रेरित होकर अन्यो को ज्ञान देने वाले, विद्वान् तथा शत्रुओं को मारने वाले अति उग्र हो जाते है। और समष्टि प्राण के अधीन रह कर ज्ञानोपदेष्टा के शिष्य भी ज्ञान सुखो के वर्षक एवं वीर्यवान् वृषभो के समान विशाल कार्य वाले और वीर जन शत्रुओ को रुलाने वाले सेनापति के अधीन मेघ के समान शस्त्रास्त्रो के वर्षण करने वाले हो। वे मर्द, जवान, बलवान्, प्राणों मे रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी और शत्रु सेनाओ को उखाड़ फेंकने वाले, पाप रहित, स्वच्छचित्त, किरणों और अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र-कारक, मन, वाणी, काय तीनों से शुद्ध, सूर्य की किरणो के समान तेजस्वी, हस्ती आदि बलवान् प्राणियों के समान बलवान् और सात्विक गुणो वाले, वीर्यवान्, मेघों के समान ज्ञान-जलों के वर्षक भयानक या शान्तिदायक स्वरूप वाले, भयप्रद और अभय बनकर रहे।

युवा॑नो रु॒द्रा अ॒जरा॑ अभो॒ग्घनो॑ वव॒क्षुरध्रि॑गावः॒ पर्व॑ता इव।
दृ॒ळ्हा चि॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि॒ पार्थि॑वा॒ प्र च्या॑वयन्ति दि॒व्यानि॑ म॒ज्मना॑ ॥३॥

भा०—युवा, बलशाली, दुष्टों को रुलाने हारे, कभी जीर्ण या दुर्बल न होने हारे, किसी के अधीन होकर भोग्य और दण्डनीय न होने वाले, शत्रुओं से असह्य वेगवान्, पर्वतों के समान अचल वीरगण समस्त दिव्य, आकाशस्थ और राजसभा और साधारण प्रजा के दृढ़ समस्त जनों को भी अपने बल से विचलित कर देने वाले हों।

प्राण-वायुओं और वायुओं के पक्ष में—शरीर में रसों के मिलाने और तप्त करने हारे, बलशाली मरण, ज्वर आदि पीड़ा द्वारा प्राणियों को रुलाने वाले, अन्न के समान भोग्य बनकर और दबकर न रहने वाले असह्य तीव्र वेगवाले अथवा प्रकाश-किरणों को न धारण करने या न रोकने वाले, पर्वतों या मेघों के समान शरीरादि के या जीवन-जलों के धारक होकर पृथिवी और तेज दोनों के बने विकार कठिन रूप में आये हुए सबके मूल कारणों को सचालित करते हैं।

चि॒त्रैर॒ञ्जिभि॒र्वपु॑षे॒ व्य॑ञ्जते॒ वक्ष॑स्सु रु॒क्माँ अधि॑ येतिरे शु॒भे।
अंसे॑ष्वेषां॒ नि मि॑मृक्षुर्ऋ॒ष्टयः॑ सा॒कं ज॑ज्ञिरे स्व॒धया॑ दि॒वो नरः॑ ॥४॥

भा०—तेजस्वी राजा के नायक, वीरगण, नाना प्रकार के अपने को प्रकट करने वाले चिह्नों, अकों या पोशाकों और बैजों द्वारा अपने शरीर को विविध रूप से प्रकट करें या सजावें और शोभा के निमित्त वे अपने छातियों पर स्वर्णपदकों को लगावें और इनके कन्धों पर शत्रुनाशक हथियार दण्ड भाले आदि शोभा देवें। वे ऐसे पृथिवी के विजय और पालन की शक्ति के साथ प्रकट हों।

प्राण वायुओं के पक्ष में—अद्भुत क्रिया करने वाले, प्रकट करने की चेष्टा करने वाले, शरीर के धारण पोषणकारी रूप को प्रकट करने के लिए विविध रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं और वे शोभा के लिए छातियों में, अपने पांच वायु गण रोचक, दीप्तिमान् विद्युत्, जाठराग्नि आदि पदार्थों को धारण रते हैं। इनके बल पराक्रमों पर शरीर की नाना गतियें

निरन्तर होती है और वे चेतना ज्ञान के नायक प्राणगण स्व अर्थात् शरीर को धारण करने वाली चेतना शक्ति के साथ प्रकट होते हैं।

ई॒शा॒न॒कृतो॒ धुन॑यो रि॒शाद॑सो॒ वाता॑न् वि॒द्युत॒स्तवि॑षीभिरक्रत।
दु॒हन्त्यूध॑र्दि॒व्यानि॒ धूत॑यो॒ भूमिं॑ पिन्वन्ति॒ पय॑सा॒ परि॑ज्रयः ॥५॥

भा०—वीर सैनिकगण राजा को समस्त राष्ट्र का शासक बना देने हारे, शत्रुओं को कंपा देने हारे, हिंसकों की हिंसा करने या उनको उखाड़ फेंकने वाले होकर अपने बलों या बलवान् अस्त्रशस्त्रों से प्रचण्ड वायु के झकोरों और विद्युत् के समान आघातकारी अस्त्रों का भी प्रयोग करें। दुग्ध रस का इच्छुक पुरुष जिस प्रकार गाय के थनों को दोहता है उसी प्रकार वे शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष भूमि रूप गौ से नाना दिव्य पदार्थों, शक्तियों और सारयुक्त ओषधियों को प्राप्त करें और वे सब देशों और स्थानों में जाने हारे विद्वान् वीरजन दूध से जिस प्रकार बालक को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार और जल जिस प्रकार क्षेत्र को सींचता है उसी प्रकार भूमि को पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थों और ऐश्वर्य से सेचन करते हैं, उसे पुष्ट करते हैं।

वायुओं के पक्ष में—वायुगण, सामर्थ्यवान् प्राणों का उत्पादक होने से 'ईशानकृत्' हैं। घातक रोगों के नाश करने से 'रिशादस' हैं, वृक्षों को कंपाने से 'धुनि' हैं, वे ही प्रचण्डवात और मेघों की विद्युतों को उत्पन्न करते हैं। वे रात्रि काल में आकाशस्थ जलों को अन्तरिक्ष से ओसरूप में दोहते हैं या आकाश रूप गौ के मेघरूप पयोधरों से जलों को दोहते हैं और जल से और पुष्टिप्रद अन्न से भूमि को सींचने और पूर्ण कर देते हैं। मेघों को कंपाने से 'धुनि' हैं और सर्वत्र गमन करने से 'परि-ज्रि' हैं।

पिन्व॒न्त्य॒पो म॒रुतः॑ सु॒दान॑वः॒ पयो॑ घृ॒तव॑द् वि॒दथे॑ष्वा॒भुवः॑।
अत्यं॒ न मि॒हे वि न॑यन्ति वा॒जिन॒मुत्सं॑ दुहन्ति स्त॒नय॑न्त॒मक्षि॑तम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण जलों को मेघों में पूर्ण करते और

भूमियों पर सेचन करते हैं और उत्तम जलप्रद और सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। उसी प्रकार उत्तम, वीर जन भी यज्ञादि उत्तम कार्यों मे और युद्धो में सब प्रकार से सामर्थ्यवान् और उत्तम रीति से शत्रुओ के खण्डन और प्रजा पालन करने वाले, दानशील और वायुवत् तीव्र, वेगवान् होकर घृत से युक्त दुग्ध और अन्न का और जलों का सेचन करते हैं, राष्ट्र में इन पदार्थों की ही वृद्धि करते हैं। जिस प्रकार वीर्यवान्, बलवान् और वेगवान् अश्व को वीर्य सेचन के कार्य के लिए घोड़ी के पास ले जाते है और जिस प्रकार वायुगण वेग से जाने वाले या अन्न के उत्पादक मेघ को अश्व के समान वृष्टि करने के लिए विविध दिशाओ मे ले जाते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी बलवान्, पराक्रमी, युद्धविजयी, अन्नादि ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति को भी शत्रु पर शस्त्रो और प्रजा पर सुखो की वर्षा करने के लिए प्राप्त करें या विद्वान् जन उनको विशेष रूप से शिक्षित करें। जिस प्रकार मनुष्य कूप से जल को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार वायुगण गर्जना करते हुए या आकाश रूप गोमाता के स्तनों के समान विद्यमान अक्षय मेघ से जलो को दोहते हैं उसी प्रकार वीर प्रजाजन भी उत्तम ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करने वाले, सिंहनाद करते हुए, अक्षय कोष के समान अक्षय बल वाले अथवा कभी क्षीण न होने वाले, अमर दीर्घजीवी, बलवान् पुरुष से ऐश्वर्य और सामर्थ्य को दोहते या प्राप्त करते हैं।

म॒हि॒षासो॑ मा॒यिन॑श्चि॒त्रभा॑नवो गि॒रयो॒ न स्वत॑वसो रघु॒ष्यदः॑ ।
मृ॒गा इ॑व ह॒स्तिनः॑ खादथा॒ वना॒ यदारु॑णीषु॒ तवि॑षी॒रयु॑ग्ध्वम् ॥७॥

भा०—हे वीर पुरुषो! आप लोग बडे बलवान्, अति बुद्धिचातुरी से युक्त, अद्भुत कान्तिमान्, पर्वतो और मेघो के समान अपने पराक्रम पर खडे होने वाले, अति वेग से जाने वाले हो। जब आप लोग लाल वर्ण वाली, तेजस्विनी या सुख देने वाले रथों, यानों की बनी सेनाओ में समस्त बलो या सैन्यदलों को जोड दें। तब भी हाथी नामक पशु जिस प्रकार जगलो को खा जाते या उपभोग करते हैं, उनको तहस नहस करते

हैं उसी प्रकार तुम भी क्रियाकुशल और सिद्धहस्त बनकर शत्रुओं को खोजने वाले होकर शत्रु-सेनासमूहों को विनाश करो और भोग्य ऐश्वर्यों का भोग करो।

वायुपक्ष में—वायुगण बड़े सामर्थ्य वाले भूमि पर बहने वाले, कुटिलगामी, अद्भुत दीप्ति वाले, नाना अग्नियों वाले, जलों को अपने भीतर लेने वाले, स्वतः बलवान्, वेग से जाने वाले हैं। वे भी हाथियों के समान वनों को वेग से तोड़ते फोड़ते हैं और वे प्रातः वेलाओं में जलों को प्राप्त करावें।

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः॥८

भा०—उत्कृष्ट और बहुत अधिक ज्ञान वाले विद्वान्, वीर पुरुष शेरों के समान बलवान्, पराक्रमी होकर गर्जना करें और वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी और समस्त विद्याओं के जानने हारे, उत्तम, सुदृढ़ अंगों वाले होकर बलवान् शरीरों वाले गजों के समान गम्भीर-वेदी हों। रात्रियां जिस प्रकार सेचने वाली जलबिन्दु-पङ्क्तियों से भूमि को छा देती हैं उसी प्रकार ये वीर भी शत्रुओं का नाश करने हारे होकर आयुधों से पृथ्वी का विजय करते हुए एक साथ शत्रुओं को पीड़न करने वाले, सर्प के क्रोध के समान शत्रु के एक ही वार में प्राण हरण करने वाले कोप से युक्त अथवा उत्तम कोप और उत्तम ज्ञान वाले, अति उग्र और अति बुद्धिमान् होकर एक साथ ही युद्ध में बल से जावें।

वायुपक्ष में—उत्तम ज्ञान और चेतना के देने वाले, उत्तम रीति से सुखजनक अवयवों वाले, उत्तम ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देने वाले, सेवन करने वाली वेगवान् मेघमालाओं से रात्रि के समान भूमियों को सींचते हुए, एक साथ मेघों को लाने वाले होकर बल से हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः॥९॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! सैन्यगणों को अपने आश्रय या अधीन रखने वाले या गणों, जनों, सेना समूहों से शोभा देने वाले ! हे वीर नायकों के अधीन समवाय, संगठन बनाकर रहने वाले, शूरवीर सर्प के समान शत्रु के प्राणहारी क्रोध वाले या मेघ के समान अमित मन्यु, क्रोध या ज्ञान वाले या अक्षय या उत्तम ज्ञान और उद्वेग वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग सूर्य और भूमि के समान राजा और प्रजा दोनों वर्गों को अपने बल और ज्ञान-सामर्थ्य से सर्वत्र उपदेश करो, अपने गुणों को बतलाओ । और हे विद्वानो और वीरो ! आप सब लोग सुन्दर रूप के समान दर्शनीय और विद्युत् के समान अपनी कान्ति से स्वतः देखने योग्य होकर दृढ बन्धनों से बंधे रथों पर तुम्हारा पराक्रम स्थिर हो । विद्वानों का ज्ञान रमण करने योग्य आत्मानन्द रूप रसों में या रमण योग्य प्राणों या देहों में सुन्दर रूप विद्युत् के समान मनोहर और दीप्ति रूप से विराजे । अथवा [एक नकार पादपूरणार्थ है ।] विद्युत् आदि अस्त्र ही तुम्हारा दर्शनीय रूप के समान उज्वल रहे ।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः॥१०॥७॥

भा०—समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी या विश्व को जानने और उसे धन रूप में प्राप्त करने वाले, अपने बल, पराक्रमों और ऐश्वर्यों से एक समान या उत्तम स्थान के रहने वाले, परस्पर अच्छी प्रकार सम्मिलित, बलों और सेनाओं के द्वारा गुणों और कार्यों में महान्, अस्त्रों के चलने हारे, वीर्यवर्धक अन्न और जल के खाने वाले वीर पुरुष अनन्त बल से युक्त होकर बाहुओं में बाण आदि अस्त्रों को धारण करें ।

वायु के पक्ष में—सब पदार्थों को प्राप्त, उत्तम आश्रय में स्थित अग्नि आदि तत्वों से युक्त, बलवती क्रिया से महान् पदार्थों को इधर उधर उठा फेंकने वाले, वृष्टि-जलों या मेघों को अपने में लेने वाले, दूसरों को

उनका भोग देने वाले, गतिशील वायुगण अनन्त बल वाले होकर प्रेरक बल को सूर्य और अग्नि दोनों के आश्रय से धारण करते हैं।

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्योऽन पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः॥११॥

भा०—जिस प्रकार मार्ग में चलने वाला रथ लोहे के बने या उसमे मढे हुए चक्रों से उत्तम रीति से चलता है उसी प्रकार वीर पुरुष सब तरफ़ के मार्गों के जानने और वश करने हारे होकर लोहे के बने हुए खड्गों और शस्त्रास्त्रों से पर्वत के समान अचल होकर शत्रु राजाओं और प्रतिपक्षी वीरों को उत्तम या अधिक बल से विनाश करने वाले हों। वे वीर्य बल के वर्धक, पूजा के योग्य, अपने बल पराक्रम से आगे बढने वाले, स्थिर राज्यों को भी डावांडोल करने वाले, धारण करने योग्य या असह्य बल पराक्रमों को करने वाले, चमचमाते हुए अस्त्रों वाले होकर वीर पुरुष सर्वत्र रण में जाने वाले हों।

वायु-पक्ष में—वृष्टि जल को बढाने वाले, मेघों और पर्वतों को अधिक बल से ताडने हारे, अपने वेग से जाने वाले, स्थिर पदार्थों को भी कंपाने वाले, धारण करने योग्य बलों के धारने वाले व्यापक वायुगण हैं।

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये॥१२॥

भा०—हम लोग शत्रुओं के बल को नाश करने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, भोग्य ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाले, विविध मनुष्यों से बने हुए, शत्रु-दल को रुलाने वाले, संग्राम के अथवा वीर सेनापति के पुत्र के समान उनके अधीन, राजस भाव, ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्यकारी, बलवान्, ऋजु अर्थात् धर्म और न्याय के मार्ग पर चलने वाले, बलवान्, दुष्टों पर शर वृष्टि करने वाले, वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुओं के मारने वाले सैनिकों के गण को हम देने योग्य वेतन, स्वीकार योग्य उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि द्वारा शिक्षित

करें या उनका आदर करें। हे प्रजाजनो! तुम उनको लक्ष्मी या ऐश्वर्य और शरण या आश्रय प्राप्त करने के लिये प्राप्त करो।

(२) वायुगण के पक्ष में—घर्षण उत्पन्न करने वाले, पवित्रकारक, सब पदार्थों को पृथक् पृथक् बांटने वाले, विलेखन करने वाले, तीव्र, प्राण रूप से जीव के प्रेरक और परमेश्वर के पुत्र के समान अथवा कारण रूप वायु से उत्पन्न को उसके प्राह्य रूप से हम उपदेश करें। हे मनुष्यो! हम लोग लोको और धूलियों को वेग से चलाने वाले, बलवान्, उत्तम जीवन के प्रेरक, वृष्टिकारक वायुगण को विद्या, शिक्षा, राज्य आदि सुख प्राप्ति के लिये प्राप्त होवें। (३) पूर्वोक्त रीति से विद्वान् जन भी 'मरुत्' हैं। वे भी पापनाशक होने से 'पावक' हैं। ज्ञानोपदेश के दाता होने से 'रुद्र के सूनु' हैं, लोगो के चलाने वाले होने से 'रजस्तुर' हैं, ऋजुमार्गगामी होने से 'ऋजीपी' हैं। उनको विद्या और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्राप्त करो।

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति॥१३॥

भा०—हे वायु के समान तीव्र वेग से जाने हारे वीर पुरुषो! एवं विद्वान् पुरुषो! आप लोग रक्षा के लिये जिस पुरुष की रक्षा करते या जिसकी शरण मे प्राप्त होते हो। और जो अश्वो, अश्वारोही वीर पुरुषों के द्वारा संग्राम को विजय करता और नायक पुरुषो के साथ मिल कर जो ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और जो परस्पर पूछ कर जिज्ञासा से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है वह मनुष्य बल और ज्ञान से शीघ्र समस्त जनों से बढ़ कर उच्च आसन पर विराजता है।

अध्यात्म मे—हे प्राणगणो! आप जिस आत्मा को अपनी देहरक्षा के लिये प्राप्त हो, जो इन्द्रिय गणो से ज्ञान को प्राप्त करता है, जो प्राणों से ऐश्वर्यों को पाता है और ज्ञातव्य परम पद ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त

करता और उसका अभ्यास करता है वह सब जनों को ज्ञान के बल से पार कर उनसे ऊंचा होकर परम पद मे विराजता है।

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! आप लोग समस्त करने योग्य कार्यों मे कुशल, संग्रामो मे शत्रुओ से पराजित न होने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यों को कमाने या उसकी रक्षा करने वाले, समस्त राष्ट्र के द्रष्टा, शत्रु के नाशकारी, राष्ट्र के विस्तार करने वाले पुरुष को धन सम्पन्न पुरुषो के ऊपर स्थापित करो। अपने पुत्र और पौत्र के समान प्रिय, ऐसे प्रशंसनीय जन को हम सौ बरसो तक पुष्ट करें।

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥८॥११॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो तथा वीर जनो! आप लोग शीघ्र ही चिरस्थायी, विनाश को प्राप्त न होने वाले, वीर पुरुषो से युक्त, युद्ध के विजय करने वाले, ऐश्वर्य को और वीर्यवान् पुरुष को हममे धारण करो। और हज़ारो के और सैकड़ो के स्वामी, सहस्रदलपति, शतदलपति, समस्त सुखो के दाता महापुरुष को भी हम मे स्थापित करो। और प्रज्ञा और कर्म के धनी पुरुष शीघ्र ही दिन के प्रारम्भ समय मे या सभी कार्यों के प्रारम्भ काल मे हमे प्राप्त हो। इत्यष्टमो वर्गः। इत्येकादशोऽनुवाकः॥

[६५]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द.—१ पंक्ति (२, ३, ५ निचृत्। ४ विराट्) अथवा १–१० द्विपदा विराट् (२, ६, ७, ८, ६ निचृत्)। पञ्चर्चं दशर्चं वा सूक्तम् ॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥१॥

भा०—धीर, बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार वनगुफा मे छिपे हुए पशु

के साथ विद्यमान चोर को उसके चरणचिह्नो से पीछा करते हैं, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे आत्मन् ! सबके द्रष्टा रूप से ब्रह्माण्ड रूप गुहा या हृदय रूप गुहा मे व्यापक, सबके पालक अन्न, ऐश्वर्य, पद या सर्व वशकारी बल को अपने मे धारण करने वाले, सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव को धारण अर्थात् स्वीकार करते हुए तुझको समान प्रेम से तेरा सेवन करने हारे, ध्यानवान्, समस्त उपासक, सत्संगी पुरुष ज्ञान-साधनों से तुझे प्राप्त होते हैं और वे सब तेरे ही आश्रय पर रहते हैं, तेरी उपासना करते हैं।

राजा के पक्ष मे—पशु सम्पत्ति के साथ विद्यमान राष्ट्रूप गुफा में रहने वाले आदर, अन्न, पदाधिकार और ऐश्वर्य आदि के धारण करने और प्राप्त कराने वाले के प्रति विद्वान् पुरुष प्रेम युक्त होकर प्राप्तव्य पदाधिकारो से उसके अनुकूल रहें और उसके साथ संघ बनाकर उसके आश्रय पर रहे।

अग्नि के पक्ष मे—सब पदार्थों के भीतर वर्त्तमान अन्नादि को खाने वाले जन अग्नि को अनेक उपायो से प्राप्त करें। यज्ञशील जन वेदमन्त्रों से उपासना करते हैं।

ऋतस्य॑ दे॒वा अनु॑ व्र॒ता गु॒र्भुव॒त्परि॑ष्टि॒र्द्यौर्न भूम॑ ।
वर्ध॑न्ती॒माप॑: प॒न्वा सुशि॑श्वि॒मृ॒तस्य॒ योना॒ गर्भे॒ सुजा॑तम् ॥२॥

भा०—दिव्य अग्नि आदि तेजस्वी पदार्थ, भूमि आदि सुखप्रद लोक तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वान् और विजयेच्छु वीरगण सत्य-स्वरूप, सबके प्रवर्त्तक परमेश्वर के तथा सत्य ज्ञानमय, वेद-ज्ञान और सबके संचालक, सत्य व्यवहार वाले राजा की शासनव्यवस्था के उपदेश किये कर्त्तव्यो का अनुसरण करते हैं। उनकी परीक्षा करना और ज्ञान-दर्शन भी सूर्य के समान स्पष्ट, प्रकाशक और पृथ्वी के समान दृढ आश्रय है। गर्भस्थ जल या आप्त पुरुष जिस प्रकार उत्तम रीति से पुष्टि पाने वाले उत्तम बालक को बढ़ाने और पुष्टि करते हैं उसी प्रकार आप्त पुरुष सत्य, न्याय, शासन-कार्य मे समस्त प्रजा को वश करने वाले राजपद

पर उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हुए इस राजा को उत्तम व्यवहार, सद्-उपदेश और स्तुतियुक्त वाणी से बढ़ावें, उसे उत्साहित करें।

परमेश्वर के पक्ष में—व्यापक शक्तियें उत्तम गुणों से महान्, उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, सत्य के आश्रय में विराजमान प्रभु को बढ़ाते हैं। उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं।

अग्नि के पक्ष में—सब तेजस्वी पदार्थ उस अग्नि के व्रत का अनुकरण करते हैं। उनका दर्शन भी महान कल्याणकारी है। सर्वत्र व्यापक अग्नि और जल अपने भीतर विद्युत् रूप से विद्यमान को भी गर्भ में सोते बालक के समान बढ़ाते हैं।

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३॥

भा०—ज्ञान करने योग्य परमेश्वर और अग्नि तथा राजा व सभाध्यक्ष शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ाने वाली पुष्टि के समान अग्नि, विद्युत्, राजा और परमेश्वर तीनों में से प्रत्येक सुख देने वाला है। वह भूमि के समान सबको अपने में निवास, आश्रय देने वाला है। पर्वत के समान सबको पालन करने वाला है। वेग में, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में अश्व के समान छूटते ही शत्रु के पास पहुंचने और पहुचाने वाला है। अथवा जल को अपने भीतर दबाव से रखने वाला, जल समूह जिस प्रकार वेग से बहता है, वह रोके नहीं रुकता, इसी प्रकार ईश्वर भी सृष्टि द्वारा जाना जाकर अगाध सागर के समान सर्जनशक्ति का अक्षय भण्डार है। अग्नि भी जल के समान संसार में अपरिमित है। राजा भी वेग से आक्रमण करने पर अदम्य वेग से शत्रु पर टूट पड़ता और बड़ा पीड़ाजनक, उमड़ते समुद्र के समान भयंकर है। इन सबको कौन वरण कर सकता है। अर्थात् उस प्रभु को कौन पूर्णतया जान सकता है।

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति॥
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार वायु से प्रचण्ड होकर जगलो मे विविध रूपों से फैलता है तब वह जंगलो को खा जाता है, जला डालता है, उसी समय मानो वह पृथिवी के लोगो के समान उत्पन्न ओषधि आदि वनस्पतियों को कुठार के समान काट डालता है, उनको जलाकर छिन्न-भिन्न करता है, उसी प्रकार अग्रणी नेता पुरुष जो वायु के समान प्रचण्ड वेगवाले वीर पुरुषों के बल से प्रचण्ड होकर शत्रु के सैनिक दलों पर विविध दिशाओं से जा चढ़ता है, वह निश्चय से पृथिवी पर स्थित लोगो के समान, उसको छा लेने वाले या मारकाट कर गिरा देने योग्य शत्रु-सैन्य को काट गिराता है। वह राजा नाना भोग्य ऐश्वर्यों को भोग करता है। वह बहती नदियो के समान अदम्य वेगवाला होने से उनका बन्धु है। वह बहिनों की रक्षा करने वाले भाई के समान स्वयं अपने बल से रणक्षेत्र मे शत्रु पर धावा बोलने वाली सेनाओ का भरण पोषण करने-वाला रक्षक है। हाथियो को वश करने वाले अथवा हाथियों पर सवारी करने हारे ऐश्वर्यवान् पुरुषों का राजा के समान वश करने हारा है।

आत्मा के पक्ष में—आत्मा प्राणों का एकमात्र उद्भव और बन्धु है। इन्द्रियों का पोषक, प्राणों का राजा होकर ऐश्वर्यों या देहो का भोग करता है। वह प्राण के वेग से प्रेरित होकर देहो में विराजता है। वह आत्मा ही जड प्रकृति के नाना उच्छेद करने योग्य बन्धनो को काटता है।

रोम—लूयते छिद्यते इति रोम।

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत्।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥१०॥

भा०—हंस नाम पक्षी जिस प्रकार जलो मे डुबकी लगाकर भी श्वास लेता रहता है, उसी प्रकार राजा आप्त प्रजाजनों के बीच विराजता हुआ प्राण लेता, जीता जागता रहे। वह यज्ञादि से अग्नि के समान उत्तम ज्ञान और कर्म के द्वारा अति अधिक ज्ञानवान् होकर प्रजाओं के बीच मे प्रातः चेतने वाले अग्नि के समान ही सबको जीवन

के प्रारम्भ के वयस में ही बोध कराने वाला हो। ओषधि आदि गण जिस प्रकार शरीर का पोषक है उसी प्रकार वह राजा भी राष्ट्र का पोषक हो। वह सत्य व्यवहार, न्यायशासन और ज्ञान में कुशल और प्रसिद्ध होकर छोटे बछडे से युक्त गौ आदि पशु के समान प्रजा के प्रति प्रेमवान्, कृपालु होकर रहे, विशेष सामर्थ्यवान् और कोशयुक्त होकर भी अग्नि के समान दूर दूर तक अपने तेज, दीप्ति को फैलाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हो। इति नवमो वर्गः।

[६६]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पंक्तिः । ४, ५ विराट् अथवा—१—१० द्विपदाविराट् (७, द्व्यूना, ९, १० एकोना) पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार ऐश्वर्यमय द्रव्य नाना प्रकार के संग्रह करने योग्य पदार्थों से पूर्ण होता है या अनेक प्रकार के सुखों को देने वाला होता है उसी प्रकार अग्रणी नायक भी आश्चर्यजनक गुणों वाला हो। वह विद्वान् पुरुष वा सूर्य के समान सम्यक् दृष्टि वाला, तत्वज्ञानी और अन्यों को अच्छे प्रकार दीखने और दिखाने वाला हो। वह प्राण के समान राष्ट्र में आयु का वर्धक हो। वह पुत्र के समान सबका स्थिर दायभागी, सबकी जायदाद का स्वामी है। जिस जायदाद का कोई वारिस नहीं उसका वारिस राजा हो और चोर पुरुष जिस प्रकार प्रजा को लूटकर जंगलों में जा छिपता है उसी प्रकार वह भी शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला और प्रजाओं का पालक होकर सविभाग करने और देने योग्य ऐश्वर्यों को प्रदान करे। या वह सैन्य दलों को संघटित करे। वह गाय के समान प्रजा को पुष्टिकारक अन्न प्रदान करे। वह ईमानदार, शुद्ध आचरणवान, सच्चा होकर अग्नि के समान विशेष दीप्ति से चमके।

अग्नि के पक्ष में—ज्वर के समान भून डालने वाला, संतापजनक, अथवा अश्व के समान अपने स्वामी का पोषक है।

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥

भा०—जो अग्रणी नायक, सेनापति सब मनुष्यों का विजय करने हारा, घर के समान सुखदायी होकर प्राप्त धन की रक्षा का उपाय करता है और प्रजा का कल्याण करता है। जो पके जौ के समान स्वय परिपक्व अनुभव और बल से युक्त होकर प्रजा को पुष्ट करता है और जो ज्ञानी, विद्वान् ऋषि के समान यथार्थ बात का वर्णन करता है वह प्रजाओं के बीच सबसे श्रेष्ठ, कार्यकुशल, वेगवान् अश्व के समान धुरन्धर, अन्न ऐश्वर्य से प्रसन्न, तृप्त किया जाकर राष्ट्र मे बल, सामर्थ्य और जीवन को धारण कराता है।

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै।
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार दूर २ स्थानों तक अपनी दीप्ति को फैलाता है और इसकी ज्वाला को कोई पकड़ नहीं सकता। इसी प्रकार नेता भी दूर दूर स्थानो, देशो तक अपने असह्य तेज को फैलाने वाला हो। वह कर्मों और यज्ञानों के कर्ता के समान नित्य, ध्रुव, स्थायी होकर अपने किये कर्मों के फलो का भोक्ता हो। वह घर मे स्त्री के समान, राष्ट्र मे सबका अन्न वस्त्र से पालक पोषक और सुखदायक हो। वह सम्पूर्ण राष्ट्र की व्यवस्था के लिए अति अधिक या पर्याप्त हो। वह आश्चर्यजनक कर्मों का कर्त्ता जो प्रजाओं के बीच तीव्र, तेजस्वी सूर्य के समान अन्यों से प्रकाशित न होने वाला, रथ या सूर्य के समान दीप्तिमान्, उज्ज्वल कर्मों का करने वाला और स्वर्ण आदि ऐश्वर्यों का स्वामी होकर सबको सङ्कट से पार पहुंचाने वाला और संग्रामों में अति दीप्तिमान् हो।

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥

भा०—राजा युद्ध के लिये भेजी या तैयार हुई सेना के समान शत्रु के हृदय मे भय को उत्पन्न करे और राष्ट्र मे बल और सुख की वृद्धि करे और निर्बल राष्ट्रवासी जन की रक्षा करे। बाणों के फेंकने वाले वीर पुरुष की दीप्ति को अग्रभाग मे रखने वाले, तेज मुख वाले खूब गहरे छेदने वाले बाण के समान शत्रुओं को छेदन-भेदन या नाश करने वाला और तेजस्वी मुख वाला हो। वह राष्ट्र का नियन्ता होकर जो प्रकट वर्तमान उसका स्वामी और या अपने समान बलशाली पुरुष के साथ मिलकर युगल पति-पत्नी के समान आगे उत्पन्न होने वाले सब पदार्थों को वश कराने वाला हो। वह ही कन्याओं के समान नव कान्ति से युक्त, उषाओं के प्रथम वयस की समाप्ति करके प्रौढ़ता मे लाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, उठती प्रजाओं को और अधिक प्रौढ़, ऐश्वर्यवान्, बलवान् बनाने हारा और विवाहित पत्नियों के पति के समान सम विषम, सब दशाओं मे प्रजाओं का सब प्रकार से भरण-पोषण करने वाला हो।

तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥५॥१०॥

भा०—गौएं जिस प्रकार घर को आ जाती है उसी प्रकार उस अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शरण को तुम लोग और हम लोग भी चर सम्पत्ति, पशु गण और बसने योग्य गृह आदि स्थिर सम्पत्ति के सहित प्राप्त हो। जिस प्रकार बहने वाला जल नीचे जाने वाली धाराओं को प्रबल वेग से बहाता है उसी प्रकार सिन्धु के समान प्रबल वेगवान् सेनापति समस्त सेना गणों को नियम व्यवस्था मे बांध कर आज्ञा द्वारा प्रेरणा किये जाने वाले सेना बल या भृत्य वर्ग को नीचे प्रदेशों, पदों या अधीन रहने वाली प्रजाओं के प्रति भेजे। जिस प्रकार दर्शनीय सूर्य में किरणें प्राप्त है उसी प्रकार ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुष और बलवान् पुरुष

पुंगव भी दर्शनीय, शत्रु-सतापजनक प्रतापी, तेजस्वी राजा को प्राप्त हों।
इति दशमो वर्गः ॥

[६७]

पराशर शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द.—पंक्ति । १, २, ४ निचृत्। ५ विराट्। अथवा—द्विपदा विराट् (२, ३, ८—१० निचृत्। ५ भुरिक्)
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥

भा०—जो वीर पुरुष वनो मे भस्म कर देने वाले अग्नि के समान, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के बीच शत्रुओं का विजय करने वाला हो, जो मनुष्यों के बीच उनका प्राण के समान स्नेही, अन्नादि भोग्य पदार्थ को एव शीघ्रकारी कुशल पुरुष को वरण करता, प्राप्त करता है और जो राजा के समान जरा रहित बलवान् जवान मर्द को अपने कार्य के लिये चुन लेता है वह रक्षक पुरुष के समान सब कार्यों का साधक और सज्जन पुरुष के समान कल्याणकारी, क्रियाकुशल, प्रजावान् पुरुष के समान सब को सुख देने और कल्याण करने वाला, उत्तम आचरण करने वाला, उत्तम रीति से प्रजाओं का पालक, पोषक और धारण करनेवाला सबको उचित अधिकारो, ऐश्वर्यों और वेतनो का देने वाला तथा ग्राह्य और देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाला हो। वही अग्रणी, ज्ञानी पुरुष 'अग्नि' अर्थात् तेजस्वी पद पर स्थापित करने योग्य है।

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद् गुहा निषीदन्।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

भा०—गुफा या उत्तम ज्ञान मे स्थित विद्वान्, आचार्य देव व अन्य ज्ञानेच्छु पुरुषो को अपने ज्ञान मे धारण करता है। और जिस प्रकार सुरक्षित स्थान मे स्थित राजा विजयी पुरुषो को अपनी शरण में रखता या भय के अवसरो मे नियुक्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर

समस्त ऐश्वर्यों को अपने हाथों मे या वश में रखता हुआ ब्रह्माण्ड, आकाश या बुद्धि रूप गुहा मे विराजता हुआ अपने ज्ञान और बल के अधीन पृथिवी सूर्य आदि समस्त दिव्य लोकों, विद्वान् पुरुषों और प्राणों को स्वयं धारण करता है। और इसी बुद्धिरूप गुहा में इसको वे ज्ञान, उत्तम प्रज्ञा और श्रेष्ठ कर्मों के धारण करने वाले योगीजन साक्षात् करते हैं और वे महापुरुष ही हृदय से अति तीक्ष्ण किये हुए, अति सूक्ष्म रीति से विवेचित किये हुए विचारों और वेदमन्त्रों का अन्यों को उपदेश करते हैं।

राजा के पक्ष मे—अपने हाथ मे समस्त ऐश्वर्यों को रखने हारा सम्पन्न पुरुष विद्वानों को अपनी शरण मे रक्खे। वह स्वयं सबकी रक्षा में विराजे। प्रज्ञावान्, विद्वान् जन सुविचारित विचारों और वेदमन्त्रों का उपदेश करें और सबको ज्ञान प्रदान करें।

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥

भा०—गतिमान् और अन्यों को गति देने वाला सूर्य जिस प्रकार पृथिवी को धारण करता है और प्रकाश और आकाश को या उसमें स्थित लोकों को भी आकर्षण द्वारा स्थिर करता है और जिस प्रकार जन्म न लेने वाला, अजन्मा परमेश्वर सत्य ज्ञानों और सत्य वैज्ञानिक नियमों के द्वारा सब लोकों के निवास योग्य भूमि और आकाश को भी धारण करता और थामता है उसी प्रकार विद्वान् राजा भी सत्य विचारों और ज्ञानों मे स्वयं ज्ञानवान् और शत्रुओं का पराजेता होकर प्रजा से बसी पृथिवी और ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वत्-सभा दोनों को धारण करे और विजयशालिनी सेना को भी थामे, अपने वश करे। हे परमेश्वर और राजन्! हे विद्वन्! आप समस्त प्रजाजनों के स्वामी होकर हृदय को सन्तुष्ट करने वाले, प्राप्त करने योग्य ज्ञानों, ऐश्वर्यों और पदाधिकारों तथा उत्तम स्थानों को प्रदान करके पशुओं अर्थात् अज्ञान के बन्धन से ह०

बचाओ। अथवा हे राजन्! तू पशुओ के लिये गोचर स्थानों की रक्षा कर। अथवा उत्तम स्थानो और उत्तम पशुओं को नष्ट होने से बचा। हे विद्वन्! बुद्धि मे स्थिर होकर गूढ़ विज्ञान को प्राप्त कर। हे परमेश्वर! तू बुद्धि के भी अति गूढ़ स्थान मे परम विचार से प्राप्त होता है।

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥

भा०—जो मनुष्य परम बुद्धि या हृदय मे विद्यमान व्यापक परमेश्वर को जान लेता है और जो सत्य ज्ञानमय वेदविद्या की वाणी को या सत्य व्यवहार को धारण करने वाली विद्या, शास्त्र-व्यवस्था को प्राप्त कर लेता, अपने वश कर लेता है और जो विद्वान् पुरुष परस्पर एक स्थान पर संगत होकर सत्य तथा सत्य ज्ञानो को विशेष रूप से और विविध प्रकारो से खोलते, उनको प्रकट करते हैं। वह पूर्वोक्त शासक पुरुष उस विद्वान् जन के लिए नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने का प्रवचन करे।

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥५॥११॥

भा०—जो परमेश्वर विविध रूपों से छुपे कार्यों को प्रकट करने वाले कारणों मे से अपने महान् सामर्थ्य से आगे उत्पन्न होने वाले कार्यों को विविध रूपों से प्रकट करता है। और जो लताओं में विविध रूपों में प्रकट करता है और माताओं के गर्भ मे जो प्रजाओ को विविध प्रकारों से उत्पन्न करता है, वह ज्ञानवान्, चित्-स्वरूप सब में चेतना को देने वाला, सबका जीवनाधार होकर प्राणों और जलो के बीच में समस्त प्रजाओ को उत्पन्न करता है। ध्यानी, बुद्धिमान् पुरुष निर्माण करके जैसे अपना घर खड़ा कर लेते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष जिसको अच्छी प्रकार जान करके अपना परम आश्रय या शरण बना लेते है।

राजा के पक्ष मे—राजा शत्रुओं को विविध उपायों से रोकने वाली

सेनाओं और उत्तम ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों के आधार पर प्रजाओं को विविध उपायों से वश करे। वह स्वयं ज्ञानवान्, प्रजाओं को चेताने वाला हो। प्रजाओं के दमन में तत्पर हो और सबके जीवनों का रक्षक हो। धीर जन उसको अच्छी प्रकार राजा बनाकर सब प्रजा के शरण स्थान के समान बनावें। इत्येकादशो वर्गः।

[६८]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—पङ्क्तिः ॥ १, ४ निचृत्। अथवा—द्विपदा विराट् (१, ७ निचृत्) ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

श्रीणन्नुप॑ स्थाद्दिवं॑ भुर॒ण्युः स्था॒तुश्च॒रथ॑म॒क्तून्व्यू॑र्णोत्।
परि॒ यदे॑षा॒मेको॒ विश्वे॑षां॒ भुव॑द्दे॒वो दे॒वानां॑ महि॒त्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य सबका पालक पोषक होकर ओषधियों को परिपक्व करता है, आकाश में स्थित होता है और स्थावर तथा जंगम, चराचर जगत् को प्रकाशित करता है और वह समस्त प्रकाशमान पिण्डों में से अपने महान् सामर्थ्य के कारण सबसे श्रेष्ठ है, इसी प्रकार परमेश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का कालाग्नि द्वारा परिपाक करता हुआ ज्योतिर्मय प्रकाश को तथा महान् आकाश और समस्त तेजोमय सूर्य आदि को व्यापता है। वह सबका पालक पोषक प्रभु स्थावर और जंगम संसार को और जगत् को प्रकाशित करने वाले किरणों या रात्रियों को विविध प्रकार से प्रकट करता है, उनके अन्धकारों के आवरणों को दूर कर प्रकाशित करता है। अकेला ही इन सब प्रकाशक और सुखप्रद लोकों और पदार्थों के बीच अपने महान् सामर्थ्य से सबसे बड़ा प्रकाशक और सुखदाता होकर सर्वत्र विद्यमान है। विद्वान् और राजा ज्ञान और विद्वत् सभा को दृढ करता हुआ स्थावर और जंगम को पोषण करे, प्रकाशकारी विज्ञानों को प्रकट करे। वह अकेला ही अपने महान् सामर्थ्य से सब विद्वानों और विजिगीषुओं में सबसे बड़ा बने।

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥

भा०—जो तू हे जीवात्मन् ! जीव सूखे काठ से प्रज्वलित अग्नि के समान कार्य आदि के शोषण रूप तप, धर्मानुष्ठान से विशेष रूप से प्रकाशित होता है तब ही समस्त प्राण आदि गण और मनुष्य जन तेरे ज्ञान और कर्म का प्रेम से ग्रहण करते और सेवन करते है। और ज्ञान मार्गों से अविनाशी मोक्षमय परम सत्य को प्राप्त होते हुए सभी वे विद्वान् गण दिव्य गुण से युक्त स्वरूप को प्राप्त करते हैं।

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर ! सर्वव्यापक, सर्वज्ञानमय अनादि सत्य स्वरूप तेरी ही ये समस्त उत्तम कोटि की प्रेरणाए है। और ध्यान, धारणा और उस द्वारा आनन्द रस का पान भी अनादि सत्य स्वरूप तेरे ही, जल के पान के समान शान्तिदायक और जीवन के वर्धक हैं। इसी से तू समस्त लोकों और प्राणियो का जीवन स्वरूप, प्राणो का प्राण है। समस्त जन तेरे उपदिष्ट सत्य कर्मों ही को करें। जो तेरे निमित्त अपने आपको समर्पण करें और जो कोई तेरे विषय की अन्यो को शिक्षा दें तू सब कुछ जानता हुआ उसको ऐश्वर्य प्रदान कर।

राजा और विद्वान् के पक्ष मे—हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू सत्य व्यवस्था और ज्ञान का प्रेरक, उपदेशक और धारक हो। सब तेरे बनाये नियम कर्तव्यो का पालन करें। जो तुझे धन दे और जो तुझे उत्तम शिक्षा दे उसके ऐश्वर्य धन की तू भी रक्षा कर। अथवा उसको तू ऐश्वर्य प्रदान कर।

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥

भा०—सब सुखों का दाता परमेश्वर मननशील पुरुष के होने वाले संतान में भी अधिष्ठातृ रूप से विद्यमान है। वह ही इन समस्त ऐश्वर्य-मयी, रमण करने हारी, उत्पादक शक्तियों का पालक है। इसी कारण मूढ़ता रहित, ज्ञानवान् प्रजाजन और मरण या मृत्यु से रहित युवा पुरुष पुत्र प्राप्त करने की चाह करते हैं। और परस्पर मिल कर अपने प्राण बलों से एक दूसरे के शरीर में सन्तान उत्पादक वीर्य को ही पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ जानते हैं।

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य शासं तुरासः।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥१०॥१२॥

भा०—पुत्रगण जिस प्रकार प्रेम से पिता के ज्ञानमय उपदेश को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष अति शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर इस परमेश्वर या आचार्य या अग्रणी नायक के शासन को प्रेम और आदर से श्रवण करते और उसको विना विलम्ब के पालन करते हैं। दमन करने वाले, ज्ञान से युक्त, जितेन्द्रिय, सर्ववशकारी वह विद्वान् या परमेश्वर बहुत से अन्नादि कर्मफलों का स्वामी होकर ऐश्वर्यों और द्वारों को खोल देता है, प्रकट करता है। नक्षत्रों से आकाश के समान उनके दुःखरहित सुख को उत्तम उत्तम गुणों से जड़ देता है। उसी प्रकार जो प्रजागण राजा के शासन को पिता के पुत्र के समान सुनते और पालते हैं वह जितेन्द्रिय राजा उन्हें ऐश्वर्य प्राप्ति के उनको नाना द्वार खोल देता है, उनके सौभाग्य को नाना उत्तम सुखों से सजा देता है। इति द्वादशो वर्गः॥

[६९]

पराशरः शक्तिपुत्र ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—पङ्क्तिः। २, ३ निचृत्। ४ भुरिक्। ५ एकोना विराट्। अथवा—द्विपदा विराट् (४, ६, ६ निचृत्। ८ भुरिक्। १० विराट्)। पञ्चर्चं दशर्चं वा सूक्तम्॥

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१॥

भा०—शुद्ध, कान्तिमान्, प्रभात वेला को अपने उदय और प्रवेश से जीर्ण करने अर्थात् समाप्त करने हारे सूर्य के समान निरन्तर तेजस्वी, सब पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने हारा और सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ज्ञान-प्रकाश का प्रकाशक, सूर्य के तुल्य विद्वान् पुरुष परस्पर सम्बन्ध से मिले हुए स्त्री पुरुष दोनों को ज्ञान से पूर्ण करने हारा हो । हे विद्वन् ! तू विज्ञान और उन्नत कर्मों द्वारा ही ऊपर उत्तम रीति से विराजमान हो । और तू विद्वान् उत्तम पुरुषों का पुत्र, शिष्य होकर ही अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी पिता के समान आचार्य, परिपालक, गुरु हो ।

वीर्य के पक्ष में—आकाश में सूर्य के समान वीर्य देह में कान्ति-जनक है । वह परस्पर संगत प्राण और अपान दोनों को पूर्ण बल देता है, वह ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से सबके ऊपर होकर प्राण गण को 'पुं' नाम नरक अर्थात् शरीरिक कष्टों से बचाने से 'पुत्र' और उनका पालक होने से 'पिता' है । वीर्य रक्षा से देह में रोगादि नहीं होते और सभी इन्द्रियें बलवान् और सुरक्षित रहती हैं ।

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

भा०—ज्ञानवान्, मेधावी और उत्तम कर्तव्यों का विधान और उपदेश करने वाला अग्रणी ज्ञानी पुरुष विशेष रूप से और विविध विद्याओं का ज्ञाता होकर भी गर्व रहित हो । वह गौवों के थान के समान उत्तम ज्ञान रसों का देने वाला और पुष्टिकारक अन्नों का खाने वाला और अन्यों को उत्तम अन्नों का खिलाने वाला हो । वह जनों के बीच में

सबको सुखकारी सर्व प्रिय के समान आदर से बुलाने योग्य हो। वह प्राप्त होकर समस्त सभा जनों के बीच में विराजमान हो। और घर में सबको आनन्द देने हारा हो।

अध्यात्म में—आत्मा ज्ञानवान्, गर्वरहित, गायों के थान के समान आनन्दघन, अन्नादि कर्म फलों का भोक्ता, सुखकारी, स्मरणीय, देह के बीच विराजमान नवद्वारमय देह में जो रमण करने हारा है, वह भी 'अग्नि' कहाता है।

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥३॥

भा०—उत्पन्न हुए सुशील पुत्र के समान घर में सबको सुखी करने हारा, स्वयं प्रसन्न और सन्तुष्ट रह कर अश्व के समान वेगवान्, ज्ञानवान्, बलवान् होकर प्रजाओं को विद्वान् सभापति या राजा विविध संग्रामों और कष्टों से पार कर देता है। वह अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र के व्यापक, सार्वजनिक हितकारी कार्य में एक ही देश या स्थान में रहने वाली प्रजाओं को अपने नायक पुरुषों द्वारा वश करे। और सब विद्वानों के योग्य पदों और उत्तम २ कार्यों को अन्यों को प्राप्त करावे और स्वयं प्राप्त करे।

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! तेरे नियत किये हुए एवं उपदिष्ट इन कर्त्तव्यों और धर्मों का कोई भी नाश नहीं करे, कोई भी नहीं तोड़े। जिससे तू इन मनुष्यों के हित के लिये अति शीघ्र ही सुखजनक कार्य, प्रबन्ध अथवा उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थ प्रदान करता है और जिस कारण से तू अपने समान मान, आदर और बल से युक्त विद्वान् नायक, नेता पुरुषों के साथ मिलकर आज्ञा-वचनों को प्रकट करता है और उनसे मिलकर जब तेरा जो भी कार्य होता है उसको भी कोई नाश नहीं करे।

अथवा जब कोई तेरे कार्य का नाश करे, तभी तू अपने समान बलवान् पुरुषों से मिलकर उनके सहोयोग से बाधक कारणो को दूर कर ।

उषा न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके ॥५॥१३॥

भा०—प्रभात वेला को अपने उदय से जीर्ण अर्थात् समाप्त कर देने वाले सूर्य के समान विशेष प्रभा से युक्त तेजस्वी राजा और विद्वान् समस्त प्रजाओं को समस्त रूपों, प्रजाजनों और ऐश्वर्यों को जानने वाला, सुख से बसाने वाला होकर उस प्रजाजन को जाने, उसके अभिमत फल प्रदान करे। और स्वय उस दर्शनीय पुरुष के अधीन रहकर सुखजनक ऐश्वर्य को धारण करते हुए उसके आगे आदर से झुके और द्वारों को उसके स्वागत के लिये खोल दें।

परमात्मा के पक्ष मे—वह परमेश्वर सूर्य के समान विशेष कान्ति से युक्त, समस्त पदार्थों का ज्ञाता प्रकाशमान्, सबमे बसने वाला, अन्तर्यामी है। सब मनुष्य उसका ज्ञान करें। अथवा वही उस जीव को ज्ञान और सुख प्रदान करता है। विद्वान जन सब अपने आत्मा से सुख और ज्ञान को धारण करते हुए दुष्ट भावो को दूर करें और उस परम दर्शनीय प्रभु के अधीन होकर स्तुति करें। इति त्रयोदशो वर्गः।

[७०]

पराशर शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —पङ्क्ति. । १, ४ विराट् । ३, ५ निचृत् ॥ षडर्चं एकादशर्चं वा सूक्तम् ॥

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार उत्तम कान्ति, ज्वाला और दीप्ति से युक्त होकर समस्त पदार्थों को व्यापता है या खा जाता अर्थात् भस्म कर देता है, उसी प्रकार बुद्धि और विज्ञान के बल से सबका स्वामी ज्ञान-

वान् राजा उत्तम कान्तिमान् तेजस्वी होकर ऐश्वर्य से समृद्ध, धनधान्य से पूर्ण प्रजाओं और समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों को व्यापता और उनका भोग करता है। वह विद्वानों के बताये अथवा सूर्य, मेघ आदि के लोकोपकारक गुणों के अनुकरण में प्रजा के हितकारी कर्त्तव्यों को और मननशील जनों के जन्म को भी पालन करे और उसको सफल करे। हम सब उसकी ही शरण जावें।

ईश्वर के पक्ष मे—वह ज्ञान से सबका प्रेरक, स्वामी, तेजस्वी होकर सब पूर्ण शक्तियों, प्रजाओं और सब पदार्थों मे व्यापक है। वह सर्वज्ञ, सब दिव्य पदार्थों के धर्मों को और मननशील प्राणियों के जन्मों तक को व्यापता है, उनको जानता है, हम उसकी उपासना करें।

जीवपक्ष मे—जीव अपने बुद्धि बल से सब शक्तियों का तेजस्वी अग्नि के समान ज्ञान करे और भोग करे। वह दिव्य पदार्थों और विद्वानों के गुणों, धर्मों और कर्त्तव्यों जाने और फिर मानुष जन्म को प्राप्त करे, हम उस जीव को जानें।

गर्भो॒ यो अ॒पां गर्भो॒ वना॑नां॒ गर्भ॑श्च स्था॒तां गर्भ॑श्च॒रथा॑म्।
अद्रौ॑ चिदस्मा अ॒न्तर्दु॑रो॒णे वि॒शां न विश्वो॑ अ॒मृतः॑ स्वा॒धीः॥२॥

भा०—जो परमेश्वर प्राणों और सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भ के समान छुपा है या उसको पकड़ने वा थामने और वश करने वाला है। जो किरणों के बीच सूर्य के समान सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को वश करता है। जो स्थावर, अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक, उनको भी वश करने वाला है। जो विचरने वाले जगम पदार्थों के बीच व्यापक और उनका भी वशीकर्त्ता है [मन्त्र संख्या अष्टौ शतानि (८००)] और वह पर्वत के समान अभेद्य, कठिन पदार्थ के बीच में और गृह के समान द्वारवान्, सच्छिद्र पदार्थों मे भी व्यापक है, जो प्रजाओं को सुख से बसाने वाले राजा के समान समस्त पदार्थों में चेतना रूप से विद्यमान, जन्म-मरण रहित, अमृतमय और समस्त संसार को

उत्तम रीति से धारण करने हारा, स्थापन करने हारा और सबको पोषण करने हारा है। हम उसी परमेश्वर का भजन करें।

जीवपक्ष मे—जो अप् अर्थात् लिङ्ग शरीरो और प्राणो के बीच छुपा, उनको ग्रहण या धारण करने वाला है, वनस्पतियो के बीच छुपा हुआ या सेवनीय पदार्थों का भोक्ता है। वह चर, अचर, स्थावर, जंगम मे भी विद्यमान है। कठिन पदार्थ अस्थि और गृह के समान देह मे भी विद्यमान है। वह 'विश्वरूप' सब प्राणियो मे प्रविष्ट, न नाश होने वाला, सब कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता, उत्तम कर्म और ज्ञानवान् है। उसके भोग के लिये ये सब पदार्थ हैं। उस जीव को हम जानें, प्राप्त करें।

स हि क्षुपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥

भा०—जो परमेश्वर और ज्ञानी पुरुष इस मनुष्य प्राणी को उत्तम उपदेश वचनों से बहुत अधिक ज्ञान प्रदान करता है वह ही अग्नि जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को नाश करने से रात्रि का स्वामी कहाता है, उसी प्रकार अज्ञानमय मोहरात्रि का नाश करने वाला ज्ञानमय परमेश्वर ऐश्वर्यों को अपने उपासको के लिए बहुत अधिक प्रदान करता है। हे ज्ञानवन् विद्वन् और परमेश्वर! विद्वानो और उत्तम गुणो की उत्पत्ति और सब मनुष्यो को भी उनके विषय मे अच्छी प्रकार जानते हुए इन समस्त भूमिवासी जीवो और पदार्थों की रक्षा कर।

इसी प्रकार अग्रणी पुरुष प्रजाजन को ऐश्वर्य दे, उत्तम वचनो से ज्ञान दे और वह सब उत्तम व्यवहारो, विद्वानो और मनुष्यों को जान कर उनके हितार्थ नाना ज्ञानो और धनो की रक्षा करे।

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्व॒र्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥४॥

भा०—अँधेरी रात्रियें जिस प्रकार उगते सूर्य या प्रकाशमान् अग्नि को बढ़ाती हैं, उसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करती हैं, इसी प्रकार जिस

अग्रणी नायक को त्रिविध रूपों वाली, विविध प्रकार की, पूर्व से ही विद्यमान या पूर्व शिक्षित, सिद्धहस्त, नाना साधनों से पूर्ण, शत्रु-नाशकारिणी सेनाएं बढावें और जो जल से युक्त वा सूर्य से प्रेरित भूमि स्थावर वृक्ष से बने रथ के तुल्य स्थिर पार्थिव जड़ पदार्थ से ही जगत् के मरण के योग्य भूमण्डल को रथवत् बनाता है। इसी प्रकार जो राजा सत्य न्याय से उज्ज्वल स्थावरों पदार्थों से रथ के तुल्य, रमणीय स्थिर राजा के लिये उत्तम आनन्दप्रद राज्य का निर्माण करता है। वह समस्त कर्मों को सर्वहितकारी, सत्य, न्यायानुकूल, ठीक ठीक करता हुआ प्रजा का सुखकारी, प्रतापी और तेजस्वी राज-पद पर विराज कर विद्वान् के समान सबको सुखों, अधिकारों और ऐश्वर्यों का देने वाला होकर सेवित और आश्रय किया जाता है। उसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य को नाना प्रकार की सर्ग-प्रलय-कारिणी शक्तियां बढ़ा रही हैं। जिस सत्यज्ञानमय की महिमा को चराचर जगत् बढ़ा रहा है, वह सब सत्य कर्मों के करने वाला सुखमय, सर्वसुखप्रद, सर्वत्र व्यापक परमेश्वर उपासना और आराधना करने योग्य है।

जीव के पक्ष में—रात्रियां और दिन जिसके शरीर को बढाती हैं, प्राणों से युक्त जिसके सामर्थ्य को चर अचर देह बतला रहे हैं, वह सब कर्मों का कर्त्ता सुखकारी, सुखप्रद, हृदय में स्थिर आत्मा साधना करने योग्य है। अत्र "स्थातुः। च। रथम्।" इति पदपाठश्चिन्त्यः॥ स्थातुः। च रथम्। इति पदपाठः (१।५८।५) (१।६८।१) इत्यत्र च द्रष्टव्यः।

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥५॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पृथिवी आदि लोकों और ज्ञान-वाणियों में और सेवन करने योग्य किरणों और जलों में, सूर्य के समान उत्तम कथन करने योग्य गुण को धारण कराता है। सब ही हममें से आदित्य के समान तेजस्वी बलवान् तुझ को प्राप्त होते हैं। बहुत से मनुष्य तेरी

विविध प्रकार से उपासना करते हैं। बूढ़े पिता के धन को जिस प्रकार पुत्र ले लेते हैं उसी प्रकार अति पुराण, सनातन पालक तुझ से परम ज्ञान और ऐश्वर्य को सब मनुष्य प्राप्त करें।

राजा के पक्ष में—राजा गौ आदि पशु और भोग्य ऐश्वर्यों के निमित्त उत्तम कीर्ति को धारण करे। सब सुखकारी, प्रतापी, बलवान् को शरण रूप से प्राप्त हो या कर प्रदान करें। नायक जन उसकी सेवा करें। पिता के धन के समान उसके ऐश्वर्य को प्रजागण भोग करें या बढ़ावें।

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥६॥

भा०—यह परमेश्वर साधना करने वाले भक्त के समान ही उसकी उन्नति करने का अभिलाषी होता है। वह शस्त्रास्त्र की वर्षा करने वाले शूरवीर के समान दुःखों को दूर फेंक देने वाला या पृथिवी आदि लोकों का संचालक और सर्वत्र व्यापक है। वह चढ़ाई करने वाले राजा के समान सदा अन्धकार पर विजय पाने वाला अति कान्तिमय होकर आत्मा वा परमात्मा के साथ मिलकर, प्राप्त करने योग्य आनन्द लाभ के अवसरों पर अनुभव करने योग्य है।

राजा या सेनापति के पक्ष में—वह राज्यवृद्धि की आकांक्षा करता है, धनुर्धर के समान सदा शूरवीर, सेना बल से प्रयाण करने वाला होकर अति भयानक संग्राम के अवसरों पर अति तेजस्वी हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

पराशर शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत्। ३, ४, ८, १० विराट्। ६ एकोना विराड् त्रिष्टुप् भुरिक् पङ्क्तिर्वा ॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥

भा०—कामनाशील स्त्रियें अपने कामना युक्त पति को जिस प्रकार प्राप्त होकर उसे प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार एक ही देश में रहने वाली

प्रजाएं प्रेमपूर्वक चाहती हुई अपने प्रति प्रेम करने वाले पालक राजा को प्राप्त होकर उसे अच्छी प्रकार समृद्ध करें। किरणें जिस प्रकार अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई कुछ कुछ अन्धकार से अँधियारी, कुछ २ ललाई लिये हुए उषाकाल को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली भूमियें, उनके निवासी प्रजागण या विद्वान् जन ज्ञान से सम्पन्न, आगे बढ़ने वाले कान्तिमान्, तेजस्वी संग्रह करने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले शत्रुओं को जला डालने वाले राजा या विद्वत्सभा को प्राप्त हों।

परमेश्वर के पक्ष में—प्रेम वाली स्त्रियें जिस प्रकार प्रेमी पति को चाहती हैं उसी प्रकार एक स्थान की प्रजाएं अपने पालक नित्य परमेश्वर का भजन करें। किरणें जिस प्रकार उषा को प्राप्त हों उसी प्रकार विद्वान्, ज्ञानवाली प्रजाएं पापनाशक, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करें।

वी॒ळु चि॑द्दृ॒ळ्हा पि॒तरो॑ न उ॒क्थैरद्रिं॑ रुज॒न्नङ्गि॑रसो॒ रवे॑ण।
च॒क्रुर्दि॒वो बृ॑ह॒तो गा॒तुम॒स्मे अहः॒ स्व॑र्विविदुः के॒तुमु॒स्राः॥ २॥

भा०—विश्व को पालन करने वाले वायु गण जिस प्रकार बड़े बलवान्, दृढ मेघ को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और अग्नि से बलवान् विद्युतें या बारूद की नालें जिस प्रकार बड़ी गर्जना सहित दृढ पर्वत को तोड़ फोड़ देती है उसी प्रकार प्रजा का पालन करने वाले ज्ञानी पुरुष और देह मे प्राणों के समान देश के रक्षक वीर जन ज्ञानोपदेशों से बड़े बलवान् और दृढ अभेद्य अज्ञान अन्धकार को और शत्रु गढ़ को बड़े भारी वेदमय शब्द और घोर गर्जना से तोड़ें, विनाश करें। किरणें जिस प्रकार सब पदार्थों के ज्ञान कराने वाले प्रकाश को उत्पन्न करती है और आदित्य को प्राप्त होती है उसी प्रकार ज्ञानी विद्वान् पुरुष बड़े भारी ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होने के लिये हमें मार्ग का उपदेश करें। और अधीन होकर वास करने वाले अन्तेवासी, शिष्यगण ज्ञानवान् गुरु को प्राप्त हों। अथवा निष्ठ होकर रहने वाले पुरुष सुखकारी ज्ञानवान् परमेश्वर को

ज्ञान करें, उसे प्राप्त हो। इसी प्रकार वीर पुरुष हमारे हित के लिये बड़े तेजस्वी पुरुष के अधीन पृथिवी को करें। और वे विद्वान् सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुओं से न मारे जाने वाले, ध्वजा के समान ऊंचे वीर पुरुष को प्राप्त हो।

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

भा०—स्वामी, वैश्यगण जिस प्रकार धन का संग्रह करते हैं और उस की वृद्धि करते हैं और मितव्ययता से स्वयं उसका भोग न कर के साधु-सज्जनो और सन्तानो पर व्यय कर देते हैं उसी प्रकार विद्याभिलाषिणी कन्याएं और गृह की स्वामिनी, ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली, विविध उपायो से प्रजाओ का भरण पोषण करने मे कुशल होकर सत्य वेद, ज्ञान को धारण करें और धन का लाभ करें या उसे धन के समान सञ्चय करें और बाद मे भी उसका अध्ययन और चिन्तन तथा स्मरण और पोषण करें। वे तृष्णा से या लोलुपता से धन का लोभ न करती हुई अच्छी प्रकार विद्वान् पुरुषो को और अपने से उत्पन्न हुए पुत्रो को उत्तम ज्ञान और अन्न से बढाती हुई उत्तम कर्मो और फलों को प्राप्त हों।

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विशेष बल को धारण करनेवाला या विविध प्रजाओं का पालक पोषक नली आदि द्वारा विशेष उपाय से धारण किया जाकर वायु इस अग्नि को मथता है, नाना प्रकार से तेज करता है, तब वह घर घर मे श्वेत, शुभ्रवर्ण का होकर प्रकट होता, प्रकाशित होता है। तभी घर भूनने वाला, तीव्र अग्नि के रूप मे होकर ताप-क्रिया को प्रकट करता है। इसी प्रकार विशेष एवं विविध प्रजाओं का पोषक और विशेष रूप से धारित और पोषित पृथिवी पर वेग से पयाण करनेवाला राजा इस

अग्रणी नायक को मथे, प्रकट करे। अर्थात् संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा जो सबसे अधिक उत्तम सिद्ध हो उसको अग्रणी सेनापति बनावे। वह प्रत्येक स्वीकार करने और प्रजा और देश को अपने वश करने के अधिकार पर अति प्रबल और सम्पन्न होकर विजयशील हो। इसके अनन्तर सब पदार्थों को भून देने वाले, अग्नि के समान शत्रुओं को पीडित करने मे समर्थ होकर राजा उस नायक को समवाय बल मे प्राप्त होकर अर्थात् उसे उच्च-पद प्रदान कर राजा के समान प्रबल राष्ट्र के विजय के लिए दूत अर्थात् अपने प्रतिनिधि के कार्य पर स्थापित करे।

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥

भा०—मनुष्य जब सबसे बड़े पालक परमेश्वर के ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त करने के लिए प्राप्त करने योग्य साक्षात् रसरूप आत्मानन्द का सम्पादन करता है तब वह ज्ञानवान् होकर परमेश्वर को स्पर्श करता हुआ अर्थात् उसका योगाभ्यास द्वारा आनन्द लेता हुआ बन्धन से मुक्त हो जाता है या अन्धकार को दूर करता है। धनुर्धर जिस प्रकार प्रगल्भता से बाण फेंकता है उसी प्रकार सब विषय वासनाओं या कर्मबन्धनों को दूर फेंकने हारा, बाधक कारणों को पराजित करने वाले सामर्थ्य से साधक के इस हित के लिए अज्ञान-नाशक ज्ञान-प्रकाश को प्रदान करता है और सूर्य जिस प्रकार अपनी कन्या के समान उषा मे कान्ति को धारण कराता और कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली अपनी भार्या मे तेज अर्थात् वीर्य को धारण करता है, उसी प्रकार दानशील, ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर या प्रकाश का द्रष्टा आत्मा अपनी कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होने वाली, सब सङ्कल्पों को पूर्ण करने वाली प्रकृति अथवा परमानन्द रस को दोहन अर्थात् प्राप्त करने वाली चिति शक्ति में कान्ति, तेज, प्रकाश और दीप्ति को धारण करता है।

राजा के पक्ष मे—जैसे बडे भारी जगत् के पालक आकाश या

प्रकाश के लिए क्षितिज को स्पर्श करने वाला सूर्य इस प्रकाश को फेंकता और अन्धकार को दूर करता है, वैसे ही प्रजापालक ज्ञानी पुरुष सबके पालक ज्ञान-प्रकाश के लिए ऐसे बल को उत्पन्न करे और शत्रु को दूर करे। धनुर्धर होकर प्रगल्भता से शत्रु पर बाण फेंके। दानशील या विजिगीषु राजा अपने ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाली प्रजा मे तेज पराक्रम को धारण करावे और उसके आश्रय रहकर अपने मे तेज करे। इति पञ्चदशो वर्गः।

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! तेरे लिये, तुझे प्राप्त व प्रसन्न करने के लिये जो पुरुष अपने घर में या अपने इन्द्रियो के दमन कार्य या देह मे सब प्रकार से विशेष तेजस्वी होकर सूर्य के समान चमकता है, प्रतिदिन कान्तिमय देव और प्रिय आचार्य के लिये नमस्कार आदर और अन्नादि पदार्थ प्रदान करता है हे ज्ञानवन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! तू विद्या और शिक्षा से तथा ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ाने हारा होकर इस शिष्य या साधक के ज्ञान, बल और आयु को बढ़ा देता है और तू जिस रथवान्, देहवान् या आत्मवान् या आनन्द रस से युक्त पुरुष को सन्मार्ग पर चलाता है वह ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है।

राजा के पक्ष मे—जो तेरे शासन में चमक जाता है और जो सब दिनों तेरा आदर करता और तुझे इच्छानुसार अन्नादि देता है, हे अग्रणी राजन् ! तू राजा प्रजा दोनो को बढ़ाने हारा होकर उसके बल को बढ़ा और जिस रथारोही, महारथी शासक को तू अपनी आज्ञा मे चलावे उसे ऐश्वर्य से युक्त कर।

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

भा०—क्षरने वाली, देशों में सर्पण करने वाली, बहती बहती बड़ी बड़ी नदियां जिस प्रकार समुद्र को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार समस्त विद्याभिलाषी जन ज्ञानवान् आचार्य को प्राप्त करते है और समस्त परस्पर सम्पर्क, परस्पर सहयोग से मिलकर एक हुई सेनाएं और संगठित प्रजाएं अग्रणी नायक और सेनापति का आश्रय लेती है। हमारा सेना बल और अन्नादि ऐश्वर्य बन्धुओं द्वारा जाना जाय, अर्थात् कोई हमारे बल और ऐश्वर्य का पार न पा सके। ज्ञानवान् पुरुष विद्वानों और विजयी पुरुषों के द्वारा उनके बल पर उत्तम ज्ञान और स्तम्भन बल प्राप्त करावें।

परमेश्वर के पक्ष में—समुद्र का नदियों के समान, समस्त भक्त जन ज्ञानवान्-प्रभु का आश्रय लेते है। हमारा ज्ञान और आयु इन्द्रियों द्वारा व्यय न हो। वह ज्ञानी आत्मा विद्वानों और प्राणों के आश्रय उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥

भा०—जो तेज या ओज, आग्नेय तत्व शरीर में, जीवन की रक्षा करनेवाले या प्राणों के पालन करने वाले पुरुष को अन्न के खाने पचाने तथा कामना और संकल्प करने के लिए प्राप्त होता है वही अति शुद्ध वीर्य स्त्री-पुरुष के परस्पर संग-काल में गर्भ में स्थापित किया जाता है। तभी तेजस्वी, सूर्य व अग्नि के समान कामना से युक्त पुरुष वीर्यवान् दोष रहित हृष्ट पुष्ट, युवा होने वाले उत्तम गुणों और कर्मों को धारण करने वाले अथवा उत्तम ध्यान ज्ञान वाले पुत्र को उत्पन्न करता है और उसको उत्तम मार्ग में प्रेरित करता है।

राजा के पक्ष में—सब पर शासन करने के लिये राजा को शुद्ध शासन-बल अभिषेक द्वारा प्राप्त हो। वह अपने राष्ट्र में अग्रणी तेजस्वी,

युद्ध मे अनिन्दनीय, उत्तम बलवान्, युवा पुरुषो को पैदा करे और उनको ठीक राह पर चलावे।

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥

भा०—जो शूरवीर राजा और ज्ञानी विद्वान् मन के समान तीव्र होकर अकेला शीघ्र ही युद्ध के मार्ग के समान इस ससार के आवागमन के मार्ग को भी पार कर जाता है और जो दूसरा सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष एक ही साथ सत्य गुणों और ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है, वे दोनो शरीर मे प्राण और अपान के समान राष्ट्र मे रहते हुए मित्र, सबका स्नेही, ज्ञानवान् ब्राह्मण और 'वरुण' दुष्टों का वारक क्षत्रिय दोनों गुणों से प्रकाशमान, मन्त्री और राजा, उत्तम बलवान् बाहुओं वाले अथवा श्रेष्ठ व्यवहारो मे कुशल, गौओं मे तृप्तिकारी दुग्ध रस के समान विद्वानों और प्राणो मे प्रिय, अमृत, आत्मज्ञान या आत्मतत्व के समान भूमियों मे और प्रजाओं में सबको तृप्त करने वाले जल और अन्न की रक्षा करते हुए रहे।

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन्।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१०॥१६॥

भा०—हे ज्ञानवन्! अग्रणी राजन्! प्रभो! तू हमारे पिता, पितामह आदि से चले आये मैत्री भावो को नष्ट मत होने दे। तू क्रान्तदर्शी, विद्वान् और सब पदार्थों का जानने हारा होकर सदा हमारे सन्मुख रह। बुढ़ापा इस रूप को जल के समान या मेघखण्ड के समान नाश कर देता है उस महा विपत्ति या सकट या मृत्यु के पहले ही तू हमे ज्ञान प्रदान कर अर्थात् जीवन मुक्त कर। इति षोडशो वर्गः।

[७२]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप। १, २, ५, ६, ९ विराट्। ७ निचृत्। ३, ८ एकोना विराट् त्रिष्टुप्। भुरिक्पङ्क्तिर्वा।

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१॥

भा०—जो पुरुष अनादि सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर के विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों का अथवा सृष्टि नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है। वह मनुष्यों के हितकारी बहुत से ज्ञानों को हाथ में, अपने वश मे रखता हुआ ज्ञानी पुरुष, अग्रणी नायक, समस्त जलों के समान जीवनप्रद, अन्नों के समान सुखप्रद, अमृत ज्ञानों को और नित्य सत्यार्थ प्रतिपादन करने वाले वेद-ज्ञानों को अपने आत्मा मे प्रकाशित करता हुआ सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का ईश्वर या स्वामी हो जाता है।

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

भा०—हम मे से सब मे व्यापक होकर बसने वाले सबके ऊपर, सबके भीतर और बाहर विद्यमान प्रभु को चाहते हुए भी सब कोई उसे नहीं पाते। प्रत्युत मोहरहित, ज्ञानी, श्रमशील, तपस्वी, परम पद को प्राप्त कराने वाले ज्ञान और कर्म के धारण करने वाले, अमर जीव, सूक्ष्म जल जिस प्रकार सूर्य के किरणों द्वारा उच्च आकाश मे चले जाते हैं उसी प्रकार उस ज्ञानमय प्रभु के परम प्राप्तव्य स्वरूप मोक्ष मे विराजते हैं।

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! आचार्य! राजन्! जो शुद्ध पवित्र होकर शुद्ध पवित्र तुझको तीन वर्षों तक सेवन करें, तेरा ही सत्सग करें वे उत्तम क्रियाकुशल और वरणीय, उत्तम चरित्रवान् पुरुष यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की उपासना, प्रार्थना, तथा उत्तम श्रेष्ठ कर्मों के अनुसार ही समस्त व्यवहारों और उत्तम नामों को भी धारण करें और वे जल से अपने देहों को स्नान करावें, गुरुओं के पास विशेष योग्यता प्राप्त करने

के लिये तीन वर्ष उनका सत्संग करके निष्णात हों। इसी प्रकार अग्नि अर्थात् राजा के अधीन भी तीन वर्ष निष्कपट सेवा करके स्थिर कार्य पर विशेष उपाधि सहित नियुक्त किये जायं। अभिषेक द्वारा उनको विशेष रूप से दीक्षित कर दिया जाय।

परमेश्वर के पक्ष में—शुद्ध भाव से तीन वर्ष लगातार ब्रह्मचर्यपूर्वक निष्कपटता से रहने पर तपस्वी जन परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों को साक्षात् करने लगते हैं और तेज से उनके देह तमतमाने लगते हैं। यह तथ्य अनुभवापेक्ष है।

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥

भा०—मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले, प्राणों के साधक अर्थात् उनको वश करने वाले, निरन्तर ज्ञान सम्पादन करने वाले सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक विद्वान् जन बड़े भारी सूर्य और पृथिवी के समान देह में स्थित प्राण और अपान, भूमि और राज्य या विद्या और कर्म दोनों को उत्तम रीति से धारण करते और पुष्ट करते हैं। ज्ञानवान् पुरुष समस्त प्राप्त शक्तियों को धारण करता हुआ, परम सर्वोच्च प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में स्थित प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर को साक्षात करे।

राजा के पक्ष में—शत्रुओं को रुलाने वाले वीर राजा के अधीन और राष्ट्र या प्रजापालक प्रभु के अधीन, विशेष ज्ञान प्राप्त किये हुए पुरुष बड़े राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को अपने वश करें। ज्ञानी राजा के आधे पदाधिकार को धारण करने हारा प्रजाजन सर्वोच्च पद पर स्थित अग्रणी नायक को प्राप्त करे। राजा का आधा बल उसका राष्ट्र है और आधा वह स्वयं है। तभी राजा और प्रजावर्ग दोनों तुले रह सकते हैं नहीं तो एक दूसरे को नष्ट कर दें।

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः॥५॥१७

भा०—हे आचार्य ! विद्वन् ! पूजनीय ! अच्छी प्रकार परस्पर जानने हारे जिस प्रकार गोड़े समेट करके सभ्यता से बैठते है, उसी प्रकार शिष्य-गण गुरुजन के समीप बैठें और साधक जन भी उसी प्रकार हे परमेश्वर! आसन लगा कर ईश्वरोपासना के लिये बैठें । गृहपत्नियों से युक्त गृहस्थ-जन भी नमस्कार और आदर सत्कार योग्य पुरुष को नमस्कार और आदर सत्कार करें । मित्र के लिये जिस प्रकार मित्र उसके देखते ही अपने शरीर तक को आलिंगन आदि द्वारा त्याग देता है उसी प्रकार हे वीरो और विद्वान् जनो ! परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए आप लोग स्पर्द्धा पूर्वक एक दूसरे के ज्ञान और बल की वृद्धि मे अपने शरीरों तक को भी परित्याग कर दो । एक दूसरे के लिये प्राण तक त्याग दो । इसी प्रकार हे साधको ! त्याग और तप द्वारा अपने शरीर को कृश करते अर्थात् संयमी बनाते हुए अधर्म से अपने को बचाते रहो । इति सप्तदशो वर्गः ।

त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन् निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥

भा०—सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना मे कुशल पुरुष जिन २१ ज्ञान करने योग्य गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त तत्वों का साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब तुझ मे ही स्थित हैं । उन इक्कीसों के द्वारा समान आश्रय पर स्थित, समान रूप से एक ही को सेवन या प्रेम करने वाले मित्र के समान प्रेम से अमृत, आत्मतत्व की रक्षा करते हैं । हे प्रभो ! तू विद्वान् जन पशुओं के समान मूर्ख जनों का और स्थावर वृक्ष और भूमि आदि लोकों को और अन्य समस्त जंगम प्राणिसमूह को भी पालन कर ।

राजा के पक्ष में—प्रजापालक राजा या राष्ट्र के उपकारी जन

रहस्यमय २१ अधिकार-पदों को जानें। वे सब राजा के ही आश्रय पर स्थित हैं। वे सब समान रूप से राजा की रक्षा करें और राजा राष्ट्र में गौ आदि पशुओं, वृक्ष, ओषधि आदि स्थावरों और अन्य वन के जन्तुओं की भी रक्षा करे।

अध्यात्म में—शरीर के घटक २१ सौ तत्त्व तुझ आत्मा में आश्रित हैं। उन द्वारा ही आत्मा की रक्षा करते हैं। वह आत्मा ज्ञानेन्द्रियों को, कर्मेन्द्रियों को और देह की भी रक्षा करे।

अथवा—विद्वान् लोग चित्त में धारण करने योग्य चार वेद और तीन क्रिया, विज्ञान और उद्योग, इन सातों को श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा धारण करें। उनसे अमृत, मोक्षसुख को तथा पशु, भृत्य, स्थावर, चर आदि सम्पदा को प्राप्त करें और रक्षा करें।

त्रि. सप्त—७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ और ७ सोमयज्ञ (सा०)। विशेष विवरण देखो अथर्ववेद (१।१।१)

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥

भा०—विद्वन्! राजन्! ईश्वर! तू समस्त जानने योग्य पदार्थों और ज्ञानों को जानता हुआ प्रजाओं के जीवन धारण करने के लिए दुःखदायी अज्ञान, क्षुधा, पीडा आदि रोकने वाले अन्नादि ओषधियों और उपायों को निरन्तर उनके स्वभाव के अनुकूल विविध प्रकार से रचता और प्रदान करता है और आत्मा के भीतर समस्त तत्त्वों को जानता हुआ हे विद्वन्! तू आलस्य रहित होकर विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मोक्ष मार्गों को नाना प्रकार से विधान या उपदेश कर। तू ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त करने हारा, सबको ज्ञानवाणी का संदेश सुनाने हारा हो।

राजा के पक्ष में—अग्रणी नायक सब कुछ ज्ञातव्यों को जानता हुआ प्रजाओं की नाना विपत्तियों को रोकने वाले अन्न संग्रह आदि उपायों को प्रजाओं के जीवन के लिए करे। राष्ट्र के भीतर बड़े राजमार्गों

को बनवावे, आलस्य रहित होकर आज्ञाएं देता हुआ शत्रु संतापक एवं दुष्टों का दण्डकारी हो।

स्वाध्यो॑ दि॒व आ स॒प्त य॒ह्वी रा॒यो दुरो॒ व्यृ॑त॒ज्ञा अ॑जानन्।
वि॒दद्गव्यं॑ स॒रमा॑ दृ॒ळ्हमू॒र्वं येना॒ नु कं॒ मानु॑षी॒ भोज॑ते॒ विट् ॥८॥

भा०—उत्तम रीति से आत्मचिन्तन करने वाले, सत्य वेदज्ञान के वेत्ता पुरुष, सातों इन बडे प्राणों को मूर्धा स्थान के या ज्ञान-प्रकाशक ज्ञानैश्वर्य के सात द्वार ही जानते है। बोध कराने वाली बुद्धि इन्द्रियों मे होने वाले दृढ़ बल को प्राप्त करती है, जिससे मानुष प्रजा सुख प्राप्त करती है।

राष्ट्र-पक्ष मे—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत्, कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें। अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करने वाली सेना पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रुनाशक बल को प्राप्त करती है और जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्न-ऐश्वर्य का भोग करती है। अथवा पूर्वोक्त ७ तथा वेद और उनके ६ अग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते है। ज्ञानवती बुद्धि या विद्वान् जन इनमे ही वेदवाणियो का प्रबल ज्ञान प्राप्त करते और मनुष्य नाना सुख भोगते है।

आ ये विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ त॒स्थुः कृ॑ण्वा॒नासो॑ अमृत॒त्वाय॑ गा॒तुम्।
म॒ह्ना म॒हद्भिः॑ पृथि॒वी वि त॑स्थे मा॒ता पु॒त्रैरदि॑ति॒र्धाय॑से॒ वेः ॥९॥

भा०—जो विद्वान् जन अपनी समस्त सुन्दर वलिष्ठ सन्तानों को उत्पन्न कर उनको सुशिक्षित कर चुकते है वे अमरपद, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मोक्षमार्ग का आश्रय लेवें। माता जिस प्रकार अपने पुत्रों सहित विराजती है इसी प्रकार समस्त पृथिवी अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर अपने बड़े-बड़े सामर्थ्यों से कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर मे जाने वाले आत्मा, जीवगण के धारण पोषण के लिए अपने महान् सामर्थ्य से विविध रूप से स्थित होती है। अथवा यह विस्तृत अखण्ड

परमेश्वरी शक्ति तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण करने के लिए बड़े बड़े पुत्रो से माता के समान विशेष रूप से स्थित रहती है।

राज्यपक्ष मे—जो शत्रुओ को दूर करने के सब उत्तम उपायो को करते हैं। वे अन्न, जल के तथा राज्य के सुख पाने के लिए पृथिवी पर शासन करें। और पृथिवी माता अखण्ड, अदीन होकर अपने बडे बड़े तेजस्वी वीर पुत्रो सहित बड़े भारी बल से सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पालन-पोषण के लिए विविध प्रकार से स्थिर रहे।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

भा०—जो मरण धर्म से रहित, मुमुक्षु व मुक्त जन बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चक्षु या इन्द्रियो को सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त कर लेते हैं वे इस परमेश्वर के आश्रय मे अति उत्तम शोभा या ज्ञान दीप्ति को धारण करते हैं। मेघ से गिरती जलधाराए या वेग से चलती नदियें जिस प्रकार नीचे की ओर वह आती हैं, हे विद्वन्! हे ईश्वर! उसी प्रकार आपके साधको की पूर्वोक्त दशा मे रसधाराए साक्षात् स्त्रवित हों। ज्योतिष्मती, प्रज्ञाओ को वे जानें या साक्षात् करें।

राष्ट्रपक्ष मे—विद्वान् जन ज्ञान से युक्त विद्वत्-सभा की दो आंखों के समान दो मुख्य पुरुषो को नियुक्त कर लें तब उस मुख्य राजा के ऊपर राज्यलक्ष्मी का भार रक्खें। तब जलधाराएं नदीधाराओं के समान उस पर बहे अर्थात् उसका अभिषेक हो। हे अग्रणी नायक! तब विद्वान् लोग तेजोयुक्त वेदवाणियो का ज्ञानोपदेश करें या तेजस्विनी उषाओ के समान प्रभाववर्द्धक क्रियाओ का तुझे ज्ञान दें।

[७३]

पराशर. शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १, २, ४, ५, ६, ७, ९, १० निचृत्। ८ एकोना विराट् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

को बनवावे, आलस्य रहित होकर आज्ञाएं देता हुआ शत्रु संतापक एवं दुष्टों का दण्डकारी हो।

स्वाध्यो॑ दि॒व आ स॒प्त य॒ह्वी रा॒यो दुरो॒ व्यृ॑त॒ज्ञा अ॑जानन्।
वि॒दद्गव्यं॑ स॒रमा॑ दृ॒ळ्हमू॒र्वं येना॒ नु कं॒ मानु॑षी॒ भोज॑ते॒ विट्॥८॥

भा०—उत्तम रीति से आत्मचिन्तन करने वाले, सत्य वेदज्ञान के वेत्ता पुरुष, सातों इन बड़े प्राणों को मूर्धा स्थान के या ज्ञान-प्रकाशक ज्ञानैश्वर्य के सात द्वार ही जानते हैं। बोध कराने वाली बुद्धि इन्द्रियों मे होने वाले दृढ़ बल को प्राप्त करती है, जिससे मानुष प्रजा सुख प्राप्त करती है।

राष्ट्र-पक्ष मे—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत्, कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें। अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करने वाली सेना पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रुनाशक बल को प्राप्त करती है और जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्न-ऐश्वर्य का भोग करती है। अथवा पूर्वोक्त ७ तथा वेद और उनके ६ अंग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते हैं। ज्ञानवती बुद्धि या विद्वान् जन इनसे ही वेदवाणियों का प्रबल ज्ञान प्राप्त करते और मनुष्य नाना सुख भोगते हैं।

आ ये विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ त॒स्थुः कृ॑ण्वा॒नासो॑ अमृत॒त्वाय॑ गा॒तुम्।
म॒ह्ना म॒हद्भिः॑ पृथि॒वी वि त॑स्थे मा॒ता पु॒त्रैरदि॑ति॒र्धाय॑से॒ वेः॥९॥

भा०—जो विद्वान् जन अपनी समस्त सुन्दर बलिष्ठ सन्तानों को उत्पन्न कर उनको सुशिक्षित कर चुकते हैं वे अमरपद, ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मोक्षमार्ग का आश्रय लेवें। माता जिस प्रकार अपने पुत्रों सहित विराजती है उसी प्रकार समस्त पृथिवी अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर अपने बड़े-बड़े सामर्थ्यों से कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर मे जाने वाले आत्मा, जीवगण के धारण पोषण के लिए अपने महान् सामर्थ्य से विविध रूप से स्थित होती है। अथवा वह विस्तृत अखण्ड

परमेश्वरी शक्ति तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण करने के लिए बड़े बड़े पुत्रों से माता के समान विशेष रूप से स्थित रहती है।

राज्यपक्ष मे—जो शत्रुओ को दूर करने के सब उत्तम उपायो को करते हैं। वे अन्न, जल के तथा राज्य के सुख पाने के लिए पृथिवी पर शासन करें। और पृथिवी माता अखण्ड, अदीन होकर अपने बड़े बड़े तेजस्वी वीर पुत्रो सहित बड़े भारी बल से सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पालन-पोषण के लिए विविध प्रकार से स्थिर रहे।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

भा०—जो मरण धर्म से रहित, मुमुक्षु व मुक्त जन बाह्य और आभ्यन्तर दोनो चक्षु या इन्द्रियो को सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त कर लेते हैं वे इस परमेश्वर के आश्रय मे अति उत्तम शोभा या ज्ञान दीप्ति को धारण करते हैं। मेघ से गिरती जलधाराएं या वेग से चलती नदियें जिस प्रकार नीचे की ओर बह आती हैं, हे विद्वन्! हे ईश्वर! उसी प्रकार आपके साधको की पूर्वोक्त दशा मे रसधाराएं साक्षात् स्रवित हों। ज्योतिष्मती, प्रज्ञाओ को वे जानें या साक्षात् करें।

राष्ट्रपक्ष मे—विद्वान् जन ज्ञान से युक्त विद्वत्-सभा की दो आंखों के समान दो मुख्य पुरुषो को नियुक्त कर लें तब उस मुख्य राजा के ऊपर राज्यलक्ष्मी का भार रक्खें। तब जलधाराए नदीधाराओ के समान उस पर बहे अर्थात् उसका अभिषेक हो। हे अग्रणी नायक! तब विद्वान् लोग तेजोयुक्त वेदवाणियो का ज्ञानोपदेश करें या तेजस्विनी उषाओं के समान प्रभाववर्द्धक क्रियाओ का तुझे ज्ञान दें।

[७३]

पराशर. शाक्त्य ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १, २, ४, ५, ६, ७, ९, १० निचृत्। ८ एकोना विराट् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शासुः॑ ।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥१॥

भा०—पिता से प्राप्त धन जिस प्रकार सन्तान को सुखमय जीवन प्रदान करता है उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी आचार्यादि पालक जनों से सुशिक्षित, उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत होकर बल तथा दीर्घायु धारण करें। वह ज्ञानवान् शासक के उत्तम रीति से प्रयोग किये गये शासन वचन अर्थात् आदेश के समान उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला और सर्व शास्त्रों का उपदेष्टा हो। वह सुख से शयन करने हारे अतिथि के समान समस्त सुखजनक उत्तम पुरुषार्थों मे स्थिर हो। वह सुखप्रद दाता के समान स्वयं सबसे प्रसन्न और सबको सुखी करने हारा हो। वह विद्वान् राजा विशेष विशेष काम या राजसेवा करने वाले पुरुष को आश्रय रहने का घर भी देवे। राजा अपने सेवकों को उत्तम आश्रय या गृह दे अर्थात् उत्तम गुणवान्, परमेश्वर अपने भक्त साधक को शरण देता है।

दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥२॥

भा०—जो सबका आज्ञापक सूर्य के समान सत्य अर्थ का प्रकाशक सत्य, यथार्थ ज्ञान का दाता और सर्व सज्जनों का हितचिन्तक होकर अपने कर्म और ज्ञान द्वारा समस्त शत्रु और बाधक विघ्नों के वर्जन करने मे समर्थ सैन्य-बलों को सब प्रकार से सुखी रखता है, वह राजा और विद्वान् पुरुष ही बहुत-सी प्रजा द्वारा प्रशंसा योग्य सुन्दर, तेजस्वी, रूपवान् दीपक आदि के समान यथार्थ तत्त्व का दर्शाने वाला और आत्मा के समान सुखप्रद, एवं सेवा योग्य और राष्ट्र के समस्त अंगों और प्रजाओं को धारण पोषण करने मे समर्थ हो।

परमेश्वर के पक्ष मे—प्रभु सर्वोत्पादक सत्य ज्ञानवान् होकर समस्त अन्धकारों को दूर करने वाले ज्ञानों और सूर्यादि लोकों की रक्षा करता

है, वह अतिस्तुत्य, तेजो रूप के समान सत्य अथवा अचिन्त्य, अपने आत्मा के समान सदा सेवनयोग्य, सुखप्रद होकर अपने उपासकों के हृदय मे धारण करने योग्य है।

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥

भा०—जो दानशील, सर्वप्रकाशक मेघ और सूर्य के समान समस्त विश्व को और समस्त जीवगण को धारण और पोषण और आनन्द रस का पान करने हारा है। जो जलांशों को अपने भीतर धारण करने वाले सूर्य के समान हितकारी मित्रों से युक्त राजा भूमि पर सुख से निवास करता है। एक ही शरण या आश्रय स्थान मे रहने वाले वीरगण जिस प्रकार प्रेम से रहते हैं उसी प्रकार जिस राजा के अधीन पुरो मे रहने वाले प्रजागण तथा आगे बढ़ कर शत्रु पर टूट पडने वाले या उच्च पदों पर स्थित नायकगण भी एक वृत्तिदाता के आश्रय रहते हुए शत्रुओं को विविध रीति से उखाडने हारे हो। स्त्री जिस प्रकार निन्दा योग्य, बुरे लक्षणों और पापों से रहित पति के प्रति प्रेम से बद्ध होकर रहती हुई कभी उसके विपरीत नहीं होती, उसी प्रकार नायकगणो से बनी हुई प्रजा या सेना भी अपने पालक राजा या सेनापति को प्रेम करने हारी होकर गर्हा या निन्दा के योग्य, पापाचारो से रहित हो। सेनापति की आज्ञा-पालक सेना ही उत्तम होती है।

अध्यात्म मे—देव, ईश्वर और जीव। पृथिवी प्रकृति। वीर प्राण। नारी बुद्धि।

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! परमेश्वर! लोग जिस प्रकार अपने शासन कार्य या देहरूप गृह मे नित्य प्रज्वलित अग्नि को अन्न पाक आदि कार्यों मे सेवन करते, उसको प्रयोग मे लाते हैं और जिस प्रकार प्राणगण नित्य

आत्मा को अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में जीवित जागृत आत्मा का आश्रय लिए रहते हैं और जिस प्रकार लोग अपने गृहों में निरन्तर ज्ञान से दीप्त विद्वान् पुरुष की सेवा करते हैं उसी प्रकार इस अचल भूमियों मे नायकगण दमन या शासन कार्य में नियुक्त होकर चिरस्थायी प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी राजा को प्राप्त हों, उसका आश्रय लें और इस अपने राजा मे वा उसके अधीन ही बहुत अधिक यश, तेज और ज्ञान प्राप्त करें। हे राजन्! तू सबको जीवन देने वाला, सब प्रजा-गण का स्वामी, सबको प्रेम से प्राप्त होने वाला और सबका धारक पालक और आश्रय होकर ऐश्वर्यों को देनेहारा हो।

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् परमेश्वर ! अग्रणी राजन् ! धनाढ्य लोग दान करते हुए ही खूब जलादि से परिसेचित और परिवर्धित और शरीर में बल और वीर्य के देने वाले अन्नों को और समस्त आयु को विविध प्रकारों से भोग करें और सूर्य किरणों के समान ज्ञानवान्, विद्वान् जन स्नेह, सुख को सेवन करने वाले ज्ञानों का ज्ञान प्रदान करते हुए ही पूर्ण आयु का विशेष रूप से भोग करें और ज्ञान प्राप्ति के निमित्त एकत्र होने के अवसरों पर स्वामी या ज्ञानी के सेवने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और संग्रामों में शत्रुगण के भोग योग्य ऐश्वर्यों को विद्वानों और वीर पुरुषों में उनकी रक्षा के लिए पारितोषिक रूप में प्रदान करते हुए हम उन वीरों और विद्वानों को प्राप्त करें।

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६॥

भा०—अपने बछड़ों को अति प्रेम से चाहती हुई, अच्छे बड़े स्तन-मण्डलों वाली, तेजोयुक्त, स्वच्छ अन्न खाने वाली गौएं जिस प्रकार दूध

का पान कराती हैं उसी प्रकार ज्ञानप्रकाश का सेवन कराने वाले ज्ञान-रस का पान कराने में कुशल, उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष लोगों को वेदोक्त या सत्यज्ञान, सत् व्यवस्था-शासन का पान करावें अर्थात् उप-देश करें। जिस प्रकार नदियें और जलधाराएं मेघ से या पर्वत से निकल-कर दूर दूर देशों तक विविध दिशाओं में बह जाती है, उसी प्रकार ज्ञान के सागर एवं प्रजाओं को प्रेमसूत्र में बांधने वाले नायकगण कभी भी खण्डित न होने वाले परमेश्वर राजा का आश्रय लेकर उत्तम ज्ञान और अन्नमात्र की याचना या प्राप्ति करते हुए दूर दूर देशों तक जावें और उत्तम ज्ञान को संसार में फैलावें।

त्वे अ॑ग्ने सुम॒तिं भिक्ष॑माणा दि॒वि श्रवो॑ दधिरे य॒ज्ञियासः।
नक्ता॑ च च॒क्रुरु॒षसा॒ विरू॑पे कृ॒ष्णं च॒ वर्ण॑मरु॒णं च॒ सं धुः॥ ७ ॥

भा०—हे ज्ञानवन्! गुरो! परमेश्वर! तेरे अधीन ही अध्यना-ध्यापन व ज्ञान का आदान-प्रदान करने हारे गुरु शिष्यजन, अथवा ईश्वर के उपासक सज्जन सूर्य के समान तेजस्वी तुझ गुरु के अधीन रहकर उत्तम ज्ञान और उत्तम अन्न की याचना करते हुए उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान और अन्न को धारण करें और वे रात और दिन उनके समान ही विपरीत स्वरूप वाले कृष्ण और अरुण वर्ण को धारण करें। अर्थात् रात और दिन जिस प्रकार क्रम से अन्धकार और प्रकाश को धारण करते हैं उसी प्रकार शिष्य और गुरुजन भी 'कृष्ण' मृगछाला और 'अरुण' काषाय वस्त्र धारण करें। अथवा गुरुजन विद्या प्रकाश से उज्ज्वल होकर अरुण वर्ण हैं और शिष्यगण अज्ञानयुक्त होने से कृष्णवर्ण हैं। वे दोनों विपरीत रूपों को धारण करते हैं। अथवा प्रत्येक जानने योग्य विषय में पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष, साधर्म्य और वैधर्म्य, गुण और दोष दोनों प्रकार के विवरणों का अच्छी प्रकार ज्ञान करें।

यान्रा॒ये मर्ता॒न्त्सुषू॑दो अग्ने॒ ते स्या॑म म॒घवा॑नो व॒यं च॑।
छा॒येव॒ विश्वं॒ भुव॑नं सिसक्ष्यापप्रि॒वान्रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम्॥८॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! राजन् ! ईश्वर ! जिन उत्तम, दृढ, नश्वर देहों से युक्त पुरुषों को ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए एकत्र कर उनको संगठित करता है वे और हम सब प्रजाजन भी तेरे अधीन रहकर ऐश्वर्यवान् हो। अथवा तू जिनको ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है वे और हम सब धन सम्पन्न हों। तू समस्त संसार को आकाश और भूमि तथा अन्तरिक्ष को भी सब तरह से पूर्ण करता हुआ छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है।

राजा के पक्ष में—राज-प्रजावर्ग और मध्यस्थ पद को पूर्ण करता हुआ विद्वान् राजा समस्त राष्ट्र को आच्छादक छत्र या वृक्ष की छाया के समान शान्तिप्रद, रक्षक शरण रूप से प्राप्त होता है।

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९॥

भा०—हे परमेश्वर ! अग्रणी सेनापते ! राजन् ! तेरे से सुरक्षित रहकर हम अश्वों, अश्वारोहियों से अश्वों, अश्वारोहियों को, नायकों से नायकों को और वीर पुरुषों से वीरों को प्राप्त हों और युद्ध में अश्वारोही नायक और पैदल वीरों से शत्रु के अश्वारोहियों, नायकों और पैदल वीरों का विनाश करें। हम अपने पिता, पितामह आदि पूर्वजों और गुरुजनों द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य के स्वामी हों, और हमारे विद्वान् जन सौ वर्षों तक दीर्घजीवी होकर उस ऐश्वर्य का विविध प्रकार से भोग करें।

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः॥१०॥२०॥१२॥

भा०—हे समस्त शासन-विधानों के विधातः ! विद्वन् ! और ज्ञानप्रद परमेश्वर ! हे अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! तेरे ये नाना ज्ञानमय वचन मन और हृदय या आत्मा को प्रिय लगने वाले अर्थात् 'मन', मनन तर्क-वितर्क कारिणी बुद्धि द्वारा सुविचारित और अन्तःकरण द्वारा श्रद्धा

विश्वास करने योग्य सत्य और प्रिय हो। हम लोग धुरा के समान उत्तम रीति से कार्यभार को उठाने में समर्थ होकर तेरे अधीन विद्वानों और वीरों से सेवन करने योग्य ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य को धारण करते हुए राज्य आदि ऐश्वर्यों का संयमन अर्थात् प्रबन्ध करने में अच्छी प्रकार समर्थ हो। इति विंशो वर्गः। इति द्वादशोऽनुवाकः।

[७४]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—गायत्री। १, २, ४, ६ निचृत्। १ पिपीलिकामध्या। ७ विराट्। ८ द्वथना विराट्। व्यूहेन वा गायत्री।

नवर्चं सूक्तम्॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरे अस्मे च शृण्वते॥१॥

भा०—हम लोग समीप प्राप्त होते हुए अर्थात् प्रभु की उपासना करते हुए दूर और समीप हमारी प्रार्थनाओं को श्रवण करने वाले, सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति के लिए हिंसा या पीड़ा से रहित, शान्तिदायक वेदमन्त्रों का उच्चारण और मनन करें।

राजा के पक्ष में—पास और दूर की प्रजा की प्रार्थनाओं को श्रवण करने हारे, प्रतापी राजा को हम लोग हिंसारहित, प्रजा को शान्ति और सुख देने वाले मन्त्र या मन्त्रणा का उपदेश करें।

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु। अरक्षद्दाशुषे गयम्॥२॥

भा०—जो ईश्वर स्नेह करने वाली अतएव परस्पर प्रेमभाव से सत्सग करने वाली प्रजाओं में सदा पूर्व उत्पन्न शिक्षित विद्वानों द्वारा अपने से आगे आने वालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है और जो अन्यों को विद्या आदि का दान करने वाले तथा अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के धनैश्वर्य और प्राण-जीवन की भी रक्षा करता है।

राजा के पक्ष में—जो स्नेह से परस्पर सघटित प्रजाओ के वीच सबसे मुख्यपद के योग्य है, वह दानशील, धनाढ्य और ज्ञानवान् पुरुष के धन और प्राण की रक्षा करे।

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥

भा०—और समस्त प्राणिजन उसकी स्तुति और प्रवचन करे कि ऐश्वर्य के लिए विजय प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् परमेश्वर और राजा विघ्नो का और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाशक होकर प्रत्येक रमण योग्य आनन्दप्रद अवसरों में सबसे उत्तम पद पर विराजे।

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! तू जिसके घर मे अग्नि के समान अग्रणी, मार्गदर्शक होकर ज्ञान का संदेश श्रवण करानेहारा होता है और उत्तम अन्नो को खाने के लिए जावे वह तू उसके लिए सब दुःखों के नाश करने वाले हिंसारहित, सुखदायी ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासना कर। [उत्तम विद्वानों के आतिथ्यरूप यज्ञ का वर्णन देखो अथर्व काण्ड १५।]

ईश्वर के पक्ष में—जिसके घर मे या हृदय मे उत्तम ज्ञानो के प्रकाश के लिए तू दुःखों का नाशक होकर रहता और प्राप्त होता है उसके यज्ञ और हिंसा रहित उपासना को ही सब भवबन्धनो का नाशक बना देता है। अथवा अग्नि जिसके घर मे प्रकाश के लिये और चरु आदि सुगन्धित रोगनाशक पदार्थों को जलाने के लिए रोगनाशक होकर रहता और व्यापता है वह उसके इस अहिंसायुक्त उत्तम काम को पीड़ाओं और रोगों का नाशक बना देता है।

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहु: सुबर्हिषम् ॥५॥

भा०—हे समस्त देह के अवयवों मे रस या प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड के अवयव अवयव मे चेतनता या शक्तिरूप मे व्यापक! हे शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो! विद्वान् लोग उस तुझको ही उत्तम स्तुति योग्य, आश्रय योग्य, उत्तम दानी, ज्ञानप्रकाशक और सबका द्रष्टा

तथा उत्तम ज्ञान, बल और आश्रय वाला बतलाते है। तथा राजा उत्तम अन्नों का स्वामी, स्तुत्य और शिरोधार्य आज्ञा वाला होने से 'सुहव्य' है, उत्तम राजा होने से 'सुदेव' और उत्तम वृद्धिशील बल और उत्तम प्रजाजन होने से 'सुबर्हिष्' है। राष्ट्र का प्राण तथा जलते अगारो के समान तेजस्वी होने से 'अंगिराः' और शक्ति से राजा बनने से 'सहस:-बाहु' कहाता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६॥

भा०—हे उत्तम रीति से सबको आह्लादित करनेहारे! चन्द्र के समान प्रिय, मनोहर उत्तम ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू इस लोक मे राष्ट्र मे या गृह पर उन नाना ज्ञान के द्रष्टा और उपदेष्टा पुरुषों को उत्तम रीति से ज्ञानोपदेश करने और ग्रहण करने योग्य ज्ञानो के प्रकाश करने और उत्तम अन्नो की रक्षा और खाने के लिये प्राप्त करा। अथवा स्वयं सुख प्राप्ति आदि के लिए स्तुति योग्य विद्वानो को प्राप्त कर।

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७॥

भा०—हे सर्वज्ञ प्रभो! जब तू उपासना के कर्म को प्राप्त होता है अर्थात् भक्तो से उपासना किया जाता है तब सब दु:खों के दूर करने वाले रमण योग्य रस-स्वरूप तेरा अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक और भक्तों का पालक भोक्ता आत्मा का हितकारी शब्द क्या नहीं सुनाई देता है? अवश्य देता है हे तेजस्विन्! अग्रणी नायक! जब तू दूत अर्थात् शत्रु के पीडन कार्य पर उनको प्राप्त होकर उनका छेदन-भेदन करने हारा और अश्वबल मे कुशल होकर प्रयाण करता है तब जाते हुए रथ का क्या शब्द नही सुनाई देता है? देता ही है।

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥८॥

भा०—हे अग्रणी नायक! तेरे से रक्षित और सुरक्षित होकर वेग से जाने हारा बलवान्, भय, लज्जा और संकोच से रहित दानशील, शस्त्रादि

फेंकने में कुशल होकर पूर्व अर्थात् मुख्य पद से दूसरा होकर भी आगे बढे। हे परमेश्वर! ज्ञानी पुरुष भी निःसंकोच होकर अपने पूर्व के अनुभवी ज्ञाननिष्ठ गुरु से शिष्यवत् ज्ञान प्राप्त करके वह आगे बढ़े।

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे ॥६।२२

भा०—हे ज्ञानवन्! हे द्रष्टः! दातः! तू दान देने हारे या अपने को आपके निमित्त त्याग देने वाले उपासक और विद्वान् पुरुषों के हित के लिये बहुत बड़ा उत्तम प्रकाश युक्त, उत्तम बल या बलवान् वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। इति द्वाविंशो वर्गः॥

[७५]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्द —आर्षी गायत्री । २, ५ निचृत्। ३ विराट्। ४ एकोना विराट। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

जुषस्व सुप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

भा०—हे विद्वन्! तू मुख में उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को खाता हुआ विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले, अति विस्तृत, ज्ञानयुक्त वाणी का सेवन कर। अथवा मुख्य पद पर विराज कर ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्यों को स्वयं लेता और अन्यों को देता हुआ विद्वानों के प्रिय उत्तम वचन का सेवन कर।

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि॥२॥

भा०—हे तेजस्वी, सर्वोत्तम पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ! हे ज्ञानवन्! हे उत्तम, मेधावी, बुद्धिमान् प्रिय शिष्य! तेरी विशालता के अनन्तर तुझे हम प्रिय सनातन से चले आये, एवं सब को सेवने योग्य वेद ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश करें।

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः॥३॥

भा०—शिष्य बनाने के पूर्व आचार्य शिष्य से पूछे—हे ज्ञानवन्! तेजस्विन् शिष्य! तेरा कौन बन्धु है? तुझे अन्न वस्त्र देने वाला और तेरा

रक्षक कौन है ? निश्चय से कह, तू कौन है ? तू किसके आश्रय पर स्थित है ?

अध्यात्म मे—जीवात्मा के विषय मे जिज्ञासु इन प्रश्नो को समाधान करे और परमेश्वर को न जानने के सिवाय परमेश्वर के इन जीवो का कोई बन्धु, दाता, रक्षक और आश्रय नही है। अथवा परमेश्वर के विषय मे भी उन प्रश्नो का समाधान करे कि उसका कोई बन्धु, दाता या रक्षक या आश्रय नही है। वह स्वयं कर्त्ता है।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! परमेश्वर! तू ही समस्त जनों का ज्ञाता, परिचित, बन्धु है। तू ही प्रिय स्नेही मित्र है। तू हित मित्र जनों का स्तुति योग्य परम सखा है।

'जामि.'—ज्ञाधातोर्बाहुलकादौणादिको मिर्जादेशश्च।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू अपने गृह के और उसके समान हमारे देह का इन्द्रियो के दमन कार्य का अभ्यास कर। और प्राण और अपान दोनो को सुसगत कर। बडे भारी ऋत, सत्य, वेद ज्ञान को प्राप्त कर अन्यो को उसका उपदेश कर। इति त्रयोविंशो वर्गः।

[७६]

गोतमो राहूगण ऋषि.॥ अग्निर्देवता॥ छन्द —त्रिष्टुप्। १, ३, ४, ५ निचृत्। २ विराट्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! मन या सकल्प विकल्प करने वाले चित्त और ज्ञान को वरण करने, प्राप्त करने या श्रेष्ठ बनाने के लिये तुझे क्या उपायन,

भेट उचित है ? हे परमेश्वर, ज्ञान की प्राप्ति और चित्त को उत्तम बनाने के लिए तेरी किस प्रकार की प्राप्ति या उपासना आवश्यक है । हे विद्वन् ! प्रभो ! तेरी कौनसी स्तुति या अभिलाषा अति सुखकारिणी है । तेरे ज्ञान और कर्म सामर्थ्य को अध्ययन-अध्यापनादि कर्मों, दान देने योग्य पदार्थों तथा उपासनाओं द्वारा कौन पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है ? किस चित्त से हम अपने को तेरे अर्पण करें । 'आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ।' इति स्नातकधर्म । परमेश्वर के लिये उपगमन, उपासना, स्तुति और यज्ञमय जीवन आवश्यक है ।

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे सबके पूर्व विद्यमान, सर्वप्रकाशक ! आप सब सुखों और ज्ञानों के दाता होकर यहां विराजमान हो । आप कभी तिरस्कार और वध, पीडा आदि न प्राप्त करके हमारे आगे आगे नायक के समान अग्रणी पथप्रदर्शक होकर रहो । समस्त संसार को जल, अन्न और प्रकाश से पूर देने वाले सूर्य और भूमि दोनों के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तेरा ज्ञान करे । हे राजन् ! वे दोनों तेरी रक्षा करें । हम लोग मन को सुन्दर पवित्र परस्पर वैररहित, प्रेमयुक्त उत्तम भाव वाला बनाये रखने के लिये विद्वानों का सत्संग करें । अथवा हे ईश्वर ! हे विद्वन् ! आप बड़े भारी पारस्परिक उत्तम प्रेम युक्त पवित्र चित्त बने रहने के लिये उत्तम गुणों और विद्वान् पुरुषों का सत्संग हमें प्रदान कर । हे मनुष्य ! तू चित्त के उत्तम भाव बनाने के लिये विद्वानों का हमेशा सत्सग कर ।

प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाम्ने ॥३॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू समस्त दुष्ट मनुष्यों और बुरे भावों तथा दोषों को अच्छी प्रकार भस्म कर, उनको

जला डाल और दानशील पुरुषो, उत्तम कर्मों और परस्पर के सत्संगो को निन्दा, घात प्रतिघात या विनाश या विच्छेदन होने से बचाने वाला हो। और धारण और आकर्षण से युक्त सूर्य के समान दो अश्वों से युक्त या दो प्रमुख विद्वानो सहित ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति को प्राप्त कर। सुखों और उत्तम ऐश्वर्यों को देने वाले ऐसे राजा का हम आतिथ्य सत्कार करें।

प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे उत्तम नियन्त्रण करने हारे! हे समस्त लोको और बसने वाली प्रजाओ के पिता के समान पालक! हे सबको दान देने हारे, सब की संगति करने और पूजने योग्य! तू इस राष्ट्र में, इस मुख्य पद पर विद्वानों और वीरो के साथ और प्रजा की सम्मति से युक्त वाणी, व्यवस्था-शास्त्र से सबको ज्ञानवान् कर और समस्त शासन-भार को अपने कन्धो पर उठाकर नियमपूर्वक राज्यासन पर विराजमान हो। मैं मुख से तेरी स्तुति करता और तुझे उपदेश करता या तुझे राजा स्वीकार करता हू। हे विद्वन्! राजन्! तू प्रजा से त्याग की हुई कर आदि सामग्री और दुष्टों को दमन करके राष्ट्र को बुरे पुरुषो से स्वच्छ पवित्र करने के कार्य को प्राप्त कर, उन साधनो वा पदार्थों को प्राप्त कर। अथवा हे विद्वन्! तू उत्तम खाद्य और पवित्र पदार्थ ही हमेशा खा।

परमेश्वर के पक्ष मे—ईश्वर प्रजा की हितकारी वाणी वेद से सब ज्ञान और विश्व को धारण करता और सब दिव्य पदार्थ अग्नि आदि पदार्थों के साथ व्यापक है, मैं उसकी मुख से या मुख्य रूप से स्तुति करूं। वह ग्राह्य और पावन तेज को धारता है और वह सर्वोपास्य, सर्व-नियन्ता, सर्वोत्पादक होकर सबको ज्ञान प्रदान करता है।

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई क्रान्तदर्शी, उत्तम कोटि का विद्वान्, अन्य उत्तम उत्तम विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के साथ मिलकर विविध धनों से पूर्ण, धनाढ्य मनुष्य के घर में उत्तम वचनों द्वारा उत्तम उत्तम व्यवहारों का उपदेश करता और उत्तम अन्न आदि हवियों से अपने प्राणों को तृप्त करता और विद्वानों का आदर-सत्कार करता और कराता है उसी प्रकार हे सब सुखों के दातः ! विद्वन् ! हे सज्जनों के बहुत अधिक हितकारिन् ! ज्ञानवन् ! नायक ! तू आज के समान सब दिन या शीघ्र ही अति हर्षजनक, स्तुति योग्य वाणी से सबको सुख दे, उनको संगठित कर। उनका यथायोग्य सत्कार कर। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[७७]

गोतमो राहूगण ऋषि ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप् । १ विराट् स्थाना । २ निचृत् । ३, ५ विराट् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥

भा०—जो मरणशील प्राणियों में स्वयं कभी न मरने वाला, सत्य गुणों और ज्ञानों से युक्त, सब सुखों का दाता, सब ऐश्वर्यों का लेने या वश करने वाला, सबसे अधिक पूजनीय है। जो दिव्य पदार्थ सूर्य आदि लोकों को बनाता है, उस सर्वप्रकाशक परमेश्वर के लिये किस प्रकार से और क्योंकर हम प्रदान करें अर्थात् उसको क्योंकर हम आत्म-समर्पण करें ? और विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली कौन सी वाणी दुष्टों के प्रति करने वाले इस प्रभु के लिये कही जाय ?

राजा और विद्वान् के पक्ष में—मनुष्यों में अमृत, ज्ञानवान्, सदा जागृत, उत्साही, सत्य न्याय वाला जो विद्वानों को नियुक्त करता है उसको कैसे हम भेंट दें। उसके आदरार्थ कैसे वचन कहें ? इन सब बातों का सदा विचार करना चाहिये।

यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र मे कहे 'कथं' प्रश्न का उत्तर इस मन्त्र मे बतलाते हैं। जो हिंसारहित, न नाश करने योग्य श्रेष्ठ कर्मों और श्रेष्ठ पुरुषो मे भी अत्यन्त अधिक शान्तिदायक, कल्याणकारी, सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला, सब सुखों का दाता है उसको ही नमस्कारो द्वारा अपने अभिमुख करो, उसको प्राप्त करो और प्रसन्न करो। और जो स्वयं सबका अग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक मनुष्य के हित के लिये दिव्य ज्ञानों, प्रकाश की किरणों तथा उत्तम विद्वानों को प्रकाशित करता और स्वयं धारण करता है। वही सब को ज्ञान प्रदान करता और ज्ञान से सबको युक्त करता है। इससे वह सबके पूजा के योग्य है।

विद्वान् राजा के पक्ष में—सबका कल्याणकारी, सत्य न्यायवाला होकर मनुष्यों के हितार्थ विद्वानों को नियुक्त करता और उत्तम उत्तम गुणों को प्रकट करता है, ज्ञान से सबको ज्ञानवान् करता और सबको परस्पर संगत करता है, वह अग्रणी नायक, विद्वान् है। उसको आदर सत्कार और अन्नो से प्रसन्न करो।

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥

भा०—वह ही उत्तम कर्मो का कर्ता और उत्तम ज्ञानो का प्रकाशक, वही उत्तम मनुष्य, शत्रुओं का मारनेवाला, वही परोपकार, सन्मार्ग मे स्थित सब कार्यों का साधक, शत्रु को वश करने मे समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी, सबका मित्र, आश्चर्यजनक युद्ध करने वाले सैन्य बल का महारथी अथवा आश्चर्यजनक ऐश्वर्य को लानेहारा हो। उस शत्रुओं के नाशक दर्शनीय पुरुष को चाहती हुई, ज्ञानयुक्त प्रजाएं यज्ञो और श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरो में भी सबसे प्रथम उसे प्रस्तुत करती है, अर्थात् उसको सर्वश्रेष्ठ जान कर अग्रासन देती है।

स नो॑ नृ॒णां नृत॑मो रि॒शादा॑ अ॒ग्निर्गिरोऽव॑सा वेतु धी॒तिम् ।
तना॑ च॒ ये म॒घवा॑नः॒ शवि॑ष्ठा॒ वाज॑प्रसूता इ॒षय॑न्त॒ मन्म॑ ॥ ४ ॥

भा०—जो हिंसक, दुष्ट पुरुषों और शत्रुओं का नाश करने हारा, अग्नि के समान तेजस्वी है वह ही हमारे समस्त नायकों में से सबसे श्रेष्ठ पुरुष होकर अपने ज्ञान और पालन-सामर्थ्य से राष्ट्र को धारण करने वाली शक्ति और उपदेश युक्त वाणी और शासनकारिणी आज्ञाओं को प्राप्त करे। और जो अति बलवान्, बल, वीर्य, ज्ञान और ऐश्वर्यों से उत्तम पदों को प्राप्त, ऐश्वर्यसम्पन्न पुरुष हैं वे नाना धन और मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें। और वे भी अपने ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य से उत्तम वाणियें प्रकाशित करें। राष्ट्र के कार्य में प्रतापी पुरुष सभापति और विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष सभासद् हों।

ए॒वाग्निर्गोत॑मेभिर्ऋ॒तावा॒ विप्रे॑भिरस्तोष्ट जा॒तवे॑दाः । स ए॑षु द्यु॒म्नं पी॑पय॒त्स वाज॒ं स पु॒ष्टिं या॑ति॒ जोष॒मा चि॑कि॒त्वान् ॥५॥२५॥

भा०—निश्चय से वही अग्रणी, ज्ञानवान्, नायक सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला, सत्य न्यायवान्, ऐश्वर्यों का स्वामी, विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वान्, उत्तम स्तुतिकर्त्ता, वाग्मी पुरुषों द्वारा प्रस्तुत किया जावे, वह ही इन धार्मिक विद्वान् पुरुषों के बीच धन प्राप्त कराता है, वही ऐश्वर्य, ज्ञान और बल को प्राप्त कराता और वह अन्नादि समृद्धि और गौ आदि पशु सम्पत्ति की वृद्धि करता है, वही ज्ञानवान् पुरुष सबके सेवन करने योग्य और सबका प्रेमपात्र हो जाता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[७८]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—आर्षी गायत्री ॥

अ॒भि त्वा॒ गोत॑मा गि॒रा जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥१॥

भा०—हे सबके आदि द्रष्टा! सबके देखने हारे ज्ञानस्वरूप, हे समस्त धनों और ज्ञानों के उत्पादक स्वामिन्! परमेश्वर! ज्ञान-वाणियों के उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन तुझे ही लक्ष्य कर वेदवाणी से स्तुति

करते हैं। हम भी तेरे गुणों के प्रकाश करने वाले मन्त्रों तथा तेरे गुणों और ऐश्वर्यों से मुग्ध होकर तुझे लक्ष्य कर सदा नमस्कार करें।

राजा के पक्ष में—हे राजन्! उत्तम भूमियों के स्वामी और हम प्रजाजन तुझे वाणी से मुख्य पद पर प्रस्तुत करते और धनों सहित तेरे आगे झुकते हैं। ऐश्वर्यवान् होने से 'जातवेदा' और सर्व-निरीक्षक साक्षी, द्रष्टा या विविध प्रजाओं का स्वामी होने से 'विचर्षणि' है।

तमु॑ त्वा॒ गोत॑मो गि॒रा रा॒यस्का॑मो दुवस्यति। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥२॥

भा०—हे परमेश्वर! एवं विद्वन्! ज्ञान और ऐश्वर्य की कामना करने वाला विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन उस स्तुति योग्य तुझ को ही वाणी से भजन करता है। हम भी उत्तम गुणों के प्रकाशक स्तुति-वचनों और यशः कीर्तनों से तुझे लक्ष्य करके अच्छी प्रकार स्तुति करें।

तमु॑ त्वा वाज॒सात॑मम॒ङ्गि॒र॒स्वद्ध॑वामहे। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥३॥

भा०—ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों के उत्तम दान देने वाले, शरीर में प्राणों के समान और आकाश में सूर्य के समान सबको चेतना और प्रकाश देने वाले उस तेरी ही हम स्तुति करते हैं उत्तम यश संकीर्तनों से हम तुझे ही बार बार नमस्कार करते हैं।

तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रव धूनु॒षे। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥४॥

भा०—जो तू प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को कठोर दण्डों से भयभीत कर देता है उस मेघ या अन्धकार के समान प्रबल शत्रु को सूर्य के समान छिन्न-भिन्न करने वाले तुझको हम धनों और चमचमाते शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित होकर अच्छी प्रकार स्तुति करें। तेरे यश का कीर्त्तन करें।

अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म॒द्वचः॑। द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः॥५॥२६॥

भा०—अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा लेने वाले अथवा अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले हम सदा अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, वीर नायक के आदर और हित के लिये मधुर और मनन योग्य विचार पूर्ण, हर्षजनक वचन कहा करें। और

उत्तम गुण प्रकाशक स्तुति-वचनों से उसके गुणों को सर्वत्र प्रकाशित किया करें। इति षड्विंशो वर्गः॥

[७६]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१-३ त्रिष्टुप्। (१ विराट्। २-३ निचृत्)। ४-६ आर्ष्युष्णिक्। (५, ६ निचृद्)। ७-१२ गायत्री (७, ८, १०, १२ निचृत्। ८ पिपीलिकामध्या)॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान्।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः॥ १॥

भा०—पुरुष कैसा हो? अन्धकार और राजस आवरण को दूर करने के कार्य में और विविध दिशाओं में फैलने या आक्रमण करने में सुवर्ण के समान तेज या ज्योति से युक्त या सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी हो। और विविध सार अर्थात् बलों के प्राप्त करने और विविध ऐश्वर्यों के दान करने के कार्य में भी मेघ के समान उदार, निष्पक्षपात भाव से सब पर सुखों का वर्षक हो। प्रचण्ड वायु के समान वेगवान्, अत्यन्त उग्र होकर शत्रुओं को भय से कंपा देने वाला हो। स्त्रियें किस प्रकार की बनें? स्त्रियें और कुमारी कन्याएं शुचि, पवित्र, निष्कलंक आचार के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, प्रातःकालिक नव प्रभात वेलाओं के समान हृदय को आह्लादित तथा पवित्र करने वाली, लौकिक कुटिल, अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ, निष्पाप (Innocent and Ignorant of evils) और उत्तम यश वाली, नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली, कभी निकम्मा न रहने वाली और सत्य व्यवहार करने वाली अर्थात् सन्तानों के प्रति सद्-व्यवहार करने में कुशल हों।

आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ ए॒वैः कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम्।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भि॒रागा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा॥२॥

भा०—किरण गण जिस प्रकार गति देने वाले वायुगण से मिलकर जब इस प्रकार मेघ पर सब तरफ़ से आघात करते हैं तब श्याम रंग का बरसने वाला बादल गर्जन करता है। और वह अति शान्तिदायक मानो मुस्कराती हुई विद्युतो से युक्त हो जाता है। तब जलवृष्टियां गिरती हैं और मेघ गरजते हैं। इसी प्रकार वे उत्तम पालन और ज्ञान तथा कर्म की सामर्थ्य वाले विद्वान् पुरुष अपने प्रकाशक ज्ञानों से सब तरफ व्यापते हैं। अज्ञान अंधकार को काटने वाला, सब के चित्तो को आकर्षण करने वाला विद्वान् पुरुष, मेघ के समान ज्ञानो और सुखो की वर्षा करने वाला होकर जिस प्रकार यह वृष्टि का कार्य होता है उसी प्रकार उत्तम उपदेश करे। और कल्याण करने वाली, किञ्चिद् हास से खिले मुख वाली सुन्दरियों के समान सबका उपकार करने वाली, विकसित भावों वाली वाणियो से वह सबको प्राप्त हो। और उसकी जल वृष्टियों के समान ज्ञानवर्षाएं हों। और ज्ञानों के देने वाले गुरुजन मेघों के समान गंभीरता से उपदेश करें।

गृहस्थ पक्ष में—जब चित्ताकर्षक बलवान् पति कल्याणी, प्रसन्नवदना ब्रह्मचारिणी कन्याओं के साथ उनकी इच्छानुसार उन्हे प्राप्त होता है तब सुखों की वर्षा होती है या तभी उत्तम रीति से निषेक आदि कर्म होते हैं और उत्तम प्रजाएं उत्पन्न होती हैं।

यदी॑मृतस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः।
अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ ॥३॥

भा०—जिस प्रकार आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्पमय रूप से खूब भरपूर, तृप्त होकर वायु इस मेघ को या जल को अन्तरिक्ष के धूलिकणों से युक्त मार्गों से ले जाता है तब सूर्य, वायु, जल सर्वत्र व्यापक भूमि के अंश धूलि आदि ये सब पदार्थ मेघ के उत्पन्न होने के स्थान में जल की त्वचा को अर्थात् जल के बाह्यांश को संयुक्त करते हैं और तब मिलकर जल का वृन्द तैयार हो जाता है। उसी प्रकार ब्रह्म

के परिपोषक सूक्ष्म अंश शुक्र से परिपुष्ट होकर पुरुष मूल सत्कारण के उस वीर्यांश को रजो युक्त मार्गों से प्राप्त कराता है और सूर्य का तेज, प्राण, उदान और सर्वत्रगामी जीव ये सब गर्भाशय के उत्पत्ति-कमल में त्वग् को सम्पर्क करते हैं तब उस स्थान मे जीव की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार सूर्य की वायु और जल की भूमि ये जब भूमि की त्वचा, पृष्ठ पर संयुक्त होते हैं जल से भरा मेघ जल को धूलि-मार्गों से पहुचाता है तब भूमि पर अन्न, ओषधि तथा जीवों की उत्पत्ति होती है।

आचार्य के पक्ष में—सत्य ज्ञान के सार भाग से परिपुष्ट आचार्य शिष्य को वेद के ऋत, सत्य धार्मिक मार्गों से ले जाता है और न्यायकारी शासक, स्नेही बन्धुवर्ग, दुष्ट वारक सैनिक गण भ्रमणशील परिव्राजक गण ये सब उपनयन द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य के आश्रय में ब्रह्मचर्य के रक्षार्थ रूप तपस्योचित मृगछाला आदि साधन को प्रस्तुत करें। तभी उत्तम शिष्य उत्पन्न होते हैं।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

भा०—हे समस्त पदार्थों के जानने हारे परमेश्वर! विद्वानों से युक्त विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! शक्ति के एकमात्र आश्रय प्रभो! शक्तिमान् पुरुष से उत्पन्न विद्वन्! सर्वप्रकाशक! तू गौ आदि पशुओं से युक्त ऐश्वर्य का अथवा वेदवाणी का स्वामी है। तू हमें बड़ा भारी धन तथा वेद ज्ञान प्रदान कर। हे विद्वन्! तू वेदवाणियों से युक्त ज्ञान का स्वामी है। तू बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद, ज्ञानोपदेश हमें प्रदान कर।

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

भा०—वह परमेश्वर, विद्वान् और राजा अग्नि के समान तेजस्वी, प्रकाशक और प्रतापी अति दीप्त होकर सबको सुख से बसाने हारा, वाणी से स्तुति करने योग्य है। हे बहुत सी सेनाओं से युक्त, बहुत से

बलों और ज्ञानोपदेशक मुखों या वचनों से युक्त, क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, ज्ञानी होकर तू हमारे हित के लिये उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त ज्ञान का प्रकाश कर।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति॥ ६॥

भा०—हे राजन्! गुणों से प्रकाशमान! ज्ञानवन्! विद्वन्! परमेश्वर! तू दुष्ट पुरुषों और विघ्नकारी दुष्ट भावों का विनाश कर। और हे अग्नि के समान तीक्ष्ण, तेजोमय मुख या ज्वाला के तीक्ष्ण नाशक साधनों, शस्त्रास्त्रों वाले! वह तू अपने बल और ज्ञान सामर्थ्य से दिन और रात दुष्ट पुरुषों की काठों को आग के समान भस्म कर डाल। इति सप्तविंशो वर्गः।

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य॥७॥

भा०—हे स्तुति करने योग्य सर्वप्रकाशक, परमेश्वर! तू हमें गान करने या स्तुति करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद-ज्ञान के अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में और उस पृथिवी लोक के उत्तम रीति से भरण-पोषण के कार्य मे ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा पालन कर और समस्त ज्ञानों और कर्मों के प्राप्त करने के अवसरों मे हमारी रक्षा कर। राजा केवल इस भूलोकस्थ प्रजाजन के भरण-पोषण मे तथा अन्य समस्त प्रकार के कार्यों में हम प्रजाजनों की रक्षा करे।

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्॥८॥

भा०—हे अग्रणी नायक! हे प्रभो! हे ऐश्वर्यवन्! तू हमे एक ही साथ विद्यमान समस्त शत्रुओं और कष्टों को पराजित कर देने वाले, उत्तम मार्ग में ले जाने वाले अथवा सर्वश्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव के उत्पादक समस्त सेनाओं और संग्रामों मे भी दुस्तर, न समाप्त होने वाला, अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त करा।

आ नो॑ अग्ने सुचे॒तुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम्। मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑ ॥९

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे प्रभो ! तू हमें दीर्घजीवन को प्राप्त करने के लिए उत्तम ज्ञान-विज्ञान के साथ साथ समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करने वाले सबको सुखों के देने वाले आप्त ऐश्वर्य को प्रदान कर।

प्र पू॒तास्ति॒ग्मशो॑चिषे॒ वाचो॑ गोतमा॒ग्नये॑। भर॑स्व सुम्न॒युर्गिरः॑॥१०॥

भा०—हे ज्ञानवाणियों के उत्तम विद्वन् ! तू तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्ति-वाले अग्नि के समान तेजस्वी परमेश्वर, विद्वान् और राजा के वर्णन करने के लिए स्वयं सुख की इच्छा करता हुआ आचारादि में पवित्र प्रभाव-जनक वाणियों को और ज्ञानोपदेशयुक्त वाणियो को अच्छी प्रकार धारण कर और अन्यों को धारण करा।

यो नो॑ अग्नेऽभि॒दास॒त्यन्ति॑ दू॒रे प॑दी॒ष्ट सः। अ॒स्माक॒मिद्वृ॒धे भ॑व॥११॥

भा०—हे तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! जो हमें दूर और पास सर्वत्र ही सब प्रकार से देना चाहता हो और हमें प्राप्त होना चाहता हो वह आप हमारे वृद्धि के लिए हूजिये। अथवा हे ज्ञानवन् ! नायक ! जो हमारे पास आकर हमें सब प्रकार से नाश करना या हानि पहुंचाना चाहता है वह हमसे दूर हो और तू हमारी वृद्धि के लिए हो।

स॒ह॒स्रा॒क्षो विच॑र्षणिर॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति।
होता॑ गृणीत उ॒क्थ्यः॑ ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—हजारों देखने वाले साधनों वाला, विशेष रूप से द्रष्टा ज्ञानवन् परमेश्वर, विद्वान् और तेजस्वी राजा समस्त विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करे और वह ज्ञान का दाता, स्तुति योग्य, एवं वेदज्ञान का विद्वान् होकर उपदेश करे। राजा सहस्रों चरों और राजसभा के सभासदों से राष्ट्र के कार्यों को देखने वाला होने से 'सहस्राक्ष' है।

इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८०]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पथ्यापङ्क्तिः (पञ्चपदा) । १, ११ निचृत् । ५, ६, ६, १०, १३, १४ विराट् । २—४, ७, १२, १५ एकोना विराट् । ८, १६ द्व्यूना विराट् । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

भा०—अति हर्षजनक ऐश्वर्य, राज्यशासन के व्यवस्थित हो जाने पर महान् ज्ञानवान् एवं बड़े भारी ब्रह्मा, आचार्य या पुरोहित पद पर विराजमान वेदज्ञ विद्वान् ही इस प्रकार से राज्यशासन बढ़ाने का उपदेश करे। हे शस्त्रास्त्र सेना बल के स्वामिन्! हे सबसे अधिक शक्तिवाले! तू अपने राज्य की निरन्तर वृद्धि और मान आदर करता हुआ अपने पराक्रम से इस पृथिवी में से सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार सर्प के समान कुटिलाचारी और मेघ के समान शस्त्रवर्षी शत्रु को सर्वथा दण्डित कर, परास्त कर।

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२॥

भा०—हे शस्त्रास्त्र सेनाबल के स्वामिन्! राजन्! वह सब सुखों का वर्षक बाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त किया हुआ, अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वैभव तुझे हर्षित करे। जिसके बल पर तू अपने राज्यशासन को निरन्तर अधिक मान-आदर देता हुआ, उसकी ही वृद्धि करता हुआ, बल पराक्रम से जलों में से मेघ के समान आप्त प्रजाओं के बीच में से बढ़ते हुए या नाना चाल चलते हुए, विघ्नकारी शत्रु को सर्वथा निकाल बाहर कर।

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३॥

भा०—हे राजन् ! तू अपने राज्यपद की ही प्रतिदिन प्रतिष्ठा करता हुआ आगे बढ़, प्रयाण कर, अभिमुख शत्रुओं को लक्ष्य करके उनके सामने जा और उनको परास्त कर । तेरा शस्त्रास्त्र बल सूर्य की किरणों के समान कभी रोका नहीं जा सकता । क्योंकि हे ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेरा बल ही परम धन है, वह सब मनुष्यों और नायकों को अपने अधीन दबाकर रखने में समर्थ है । अतः तू मेघ के समान फैलते हुए शत्रु को मार, दण्डित कर । समस्त राष्ट्रवासिनी प्रजाओं को विजय कर । अथवा जलों के समान वेग से भागने वाली शत्रु सेनाओं को जीत ।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू नित्य प्रति अपने ही राज्य या राजशासन के महत्त्व को बढ़ाता हुआ, मेघ को जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से छिन्न भिन्न करता है और वायुओं में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाली इन जलधाराओं को आकाश से नीचे गिराता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू भी भूमि पर अधिकार करने के लिये अपने बढ़ते हुए शत्रु को मार और मनुष्य आदि प्रजाओं या वीर भटों की बनी इन जीवन को ही धन के समान जानने वाली प्रजाओं को अपने अधीन कर।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५।२१॥

भा०—सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार वायु वेग से कांपते हुए मेघ के शिखर अर्थात् उन्नत भाग को विद्युत् के आघात से आक्रमण करके जलों के बह जाने के लिये प्रेरित करता है उसी प्रकार अपने राजत्वपद की वृद्धि और प्रतिष्ठा करता हुआ क्रोध करते हुए, उमड़ते हुए शत्रु के एक एक अंग को स्वयं क्रुद्ध होकर ऐश्वर्यवान् राजा सब ओर से आक्रमण करके और जलधाराओं के समान सेनाओं को भाग निकलने के लिये प्रेरित करता हुआ उसे मार गिरावे । अथवा आगे बढ़ने वाले और प्रहार

करते हुए शत्रु के पराजय के लिये उसको सब तरफ से आक्रमण करके नीचे दबावे अर्थात् परास्त करे।

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम्॥६॥

भा०—अपने राजत्वपद की प्रतिष्ठा करता हुआ ऐश्वर्यवान् राजा, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सैकड़ों अगोंवाले शस्त्रास्त्र बल से प्रहार करने वाले शत्रु के प्रत्येक अंग पर अच्छी प्रकार प्रहार करे। और स्वयं अन्नादि ऐश्वर्य का स्वामी और दाता होकर सबको प्रसन्न करता हुआ मित्र राजाओं के हित के लिये भूमि अर्थात् विस्तृत राज्य को चाहे।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे वीर्यवन्! हे अखण्ड राज्य-शासन, शस्त्र और पर्वतयुक्त राज्य के स्वामिन्! जिस बल से तू अपने राज्यपद की प्रतिष्ठा करता हुआ उस मायावी, छली, इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए हिंसक शत्रु को अपने बुद्धि कौशल से विनाश करता है। वह अपराजित बल तेरे ही वृद्धि के लिये है।

वि ते वज्रासो अस्थिरन् नवतिं नाव्या३ अनु।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तेरे शस्त्र अस्त्र बल नावों से खेये जाने वाली ९० नदियों को भी अपने शासन मे रखने में समर्थ हों। तेरे अधीन ९० महानदियों वाला देश हो। तेरा वीरो का बना सैन्यबल या पराक्रम बहुत बड़ा हो। और तेरी बाहुओं मे और शत्रु को पीड़न करने वाली सेना के दोनों बाजुओं में भी बड़ा बल हो। उससे तू अपने राज्य-शासन की सदा वृद्धि करता रह।

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥९॥

भा०—जो राजा अपने राजपद की प्रति-दिन अर्चना, मान आदर और वृद्धि करता है उस बलवान्, सहस्रों प्रजाओं, ऐश्वर्यों और राष्ट्र-कार्यों के आश्रय स्वरूप पुरुष का आप सब लोग एक साथ मिल कर सत्कार करो। बीसों अमात्य, सहायक मिल कर सब प्रकार से उसके राज्यकार्य को संभालें। इस राज्यपद को सैकड़ों सेना के पुरुष आदर से नमस्कार और सत्कार करें। यह महान् राष्ट्र, धनैश्वर्य और महान् पद और ज्ञानमय वेद परम ऐश्वर्यवान् राजा की वृद्धि के लिये उत्तम रीति से व्यवस्था-पूर्वक स्थिर हो, वही उसका रक्षक स्वामी हो।

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥३०॥

भा०—विद्युत् या वायु सूर्य के समान तेजस्वी राजा मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु की बलवती सेना को और उसके सामर्थ्य को अपने बल-पराक्रम से सब प्रकार से नाश करे। जो वह बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को नाश कर जल-धाराओं के समान प्रजाओं को आनन्द से युक्त सुखी कर देता है वह ही उसका बडा भारी पौरुष अर्थात् पुरुषार्थ है। वह अपनी राज्यशक्ति को नित्य बढ़ाता रहे।

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! जब तू अपनी राज्यशक्ति को बराबर बढ़ाता हुआ वायु के वेग से युक्त विद्युत् के समान शत्रु के मारने में समर्थ वीर सेनागण का स्वामी होकर अपने पराक्रम से मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को विनाश करता है तब जिस प्रकार बडी विशाल आकाश और पृथिवी दोनों, सूर्य या विद्युत् के प्रकोप से कांपते हैं उसी प्रकार तेरे क्रोध के भय से ये दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग अथवा स्वसेना और परसेना दोनों कांपें।

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार मेघ सूर्य या विद्युत् को न वेग से और न गर्जन से ही विशेष रूप से भयभीत कर सकता है । प्रत्युत तेजोमय, बलपूर्वक गिरने वाला विद्युत् ही उसको छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकार अपने राज्य-सामर्थ्य को बढ़ाता हुआ राजा उस शत्रु को लक्ष्य करके लोहमय शस्त्रों से सुसज्जित और सहस्रों पीड़ा या दाहों को उत्पन्न करनेवाला। साक्षात् खड्ग के समान नाशकारी होकर सब तरफ़ से उसका नाश करे । वह शत्रु उस राजा को न अपने वेग से और न गर्जनमात्र से डरा सकता है ।

यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! जिस प्रकार विद्युत् को प्रेरित करके वायु मेघ को छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार तू भी अपने शत्रु के वारण करने वाले सैन्य-बल से या शस्त्र से शत्रु सैन्य को खा जाने वाले, व्यापक शक्ति वाले अस्त्र को प्रहार करके घटते वा युद्ध करते हुए शत्रु से युद्ध कर । और जैसे सूर्य के प्रकाश के बल पर या आकाश में सर्वत्र फैला मेघ छिन्न-भिन्न हो जाता है उसी प्रकार आगे से प्रहार करने वाले शत्रु को नाश करते हुए तेरा बल शत्रु का नाश करे । तू उस प्रकार अपनी राज्य की खूब वृद्धि करता रहे ।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४॥

भा०—हे अखण्ड बल वीर्य के स्वामिन् ! प्रबल सेनापते ! हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! जब तेरे गर्जना और आज्ञा में स्थावर और जंगम सभी कांपते हैं । तेरे क्रोध और ज्ञान-सामर्थ्य के भय से सूर्य के समान तेजस्वी तथा छेदन-भेदन करने वाला सैन्य गण और शिल्पीगण भी भय से सदा

कांपा करे। तू इस प्रकार अपनी राजसत्ता की निरन्तर वृद्धि करता रह।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

भा०—कोई चाहे क्यों नहीं राजा की शरण में जावे? किन्तु हम राजा को ही शरण रूप से प्राप्त करें। हम विचार करें कि राजा से बढ़ कर दूसरा कौन है? जो अपने राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, उसका आश्रय लेकर दानशील, ज्ञानी और विजय या ऐश्वर्य की कामना करने वाले पुरुष मनुष्यों के अभिलाषा योग्य, मन चाहे धन, ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और समस्त बल पराक्रमों को अच्छी प्रकार स्वयं धारण करते हैं और उस ही में वे सब ऐश्वर्यों, सामर्थ्यों और पराक्रमों को स्थापित करते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—उस भगवान्, परमेश्वर को चाहे कोई क्यों न प्राप्त हो? कोई क्यों न उसकी शरण में जावे? किन्तु हम तो नित्य उस परमेश्वर का ही स्मरण करते हैं। वीर्य और बल में सबसे उस प्रभु के सिवाय श्रेष्ठ दूसरा कौन है? सूर्य आदि लोक और विद्वान् जन उसमें ही समस्त ऐश्वर्य, ज्ञान, कर्म और बल-पराक्रम स्थापित करते और उसके आश्रय पर स्वयं इनको अपने में अच्छी प्रकार धारण करते हैं। अथवा क्या सर्वव्यापक परमेश्वर को हम नहीं जान सकते। समस्त बलों को दूसरा कौन धारण करता है? सिवाय परमेश्वर के दूसरा नहीं। वही प्रभु परमेश्वर अपने परम शासन को प्रतिष्ठित किये हुए है।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। तस्मिन् ब्रह्माणि
पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

भा०—प्रजा का पीड़न न होने देने वाला, प्रजा के दुःखों की शान्ति करने वाला, मननशील, ज्ञानवान्, सबका पालक गुरु प्रजाओं का धारण पोषण करने वाले समस्त उपायों और गुणों को स्वय प्राप्त कराने वाला होकर जिस ज्ञान या कर्म को करता, उसी कर्म को तुम लोग भी करो और उस ऐश्वर्यवान् वीर पुरुष के आश्रय रहकर पूर्व पुरुषों के समस्त

ऐश्वर्य और ज्ञानों तथा स्तुति योग्य गुणों को प्राप्त कर। वह अपने राज्य की सदा वृद्धि करे।

यह समस्त सूक्त परमेश्वरोपासना परक भी है। 'स्वराज्य' अपने आत्मा के प्रकाशस्वरूप का साक्षात्कार या स्वतःप्रकाशक परमेश्वर का परम स्वरूप ही स्वराज्य है, उसकी प्राप्ति उसकी अर्चना है। इन्द्र यह आत्मा है। (१) सोम परमानन्द रस है। उसमें मग्न आत्मा ईश्वर की स्तुति अपनी वृद्धि के लिये करे। अज्ञान का नाश करे। (२) ज्ञानवान् पुरुष है। वृक्ष अज्ञान है। (३) नृ-इन्द्रियां। उनको दबाने वाला सामर्थ्य 'नृम्ण' है। 'अपः' प्राणगण। वज्र ज्ञान है। (४) भूमि = चित्त-भूमि। मरुत्वती आपः। प्राणमय वृत्तियां। (५) अन्धसः, आनन्द रस। 'सखायः' प्राण गण। (७) मायी मृग मन है। 'नवतिः नाव्या' ९० वर्ष हैं। (८) 'विंशति' दश २ बाह्य और आभ्यन्तर प्राणगण, 'शत' सौ वर्ष। (११) मही, प्राण और अपान। (१३) त्वष्टा-प्राण। (१५) दध्यङ्-ध्यानी पुरुष। उत्तम स्तुतियां। इति दिक्। इत्येकत्रिंशो वर्गः।

इति पञ्चमोऽध्यायः।

अथ षष्ठोऽध्यायः।

[८१]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—पञ्चपदा पङ्क्तिः। १, २, ७–९, विराट्। ३, ५ निचृत्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रो॒ मदा॑य वावृधे॒ शव॑से वृत्र॒हा नृभिः॑।
तमिन्म॒हत्स्वा॒जिषू॒तेमर्भे॑ हवामहे॒ स वाजे॑षु॒ प्र नो॑ऽविषत् ॥१॥

भा०—मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी, बढ़ते हुए शत्रु का नाश करने वाला ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, राजा अपने नायक पुरुषों के साथ ही प्रजागण के हर्ष की वृद्धि और बल की वृद्धि करने के लिये बढ़े और अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करे। बड़े बड़े संग्रामों

और छोटे छोटे संग्रामों में भी हम उसको ही शरण रूप से प्राप्त करें। संग्राम कार्यों में हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करे।

अध्यात्म में और परमात्मा के पक्ष मे—इन्द्र, आत्मा और परमात्मा। नृ, प्राणगण विद्वान्गण। मद—अति हर्ष, परमानन्द। शव—ज्ञान और बल। आजि—व्यापक गुण, महान् पदार्थ। अर्भ—हृदयाकाश और परमाणु। वाज—ज्ञानैश्वर्य।

असि॒ हि वी॑र॒ सेन्यो॒ऽसि॒ भूरि॑ पराद॒दिः।
असि॑ द॒भ्रस्य॑ चिद्वृ॒धो यज॑मानाय शिक्षसि सुन्व॒ते भूरि॑ ते॒ वसु॑ ॥२॥

भा०—हे शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे, शूर राजन्! सेनापते! तू सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हितकारी है, तू सेना द्वारा सग्राम-कुशल है। तू बहुत से उपायों से शत्रुओं को पराजित करने हारा है। छोटे, अल्प बल वाले को भी तू बढ़ाने वाला हो और अन्यों के लिये नाना सुख उत्पन्न करने वाले, दानशील धर्मात्मा की वृद्धि के लिये तू अपना बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान कर।

परमात्मा के पक्ष में—'इन' अर्थात् स्वामी, आत्मा से युक्त इन्द्रिय गणों में सर्वश्रेष्ठ होने से आत्मा 'सेन्य' है। स्वामी प्रभु समस्त लोकों मे व्यापक होने से प्रभु 'सेन्य' है। बहुत देने से 'परादवि' है। स्वल्प जीव की अपेक्षा करने वाले या दभ्र, हृदयाकाश को आनन्द सामर्थ्य से बढ़ाता है। 'सवन' अर्थात् उपासनाशील आत्मसमर्पक जीव को वह बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है।

यदु॒दीर॑त आ॒जयो॑ धृ॒ष्णवे॑ धीयते॒ धना॑।
यु॒क्ष्वा म॑द॒च्युता॒ हरी॒ कं हनः॒ कं वसौ॑ दधो॒ऽस्माँ इ॑न्द्र॒ वसौ॑ दधः ॥३॥

भा०—हे सेनापते! राजन्! जब नाना संग्राम उठ खड़े होते हैं उस समय शत्रुओं को पराजय करने वाले बल को दृढ करने के लिये नाना प्रकार के धनों को धारण किया जाता है, उनको कोश में संग्रह किया जाता है। उसी समय अति हर्ष से आवेग को प्राप्त होने वाले, दृढ शत्रुओं

का गर्व ढीला कर देने वाले रथ में दो घोड़ों के समान राज्य के भार को उठाने के लिये दो मुख्य विद्वानों को भी नियुक्त कर। तू किसी शत्रु को मारे और किसी को ऐश्वर्य या राष्ट्र के ऊपर अधिकारी रूप से स्थापित करे। हे ऐश्वर्यवन्! हमे बसने योग्य राष्ट्र मे या ऐश्वर्य के बल पर पालन पोषण कर। अथवा हे इन्द्र! तू किसको मारे और किसको राष्ट्र में स्थापित करे इस बात का विवेक कर और हम प्रजाजन को राष्ट्र में पालन पोषण कर।

क्रत्वा मुहाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शर्वः। श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायुसम्॥ ४॥

भा०—कर्म, सामर्थ्य और बुद्धि में बड़ा शक्तिशाली, भयंकर शत्रुओं का नाशक, प्रबल तेजस्वी, सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और वीरों, विद्वानों का स्वामी, सेनापति या राजा अपने अन्न आदि धारण पोषण के सामर्थ्य के अनुसार ही सैन्य बल की वृद्धि करे और राज्यलक्ष्मी के विजय के लिये हाथों में लोह के बने खड्ग के समान ही पार्श्ववर्त्ती, बाजुओं में स्थित सेनाओं में भी वेग से जाने वाले बल वीर्य को धारण करावे।

आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ॥५॥१॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित परमाणु आदि वस्तुओं और समस्त लोक-समूह को सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। तू उनमें भी व्यापक है। तू सूर्य मे प्रकाशमय दीप्ति को तथा आकाश में चमकते हुए सहस्रों सूर्यों को थाम रहा है। हे ऐश्वर्यवन्! तेरे जैसा कोई भी न पैदा हुआ और न होगा। तू समस्त विश्व को बहुत अच्छी प्रकार से धारण करने में समर्थ है। तू उस विश्व से कहीं बड़ा है।

राजपक्ष में—हे इन्द्र! तुझसे दूसरा न कोई पैदा हुआ, न होगा। तू समस्त राष्ट्र के भार को उससे बढ़कर अपने मे धारण करने का यत्न

कर । तू पृथिवी निवासी लोक समूह या जनों को सब प्रकार के ऐश्वर्य से पूर्ण कर, ज्ञानवान् पुरुषों की सभा में रुचिकर कार्यों को नियत करे।

यो अर्यो मर्तभोजनं परा ददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

भा०—जो परमेश्वर और राजा स्वयं सबका स्वामी होकर दान देने हारे पुरुष को मनुष्यों को पालन करने और भोग करने योग्य ऐश्वर्य प्रदान करता है वह ऐश्वर्यवान्-परमेश्वर और राजा हमें भी बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान करे। हे प्रभो ! तू अपने बहुत से राष्ट्र में एकत्रित हुए ऐश्वर्य का विविध रूपों में, विभागों में, प्रजाओं में विभक्त कर । हम राष्ट्रवासी, तेरे ऐश्वर्य का सेवन करें, आनन्द लाभ करें। स्थित महान् ऐश्वर्य का विभाग, देखो (यजुर्वेद अ० २८)।

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू अति ऋजु, सरल धर्मानुकूल, सुखप्रद, विज्ञानवान् और कर्म-सामर्थ्यवान् है। तू हमें प्रत्येक हर्ष के अवसर में या प्रत्येक आनन्दजनक पदार्थ में सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रदान करता है उसी प्रकार ज्ञानमय किरणों, ज्ञानवाणियों, लोकसमूहों, विद्वानों तथा पशु आदि समूहों को और इन्द्रियों को भी प्रदान करता है। दोनों हाथों से भर २ कर देने वाले महादानी के समान बहुत, सैकड़ों ऐश्वर्यों को या बसने वाले जीवों और लोकों को अच्छी प्रकार धारण कर, तू ऐश्वर्यों को प्रदान कर और हमें सब प्रकार भरण पोषण कर। इसी प्रकार राजा भी प्रत्येक हर्ष के अवसर गौओं के समूह के समूह, जूथ के जूथ देने वाला हो, वह साधु धर्माचरण करने वाला और धार्मिक चित्त वाला हो, वह दोनों हाथों से भर भर कर ऐश्वर्यों का संग्रह करे और ऐश्वर्यों का दान करे और प्रजा का पालन-पोषण करे।

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वां पुरुवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथां नोऽविता भव ॥८॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक राजन् ! तू अभिषेक द्वारा प्राप्त, एवं ऐश्वर्यमय राष्ट्र में बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि और उसके उपभोग के लिये सबको तृप्त कर, उनको भरपूर धन दे। नाना ऐश्वर्यों के स्वामी तुझको हम आश्रय लें और तुझसे समस्त अभिलाषाओं को प्राप्त करें और तू हमारा रक्षक हो।

परमेश्वर के पक्ष में—हे दोषों के निवारक ! इस जगत् में तू ज्ञान और बल धन से सबको तृप्त कर। शेष पूर्ववत्।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥९॥२॥

भा०—हे राजन् ! और ईश्वर ! वे समस्त जीवगण तथा पशु आदि, तेरे सब वरण करने योग्य ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं। तू सबका स्वामी, जनों के भीतर भी देखता और उनको ज्ञान उपदेश करता है, उनके भीतर ज्ञान को प्रदान कर। दान न देने वाले उनका धन आ भर, हमें प्रदान कर। गवादि पशु सब राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। वह स्वामी राजा सब प्रजाओं के बीच ज्ञान का उपदेश करे। योग्य अधिकारी पुरुष दान न देने वाले कंजूसों के धन को दण्ड भय से प्रजा को दिलवावे।

[८२]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—पचपदा पंक्तिः । १, ४ निचृत् । २, ३, ५ विराट् । ६ विराट् जगती ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन् मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१॥

भा०—हे ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! विद्वन् ! हे धनों के स्वामिन् ! तू प्रतिकूल पुरुष के समान अन्यथा भाव होकर मत रह। और अति समीप सावधान होकर उत्तम रीत से वाणियों अर्थात् प्रजा की पुकार का श्रवण

कर। अनन्तर तुझ से यही प्रार्थना है कि हमें उत्तम सत्य ज्ञानमय वाणी से युक्त तथा अन्नादि युक्त कर। तथा रथ में दो अश्वों के समान दुःखों के हरने वाले दो मुख्य विद्वानों को सत्य उपदेश के लिए लगा, नियुक्त कर।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यवं प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥२॥

भा०—अपने तेज या दीप्ति से चमकने वाले सूर्य आदि के समान तेजस्वी होकर मेधावी, ज्ञानी पुरुष अति नूतन, नयी से नयी बुद्धि से युक्त होकर ईश्वर की स्तुति करें तथा नाना विद्याओं का उपदेश करें। वे सब उत्तम गुणों को प्राप्त करें और सब ऐश्वर्यों का भोग करें। वे निरन्तर आनन्द प्रसन्न रहें और सबके प्रति प्रेमभाव से युक्त, सबके प्रिय होकर अपने दुर्व्यसनों, दोषों और बुरे पुरुषों को त्याग करें, जैसे कपड़े को झटक कर झाड़ देते हैं और उसकी धूलि दूर हो जाती है, उसी प्रकार विद्वान् अपने आत्मा में से मलों को दूर करें। हे राजन्! हे आत्मन्! तू अपने प्राण और अपान के समान और ज्ञानी और कर्मनिष्ठ विद्वानों को रथ में अश्वों के समान नियुक्त कर। वे राष्ट्र की व्यवस्था करें।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! ईश्वर! राष्ट्र कार्यों, ज्ञानों और जगत् के समस्त व्यवहारों को उत्तम रीति से देखने हारे तुझको हम नमस्कार और स्तुति करें। तू पूर्ण रीति से स्नेहबन्धन से बधकर निश्चय से स्तुति किया जाकर आगे बढ़, प्रयाण कर। और शत्रुओं को वश कर। अथवा हे परमेश्वर! तू कामना करने वाले या अपनी इन्द्रियों पर वश करने वाले साधनों को प्राप्त हो। और हमें ज्ञान और कर्म की शक्ति को प्रदान कर।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी॥४॥

भा०—हे शत्रुओं के नाशक! वीर! राजन्! जो वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और विद्वानों को अपने अधीन नियुक्त करने वाले, पूर्ण सब के पालन करने वाले, रक्षक सेनाबल को अच्छी प्रकार वश करता या जानता है वह ही उस प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाले भूमि राज्य को प्राप्त करने वाले विजयी रथ पर विराजे। वैसा सामर्थ्यवान् होकर तू अपने अश्वों और दोनों बाजू के सेना-दलों को नियुक्त कर, संचालित कर।

योगी के पक्ष में—जो सब दुःखों के वारक अपने स्वरूप को समाधि से प्राप्त कराने वाले पूर्ण पालनकर्त्ता परमेश्वर को जान लेता है वह उस समस्त सुखों के बरसाने वाले रसस्वरूप, सब दुःखों के छुड़ाने वाले, सूर्यादि लोकों में व्यापक, ज्ञानवाणियों के प्रापक, परमेश्वर को प्राप्त होता है, उसकी उपासना करता है। हे आत्मन्! तू अपने वेगवान् प्राण और अपान दोनों को वश कर।

अध्यात्म में—जो इन्द्रिय रूप अश्वों से युक्त पालक आत्मा को जानता है वह उस बलवान्, सुखप्रद इन्द्रियों को वश करने वाले रथ के समान आत्मा या देह आदि को प्राप्त करता या वश कर लेता है।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी॥५॥

भा०—हे सैकड़ों प्रकार के कर्म, सामर्थ्य और प्रज्ञानों के जानने हारे विद्वन्! तू अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़। तेरे दायें पार्श्व का और बायें पार्श्व का अश्व भी अच्छी प्रकार से जुड़े। उस रथ से पुत्रों की उत्पादक, प्रिय स्त्री को और ऐश्वर्यों की उत्पादक प्रिय भूमि को अति हर्षित करता हुआ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। अथवा अन्न आदि भोग्य पदार्थों से प्रिय पत्नी व भूमि को प्रसन्न करता हुआ रथ से देश-देशान्तर को प्राप्त हो।

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः॥६॥

भा०—हे उत्तम शस्त्रास्त्र सेनाबल से युक्त सेनापते ! राजन् ! विद्वन् ! तेरे उत्तम केशों वाले रथ को ले जाने वाले बलवान् अश्वों को मैं सारथि अन्न धन के निमित्त या ज्ञान के साथ, रथ-संचालन की कला के ज्ञान सहित रथ में जोड़ूं । अपने बाहुओं के अधीन उन दोनों अश्वों को तथा अपने अधीन राज्य-शकट के संचालक दोनों मुख्य पुरुषों को अपने समीप रख । इस प्रकार तू विजय के लिए प्रयाण कर । तुझे अति वेगवान्, दीक्षा-प्राप्त सुभट खूब सुप्रसन्न करें । और तू राष्ट्र के पोषक, शत्रु के बल के रोकने वाले वीर पुरुषों और भूमि का स्वामी होकर अपनी स्त्री तथा प्रजापालन करनेवाली राजसभा, उत्तम नीति तथा पालक राजशक्ति के साथ अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

[८३]

गोतमो राहूगण ऋषि ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ६ त्रिष्टुप् व्यूहन जगती वा ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः॥१॥

भा०—हे सेनापते ! राजन् ! अश्व से युक्त रथ या रथारोहियों के सेनादल में सबसे मुख्य पुरुष तेरे रक्षा-साधनों से स्वयं सुख से समस्त प्रजाजनों को अच्छी प्रकार रक्षा करने में समर्थ होकर भूमियों, पशुओं के विजय द्वारा लाभ के निमित्त जावे । अथवा उत्तम प्रजारक्षक पुरुष तेरे किये रक्षार्थ विधानों द्वारा रथ पर बैठ कर भूमियों पर विचरण करे । तू उसको ही बहुत अधिक ऐश्वर्य से ऐसे पूर्ण कर जैसे चेतनारहित जल-धाराएं अनायास सब तरफ़ से आ आ कर महान् सागर को पूर देती हैं । अथवा उस मुख्य पुरुष को इसलिये ऐश्वर्य प्रदान कर जिससे विशेष

ज्ञानों वाले आप्त विद्वान् जन सबको केन्द्र के समान अपने में बांधने वाले सागर के समान गम्भीर राजा को प्राप्त हों।

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जलधाराएं स्वयं नीचे स्थल को प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार विदुषी स्त्रियें प्रेम पूर्वक स्वीकार करने वाले विद्वान् पुरुष को प्राप्त हों। जिस प्रकार लोग अन्तरिक्ष या सूर्य को विस्तृत रूप में देखते हैं उसी प्रकार वे स्त्रियें तथा आप्त विद्वान् जन रक्षास्थान तथा ज्ञान को भी साक्षात् करें। विद्वान् तेजस्वी, ज्ञान की कामना करने हारे पुरुष अपने आगे आगे या उत्तम रीति से आगे आगे चलने वाले उत्तम विद्वानों सहित योग्य शिष्यों के स्वामी पुरुष को प्रमुख स्थान पर स्थापित करते हैं। और वे सब मिलकर वरण करने योग्य या श्रेष्ठ पुरुष जिस प्रकार कन्या के स्वयंवर में आकर कन्या की अभिलाषा करते हैं उसी प्रकार वे भी मिल कर वेद ज्ञान, परमेश्वर और ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे विद्वन्! गुरो! परमेश्वर! जो दोनों परस्पर सम्मिलित, स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य, राजा प्रजा आदि जोड़े मन, वाणी, प्राण और इन्द्रिय गण पर वशी होकर तेरी सेवा या आज्ञा का पालन करते हैं तू उन दोनों के हित के लिये उपदेश योग्य वचन, वेद-ज्ञान का उपदेश प्रदान कर, अथवा जो दोनों मिल कर एक दूसरे के प्रति कहने तथा आचरण करने योग्य ज्ञानोपदेश या आचरण करते हैं उन दोनों का तू धारण पोषण कर। हे परमेश्वर! जो संयम वा जितेन्द्रियता से न रहने वाला पुरुष भी जब तेरे उपदेश किये नियम में रहता है उस ऐश्वर्य के अभिलाषी, अपने आपको अधीन शिष्य रूप से अर्पण करने वाले दानशील,

पुरुष की कल्याण करने वाली, सुखजनक शक्ति पुष्ट हो जाती है। अर्थात् गुरुसेवा और ईश्वरभक्ति से अजितेन्द्रिय और दुर्बल भी प्रबल हो जाता है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पुणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भा०—जो जलते अगारों के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित करके उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त शान्तिजनक साधना से प्रथम अवस्था को ब्रह्मचर्य पूर्वक धारण करते हैं। अथवा जो मुख्य बल, ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं वछड़ा जिस प्रकार अपनी माता को प्राप्त होता है और दूध आदि भोजन या सुख पाता है उसी प्रकार वे मनुष्य स्तुति योग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेद-ज्ञान के पालन सामर्थ्य और अश्वों और गौओं से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। अथवा जो ज्ञानी पुरुष प्रथम बल को धारण करते हैं वे स्तुति योग्य, उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष के योग्य भोजन, अश्वों और गौओं से युक्त पशु-सम्पत्ति को भी प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५॥

भा०—प्रजाओं को पीड़ा न देने हारा, शान्तिदायक, प्रजापालक पुरुष उत्तम परस्पर के संगति कराने वाले विद्या, विज्ञान, प्रचार तथा अन्य अन्य उत्तम साधनों से सबसे मुख्य पद पर स्थित होकर नाना मार्गों को, नाना विधानों को विस्तृत करता है, बना लेता है, उसके पश्चात् जिस प्रकार कान्तिमान् सूर्य उदय होकर अपनी किरणों को सब तरफ फेंकता है उसी प्रकार तेजस्वी, व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष संसार में प्रकट होता है, विद्वान् पुरुष का पुत्र या शिष्य, सुशिक्षित, तेजस्वी, सब प्रजा की हित कामना वाला पुरुष समस्त वेद-वाणियों को सर्वत्र प्रकाश करता है और क्रान्तदर्शी, तेजस्वी, राज्यलक्ष्मी का इच्छुक राजा भूमियों को प्राप्त करता है। तब सब मिलकर हम यम-नियम में

निष्ठ, सर्वनियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित सब दुःखों से रहित, अमृतमय मोक्षसुख को सूर्य द्वारा वृष्टि जल के समान अतिशान्तिदायक रूप में प्राप्त करते हैं। उत्तम विद्वान् के भूमियां प्राप्त कर लेने पर हम सब परस्पर सगठित होकर सर्वनियन्ता राजा के प्रकट रूप से अविनाशी, स्थिर शासन के सुख को स्वयं बनाते और सुव्यवस्थित करते हैं। सूर्य के समान ज्ञानी आचार्य नव वाणियों का उपदेश करता है तब यम नियम पालन रूप-ब्रह्मचर्य के प्रकट अविनाशी वीर्य को हम प्राप्त करते हैं।

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ६।४

भा०—जिस प्रकार उत्तम, अविनाशी, नीचे न गिरने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ, कर्म या उत्तम फल के प्राप्त करने के कुश-घास काट ली जाती है उसी प्रकार जिस राज्य में उत्तम सन्तान के लिये यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन त्यागे जाते हैं, अर्थात् जहां उत्तम सन्तति के लिये मा बाप अपना सर्वस्व त्यागते हैं और जहां आकाश में सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश में अर्चना करने योग्य ज्ञानवान् पुरुष वेदवाणी का सर्वत्र उपदेश करता है और जिस देश में उत्तम उपदेश करने योग्य वचनों में कुशल ज्ञानोपदेष्टा पुरुष मेघ के समान गंभीर ध्वनि से उपदेश करने हारा उपदेश करता है उस ही प्रजाजन के हित के लिये सब प्रकार के प्राप्त करने योग्य कार्य-व्यवहारों में उत्तम ऐश्वर्यों, सुखों का दाता पुरुष उपदेश करता है। इति चतुर्थो वर्गः।

[८३]

गोतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप्। २, ४ विराडनुष्टुप्। ६ भुरिगुष्णिक्। ७–९ उष्णिक्। १०, १२ विराट् पथ्यापङ्क्तिः। ११ निचृत् पथ्यापङ्क्तिः। १३–१५ निचृद् गायत्री। १६, १८ त्रिष्टुप्। १७ विराट् त्रिष्टुप्। १८ त्रिष्टुप्। (प्रगाथ =) १९ एकोना विराट् पथ्या बृहती। २० निचृत् सतोबृहती पङ्क्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

असा॑वि॒ सोम॑ इन्द्र ते॒ शवि॑ष्ठ धृष्ण॒वा ग॑हि ।
आ त्वा॑ पृण॒क्त्विन्द्रि॒यं रज॒ः सूर्यो॒ न र॒श्मिभि॑ः ॥ १ ॥

भा०—हे शत्रुओं का धर्षण, पराजय करने हारे ! प्रगल्भ ! हे अति शक्तिशालिन् ! हे राजन् ! सेना, सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू आ, हमें प्राप्त हो। तेरे लिये ही यह ओषधि रस, अन्न और ऐश्वर्य और अध्यात्म में परमानन्द रस उत्पन्न होता है, किरणों से जिस प्रकार सूर्य समस्त अन्तरिक्ष को व्याप्त लेता है उसी प्रकार ऐश्वर्य, आत्मिक बल और सामर्थ्य तुझे सब प्रकार से पूर्ण करे।

इन्द्र॒मिद्धरी॑ वह॒तोऽप्र॑तिधृष्टशवसम् ।
ऋषी॑णां च स्तु॒तीरुप॑ य॒ज्ञं च॒ मानु॑षाणाम् ॥ २ ॥

भा०—वेगवान् अश्व जिसके बल को कोई दबा या परास्त नहीं कर सके ऐसे ऐश्वर्यवान् राजा को ही वेगवान् दोनों अश्व तथा दो ज्ञानवान् पुरुष वेदमन्त्रार्थों के जानने वाले विद्वानों की स्तुतियों और मनुष्यों के यज्ञ को भी प्राप्त कराते हैं। अर्थात् विद्वानों और मनुष्यों के सत्संगों में राजा अश्वों द्वारा रथ पर चढ़ कर ही जावे और दूसरे, उसके अधीन दो विद्वान् उसके राज-कार्य-भार को चलाने के लिये नियुक्त हों। एक का कार्य विद्वानों के सत् आदेश राजा तक पहुंचना है और दूसरे का कार्य साधारण प्रजा के उत्तम कार्यों के साथ राजा को सम्बद्धित रखना है।

आ ति॑ष्ठ वृत्रह॒न् रथं॑ यु॒क्ता ते॒ ब्रह्म॑णा॒ हरी॑ ।
अ॒र्वा॒चीनं॒ सु ते॒ मनो॒ ग्रावा॑ कृणोतु व॒ग्नुना॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे सूर्य के समान शत्रु-दल को छिन्न भिन्न करने हारे ! तेरे अधीन कार्य निर्वाहक दो विद्वान्, दो अश्वों के समान रथ रूप राज्य कार्य-भार में नियुक्त हों। तू उस कार्य पर अधिष्ठाता रूप से विराजमान हो। उत्तम वचनोपदेशों का देने वाला वाग्मी पुरुष उत्तम वचनोपदेश से तेरे चित्त को अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य कार्य की ओर उत्तम रीति से आकर्षित करे।

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू इस सबसे उत्तम, साधारण मनुष्यों को प्राप्त न होने वाले, सबको सन्तुष्ट करने वाले, अत्यन्त सुखदायी उत्तम ओषधि रस के समान अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यपद को प्राप्त कर, उसका उपभोग कर। तुझे शुद्ध जल की धाराओं के समान शुद्ध, सत्य ज्ञान की व्यवस्था-पुस्तक वेद की ज्ञानवाणियाँ सब प्रकार से तेरा अभिषेक करें, तुझे प्राप्त होकर ज्ञान प्रदान करें ।

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा का अवश्य आदर सत्कार करो और उसके लिये योग्य वचनों तथा उपदेश करने योग्य शास्त्रोपदेशों का भी उपदेश करो। अभिषेक को प्राप्त होकर ऐश्वर्यवान् पुरुष हर्ष को प्राप्त हों। हे प्रजाजनो ! आप सब लोग सबसे उत्तम बल का एवं सर्वोत्तम, बलवान् पुरुष का आदर किया करो।

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! जब तू अश्वों को जोड़ता है तब क्या तुझसे बढ़कर उत्तम रथारोही कोई नहीं होता और तेरे बराबर क्या बल में भी कोई दूसरा नहीं होता ? और क्या उत्तम अश्वारोही भी तुझसे दूसरा नहीं होता ? होता है। तब तू अति गर्व में मत भूल। सावधान होकर राज्य-शासन कर। अथवा हे इन्द्र ! जब तू अश्वों को जोड़ता है तब तुझसे दूसरा बड़ा महारथी नहीं दीखता, तेरे जैसा बल में भी दूसरा नहीं दीखता। और नहीं तुझसे दूसरा उत्तम अश्वारोही कोई राष्ट्र को भोग सकता है अर्थात् तू ही सबसे बड़ा महारथी, बलशाली और उत्तम अश्वारोही, राष्ट्र का पालक है।

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥

भा०—जो अकेला ही अद्वितीय होकर दानशील मनुष्य को ऐश्वर्य भी नाना प्रकार से देता और दिलाता है हे विद्वान् लोगो! वह ही प्रतिकूल शब्द अर्थात् विरोधी निन्दा से रहित, अथवा जिसके समान पद पर दूसरे किसी को प्रस्तुत न किया जा सके, ऐसा अद्वितीय, अथवा किसी से पराजित न होने वाला, राष्ट्र का स्वामी हो।

परमेश्वर के पक्ष में—वह आत्मसमर्पक भक्त को नाना ऐश्वर्य देता है। वह एक अद्वितीय सबका शासक स्वामी है।

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रिय विद्वान् पुरुषो! ऐश्वर्यवान् राजा न जाने कब वश न आने वाले, दुःसाध्य या धनहीन या बलहीन शत्रु पुरुष को पैर से अहिच्छत्र के समान उछाल कर फेंक दे, नष्ट कर दे और वह हमारी पुकारों को न जाने कब सुन ले? 'क्षुम्पम्'—अहिच्छत्रकं भवति। इति यास्कः। अहिच्छत्रक को भाषा में 'पदबहेडा' कहते हैं जो बरसात में पड़े काठ पर सफेद गोल गोल छतरी सी पैदा हो जाती है, जिसे 'साप की छतरी' या पंजाबी में 'खुम्बी' कहते हैं। वह पैर के थोड़े से धक्के से ही उखड़ कर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार राजा न वश आने वाले उद्दण्ड निर्बल या निर्धन, कोशरहित या भयभीत राजा को न जाने कब नष्ट कर दे? उसको वह कभी भी नष्ट कर सकता है। इसी प्रकार प्रजा की कामनाओं को भी वह कभी अनायास ही पूर्ण कर सकता है।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! जो पुरुष भी बहुतों में से उत्तम ऐश्वर्य का

स्वामी होकर तेरे अधीन रहकर तेरी सेवा करता है उसको तुझ ऐश्वर्यवान् राजा का ही उग्र, भयकारी बल प्राप्त होता है।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः। या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥६॥

भा०—दीप्तियें, किरणें जिस प्रकार वृष्टि के कारणस्वरूप सूर्य के साथ साथ रहने वाली उसी की शोभा के लिये प्रकाशित होती हैं अर्थात् प्रकाशित होकर उसी की शोभा बढ़ाती हैं और वे स्वादुयुक्त, मधुर व्याप्ति से युक्त, सूक्ष्म होकर ऊपर फैल जाने वाले, वाष्पमय जल को पान कर लेती हैं उसी प्रकार जो अपने सेनापति की आज्ञा या वाणी में रहने वाली या राष्ट्र मे आनन्द से रमण करने वाली, उत्तम वीर प्रजाएं और सेनायें अपने शत्रुहन्ता सेनापति के साथ साथ रह कर चलती हैं वे स्वादु, आनन्दप्रद, व्यापक, मधुर अन्न और ऐश्वर्य का भोग करती हैं और स्वराज्य प्राप्त करके वृषभ के साथ गौओं के समान राष्ट्र में रहने वाली प्रजाएं राष्ट्र की शोभा को बढ़ाने और नायक की तेजोवृद्धि के लिये उसके साथ ही हर्षित और सुखी होती हैं।

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्११

भा०—दुधार गौएं जिस प्रकार अपने बच्चे से मिलना चाहती हुई उसके लिये दुग्ध रस प्रदान करती हैं उसी प्रकार अपने ही राज्य की वृद्धि के लिये, राष्ट्रवासिनी प्रजाएं ऐश्वर्यवान् राजा को धारण और पोषण करने वाली और उस राजा की अति प्रिय, हितकारी होकर उसके शत्रु का अन्त कर देने वाले शस्त्र-अस्त्रयुक्त सैन्यबल की वृद्धि करें और आपस का स्पर्श अर्थात् एक दूसरे के साथ दृढ़ संगति, प्रेम रखती हुई, सुसगठित होकर किरणों के समान परस्पर मिश्रित होकर ऐश्वर्य को परिपक्व करें। अर्थात् किरणें जिस प्रकार मिलकर ओषधियों में रस का परि-

पाक करती हैं उसी प्रकार प्रजागण भी परस्पर मिलकर बलवान् होकर राजपद और राज्य के ऐश्वर्य को परिपक्व और सुदृढ़ करें।

ता अ॑स्य॒ नम॑सा॒ सहः॑ सप॒र्यन्ति॒ प्रचे॑तसः ।
व्र॒तान्य॑स्य सश्चिरे पु॒रूणि॑ पू॒र्वचि॑त्तये॒ वस्वी॒रनु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१२॥

भा०—वे उत्तम ज्ञान से युक्त, विदुषी प्रजाएं इस नायक के शत्रु-पराजयकारी बल की अपने शत्रु को नमाने वाले शस्त्र-अस्त्र बल तथा आदर सत्कार और अन्नादि समृद्धि से आराधना करती हैं, उसकी वृद्धि करती हैं। अपने राज्यैश्वर्य की वृद्धि के लिये अथवा अपने पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से बतलाने के लिये अथवा पूर्व के गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए अपने राजा के बहुत से नियमों, विधानों और कर्तव्यों को धारण करें, उनका पालन और रक्षण करें।

इन्द्रो॑ दधी॒चो अ॒स्थभि॑र्वृ॒त्राण्यप्र॑तिष्कुतः। ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ॥१३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार समस्त पदार्थों को धारण करने वाले वायु आदि पदार्थों में भी व्यापक प्रकाश के आघात करने वाले, इधर उधर गति देने वाले किरणों से मेघस्थ जलों को आघात करता है, उनको छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार मुकाबले के प्रतिस्पर्धी शत्रु की सेना से पराजित न होने वाला, शस्त्रों को छिन्न भिन्न करने वाला राजा बल धारण या शस्त्रों को धारण करने वाले वीरों को अपने वश में रखने वाले वीर सेनापति के बाण फेंकणे में कुशल वीर सैनिकों से नव गुण नब्बे [८१०] बढ़ते शत्रुसैन्यों को पराजित करे। 'नवतीः नव वृत्राणि' ८१० शत्रुसैन्य कैसे? शत्रु, मित्र और उदासीन भेद से तीन हुए, उनके मित्र और मित्रों के मित्र इस प्रकार प्रत्येक के तीन तीन होकर ९ भेद हुए। उत्तम, अधम और मध्यम भेद से प्रत्येक के २७ हुए। इनमें भी प्रत्येक प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीनों शक्तियों के भेद से ८१ हुए। दस दिशा भेद से ८१० हुए।

अध्यात्म में—आत्मा शरीर-धारक प्राण के रोग-नाशक बलों से

बलवान् होकर ८१० प्रकृतिजन्य विकारों को नाश करे। अथवा ११ वर्षों को पार करता है, पूर्णायु, सुखी जीता है।

इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम्। तद्वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति ॥१४॥

भा०—शीघ्रगामी मेघ का मुख्यभाग जलांश जो आकाश में और मेघों के खण्ड खण्ड में व्यापक है उसको जिस प्रकार सूर्य अपने किरणों से व्याप लेता है और उसको छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार विजय की कामना करता हुआ विजिगीषु, बलवान् पुरुष तुरग-बल या व्यापक राष्ट्र का जो शिर या मुख्य भाग पर्वत अर्थात् पालक बल से सुरक्षित भागों में या पर्वत के समान उन्नत और प्रजापालक पुरुषों पर आश्रित है वह उसको हिंसा वाले, संग्राम या सैन्यबल के आश्रय पर प्राप्त करे।

अत्राह॒ गोर॑मन्वत॒ नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म्। इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृ॒हे ॥१५॥

भा०—इस पृथिवी लोक में विद्वान् जन सूर्य के किरणों को जैसे उत्तम, प्रकट, उज्ज्वल स्वरूप को जानते हैं इसी प्रकार के स्वरूप को वे चन्द्रमा के लोक के भीतर भी जानें अर्थात् वहां भी वही सूर्य-रश्मियों का प्रकाश है।

उसी प्रकार राजा के पक्ष में—उस राष्ट्र में तेजस्वी, तीक्ष्ण राजा की वाणी, आज्ञा का जैसा उत्तम या प्रकट शत्रु को दबाने वाला स्वरूप है, वैसा ही चन्द्रमा के समान प्रजा के चित्तों को आह्लादकारी शीतल या मधुर स्वभाव के राजा की आज्ञा का भी राष्ट्र के वश करने के कार्य में उत्तम परिणाम, उत्तम वशकारक प्रभाव मानते हैं। अर्थात् उग्रता से जैसे वश किया जाता है वैसे ही मधुरता, नम्रता, शीतलता से भी वश किया जाता है। राजा को भीम और कान्त, भयानक और कमनीय दोनों प्रकार का होना चाहिये।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥ रघुवंशे ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्॥१६॥

भा०—[प्रश्न] आज के समान सदा कौन समर्थ पुरुष गतिशील रथ में जिस प्रकार बैलों या वेगवान् अश्वों को जोड़ा जाता है उसी प्रकार सत्य न्याय-प्रकाशन, यज्ञ-सम्पादन, वेदज्ञान, अध्ययनाध्यापनादि कार्यों के धुरा उठाने के कार्यों में उत्तम कर्मों वाले विरोधियों पर असह्य, क्रोध करने वाले, तेजस्वी, विरोधियों से असह्य, पराक्रम और कोप करने वाले मुख्य लक्ष्य पर वाण फेंकने वाले, लक्ष्यवेधी शत्रु के हृदय आदि मर्म-स्थानों पर निशाना लगाने वाले, मर्मवेधी, प्रजा को सुख शान्ति देने वाले, वीर, कर्मिष्ठ, उग्र, लक्ष्यवेधी और मर्मच्छेदी, सुखप्रद पुरुषों को कार्य में लगाये रखता है। [उत्तर] वह प्रजापति, राजा ही इनको राष्ट्र के उचित कर्मों में नियुक्त करे। जो राजा इन उक्त लोगों की भरण पोषण या जीविका को, खूब प्रबल, समृद्ध तथा सुदृढ़ कर लेता है वही राजा जीया करता है, उसका राज्य चिरस्थायी रहता है। अथवा जो भृति अर्थात् वेतन पर उनको रखकर समृद्ध करता है, वह ही जीता रहता है। फलतः अधीनस्थ अधीकारियों को राजा अपनी स्थिरता के लिये उत्तम वेतनों पर नियुक्त करे।

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय॥१७॥

भा०—कौन युद्ध में आगे बढ़ता, शत्रुओं को मारता या सब प्रजा और सेना पर निरीक्षण या शासन करता है? कौन मारा जाता है? कौन डरता? या शत्रु को डराता है। कौन मान आदर करता है, विद्यमान राजा के कौन समीप रहता है? कौन प्रजा के सन्तानों पुत्रों की रक्षा के लिये योग्य है। हाथी आदि युद्धोपयोगी पशुओं की रक्षा और शिक्षा के लिये कौन उपयोगी है? और धन वा कोश की रक्षा के लिये, विस्तृत राष्ट्र या प्रजाजनों की शारीरिक उन्नति के लिये कौन शिक्षा देता है?

इत्यादि सभी बातों का राजा ठीक ठीक प्रकार से विचार कर यथायोग्य पुरुषों को यथायोग्य कार्य में नियुक्त करे।

को अ॒ग्निमी॑ट्टे ह॒विषा॑ घृ॒तेन॑ स्रु॒चा य॑जाता ऋ॒तुभि॑र्ध्रु॒वेभिः॑।
कस्मै॑ दे॒वा आ व॑हाना॒शु होम॒ को मं॑सते वी॒तिहो॑त्रः सु॒दे॒वः॥१८॥

भा०—अग्नि को जिस प्रकार हविषा आहुति और घृत से यज्ञ में बढ़ाया जाता है और जिस प्रकार अन्न और घृत के भोजन से जाठराग्नि या जीवन को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार सबके स्वीकारने योग्य धन और विज्ञान से और तेजोयुक्त पराक्रम से युद्ध के बीच आग्नेयास्त्र और राष्ट्र के बीच में स्थित तेजस्वी राजा को पुष्ट करता है। और स्थिर नियम से अवश्य आने वाले ऋतुओं से स्रुच नाम यज्ञपात्र से कौन यज्ञ करता है और स्थिर राजसभा के सदस्यों द्वारा या ज्ञानयुक्त वाणी द्वारा कौन संत्सग करने और परस्पर वादानुवाद करने में निपुण है? विद्वान् जन और वीर पुरुष किसके हितार्थ शीघ्र ही आवें, एवं स्वीकार्य पदार्थों को लाते और किसके आज्ञा वचनों को आदर से शिरोधार्य करते है? कौन नाना विज्ञानों को प्राप्त करने वाला, उत्तम द्रष्टा, तेजस्वी और बद्धकुशल है, कौन सब कुछ जानता है? अर्थात् सब पर ध्यान रखने और सबको चलाने में समर्थ है? यह सब बातें राजा कर्मचारियों को नियुक्त करने के पूर्व ही विचार कर ले।

त्वम॒ङ्ग प्र शं॑सिषो दे॒वः श॑विष्ठ॒ मर्त्य॑म्।
न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति म॒र्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वचः॑॥ १९॥

भा०—हे राजन्! हे शक्तिशालिन्! तू तेजस्वी, विजयेच्छु और सब कार्यदर्शी होकर ही मनुष्यों को उत्तम मार्ग का उपदेश कर, उन का अच्छी प्रकार शासन कर। हे ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुओं और दुःखों के नाशक! तेरे से दूसरा कोई प्रजाओं को सुख देने हारा कृपालु नहीं है। तेरे लिये मैं उत्तम वचन, धर्मयुक्त वाणी का उपदेश करूं, कहूं।

परमेश्वर के पक्ष में—मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं।

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२०॥८॥१३॥

भा०—हे समस्त प्रजाजनो को राष्ट्र में सुख से बसाने हारे! तेरे ऐश्वर्य, समृद्धियां या समृद्ध होने के साधन हम प्रजाजनों को कभी भी विनाश न करें। तेरे राष्ट्र को रक्षा करने के उपाय और शत्रुओं को कंपा देने वाले सेना—चतुरंग आदि भी हमारा कभी नाश न करें। हे मनुष्य! उत्तम मननशील पुरुष! समस्त ऐश्वर्य हमारे विचारवान्, दीर्घदर्शी, उत्तम विद्वान् तथा समस्त प्रजा पुरुषों के उपकार के लिये प्राप्त कर। इति अष्टमो वर्गः। इति त्रयोदशोऽनुवाकः॥

[८५]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, २, ६ जगती। ३, ७, ८ निचृज्जगती। ४, १० विराट जगती। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ६ भुरिक् त्रिष्टुप्। व्यूहेन जगती। १२ त्रिष्टुप्॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः॥१॥

भा०—जाने के अवसर पर जिस प्रकार स्त्रियें अपने को आभूषण आदि से सजाती हैं और जाने योग्य मार्ग में जिस प्रकार वेग से जाने वाले अश्व शोभा प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार शत्रुओं को रुलाने वाले या आज्ञा के प्रवर्तक राजा और उपदेष्टा आचार्य के पुत्र के समान पदाभिषिक्त शासक वीर सैनिक और शिष्य गण उत्तम कर्म और आचरण के अभ्यासी विद्वान्, वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले, पर-पक्ष वालों से संघर्ष या स्पर्द्धा करने वाले, वीर्यवान्, वीरगण, सूर्य और पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की वृद्धि के लिये कार्य करते हैं और संग्रामों और ज्ञान-लाभ के अवसरों पर हर्षित होते हैं।

त उ॒क्षि॒तासो॑ महि॒मान॑माशत दि॒वि रु॒द्रासो॒ अधि॑ चक्रिरे॒ सदः॑ ।
अर्च॑न्तो अ॒र्कं ज॒नय॑न्त इन्द्रि॒यमधि॒ श्रियो॑ दधिरे॒ पृश्नि॑मातरः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार जलों के वर्षण करने हारे, प्रबल वायुगण आकाश में स्थान प्राप्त करते या सूर्य के प्रकाश का आश्रय लेते हैं। और महान् बल को प्राप्त करते हैं सूर्य का आश्रय लेते हुए वे बल को और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं और वे आदित्य से उत्पन्न होने वाले या मेघ के उत्पादक वायुगण शोभा को धारण करते हैं उसी प्रकार वे अपने २ पदों पर नायक रूप से अभिषिक्त हुए शत्रुओं को रुलाने हारे वीर नायकगण अपने महान् सामर्थ्य को प्राप्त करें और सूर्य के समान तेजस्वी पद पर अपना उत्तम स्थान बनावें, अधिकार करें। अथवा भूमि पर ही सभा-भवन और गृह आदि बनावें, वे सूर्य के समान तेजस्वी, आदर करने योग्य प्रधान राजा का आदर,मान, प्रतिष्ठा करते हुए महान् ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हुए भूमि को अपनी माता मानते हुए, मातृभूमि के पुत्र होकर राज्यवासियों व ऐश्वर्य पर अपना पूर्ण अधिकार करें।

गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्त॒नूषु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः ।
बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभिमा॒तिन॒मप॒ वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते घृ॒तम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या पृथिवी या तीव्र गमन से उत्पन्न होने वाले वायुगण प्रकाशित होने वाली विद्युतों से सुशोभित होते हैं और अपने में विविध कान्ति वाले मेघों को धारण करते हैं। विविध दिशाओं में फैलने वाले मेघ को पीडित करते हैं तब उनके मार्गों पर ही मेघ का जल भी जाता है अर्थात् जिधर वायु बहता है, मेघों की सजल घटा उधर ही जाती है, ठीक इसी प्रकार पृथिवी माता के पुत्र, देशभक्त वीरजन जब नाना पदों और मान-प्रतिष्ठा के सूचक पदकों और चिह्नों से अपने को सुशोभित करते हैं, अथवा विद्याओं के प्रकाशक वचनों और शास्त्रों द्वारा शुभ, कल्याणकारी वचनों का उपदेश करते हैं और शुद्ध होकर

शरीरों पर नाना रुचि, कान्ति और दीप्ति वाले आभूषणों और पदार्थों या वस्त्रों और शस्त्र-अस्त्रों को धारण करते हैं और वे सब प्रकार के गर्वीले शत्रु को पीड़ित करते हैं अर्थात् उन्हें परास्त करते हैं तब इनके मार्गों पर ही तेजस्वी समस्त शस्त्र-अस्त्र, बल और ऐश्वर्य, राज्यपद चलता है।

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण उत्तम सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले होकर तीव्र आघात करने वाली विद्युतों से चमकते हैं और बल से न गिरने वाले जलों को बरसाते हुए, मन के समान तीव्र वेग वाले तथा वर्षणशील मेघ के समूहों से युक्त होकर वर्षणशील मेघमालाओं को एकत्र करते हैं, उसी प्रकार जो आप उत्तम संग्राम में कुशल होकर शत्रुबल के नाशकारी शस्त्रों से चमचमाते और अक्षय बल-पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को भी पदभ्रष्ट और रण से विमुख करते हुए जब मन के समान अति तीव्र वेग वाले होकर रथों पर विराजते हो तब हे वीर पुरुषो! आप लोग शत्रुओं पर शस्त्र-अस्त्रों के वर्षण करने वाले, बलवान्, वीर पुरुषों के गुणों को साथ लिये हुए प्रबल सेनाओं को अपने अधीन नियुक्त करो, उनको अपनी आज्ञा में संचालित करो। अथवा पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को भी गिराते हुए अपने रथों में हृष्ट पुष्ट घोड़ियों के समान रथों के अधीन शस्त्रवर्षी अगल बगल में पदाति सेनाओं का सञ्चालन करो।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥

भा०—वायुएं जिस प्रकार पृथ्वी पर अन्नादि की उत्पत्ति के लिये मेघ को लाते हुए, जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को एकत्र करती हैं, चमचमाते सूर्य या विद्युत् के बल से जलधाराओं को विविध दिशाओं में बरसा देते हैं और जलों से समस्त भूमि को चमड़े के समान भूमि पर जलों को फैला कर उसे तरबतर करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् जनो!

आप लोग जब जब और जिन जिन यन्त्र आदि मे जल सेचन करने वाली यन्त्र-कलाओ को जोड कर बनाओ तब तब वेग उत्पन्न करने के लिये कभी नास न होने वाले स्थिर मेघ के समान जल-वर्षक यन्त्र को चलाते रहो, और अति दीप्त अग्नि के बल से नाना जल-धाराएं विविध दिशाओं में छूटें। और वे जलो से थोडीसी भूमि के समान ही बहुत बडी भूमि को तरबतर कर दें।

वीरो के पक्ष में—जब रथो मे उनके अधीन आप लोग अश्व के समान अगल-बगल में रहने वाली, शस्त्र-वर्षण में कुशल पदाति सेनाओं को नियुक्त करो। युद्ध में शत्रु से छिन्न-भिन्न होने वाले मेघ के समान शस्त्र-अस्त्र वर्षण करने वाले सेना के प्रबल भाग को वेग से आगे को बढ़ाए हुए चलो। और अश्व-बल की धाराएं, पंक्तियो पर पंक्तियें, लगातार विविध दिशाओ में छूटें। जलो के समान समस्त भूमि को छोटे से स्थान के समान गीला कर दें, उसे भर दें। चर्म-इव—'चर्म' भूमि नापने का नपैना है, जिसमें लगभग १॥ वर्ग गज़ भूमि आती है।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः॥६॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण के वेगवान् झकोरे अति शीघ्रगामी होते हैं, अन्तरिक्ष में व्यापते और जलो और अन्नों से सबको तृप्त करते है उसी प्रकार हे विद्वान् और वीर पुरुषो! आप लोगो को वेग से मार्गों में भागने वाले, अति स्वल्प काल में बहुत सा मार्ग चले जाने वाले अश्व गण धारण करें अर्थात् आप अति वेगवान् अश्वो पर सवारी करें। आप लोग अपने बाहुबलों से अच्छी प्रकार आगे बढो और विजय प्राप्त करो। इन भूमिवासी प्रजाओं पर शासक रूप से विराजमान होवो। आप लोगो का गृह, सभास्थान आदि विशाल रूप से बनाया जावे। आप लोग मधुर जल और अन्न आदि रसो का उपभोग करके स्वयं खूब तृप्त और स्वत: आनन्दित हो और औरों को भी तृप्त करें। इति नवमो वर्गः॥

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७॥

भा०—वायुगण जिस प्रकार अपने बल से युक्त होकर आकाश में स्थित है उसी प्रकार वे वीर जन भी अपने बल से बलशाली होकर अपने बड़े भारी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वे विशाल अति सुखप्रद गृह को बनावें और उसमें रहें। आकाश में जिस प्रकार जल को गिराने वाले वृष्टिकारक मेघ को व्यापक या भीतर भीतर तक पवित्र होने वाला प्रकाशक सूर्य प्राप्त होता है और उसमें व्यापता है और उसके ऊपर के आकाश में पक्षी के समान ऊपर ऊपर रहता है उसी प्रकार व्यापक शक्ति और ज्ञान वाला विद्वान् शत्रुओं के मद को नाश करने और प्रजा के हर्ष को बढ़ाने वाले सैन्य-गण की सब प्रकार से रक्षा करें, ऐश्वर्य से तृप्ति करने वाले और प्रिय अन्तरिक्ष के समान उच्चासन या भूमि-शासक के पद पर आकाश में पक्षी या सूर्य के समान तेजस्वी होकर अधिष्ठित होकर रहें।

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण समस्त मनुष्यों में प्राण रूप से सब प्रकार के प्रयत्नों और चेष्टाओं को करते हैं उसी प्रकार वे युद्ध करने वाले, शूरवीर, उत्साही पुरुषों के समान विद्वान् गण सदा सावधान और आलस्य रहित होकर अपने कार्यों पर जाने वाले अश्वों, बलों और ज्ञानों के धर्त्ता और यशों के अभिलाषी होकर प्रजाओं और संग्रामों के बीच में नाना प्रकार के प्रयत्न और उद्योग करें। उन विद्वान् और उद्योगी वीर पुरुषों से समस्त लोक और प्राणी भय करते हैं। वे राजाओं के नायक वीर पुरुष युद्ध आदि में तेज और पराक्रम को दिखाने वाले हों।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार सहस्रों पाक करने वाले, तापदायक और तेजोमय किरण-समूह को प्रकट करता है, और उसको नाना कर्म करने के लिये धारण करता है उससे ही मेघ को आघात करता और जलों के सागर रूप मेघ को नीचे गिरा देता है अर्थात् प्रचुर वृष्टि करता है। इसी प्रकार उत्तम प्रजा-हित के कर्मों का करने हारा तेजस्वी पुरुष, प्रजा के हित और उनको अच्छा लगने वाला, सहस्रो प्रकार से दुष्टों को संताप देने वाला, सहस्रो शत्रु-सैन्यों को गिरा देने वाले, उत्तम रीति से बने जिस शस्त्र-अस्त्र बल को सञ्चालित करता है, ऐश्वर्यवान् वह सेनापति या राजा उस सैन्यबल को नायक के अधीन रख कर नाना कर्म करने के लिये धारण करता और उसको पालता, पुष्ट करता है, उससे ही बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को दण्डित करता है। और शत्रु सैनिको की सेनारूपी सागर को भी सर्वथा नीचे गिरा देता है, उसे परास्त करता है।

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

भा०—वायुगण अपने बल या सूर्य के तेज से नीचे भूमि पर स्थित जल को ऊपर उठा ले जाते हैं और वे ही बढ़ते हुए मेघ को विविध प्रकार से छिन्न भिन्न भी कर देते हैं। वे जलों के समूह, मेघ को कंपाते हुए सूर्य के बल पर वा जल के बल पर संग्राम के सदृश बलयुक्त या अति रमणीय कार्यों को करते हैं, उसी प्रकार वे वीर, विजयेच्छु सैनिक गण अपने बल पराक्रम से नीचे गिरे हुए राष्ट्र को ऊंचा उठावें। अथवा वे अपने पराक्रम से सुरक्षित राज्य और राष्ट्रपति को ऊंचा करें और बराबर बढ़ते हुए, दृढ़ नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त, पर्वत के समान दुर्गम, बीच में बाधा डालने वाले शत्रु को अपने पराक्रम से विविध उपायों से तोड़ फोड़ डालें। वे उत्तम, दानशील या उत्तम रीति से शत्रु बल को खण्ड खण्ड कर देने में कुशल बाण आदि शस्त्र-अस्त्रों को अग्नियुक्त अर्थात् तेज करते हुए और शब्द करने वाले मारू बाजे को बजाते हुए ऐश्वर्य

प्राप्ति के हर्ष में संग्रामोचित व विनोद युक्त नाना कर्मों को करें।

जि॒ह्मं नु॑नुद्रे॒ऽव॒तं तया॑ दि॒शासि॑ञ्च॒न्नुत्सं॒ गोत॑माय तृ॒ष्णजे॑।
आ ग॑च्छन्ती॒मव॑सा चि॒त्रभा॑नवः॒ कामं॒ विप्र॑स्य तर्पयन्त॒ धाम॑भिः ११

भा०—वायुगण प्यासे भूमिपालक किसान जन के हित के लिये, या प्यासे उत्तम प्रदेशों के लिये उसी दिशा से प्रजा की रक्षा करने वाले, कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जलप्रद मेघ को तिरछा, आकाश मार्ग से उड़ा ले जाते हैं और जल बरसा देते हैं। वे अद्भुत विद्युत्, कान्तियों से युक्त होकर उस प्रदेश को प्राप्त हो जाते हैं, विविध प्रकारों से भूमियों को जल और अन्नादि से पूर्ण कर देने वाले मेघ के धारण पोषणकारी जलों से कामना युक्त प्रजाजन को उनकी अभिलाषानुसार खूब तृप्त कर देते हैं। उसी प्रकार चित्र-विचित्र दीप्ति वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी और नाना चमचमाते, आग्नेयादि अस्त्र-शस्त्रों के सुसज्जित वीरगण और अधिक ऐश्वर्य के अभिलाषी 'गोतम' अर्थात् पुरुष-पुंगव नरश्रेष्ठ राजा की वृद्धि के लिये उसी दिशा से अर्थात् विजय करने की रीति से कूप के समान नीच और कुटिलगामी, शत्रुजन को मार भगावें और उत्तम मार्ग से जाने वाले भले पुरुषों को नाना ऐश्वर्यों से वृक्ष के समान सींच सींच कर बढ़ावें। अपने रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान बल से इस राजा को प्राप्त हों और उसको विद्वान् गण तथा विविध ऐश्वर्यों और तेजों से पूर्ण सूर्य के किरणों के समान प्रजा को धारण-पोषणकारी नाना सामर्थ्यों, तेजों और प्रतापों से खूब तृप्त करें, खूब बढ़ावें। सामान्यतः—दानी लोग प्यासे पथिकों के लिये गहरा कूआ खोदें, जल पिलावें, भूमियों को सींचें, विद्वान् ब्राह्मणों की अभिलाषाओं को स्थान, अन्नादि से तृप्त करें, उनकी रक्षा करें।

या वः॒ शर्म॑ शशमा॒नाय॒ सन्ति॑ त्रि॒धातू॑नि दा॒शुषे॑ यच्छ॒ताधि॑।
अ॒स्मभ्यं॒ तानि॑ मरुतो॒ वि य॑न्त र॒यिं नो॑ धत्त वृषणः सु॒वीर॑म्॥१२॥१०॥

भा०—प्राण गण जिस प्रकार शम आदि साधना करने वाले,

भगवान् मे आत्म-समर्पण करने वाले पुरुष को शरीर के धारण करने वाले वात, पित्त, कफ इन तीन धातुओं से युक्त सुखो या इनसे बने देहो को वश करते हैं, उसी प्रकार, हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! तुम्हारे जो लोह सुवर्ण और रजत तीनों धातुओ के बने अथवा वाणी, मन और काय तीनों को पोषण करने वाले सुखप्रद साधन या गृह हैं उनको तुम लोग उत्तम ज्ञानोपदेश करने वाले और विद्यादि सद्गुणों का दान करने वाले ज्ञानप्रद गुरु, विद्वान् पुरुषो के लिये प्रदान करो। वे ही सुख-साधन हे विद्वान् वीर पुरुष ! हमे भी विशेष रूप से प्रदान करो। सुखो के वर्षा करने हारे ! आप लोग हमे उत्तम वीर पुत्रों और पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो। इति दशमो वर्गः ।

[८६]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्द —गायत्री। २, ३, ६, ७, १० निचृद् (२, ३, ७ पिपीलिकामध्या)। दशर्चं सूक्तम् ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥१॥

भा०—हे विविध प्रकार के और विशेष तेजों वाले ज्ञानों और प्रभावों से युक्त विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग जिसके घर में, या जिसके आश्रय रह कर पृथिवी की और विद्या, विज्ञान की रक्षा करते हो वह मनुष्य उत्तम रक्षक है।

अध्यात्म मे—प्राणगण जिस आत्मा के देह में रह कर शरीर की रक्षा करते हैं वह आत्मा शरीर का उत्तम रक्षक है। उस ब्रह्माण्ड में जिस सूर्य के अधीन ये वायु गण रह कर जल का किरणों द्वारा पान करते हैं वह सूर्य ही समस्त प्रजाओं का बड़ा रक्षक है। इसी प्रकार वह परमेश्वर जिसके आश्रय मे रह कर विद्वान् गण आनन्द रस का पान करते हैं वह सबसे बड़ा रक्षक है।

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुतः शृणुता हवम् ॥२॥

भा०—हे यज्ञों, उत्तम कर्मों, सत्संगों और ज्ञान के श्रवण और प्रवचन को स्वयं धारण करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाले विद्वान् पुरुषो ! देह में प्राण के समान राष्ट्र में जीवन धारण कराने हारे ! आप लोग पूर्व कहे उत्तम २ कर्मों द्वारा और अन्यान्य परोपकार के कार्यों द्वारा विद्वान् पुरुष के और मननशील पुरुषों के उपदेशों को श्रवण करो और कराओ।

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत। स गन्ता गोमति व्रजे॥३॥

भा०—और जिस ज्ञानैश्वर्य वाले पुरुष के अधीन रहकर विद्वान् पुरुष को गुरुजन और अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाला विद्वान् बना देते हैं वह ज्ञान वाणियों के मार्ग मे तथा इन्द्रियों के ज्ञान करने के मार्ग में सफलता से जाने वाला हो।

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु। उक्थं मदश्च शस्यते ४

भा०—वृद्धिशील प्रजाजन के हित के निमित्त तथा दिव्य उत्तम कर्मों के निमित्त इस वीर्यवान् पराक्रमी पुरुष को अभिषेक द्वारा प्राप्त हुआ राज्यैश्वर्य और उत्तम वचन और आनन्द, हर्ष और अन्यान्य गुण भी प्रशंसा योग्य होते हैं।

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि। सूरं चित्सस्रुषीरिषः ५।११

भा०—जो सब मनुष्यों के प्रति कृपालु है और सूर्य के चारों ओर जिस प्रकार किरणें सूर्य के अधीन रहती हैं उसी प्रकार समस्त बलशालिनी भूमिवासिनी वेग से प्रयाण करने वाली प्रजाएं और सेनाएं इस राष्ट्रपति के आज्ञा-वचनों और उपदेशों को श्रवण करें। इत्येकादशो वर्गः॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम्। अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६॥

भा०—वायुगण शरत् आदि ऋतुओं से जिस प्रकार मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार पूर्व के विद्वानों से प्राप्त रक्षा-साधनों और ज्ञानों से हम लोग भी मनुष्यों के लिए सुख साधन प्रदान करें।

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ॥७॥

भा०—जैसे वायुगण और प्राणगण नाना उत्तम सुखों के देने वाले होकर अन्न, जल आदि नाना प्रिय पदार्थों को वर्षाते तथा देते हैं और भूमि निवासी जन ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्य के देने वाले हो । आप लोग जिस जिसको अन्न और आत्मा को तृप्त करने वाले ज्ञान आदि प्रदान करते हैं वह मनुष्य बड़े उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी हो ।

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः॥८॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! हे सत्य ज्ञान और नित्य बल से युक्त पुरुषो ! पसीना बहाने वाले, परिश्रमी, सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले, नाना उत्तम कामना करने वाले पुरुष के उत्तम सकल्प को जानो । अथवा सत्य के बल पर आश्रित, परिश्रम से प्राप्त करने योग्य उत्तम पुरुषों द्वारा उपदेश योग्य, विद्वानों और शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित, कामना करने योग्य धर्मानुकूल 'काम' नामक अभिलाषा योग्य, पुत्रैषणा रूप पुरुषार्थ का भी अच्छी प्रकार ज्ञान करो । प्रजनश्चास्मि कंदर्पः ॥ धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ॥ गीता० ॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ९

भा०—हे सत्य ज्ञान वाले और नित्य बल वाले, सदा हृष्ट-पुष्ट पुरुषो ! हे वीर जनो ! अपने महान् सामर्थ्य से तुम लोग उस पूर्वोक्त काम अर्थात् अभिलाषा करने योग्य पुरुषार्थ को प्रकट करो, सबको उस का उपदेश करो । और कामना योग्य पदार्थों की प्राप्ति में विघ्नकारी पुरुषों और पदार्थों को तथा बाधक कारणों को उत्तम प्रकाश युक्त ज्ञान और विशेष दीप्ति वाले आग्नेय शस्त्र-अस्त्र तथा विद्युत् और ज्ञान के प्रयोग से विनाश करो और अपने इष्ट की प्राप्ति करो ।

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—आप लोग अपने महान् ज्ञान-सामर्थ्य से बुद्धि में स्थित खेद-जनक अज्ञान रूप अन्धकार को विनष्ट करो। और सब कुछ खाजाने वाले, सर्वस्व-नाशक लोभ या कामतृष्णा रूप तामस विकार को भी विविध उपायों से दूर करो। जिस परम ज्ञानमय तेज की हम कामना करें उस उत्तम प्रकाश को प्रकट करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[८७]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ विराड् जगती। ३ जगती। ६ निचृज्जगती। ४ त्रिष्टुप्। व्यूहेन वा जगती। षड्‍च सूक्तम्॥

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः॥१॥

भा०—कुछ वीर पुरुष किरणों के समान हों। वे तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं की खूब काट-छांट करने में कुशल, सब प्रकार से बड़े शक्तिशाली, शत्रु के सामने कभी न झुकने वाले, उनसे परास्त न होने वाले ऋजु, सरल, धर्मयुक्त मार्ग में जाने वाले अथवा ऐश्वर्यों और बल-उपार्जन में दत्तचित्त, सब राज्यकार्यों में खूब सेवा करने वाले तथा राजपुरुषों द्वारा सेवा करने योग्य, भय से कभी न कांपने वाले, उत्तम नायक, नेता पुरुष विस्तृत, परराज्य, स्वराष्ट्र सब पर आच्छादन, अपना अधिकार या शासन करने वाले या शत्रुओं के नाशक, रक्षा, ज्ञान आदि के प्रकाशक और प्रकट चिह्नों और गुणों सहित हों। वे विविध उपायों से शत्रुओं और बाधक कारणों को उखाड फेंकें।

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते॥२॥

भा०—वायुगण कुटिलता से जाने योग्य आकाश भागों में जाते हुए मेघ को किसी भी मार्ग से लाकर संचित कर देते हैं तब मेघ जल बरसाते हैं, वायुगण अपने वेगवान् झकोरों में ही जलाभिलाषी प्राणिवर्ग

के लिये मधुर जल बरसाते हैं, उसी प्रकार हे वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग कुटिल मार्गों वाले, दुर्गम, सुरक्षित स्थानो मे पक्षियों के समान आकाश आदि किसी भी अज्ञात मार्ग से जाकर संग्रामों मे प्राप्त करने योग्य विजयैश्वर्य को संचय कर लिया करो। आप लोगो के रथों पर मेघो के समान शत्रुओं के तूणीर तथा राजा के खजाने वाण और ऐश्वर्य बरसावें। और आप लोग सत्कार पूर्वक रखने वाले अपने स्वामी के लिये मधु अर्थात् जल के समान स्वच्छ, तेज, बल और जल का सेचन करो। उस को मकट करो, उसका अभिषेक करो।

विमानो के पक्ष मे—विमान आदि रथो मे ज्वलनशील तैल, जलादि का सेचन करो।

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३॥

भा०—जब भी वे वीरगण उत्तम, शोभाजनक युद्ध के लिये मार्गों मे एक साथ गमन करते है तब इनके शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले युद्धादि पराक्रमों के अवसरों पर, भय से कांपती हुई स्त्री के समान भूमि भी मानो भयभीत होकर कांप जाती है। वे युद्धक्रीडा के व्यसनी, शत्रुओं को धुन डालने व कँपाने वाले, चमचमाते शस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित शत्रु के हृदय मे कंपकंपी उत्पन्न कर देने में समर्थ होकर स्वयं अपने महान् सामर्थ्य को अपने कार्यव्यवहार से प्रकट कर देते हैं, क्रिया द्वारा अपने बल को बतला देते हैं।

वायुपक्ष मे—उत्तम वृष्टि लाने के लिये जब वायुगण चलते हैं तब मेघों को इधर उधर फेंकने वाले प्रबल वेगों मे भूमि भयभीत स्त्री के समान कांपती है। वे वृक्षों को कंपाते हुए, विद्युतें चमकाते हुए, पर्वतों को कंपाने वाले वायुगण अपने कामों से ही अपने महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः॥४॥

भा०—वह पूर्वोक्त वीर नायक और विद्वानों का दल स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाला, मृग के समान अति वेग से जाने वाले अश्वों वाला, जवान, हृष्ट पुष्ट इस राष्ट्र का पूर्ण सामर्थ्यवान्, राष्ट्र का पूर्ण स्वामी बलवती सेनाओं से युक्त हो और वह सज्जनों के प्रति उत्तम व्यवहार वाला, उनका हितकारी, सत्यधर्माचरण करने वाला, ईमानदार, अपने और परायों के ऋण को चुकाने वाला, उत्तम, अनिन्दनीय शुद्धाचारी, सबमें उत्तम गिना जाने योग्य, सुखों का वर्षक, उत्तम बलवान् होकर इस उत्तम ज्ञान और धारण करने योग्य कर्मों, शक्तियों का अच्छी प्रकार रक्षा करने और उनको बतलाने वाला हो।

वायुओं के पक्ष में—अपने बलों से चलने हारा, मेघरूप अश्वों वाला, शक्तियों से युक्त होकर सब प्राणिसमूह का प्राणप्रद होने से स्वामी है। पृथिवी पर विद्यमान जंतुओं का हितकारी, जल लाने वाला अनिन्द्य है, वह उत्तम कर्मों और धारण योग्य प्रजाओं का रक्षक है।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

भा०—प्राचीन, पूर्व के पालक पुरुष के वीर्य से प्राप्त हुए जन्म, उत्पत्ति से ही हम लोग अपने नामों, स्वरूपों को कहा करते हैं। उत्पादक के गुणों के देखने से ही वाणी भी तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को कहती है। उत्तम यज्ञ आदि कर्म में जब वेदमन्त्रों को धारण करने वाले विद्वान् जन भी उस परमेश्वर को स्तुति प्रार्थना द्वारा प्राप्त होते हैं तभी वे अपने उपास्य प्रभु परमेश्वर के गुणों और तदनुरूप नामों को भी धारण करते हैं। उसी प्रकार पालक पुरुष के द्वारा ही वीर सैनिकों के भी नाम कहे जायं। उनके प्रेरक नाम के देखने से ही उनका वर्णन करे। राष्ट्र के

कामों में विद्वान् पुरुष राजा को प्राप्त हो, तभी वे राष्ट्रपति के दिये विशेष विशेष उपाधियों और पदों को धारण करें।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिःसुखादयः
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः॥६॥१२

भा०—जो शोभा और राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये सूर्य की किरणों के समान राजा के तेज की वृद्धि करने वाले सहायकारी पुरुषों द्वारा कर्त्ता, प्रजापति पुरुष को अच्छी प्रकार उत्तम राज्यपद पर अभिषिक्त करते हैं और जो पुरुष रासों से अश्वों के समान नायक और राष्ट्र को वश में रखने में कुशल हैं और जो ऋचाओं, वेदमन्त्रों, वाणियों, व्यवस्थाओं, आज्ञाओं और राष्ट्र के राज्यांगों द्वारा राष्ट्र को उत्तम रीति से, धर्मानुकूल उपायों से भोगने वाले और उत्तम अनिन्दनीय, स्वच्छ पदार्थों का भोग और भोजन करने वाले वाग्मी विद्वान्, प्रबल इच्छाशक्ति वाले, स्वयं गतिमान्, उत्साही और दूसरों को भी अपनी आज्ञा में चलाने हारे, सेना के स्वामी, शत्रु से कभी भय न खाने वाले हैं वे, वे, वे, क्रम से तीनों प्रकार के व्यक्ति सबको प्रिय लगने वाले, सबको प्रसन्न और तृप्त करने वाले, मनोहर मारुत पद, स्वरूप, महान् सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं! अर्थात् राष्ट्र की समृद्धि की वृद्धि ये तेजस्वी पुरुष राज्याभिषिक्त करने वाले जन 'मारुत तेज' को धारण करते हैं अर्थात् वे शत्रुहन्ता सैनिक बल को वश करने मे समर्थ होते हैं, दूसरे वे अपने बल से वृक्षों को वायु के समान, शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होते हैं। जो अश्वों के समान रासों से राष्ट्र को वश करते हैं और सूर्य की किरणों के समान जलवत् सुखों की वर्षा करते हैं वे भी वायुओं के समान प्रजा के प्राणप्रद, जीवनाधार होते हैं। जो ऋचा, अर्थात् वेदज्ञान से युक्त होकर ज्ञान जल का वर्षण करते और सात्विक भोजन करते और धर्माचारी, विवेकी हैं वे मारुत अर्थात् प्राणबल को शरीर मे आरोग्य रूप से भोगते हैं। जो वाणी वाले वाग्मी हैं, प्रबल, निर्भय हैं, वे वीर सैनिक नायकों का पद प्राप्त करते हैं।

वायु-पक्ष में वायुगण सूर्य की किरणों से वल प्राप्त करके जल का सेचन करते है। प्राण-शक्तियों से युक्त उत्तम अन्न देते हैं। गर्जनामय विद्युत् वाले, तीव्र वेगवान् होते हैं। अथवा सुख प्राप्त करने के लिये जो पुरुप अग्नियों से जलों की वर्षा करते हैं वे शिल्पज्ञ होते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[८८]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१ पङ्क्तिः। भुरिक्पङ्क्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ६ निचृद् बृहती॥ षड्‌ृच सूक्तम्॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! उत्तम गृहस्थो और गण बना कर रहने वाले वीर पुरुषो! वायुगण जिस प्रकार दीप्ति वाले सूर्य के पालन सामर्थ्यो और गमन वेगों वाले उत्तम किरणों से युक्त होकर विजुलियों वाले मेघों सहित खूब जब वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति से युक्त आते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् जनो! आप भी बिजुली की दीप्ति से युक्त, उत्तम विचारित यन्त्रों से बनाये गये चालक खूटियों तथा शस्त्र-अस्त्रों से युक्त घोड़ो और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा शीघ्र मार्ग में जाने वाले, रथों या योग्य सवारियों द्वारा आया जाया करो। हे उत्तम बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुषो! पक्षियों के समान या सेना के साथ शीघ्र गति से आया जाया करो।

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम॥२॥

भा०—तेजस्वी, अद्भुत, खड्गधर योद्धा जिस प्रकार शस्त्र से शत्रु-सेना का नाश कर देता है उसी प्रकार वे वीर विद्वान् गण रथ की चक्र-

धारा से भूमि को पीडित करते हैं। वे लाल, पीले रथो को वेग से ले ाने वाले अश्वों या यन्त्रो से उत्तम शोभा प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ, सुखकारी प्रजापालक राजा को प्राप्त होते हैं।

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार लोग काटने वाले कुल्हाडे आदि शस्त्रों को कन्धो पर उठाते और ऊंचे ऊंचे वृक्षो को काट गिराते हैं उसी प्रकार हे वीर सैनिक लोगो! आप लोग अपने शरीरों या कन्धो पर शत्रुओ का हिसन या वध करने वाले शस्त्र-अस्त्रो को, राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये धारण करो। और ऊंचे उमडते हुए शत्रु-सेना के दलो को काट गिराओ। उत्तम विद्या और ऐश्वर्य मे प्रसिद्ध अति धनाढ्य जन भी तुम लोगों के भरण-पोषण और रक्षा के लिये ही अक्षय शस्त्रास्त्र बल को अपना धन बना लेते हैं। अथवा तुम्हारे रक्षणार्थ वे पर्वत के समान उच्च धन राशि का संग्रह करते हैं।

विद्वानों के पक्ष मे—अपनी उत्तम शोभा के लिये ही विद्वान् जन शरीरों में पावन बुद्धियों, पवित्र वाणियो को धारण करें। उच्च कोटि के ऐश्वर्यों को प्राप्त करें। हे विद्वानो! तुम्हारे भरण-पोषण आदि के लिये उत्तम कोटि के बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी सम्पन्न लोग भी पर्वत के समान विशाल धन प्राप्त करते हैं।

अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम्।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥४॥

भा०—वेद का अध्ययन करते हुए उत्तम वाणी को धारण करने वाले विद्वान् जन उत्तम वेदमन्त्रो द्वारा ज्ञान-रस का पान करने और औरो को पान कराने के लिये सबसे ऊपर, ऊंचे स्थान पर विद्यमान, सर्वोच्च, परम ज्ञानानन्द रसों को कूप के समान धारण करने वाले परमेश्वर को प्रेरते अर्थात् उसकी उत्तम रीति से स्तुति, आराधना

करते है। जैसे ऊंचे स्थान पर बने जलाशय, कूप या टैंक से पानी को पान, स्नान आदि करने के लिये विद्वान् जन यन्त्रों द्वारा नीचे बहा लेते हैं उसी प्रकार विद्वान् जन अपने से ऊपर, अधिक ऊच्च कोटि मे स्थित परमेश्वर और आचार्य को अपनी ज्ञान-रस पिपासा को शान्त करने के लिए प्रेरित करते हैं, उससे प्रार्थना करते और उसकी स्तुति करते हैं। विद्वान् जन जिस प्रकार जल प्राप्त करने की क्रिया को सब प्रकार से साधते हैं उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन भी दुःखो के वारण करने वाली, ज्ञानमद, सुखप्रद, चित्तों की प्रकाशक देवी, वेदविद्या को सब प्रकार से अभ्यास करते है। हे विद्वान् पुरुषो! उत्तम ज्ञान के धारण करने वाले परम रस को पान करने के लिये और इस ज्ञान और कर्ममयी, दिव्य ऐश्वर्यमय वेद विद्या को प्राप्त करने के लिये विद्या और धन के अभिलाषी पुरुष सब दिनो तुम लोगों के पास सब देशों से आ आ कर एकत्र हों और ज्ञान का अभ्यास करें।

किरणों और वृष्टिविद्या के पक्ष में—दिन गण या सूर्य के प्रकाश गीधों के समान जलों को अपने भीतर लेने की इच्छा वाले होकर इस जल उत्पन्न करने वाली प्रकाशमयी या सूर्य की धारण शक्ति को सब तरफ फैलाते हैं। उत्तम सूर्यगण अपनी किरणो से प्रकाश करते हुए, पान करने के लिये ऊपर, अन्तरिक्ष मे कूप के समान अधिक जल को धरने वाले मेघ को प्रेरित करते है। अथवा कुओं आदि के द्वारा जल को उत्पन्न करने वाले कूपि-कर विद्वान् जन भूमियों को जलपान कराने अर्थात् सेचने के लिये नाना साधनों के कूप मे स्थित जल को ऊपर खींच लेवें। जल के अभिलाषी लोग भी इस जल प्राप्त करने की सुखप्रद उत्तम क्रिया को तुम लोगों से सीखें। ऐश्वर्य या महान् राष्ट्र को वश करते हुए विद्वान् भूमि-पति लोग उत्तम आदर, मान, सत्कारों से स्वयं राष्ट्र का भोग करने के लिये हे वीरो! तुममे से जो धनाकांक्षी हैं वे इस धनप्रद, उत्तम रक्षा कारिणी बुद्धि को धारण करें।

एतत्त्यन्न योर्जनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥

भा०—हे वीर सैनिक गणो ! वह प्रत्यक्ष तुम लोगो का योजन अर्थात् विशेष व्यवस्था या कार्य में नियुक्ति पूर्व योजना या नियुक्ति के समान ही जाननी चाहिये जिसको तुम लोगो के लिये तुममे सबसे श्रेष्ठ वह प्रधान सेनापति, विद्वान् उपदेश करता है। जो तुमको सुवर्ण के चक्रों और लोह की शस्त्र-अस्त्र रूप शत्रुनाशकारी दाढों वाले, जंगली शूकरों के समान क्रोधान्ध होकर विविध दिशाओ मे दौडते हुओं को देखा करता है। शिक्षक सेनापति वीर सैनिको को पूर्व शिक्षित व्यूहों की आज्ञा करे। युद्ध मे सशस्त्र होकर वेग से दौड़ते हुए सैनिको पर अपनी आंख रक्खे। वेतन-बद्ध होने से सुवर्ण या धन प्राप्ति ही मानो उनके वेग से जाने का कारण है। शस्त्र ही उनके शत्रुओ को फाड़ खाने के साधन हैं। वे शूकर के समान क्रोधान्ध होकर दौड़ते हैं। अथवा अपने उत्कृष्ट बल वाले को ललकारने से वीर गण 'वराहू' हैं।

शिल्पपक्ष में—अग्नि, वायु, जल आदि वेग युक्त, अति घोर शब्दकारी पदार्थों का यह विशेष प्रकार का संयोजन पूर्व के समान ही जानना चाहिये, जिसका गति विद्या का उत्तम विद्वान् उपदेश करता है। जो श्रेष्ठ पुरुषों को लेकर जाने वाले या खूब शब्द करके चलने वाले नाना दिशाओ मे वेग से जाते हुए लोह के बने स्वर्ण के समान चमकते हुए चक्रों और लोह के ही हाल से मढे रथों को देखता है, उनका आविष्कार करता है।

अध्यात्म मे—हे प्राणगण, मुख्य गोतम, आत्मा, पूर्व कल्प के समान ही तुम प्राणों का देह में सयोजन करता है। वह हिरण्य रूप आत्मा तुमको चलाने वाला और वेग से चलने वाले मनो बल से ग्राह्य विषय के भोग करने वाला नाना दिशा में जाते हुए उत्तम अन्नों को प्राप्त होने वाला तुमको देखता है, तुम पर शासन करता है।

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष की वाणी जिस प्रकार बांध लेती है अर्थात् अपने आराध्य देव को वश में कर लेती है उसी प्रकार हे देह में प्राणों के समान राष्ट्र के जीवन रूप विद्वानो ! वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोगों की यह वह नाना प्रकार की प्रतिदिन भरण पोषण करने वाली आजीविका ही है जो आप में से प्रत्येक को अपने अपने कार्य पर बांध रही है। देह को धारण पोषण करने वाली अन्न या पिण्डपोषणी आजीविका के अनुसार ही वह प्रधान राजा इन सेनाओं के बाहुओं को भी अनायास ही बांध लेता है। अर्थात् वीर पुरुषों के बाहुबल भी वेतन के अधीन होते हैं। इति चतुर्दशो वर्गः।

[८९]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती। २, ३, ७ जगती। भुरिक् त्रिष्टुप्। एकोना वा विराड् जगती। ८ विराट् त्रिष्टुप्। ९, १० त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् बृहती विराट्पङ्क्तिर्वा। दशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥

भा०—हमारे बीच में जो पुरुष उत्तम क्रियाकुशल, ज्ञानी और सबके कल्याणकारी, सुखकारक एवं सेवा और सत्संग करने और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले हैं वे कभी मारने, पीड़ा देने और वध करने योग्य नहीं हैं। वे कभी किसी अवस्था में परित्याग या उपेक्षा न किये जावें। वे सदा उत्तम वृक्षों के समान उत्तम कर्मों और फलों को देने वाले या उत्तम कृषकों के समान उत्तम ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने हारे होकर हमें सदा प्राप्त हों। अथवा वे हमारे घरों पर आवें। जिस कारण से वे ज्ञानवान्, विद्वान, विद्याप्रद, दानी और विजयेच्छुक पुरुष प्रतिदिन

कभी आयु और जीवन शक्ति को न खोने वाले, सदा दीर्घायु, बलवान् रक्षक होकर हमारी वृद्धि के लिये ही हो।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम्।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥

भा०—सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा विद्वानों की कल्याण और सुख देने वाली उत्तम बुद्धि, उनके उत्तम ज्ञान हमें सदा प्राप्त हो। सरल, धर्मात्मा विद्वानों की सुखदायी, कल्याणमय विद्या आदि का उपदेशरूप दान हमें सदा प्राप्त हो। दानशील, विजयी, उत्साही, तेजस्वी पुरुषों के मित्र भाव को सदा प्राप्त करें। वे विद्वान् जन हमारे जीवन को दीर्घ काल तक जीने के लिये खूब बढ़ावें या उन्नत करें। उसी प्रकार ऋतु-अनुकूल प्राप्त होने वाले या प्राण-बल को धारण करने वाले अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य आदि दिव्यगुण वाले तेजस्वी पदार्थों का उत्तम स्तम्भन-बल तथा धर्मात्मा विद्वानों की शुभ मति हमें प्राप्त हो, उनकी उत्तम दानशक्ति हमें प्राप्त हो। हम उनके प्रेम भाव व अनुकूलता को प्राप्त करें। वे हमारे जीवन की वृद्धि करनेवाले हों।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥

भा०—ऐश्वर्यवान्, सेवा करने योग्य, सुखजनक, सर्व सुहृद् ब्राह्मण, मरणादि दुःखों से बचाने वाले वैद्य आदि, कभी नाश, पीड़ा या दुःख न देने योग्य, सदा पूज्य, माता पिता, भूमि और गुरु आदि पूज्य जन, कार्यों में चतुर ज्ञानी, गुरु और पिता आदि, अहिंसक, किसी को पीड़ा न देने वाले शत्रुओं को वश करने में समर्थ, न्यायकारी, सर्वश्रेष्ठ, दुःखों और दुष्टों के वारक, सर्वोत्पादक, पिता, सर्वप्रेरक, उपदेशक, शम दमादि सम्पन्न साधक जन, गुरु शिष्य तथा स्त्री पुरुष, अग्नि जल, दिन रात्रि आदि युगल, उन सभी की हम अपने से पूर्व के गुरुओं द्वारा पढ़ने, ज्ञान करने योग्य, सनातन से चली आयी वेदवाणी द्वारा प्रशंसा करें, उनका

वेदानुसार ज्ञान का उपयोग और आदर करें। विदुषी स्त्री और उत्तम ज्ञानों से भरपूर वेदवाणी और ज्ञानवान् परमेश्वर और विद्वज्जन भी उत्तम ऐश्वर्यों तथा पुत्र पौत्रादि, धन-धान्यादि से युक्त सेवनीय सुखकारी ज्ञान से युक्त होकर हमें सुख प्रदान करें।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥४

भा०—वायु और प्राण हमें वह नाना प्रकार के सुखकारक, रोग दूर करने का सामर्थ्य प्राप्त करावे। माता और माता के समान पृथिवी दोनों वह रोगनाशक बल दें। प्रकाशमय सूर्य पालक होकर पिता के समान उस रोगनाशक बल को प्राप्त करावे। सोम अर्थात् रोगों को निकाल बाहर कर देने वाले और नाना सुखों और बलों के उत्पादक ओषधियों के रसों को तैयार करने वाले विद्वान् पुरुष तथा सिल, बट्टा, खरल आदि साधन, उपकरण सुखकारी होकर नाना प्रकार के दुःखों के दूर करने के उपायों को प्राप्त करावें। हे स्त्री पुरुषो! माता पिताओ! गुरु शिष्यो! आप लोग बुद्धिमान् होकर रोगों को और दुःखों को दूर करने के उपायों और साधनों का श्रवण करो और कराओ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम्।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥५॥१५॥

भा०—हम लोग चर, जंगम, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणधारी और वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर संसार के पालक, धारण पोषण करने वाले अन्न से सब जीवों को तृप्त करने वाले या सद्बुद्धि प्रदान करने वाले उस परम ऐश्वर्यवान्, स्वामी परमात्मा को ज्ञान और रक्षा को प्राप्त करने के लिये स्मरण करते हैं। वह सबका पोषक, दुष्टों से रक्षक, सब प्रजाओं का पालन करने हारा और कभी विनष्ट न होकर, नित्य सुरक्षित रहकर हमारे धनों और ऐश्वर्यों की वृद्धि और हमारे सुख और कल्याण के लिये हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६॥

भा०—बड़े हुए, बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी आचार्य और परमेश्वर हमें सुख और कल्याण प्रदान करे। समस्त-ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी, सबका पोषक प्रभु हमे शरीर-पोषण का सुख प्रदान करे। विद्वान् ज्ञानी या वेग से अन्यत्र जाने हारा शिल्पी रथचक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर हमे मार्ग लांघने का सुख प्रदान करे और वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष अटूट, दृढ़ हथियारों से युक्त होकर हमें शत्रुजय से प्राप्त होने वाले सुख को दे। वेदवाणी और बड़े राष्ट्र का स्वामी हमे ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य-समृद्धि का सुख दे। अथवा प्रचुर अन्न और ज्ञान का स्वामी होने से परमेश्वर 'वृद्ध-श्रवा.', सर्वज्ञ और धनों का स्वामी होने से 'विश्ववेदाः', व्यापक, सबका प्रेरक होने से 'तार्क्ष्य' और दुष्टों का नाशक होने से 'अरिष्टनेमि' और वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्ड का पालक होने से वही 'बृहस्पति' है। वह हमे सब प्रकार के सुख प्रदान करे।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७॥

भा०—जिस प्रकार जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त, सेचन मे समर्थ मेघो के उत्पादक, वायुगण गति करते हुए लोगों को उत्तम सुख प्राप्त कराते है और वे ही अग्नि की ज्वाला से युक्त होकर प्रकाश युक्त होकर सूर्य के समान चमकते हुए हमे दीप्ति सहित प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार तेजस्वी, दानशील, ज्ञानदर्शक, विद्वान्, वीर पुरुष हृष्ट-पुष्ट और नाना वर्णों के अश्वादि यानों पर चढ़ कर, मातृभूमि से उत्पन्न प्रजा को सुख और शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाले संग्रामों, ज्ञान-सत्संगों मे जाने वाले, अग्नि के समान समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली उपदेशप्रद वाणी से युक्त, विचारशील, सूर्य के समान तेजस्वी

चक्षु वाले अथवा सूर्य, प्राण, अन्न आदि के परम सूक्ष्म तत्वों को देखने और उनको स्पष्ट रीति से वर्णन करने वाले, समस्त दानशील और ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानद्रष्टा पुरुष इस राष्ट्र मे ज्ञान प्रकाश और रक्षण-सामर्थ्य सहित हमें सदा प्राप्त हों।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ ८॥

भा०—हे सत्संग करने योग्य, एवं अग्निहोत्र, ईश्वरोपासना करने और विद्या आदि उत्तम पदार्थों के देने हारे विद्वान्, दानशील पुरुषो! हम लोग कानों से सुखकारी कल्याणकारक वचनो का श्रवण करें। आंखों से सुखकारी, कल्याणजनक दृश्य को देखें। परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थों का यथार्थ रूप से वर्णन करते हुए, हम लोग स्थिर, दृढ, निश्चल अंगो से और विस्तृत, हृष्ट पुष्ट शरीरों से जो दीर्घ जीवन विद्वान् जनो को हितकारी है हम भी प्राप्त करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥६॥

भा०—हे उत्तम साधनों से प्राण धारण करने और कराने मे समर्थ विद्वानो! और अग्नि, जल, वायु, सूर्य, पृथिवी, अन्न आदि जीवन देने वाले पदार्थो! जिस जीवन दशा मे सौ वर्ष ही हमारे शरीरों की जीर्ण दशा को पूर्ण कहते हैं और जब, जिस काल मे पुत्र भी बड़े होकर गृहस्थ धारण कर बच्चो के पिता अथवा हम वृद्धो के पालन करने योग्य हो, जायं उस दशा तक पहुचने के लिए बीच बीच मे हमारी आयु को मत नष्ट होने दो अर्थात् हमे सदा स्वस्थ रक्खो।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् १०।१६

भा०—प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, सूर्य, नक्षत्रादि और आकाश ये कभी नाश न होने से 'अदिति' है। आकाश और उसमें स्थित वायु भी नाश

न होने से 'अदिति' हैं। पुत्रों को उत्पन्न करने वाली माता, नित्य आदर करने योग्य, कभी पीड़ा या आज्ञा भंग न करने योग्य होने से 'अदिति' है। सर्वोत्पादक 'माता' प्रकृति और मातृस्नेहवान् परमेश्वर भी अविनाशी होने से 'अदिति' है। इसी प्रकार पालन करने वाला और वीर्य और विद्या से उत्पन्न करने वाला पालक, जनक और आचार्य ये भी पीड़ा न देने और आज्ञा उल्लघन करने योग्य न होने से तथा उनके उपकार कभी नष्ट न होने से और उनके सदा एक भाव में आदर योग्य बने रहने से भी 'अदिति' कहाने योग्य हैं। पिता और पालक जनों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कष्टों से बचाने वाला पुत्र, शिष्य, चाहे वह क्षेत्र सम्बन्ध और विद्या सम्बन्ध से हो, सन्तति-परम्परा, कुल-परम्परा और सम्प्रदायपरम्परा को न खण्डित करने हारा होने से 'अदिति' है। समस्त देव गण, विद्वान् पुरुष तथा सूर्यादि दिव्य पदार्थ पीड़ा न देने योग्य तथा नाश न होने हारे होने से 'अदिति' कहाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचो जन नाश न करने योग्य होने तथा प्रवाह से सदा विद्यमान रहने से 'अदिति' हैं। समस्त उत्पन्न पदार्थ कारणरूप से और नाशवान् न होने से 'अदिति' है और आगे भविष्यत् में भी उत्पन्न होने वाले पदार्थ कारण पदार्थों में अव्यक्त रूप से विद्यमान होने से 'अदिति' कहाते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

[९०]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ८ गायत्री। २, ७ पिपीलिकामध्या निचृद्। ३ पिपीलिकामध्या विराट्। ४ विराड्। ५, ६ निचृदनुष्टुप ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः॥१॥

भा०—गुण, कर्म और स्वभाव से श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला, सबसे मुख्य पद के लिये वरण करने योग्य, मृत्यु से बचाने वाला

सबका स्नेही, शत्रुओं और बाधक दुःखदायी कारणों का नियन्त्रण करने वाला, न्यायकारी, उत्तम विद्वान् पुरुषो के साथ, समान भाव से प्रीति-युक्त होकर विद्वान् पुरुष, राजा हमें ऋजु, सरल, कुटिलता रहित नीति अर्थात् धर्म-मार्ग से सन्मार्ग पर चलावे। इसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त परमेश्वर हमें उत्तम गुणों, कर्मों और स्वभावो से युक्त होने के कारण सब से समान भाव से प्रेम करने हारा और सबका प्रेमपात्र होकर हमे उत्तम धर्ममार्ग से चलावे।

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा॥२

भा०—जो लोग सब दिनो, नित्य नियत धर्म नियमों को स्वय पालन करते और औरों से पालन कराते है वे ही वस्तुतः बसे हुए प्रजा-जन और ऐश्वर्य के सुख से बसाने और उनकी रक्षा करने मे समर्थ होते हैं और विद्वान् तथा वीर जन वे सब दिनो बढे बडे गुणो, कर्मों और नाना उपायो द्वारा असावधानता, मोह, प्रमाद और आलस्य से रहित होकर रहे।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः॥३॥

भा०—वे कभी न मरने वाले अर्थात् यशस्वी, बलवान्, अपराजित, जीवन्मुक्त, दीर्घजीवी, प्रजा, पुत्र, शिष्य एवं उत्तराधिकारी आदि पर-म्परा से सदा बने रहने वाले अधिकारी, विद्वान् जन अप्रीति करने योग्य, द्वेष्य, दुष्ट पुरुषो और बुरे, खोटे कर्मों और विचारों को दूर करते हुए, हम मरणधर्मा मनुष्यों के लिये सुख प्रदान करें।

वि नः पथः सुवितार्य चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः॥४

भा०—ऐश्वर्यवान्, विद्यावान् और शत्रुओं का नाश करने वाला सबका पोषक, अन्न देने वाला और राजा उत्तम सेवनीय पदार्थों और गुणों से युक्त परमेश्वर, विद्वान् आचार्य और राजा आदि और विद्वान् वीर तथा वैश्यादि गण, हमारे सुखपूर्वक देश-देशान्तर में जाने और उत्तम

ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये मार्गों और नाना उपायों को निर्धारित तथा विस्तृत करें, बनावें।

उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः।
कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे सबके पोषण करने हारे! हे व्यापक सामर्थ्य वाले परमेश्वर! हे ज्ञानो को स्वयं प्राप्त करने और औरों को प्राप्त कराने वाले विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमारी बुद्धियों को उत्तम वेद वाणियो से प्रकाशित होने वाला करो। अर्थात् हमारे कर्म और विचारो मे 'गो-अग्र' अर्थात् वेदवाणी मुख्य साक्षी रूप से रहे। अथवा हमारे समस्त विचार उत्तम वाणियो द्वारा आगे आने या प्रकाशित होने वाले हों। हमारे विचार उत्तम वचनो मे प्रकाशित हो। इसी प्रकार अधीनस्थ सैनिक आदि अपने नायक से कहते हैं–हे पोपक! हे विष्णो! महान् सामर्थ्य और अधिकार वाले नायक! हमारे सब काम तेरी वाणी को आगे रख कर हो। तेरी आज्ञा पहले हो और हमारे कार्य तदनुसार हों। हे गति देने हारे या शीघ्रगामी रथ से जाने हारे महारथी! तू हमे सुख-कल्याण से युक्त कर। अथवा हमारे सब काम ज्ञानवान् आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के नायकत्व मे हों। इति सप्तदशो वर्गः ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ६

भा०—अन्न को प्राप्त करने की इच्छा वाले मानव समाज के लिये वायुगण जिस प्रकार जल बरसाते हैं उसी प्रकार सत्य ज्ञान के इच्छुक जिज्ञासु जन के लिये ज्ञानवान् पुरुष मधुर ब्रह्म विद्या का उपदेश दें। और जिस प्रकार महा नदियें अन्न के इच्छुक को नहरों से जल बहाती हैं उसी प्रकार ज्ञान के अगाध सागर एव विद्या सम्बन्ध से अपने साथ शिष्यो को बांधने वाले आचार्य गण सत्य ज्ञान के जिज्ञासु को मधुर ब्रह्मज्ञानोपदेश प्रदान करते है। ओषधियां जिस प्रकार हमारे लिये मधुर

गुण से युक्त एवं मधुर, सुखजनक स्वास्थ्य और पुष्टि प्रदान करने वाली होती हैं उसी प्रकार तेज और ताप को धारण करने वाले पदार्थ और प्रतापी, तेजस्वी, वीर सेनाएं और परिपक्व ज्ञान वाले जन हमारे लिये मधुर ज्ञानप्रद हों।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७॥

भा०—रात्रि का समय हमारे लिये मधुर, सुखकारी हो और उषा-काल, प्रभात वेलाएं हमारे लिये मधुर, सुखकारी, शान्तिप्रद, आरोग्य-कारक हो। पृथिवी की धूलि और पृथिवी पर बसे यह समस्त लोक भी मधुर गुण से युक्त, सुख और आरोग्यकारक और बलकारक हों। सूर्य हमारे पालक पिता के समान मधुर, सुखकारी, आरोग्यजनक हों।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८॥

भा०—वनस्पति हमारे लिये मधुर रस, फल और छाया से युक्त हो और सूर्य और शरीरगत प्राण हमारे लिये मधुर सुखदायी प्रकाश और बल देने वाला हो। हमारी गौ आदि पशु और सूर्य की किरणें और वेदवाणियें और देहगत इन्द्रियें हमें क्रम से मधुर दुग्ध, घृत आदि रस, मधुर प्रकाश से उत्पन्न होने वाले रोग-नाशक प्रभाव, ज्ञान और सुखप्रद, अनुभव देने वाले हों।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥ १८ ॥

भा०—हमें सबका परम स्नेही, परमेश्वर शान्ति प्रदान करे। वह सर्वश्रेष्ठ, दुःखों का निवारक शान्तिदायक हो। वह न्यायकारी, दुष्टों का नियन्ता, प्रभु शान्तिदायक हो। वेदवाणी का पालक और बड़े लोकों का पालक, ऐश्वर्यवान् प्रभु हमें शान्तिदायक हो। बड़े भारी पराक्रम वाला, अनन्य बलशाली और सर्वव्यापक परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो। इत्य-ष्टादशो वर्गः ॥

[६१]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषि ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ स्वराट् पङ्क्तिः । २ पङ्क्तिः । १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः । २२ विराट् पङ्क्तिः । ५ पादनिचृद् गायत्री । ६, ८, ९, ११ निचृद् गायत्री । १०, १२ गायत्री । ७, १३, १४ विराट् गायत्री । १५, १६ पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री । १७ परोष्णिक् । १९, २१, २३ निचृत् त्रिष्टुप् । त्रयोविंशत्यृच सूक्तम् ॥

त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीरा॑: ॥ १ ॥

भा०—हे सब जगत् के प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर और विद्वन् ! आप मन की प्रबल इच्छा द्वारा अच्छी प्रकार जानते और ज्ञान देते हो । आप अति ऋजु, सरल मार्ग की ओर ले जाते हो । आपकी ही उत्तम नीति से हमारे पालक, मा बाप के समान, स्नेहवान् होकर धीर और कर्मशील बुद्धिमान् पुरुष विद्वानो के बीच मे रहते हुए उत्तम ऐश्वर्य और परमसुख को प्राप्त करते हैं ॥

राजा वै सोम. । श० १४ । १ । ३ । १२ । राजा और विद्वान् के पक्ष में—तू अपनी बुद्धि से सब कुछ भली प्रकार जान । और हमे ऋजु, धर्ममार्ग पर ले चल । हे ऐश्वर्यवन् ! पालक, शासन जन विद्वानों और विजयेच्छु धीर पुरुषो के आधार पर ही तेरी उत्तम नीति से धैर्यवान् होकर सुखों मे रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

अध्यात्म मे—अन्न वै सोम. । श० ३।१।१।८॥ प्राण. सोमः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥ रेत. सोम. । श० ३ । ३ । २ । १ ॥ हे अन्न, प्राण और प्रजा के उत्पादक, हे शुक्र ! तू मन की प्रेरणा से या कामना या हर्ष द्वारा समस्त रोगों को दूर करता और उत्तम ज्ञान सामर्थ्य देता है । और राजस भाव से युक्त मार्ग की तरफ गृहस्थोचित कार्य में भी प्रवृत्त करता है । बुद्धिमान् मा बाप तेरे उत्तम उत्तन उपयोग से विद्वानों के

बीच पुत्र और प्राणों के बल पर रमण योग्य, शारीरिक सुखप्रद बल को प्राप्त करते है ।

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः ।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवन्, ज्ञानवन्, सर्वाज्ञापक, प्रेरक राजन्! परमेश्वर! विद्वन्! तू उत्तम कर्मों और उत्तम उत्तम ज्ञानों से उत्तम कर्म करने हारा और उत्तम ज्ञानवान् है। तू नाना बलों मे उत्तम बलशाली और समस्त संसार को जानने हारा, समस्त धनों का स्वामी है। तू समस्त काम्य पदार्थों, सुख, विद्या, धन आदि के वर्णन करने के सामर्थ्यों से और अपने महान् सामर्थ्य से मेघ के समान सुखों के वर्षण-कारी 'वृषा' हो। और तू समस्त मनुष्यो को देखने हारा, सब पर साक्षी अधिष्ठाता होकर ऐश्वर्यों से ऐश्वर्यवान् है। शुक्र शरीर मे क्रिया सामर्थ्यों का उत्पादक होने से 'सुक्रतु' और ज्ञान या मनन शक्तियों ओर बलों का वर्धक होने से 'सुदक्ष' है। पुरुषत्व आदि गुणों का उत्पादक होने से 'वृषा' है। कान्तियों और तेज, ओज आदि का जनक होने से 'द्युम्नी', प्राणों, इन्द्रियों और 'नृ' अर्थात् नरों मे दीखने से 'नृचक्षा' है। सब काम्य सुखो को देने से 'विश्ववेदाः' है।

राज्ञो॒ नु ते॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ बृ॒हद्ग॑भी॒रं तव॑ सोम॒ धाम॑ ।
शुचि॒ष्ट्वम॑सि प्रि॒यो न मि॒त्रो द॒क्षाय्यो॑ अर्य॒मेवा॑सि सोम ॥३॥

भा०—हे राजन्! हे सर्वश्रेष्ठ, सब दुष्टों के वारक, सबसे वरण करने योग्य! तुझ राजा के ही बनाये ये सब राज्यपालन के नियम हों। हे राजन्! तेरा धारण सामर्थ्य और नाम, जन्म और स्थान तथा यश भी बहुत बड़ा और गम्भीर, सब पर प्रभाव डालने वाला हो। तू प्रिय मित्र के समान शुद्ध, निष्कपट व्यवहार वाला हो। और हे ऐश्वर्यवन्! तू शत्रुओं का दमन करने वाले, सेनापति और न्यायकारी, धर्माध्यक्ष के समान बल और यथार्थ न्याय-शासन करने हारा हो। अथवा परमेश्वर के

सब सत्य नियम और उसका बल महान् अगाध है। वह प्यारे मित्र के समान सबका हितचिन्तक तथा स्वच्छ हृदय है, वह सूर्य के समान समस्त बलो और ज्ञानो का आश्रय है।

या ते धामा॑नि दि॒वि या पृ॑थि॒व्यां या पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु।
तेभि॑र्नो॒ विश्वैः॑ सु॒मना॒ अहे॑ळ॒न्राज॒न्त्सोम॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥४॥

भा०—हे राजन्! सबके अधिपते और सर्वत्र प्रकाशमान! हे सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! तेरे जो जगत् को धारण करने वाले महान् बल, सामर्थ्य, सूर्य मे जो धारण-पोषण सामर्थ्य, पृथिवी मे और जो पर्वतो मे, जो ओषधियो तथा वनस्पतियों में और जो जलो मे हैं, उन सब सामर्थ्यों से हम पर अनुग्रह करता हुआ देने और ग्रहण करने योग्य समस्त पदार्थों को प्रत्येक प्राणी को प्रदान कर और अपने वश कर।

राजा के पक्ष मे—ज्ञानसम्बन्धी कार्यों, व्यवहार या विद्वत्सभा मे पृथिवी निवासी प्रजा मे पर्वतो और मेघो के समान अचल और शस्त्रवर्षी नायकों मे ताप, दाह युक्त प्रतापी सेनाओं मे जो तेरे तेज, पराक्रम हैं उन सबसे हम प्रजाओं का तिरस्कार न करता हुआ ग्राह्य और दानयोग्य ऐश्वर्यों को हमसे ले और फिर दान कर। अथवा अन्तरिक्ष पृथिवी, पर्वत आदि स्थानो मे सब उत्तम पदार्थ भरे हैं, प्रजा को वञ्चित न करता हुआ योग्य रीति से राज-स्व और प्रजा-स्व का विभाग कर।

त्वं सो॑मासि॒ सत्प॑ति॒स्त्वं राजो॒त वृ॑त्र॒हा। त्वं भ॒द्रो अ॑सि॒ क्रतुः॑॥५॥१९

भा०—हे सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! तू नित्य कारण, विद्यमान कार्य और सज्जनो का पालक है। तू सबका प्रकाशक, सबका अधिपति, राजा और सूर्य के समान अज्ञान-आवरण का नाश करने वाला है। तू सबको सुख और कल्याणकारी, सबके सेवने योग्य और ज्ञानवान्, कर्मसामर्थ्यवान् है। इसी प्रकार विद्वान् राजा, सद्गुणों का, सज्जनों का पति, शत्रुनाशक सज्जन और कर्मण्य हो। सोम नाम ओषधि रस

और शरीर में शुक्र दोनों सद्‌गुणों के पालक, रोगनाशक, सुखकारक, सेवन करने योग्य और बल-बुद्धि के वर्धक हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः।

त्वं च॑ सोम नो॒ वशो॑ जी॒वातुं॒ न म॑रामहे। प्रि॒यस्तो॑त्रो॒ वन॒स्पतिः॑ ६

भा०—हे राजन् और परमेश्वर! आप हमारे जीवन को वश या स्थिर करने वाले और उसके चाहने वाले हो, तब हम मृत्यु को प्राप्त न हों। तू सेवनीय ऐश्वर्यों का, जीवों का और वनों तक का पालक, और प्रिय प्रीतिकारी स्तुति वचनों द्वारा उपासना करने योग्य है तेरे स्तुति-वचन सुन कर हमारे हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है, इसी से प्रिय-स्तोत्र है। देह में शुक्र रस, जीवन का स्थापक, उसमें तेज बल का धारक होने से मृत्यु को दूर करता है। 'वन' अर्थात् इन्द्रियों का पालक उत्तम गुणों से युक्त है। सोम रस, जीवन में बलदायक, मृत्यु आदि दुःखों का नाशक, उत्तम गुणों वाला ओषधि है।

त्वं सो॑म म॒हे भगं॒ त्वं यून॑ ऋताय॒ते। दक्षं॑ दधासि जी॒वसे॑ ॥७॥

भा०—हे सर्वोत्पादक परमेश्वर! सर्वप्रेरक राजन्! तू महान् युवा, बलवान्, सत्यज्ञान, बल और शासन व्यवस्था को चाहने वाले पुरुष को सेवन करने योग्य ऐश्वर्य धारण कराता है और दीर्घ जीवन के लिये बल और सामर्थ्य प्रदान करता है। सोम रस और शुक्र युवा पुरुष को कान्ति और बल देता है। राजा युवा पुरुषों को अधिकार ऐश्वर्य और जीविका के लिये अन्न और वृत्ति देता है।

त्वं नः॑ सोम वि॒श्वतो॒ रक्षा॑ राजन्नघाय॒तः। न रि॑ष्ये॒त्त्वाव॑तः॒ सखा॑ ८

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! परमेश्वर! तू हमें सब प्रकार के हम पर पाप और अत्याचार करने के इच्छुक दुष्ट पुरुषों से बचा। तेरे जैसे बल-शाली रक्षक का मित्र कभी नष्ट नहीं हो सकता। वीर्य तथा ओषधिरस भी शरीर पर सब प्रकार के आघातकारी रोग आदि से बचावें। वीर्य के समान सहायक पदार्थ का मित्र देह कभी नष्ट नहीं होता।

सोम॒ यास्ते॑ मयो॒भुव॑ ऊ॒तयः॒ सन्ति॑ दा॒शुषे॑। ताभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ॥६॥

भा०—हे सोम, राजन्! प्रभो! जो तेरे सुखजनक शान्तिदायक रक्षा के साधन और ज्ञान दानशील पुरुष के हित के लिये हैं उनसे तू हमारा रक्षक हो। वीर्य तथा ओषधिरस के सुखजनक गुणो से देह की रक्षा होती है।

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि। सोम त्वं नो वृधे भव॥१०॥

भा०—हे प्रभो! इस यज्ञ, उपासना कर्म को और इस स्तुति-वचन को तू स्वीकार करता हुआ हमे प्राप्त हो। हे राजन्! तू इस रक्षाकारी प्रजापालन के कार्य को और इस विद्वान् के धर्मयुक्त वचन अर्थात् शास्त्र को सेवन या प्रेम से पालन करता हुआ हम प्रजाजनो को प्राप्त हो। तू हमारे बल, ज्ञान और सुख की वृद्धि के लिये हो। शरीर मे शुक्र, देह मे जीवन-धारण रूप यज्ञ और विद्याभ्यास के करने मे उपयुक्त हो, शरीर की वृद्धि करे। ओषधिरस नाना अन्य रसो के मिश्रण को प्राप्त हो, शास्त्रप्रोक्त गुण को धारण करे, शरीर की वृद्धि करे। इति विंशो वर्गः।

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः। सुमृळीको न आ विश ११

भा०—हे सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर! हम स्तुति वचन कहने मे चतुर, वाग्मी पुरुष या तेरी भक्ति के मर्म को समझने वाले तुझको प्रेममयी वाणियो से बढ़ावें, तेरी महिमा को बढ़ावें। तू हमे उत्तम सुखप्रद होकर प्राप्त हो। हे सावित्री वेद-माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले शिष्य जन! हम विद्या युक्त वाणियों, प्रवचनों को जानने हारे होकर तुझको उत्तम ज्ञानमय वाणियो से बढ़ावें, तुझे अधिक ज्ञानवान् करें, तू गुरुजनो का उत्तम सुखदायी, प्रिय शिष्य होकर हमारे पास आकर रह। शिष्यगण माता सावित्री के गर्भ तथा आश्रय में प्रविष्ट हो। स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन राजा सोम को उपदेश देकर ज्ञानवान् करे और वह प्रजा में सुखकारी होकर रहे।

गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। सुमित्रः सोम नो भव१२

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू ऐश्वर्यों और पशुओं को बढ़ाने वाला,

रोगों के समान दुःखदायी कारणों को नाश करने हारा, राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों का लाभ कराने वाला, गौ, अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने हारा और हमारा उत्तम मित्र हो। ओषधि रस सोम और देह मे शुक्र प्राणों और अपत्यों की वृद्धि करने हारा, रोगनाशक, जीवन और देह मे इन्द्रिय शक्तियों को प्राप्त कराने वाला, पुष्टिकारक और उत्तम रीति से मृत्यु कष्ट से बचाने हारा हो। शिष्य और पुत्रजन ज्ञान और सन्तति का बढाने हारा, कष्टों को दूर करने हारा, धनप्रापक, पोषक अन्नादि का बढ़ाने हारा, गुरुजनों के प्रति उत्तम स्नेही मित्र होकर रहे।

गय इत्यपत्यनाम, धननाम, गृहनाम च (निघ०)। तद् यद् गच्छति तस्माद् गय। एष ह वै सोम· सर्वान् लोकान् गच्छति। गो० ५०।५।१४। प्राणा वै गयाः। श० १४।८।१५।७। गवां नः स्फाययिता प्रतारयितैधीत्याह। ऐ० १।१३॥

सोम॑ रार॒न्धि नो॑ हृ॒दि गावो॒ न यव॑से॒ष्वा। मर्य॑ इव॒ स्व ओ॒क्ये॑॥१३॥

भा०—खाने योग्य उत्तम घासों के बीच जिस प्रकार गौवें प्रसन्न होती हैं और रमण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार अपने घर में आनन्द प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! तू हमारे हृदय में रमण कर, हमारे हृदय मे प्रकाशित हो। हे शुक्र, सोम! हमारे हृदय में हर्ष, चित्त-प्रसाद उत्पन्न कर।

यः सो॑म स॒ख्ये तव॑ रा॒रण॑द्देव॒ मर्त्यः॑। तं दक्षः॑ सचते क॒विः॥१४॥

भा०—हे सर्वप्रकाशक! ऐश्वर्यवन्, सर्वोत्पादक विद्याशिक्षक! परमेश्वर! गुरो! विद्वन्! जो पुरुष तेरे मित्रभाव, सत्सग में रहकर विद्याभ्यास और स्तुति करता है वह ज्ञानवान्, क्रियाकुशल और क्रान्तदर्शी, परम विद्वान् होकर उस तुझ परम पुरुष को ही प्राप्त होता है।

शुक्र पक्ष में—ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याभ्यास करनेवाला पुरुष विद्वान्, क्रियावान्, बुद्धिमान् होकर बलवान, वीर्यवान् भी होता है।

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! तथा हे छात्र ! तू निन्दा-वचन और घात-प्रतिघात करने वाले दुष्ट पुरुष से हमारी रक्षा कर । और तू हमारा मित्र और उत्तम सुखजनक हो । तू पाप से भी हमारी सदा रक्षा कर । इत्येकविंशो वर्गः ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥

भा०—हे राजन् ! छात्र ! तू सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो, तुझे सब तरफ़ से वीर्यवान्, पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल प्राप्त हो । तू बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने मे हमारा सहायक और यत्नवान् हो । परमेश्वर गुणो से महान् है, उसे सब प्रकार का बल प्राप्त है । वह ऐश्वर्य के प्राप्त करने में सहायक हो ।

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

भा०—हे अति हर्षदायक ! ऐश्वर्यवन् राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! छात्र ! शरीर मे शुक्र ! तू अपने सर्वव्यापक ज्ञान, बल आदि गुणों से हमारे अन्दर खूब वृद्धि को प्राप्त हो । तू उत्तम यश कीर्ति, ज्ञान और बल से युक्त होकर हमारी वृद्धि के लिये और हमारा मित्र के समान वर्धक और पोषक हो ।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! चारों ओर से आक्रमण करने और प्रजा को पीडन करने वाले, सब ओर से शस्त्र-अस्त्रों को फेंकने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले तुझे पुष्टिकारक जल और अन्न रस अच्छे प्रकार प्राप्त हों । वेगवान् अश्व गण, संग्रामकारी योद्धा तथा सेना बल एक साथ मिल कर

चलें। समस्त प्रकार के प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर अस्त्र-शस्त्रों को वर्षाने वाले, बलवान् पुरुषों के दल-बल एक साथ अच्छी प्रकार प्राप्त हों। तू प्रजा और राष्ट्र के दीर्घ जीवन और स्थिरता के लिये खूब सब प्रकार से हृष्ट-पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता हुआ विद्या-प्रकाश के बल पर, सूर्यवत् ज्ञानवान् पुरुषों का आश्रय लेकर, उत्तम, सर्वश्रेष्ठ श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेश, अन्नादि ऐश्वर्य तथा श्रवण करने योग्य यश, ख्याति को धारण कर। हे छात्र! तुझे उत्तम जल, अन्न, बल, वीर्य अच्छी प्रकार प्राप्त हो। अमृतमय मोक्ष-ज्ञान के लिये ज्ञानवान् गुरु के आश्रय होकर उत्तम श्रवण योग्य ज्ञानो को धारण कर। परमेश्वर के पुष्टिकारक अन्न, जल, बल, वीर्य सभी हमें प्राप्त हों। वह प्रभु सदा भरपूर है। वह अमृत और आनन्द के प्रदान करने के लिये तेजोमय नाना बलों और ज्ञानों को रखता है।

या ते धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम्।
ग॒य॒स्फानः॑ प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्र च॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥१६॥

भा०—हे सूर्य के समान ऐश्वर्यवन्! राजन्! तेरे जिन तेजों, लोकों, स्थानों और पदाधिकारों को देने योग्य कर या आदर से प्रदान या स्वीकार करके सबके पूजनीय, प्रजापालक तेरा मान-आदर करते हैं वे समस्त तेज और पदाधिकार या बल तुझे ही प्राप्त है। धन तथा गौ आदि पशुओं का बढ़ाने वाला, दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला, उत्तम वीरों से युक्त, सेनापति सब प्रकार से शक्ति और प्रजा का रक्षक हो। वह वीर पुरुषों का व्यर्थ नाश करने वाला न हो। हे राजन! तू हमारे घरों को या द्वारों वाले नगरों में भी अच्छी प्रकार आ जा, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष हमारे घरों पर जावे आवे।

छात्रपक्ष में—हे छात्र! जिन बलों और तेजों को विद्वान जन अन्न और ज्ञान द्वारा तुझे प्रदान करते हैं वे तेरे ब्रह्मचर्य पालन, विद्या अध्ययन आदि कार्य का सम्मान करते हैं। तू ज्ञान, प्राण और वेदवाणियों

का वर्धक, उत्तम गुरु से विद्या प्राप्त कर पार पहुंचने वाला, उत्तम वीर्यवान्, अपने वीर्य और प्राण गण का नाश न करने हारा होकर हमारे गृहो को भिक्षार्थ और उपदेशार्थ प्राप्त हो।

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
साद्न्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२०॥२२॥

भा०—जो राष्ट्र इस राजा को पुष्ट करने के लिये कर प्रदान करे उसको वह ऐश्वर्यवान् राजा दुधार गौवें, वेगवान् अश्वगण, कर्मकुशल वीर पुरुष, गृह बसा कर रहने वाले उत्तम गृहस्थ, ज्ञान, सत्संग, यज्ञ और संग्राम मे कुशल तथा सभा मे उत्तम वक्ता, मा बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को हित से श्रवण करने वाले अधिकारी प्रदान करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥

हे राजन्! सेनापते! युद्धो मे शत्रु से कभी पराजित न होने वाले, संग्रामों मे या सेनाओ के बल पर राष्ट्र का पालन करने वाले, सुखो के देने वाले तथा शत्रुओं को उपताप, पीडा देने वाले, शत्रु के वर्जने मे समर्थ बल का रक्षक, राज्य के भरण पोषण करने और शत्रुओ को उखाड़ फेंकने वाले, धनाढ्य वैश्यो और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक अथवा संग्रामो में प्रसिद्ध, कुशल योद्धा, उत्तम निवासस्थान और उत्तम भूमि के स्वामी, उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त विजय करते हुए तेरे विजय के साथ साथ ही हम भी खूब प्रसन्न हों।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

भा०—हे सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर! तू इन समस्त ओषधियों को, जलो को और गौ आदि पशुओं तथा मनुष्यो को उत्पन्न करता है। तू विशाल अन्तरिक्ष या आकाश को विस्तृत करता है और तू प्रकाश

से अन्धकार को विविध प्रकार से दूर करता है। अथवा हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! तू ताप, प्रकाश और रोगनाशक गुणों को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुषों, सेनाओं और उत्तम उत्तम ओषधियों को उत्पन्न करता, जलों, आप्तजनों और उत्तम कर्मों, प्राणों और ज्ञानों को प्रकट करता है, इन्द्रियों, वेदवाणियों, पृथिवियों तथा जंगम जीवों और गतिमान् लोकों को उत्पन्न करता है। हे राजन्! तू अपने विशाल राष्ट्र को, जिसके बीच प्रजाएं बसें, सब प्रकार से फैला और ज्ञान प्रकाश से खेद, दुःखों और क्लेशों को दूर कर।

देवेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गं स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ॥२३॥२३॥

भा०—हे विजय की कामना करने हारे! हे सबके आज्ञापक! ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! तू हमारे ऐश्वर्य के सेवन तथा प्राप्त करने योग्य अंश को उद्देश्य करके विचार, ज्ञान तथा शत्रु को वश कर लेने में समर्थ दृढ़ बल से मुक़ाबले पर लड़, शत्रु पर खूब प्रहार कर। वह शत्रु तुझे पीड़ित न कर सके, तुझ पर आतंक न जमा सके। तू हमारे समस्त ऐश्वर्य का स्वामी है। तू पृथिवी, पशु-सम्पत्ति, इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों और ज्ञान और वाणी-प्रकाश की नाना कामनाओं को प्राप्त कराने वाले संग्राम या प्रति स्पर्द्धा में खूब अच्छी प्रकार विचार करके बाधक शत्रुओं और रोगादि दुःख कारणों को दूर कर। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[९२]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः॥ १, १५ उषा देवता। १६—१८ अश्विनौ॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती। ३ जगती। ४ विराड् जगती। ५, ७, १२ विराट् त्रिष्टुप्। ६, १२ निचृत्त्रिष्टुप्। ८, ६ त्रिष्टुप्। ११ भुरिक्पङ्क्तिः। १३ निचृत्परोष्णिक्। १४, १५ विराट् परोष्णिक्। १६, १७, १८ परोष्णिक्॥

ए॒ता उ॒ त्या उ॒षसः॑ के॒तुम॑क्रत॒ पूर्वे॒ अर्धे॒ रज॑सो भा॒नुम॑ञ्जते।
नि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना आयु॑धानीव धृ॒ष्णवः॒ प्रति॒ गावोऽरु॑षीर्यन्ति मा॒तरः॑ १

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार सब जगत् का ज्ञान कराने वाले प्रकाश को उत्पन्न करती हैं और इस महान् लोक के पहले या पूर्व दिशा के आधे भाग मे सूर्य के प्रकाश को प्रकट करती हैं। शत्रुओ को पराजय करने मे समर्थ, प्रगल्भ, वीर योद्धा जन जिस प्रकार अपने हथियारो को अच्छी प्रकार चमका लेते हैं उसी प्रकार सूर्य को उत्पन्न करने वाली या प्राणियो के जीवनो को मापने वाली उषाए, नित्य गमनशील या किरणे लाल वर्ण वाली होकर दिनो को प्रकाशित करती हुई भूमि के प्रत्येक स्थान पर जाती हैं। उसी प्रकार ये वे उषा के समान जीवन के पूर्व वयस मे वर्त्तमान प्रात.काल के सूर्य की किरणों के समान मनोहर एवं अपनी स्वच्छ शुद्ध भावनाओं से पापो और पापियो को दाह उत्पन्न करने वाली, एवं पतिकामना से युक्त होकर स्त्रियें अपने राजस भाव से युक्त जीवन अर्थात् यौवन के पहले आधे भाग मे या पूर्ण समृद्ध काल मे तेजस्वी पुत्र को प्रकट करें, उत्पन्न करें। प्रगल्भ वीर जन जिस प्रकार अपने आयुधो को चमचमाते हुए आगे बढते हैं और गौवें जिस प्रकार समस्त सुखैश्वर्यों से गृहो को सुशोभित करती हुई आती हैं उसी प्रकार पुत्रो की उत्पादक माताए अपने गृहो को अच्छी प्रकार सुशोभित करती हुईं, क्रोध आदि से रहित सौम्य स्वभाव होकर रहे। इसी प्रकार धर्षणशील सेनाएं भी शत्रु को भून देने से 'उषस्' हैं, वे अपने पूर्ण सामर्थ्य में झण्डे को उठाती और प्रतापी सेनापति का तेज प्रकट करती हैं। गमनशील होकर तेजस्विनी, राष्ट्र-निर्मात्री या रक्षक होकर आगे मुक़ाबले पर बढ़े ।

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

भा०—अरुण वर्ण के, लाल रंग के किरण जिस प्रकार आपसे आप अनायास उदय को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष नव उदित सूर्य के समान अनुराग राग से रंजित होकर उदय को प्राप्त होते हैं। और उत्तम रीति से स्वय आजुतने वाले, सुशील बैलों को जैसे कोई रथवान् रथ में

जोड़ता है उसी प्रकार उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाली गमन योग्य, सुभग, दीप्तिमती कन्याओं को विद्वान् लोग योग्य वरों से संयुक्त करें। दिन के प्रारम्भ भाग की प्रभात वेलाएं जिस प्रकार सबसे पूर्व ज्ञान और कर्मों को प्रकट करती हैं उसी प्रकार यौवन या जीवन के पूर्व वयस में विद्यमान कन्याएं भी अपने पूर्व काल में नाना प्रकार के ज्ञानों और कर्मों का सम्पादन करें, वे भी पढ़ें और ज्ञान लाभ करें। और विद्या पढ़ चुकने पर जिस प्रकार तेजस्विनी उषाएं सूर्य का आश्रय लेती हैं उसी प्रकार अति तेजस्विनी वा रोषरहित, सौम्यस्वभाव वाली कन्याएं तेजस्वी पति का आश्रय करें। जैसे पृथिवी पर प्रथम उषा का आगमन तदनन्तर सूर्य का वरण, इसी प्रकार वेदि में प्रथम कन्या का आगमन तब वर का वरण, यह भी व्यंग्योक्त है। उदयशील पुरुष सूर्य के समान उदय होते हैं। उत्तम आज्ञा में नियुक्त सेनाएं उनके नीचे रहती हैं। वे शत्रु तापक सेनाएं नाना युद्ध-कला का ज्ञान करती हैं, तब वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा का आश्रय लेती हैं।

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

भा०—कर्म करने वाले अधीन भृत्यों को जिस प्रकार वेतनों द्वारा अपने वश करते या उनका सत्कार करते हैं, उसी प्रकार समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का सत्कार करें। कन्याओं को दूर देश में पुरुषों से योग्य जोडा मिलाकर विवाह देना ही कन्याओं का सत्कार करना है। और जो उत्तम क्रिया-कुशल, सदाचारी, उत्तम दानशील या उत्तम रक्षक, ओषधि आदि रस का सेवन करने वाले या उत्तम रीति से निषेक करने हारे, सुसगत पति के लिये अपने समस्त कामना और अन्नादि सुख-सम्पदा को प्राप्त कराने वाली होती हैं, उनका ही सब लोग आदर करते हैं।

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ४

भा०—नाऊ जिस प्रकार नाना वंशो को काट देता है उसी प्रकार उषा नाना कृष्ण रूप अन्धकारो को काट डालती है। अथवा नर्त्तक जिस प्रकार नाना रूप बदल लेता है उसी प्रकार वह प्रभात वेला भी नाना प्रकार के रूपो को धारण करती है। अर्थात् हलकी प्रकाश रेखा से सूर्योदय तक उषा के नाना प्रकार के रूप बदलते हैं। उसी प्रकार नर्त्तकी के समान ही पूर्व वयस मे वर्त्तमान कन्या या योग्य पुरुष की कामना करने वाली, कान्तिमयी नववधू भी सुवर्ण आदि के बने नाना आभूषणो को धारण करे। उदय होने वाली उषा जिस प्रकार अन्धकार निवारक प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को दूर कर देती है और जिस प्रकार गाय दुग्ध देने वाले थन भाग को विशाल रूप मे प्रकट करती है उसी प्रकार नवयुवती भी वक्षस्थल को प्रकट करती है अर्थात् छाती के उभार को प्रकट करती है, उसके प्रकट होने पर ही उचित विवाह-योग्य काल है। उस समय सब लोकों के हितार्थ प्रकाश प्रदान करती हुई उषा के समान वधू भी अपने गुणो का प्रकाश करे। गौवें जिस प्रकार स्वयं अपने वाडे मे अनायास प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार नवयुवतियें भी प्राप्त करने योग्य पति को अपने सहज प्रेम से आश्रय रूप में प्राप्त करें। और प्रभात की प्रभा जिस प्रकार अन्धकार को दूर कर देती है। उसी प्रकार वधू भी पति कुल के खेद, दु:ख और गृह के सूनेपन को विविध उपायों से दूर कर घर को उजियाला करे।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५।२४॥

भा०—इस उषा की देदीप्यमान कान्ति प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है और वह विविध दिशाओ मे फैल जाती है। और वह नेत्रादि के सामर्थ्य को विनाश कर देने वाले काले अन्धकार को दूर कर देती है।

उसी प्रकार इस कन्या की आदर सत्कार से देखने योग्य उत्तम गुण-राशि प्रत्येक को दीखने लगती है, उसकी कीर्त्ति सब देशों में फैल जाती है। वह गुण-राशि बड़े भारी कलङ्क को भी मिटा देता है। जिस प्रकार प्रकाशमान् सूर्य को उषा प्रकट कर देती है उसी प्रकार ज्ञान-सत्सगों में, जहां अनेक विद्वान् एकत्र हों, वहा ही अपने रूप के समान ही ज्ञान और अध्ययन और वाक्पाटव को भी कन्या प्रकट करे। तब सूर्य के प्रकाश से आकाश को पूर्ण कर देने वाली उषा जिस प्रकार सूर्य का आश्रय लेती है उसी प्रकार कामना युक्त पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली, अथवा ज्ञानी पुरुष की कन्या दीप्तिमान्, तेजस्वी, ब्रह्मचारी पति का आश्रय ग्रहण करे। इति चतुर्विंशो वर्गः।

अता॑रिष्म॒ तम॑सस्पा॒रम॒स्योषा उ॒च्छन्ती॑ व॒युना॑ कृणोति।
श्रि॒ये छन्दो॒ न स्म॑यते विभा॒ती सु॒प्रती॑का सौमन॒साया॑जीगः ॥६॥

भा०—प्रभात वेला जिस प्रकार प्रकट होती हुई और अन्धकार को दूर करती हुई समस्त पदार्थों का ज्ञान कराती है, उसी प्रकार कमनीय कन्या प्रथम वयस मे वर्त्तमान रहकर बालभाव को दूर करती हुई नाना ज्ञानों व कर्मों को सम्पादन करती है। वह खुश करने वाले अनुकूल प्रेमी के समान होकर शोभा और सौभाग्य के लिये ईषत्-ह्रास करे और विविध गुणो से प्रकाशित होती हुई सुमुखी होकर शुभचित्तता, उत्तम हृदय या सौहार्द की वृद्धि के लिये वचन कहे तथा कर्म करे। इस प्रकार हम गृहस्थ जन इस शोक, दुःख आदि रूप अन्धकार के पार उतरें। अथवा वह कन्या वेद के समान ज्ञान का प्रकाश करने या आच्छादन करने वाले गृह के समान ही सम्पत्ति की वृद्धि के लिये हो। वह इत्यादि पूर्ववत्।

उषापक्ष मे—उषा वेद-वाणी के समान शोभा के लिये प्रकाश करती, सुन्दर मुख, रूप या प्रतीति प्रकट करने वाली होकर उत्तम हृदय के भावों को उत्पन्न करने के लिये अज्ञान-अन्धकार को ग्रसती है। इस प्रकार हम रात्रि के अन्धकार से पार हों। इसी प्रकार विशोका या ज्योतिष्मती

प्रज्ञा का उदय होने पर योगी को प्रज्ञातिरेक अर्थात् विशेष पारमार्थिक ज्ञान उत्पन्न होते हैं, हृदय मे प्रकाश हो जाता है, वह संसार के दुःखान्धकार से पार हो जाता है।

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७॥

भा०—जिस प्रकार 'उषा', प्रभात की सूर्यप्रभा आकाश को और पृथिवी को सूर्य के प्रकाश से पूर्ण करने वाली, नाना प्रकाशो से युक्त होकर उत्तम विचारक योगी जनो के हृदयों मे उत्तम उत्तम सत्य ज्ञानों, स्तुति वचनो तथा वेद वाणियो को प्राप्त कराती है उसी प्रकार योगी के साधना-काल मे उत्पन्न हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा भी ज्ञान-प्रकाश का दोहन करने वाली, उत्तम सत्य ज्ञानो और वेद-वाणियो को प्रकट करने वाली, प्रकाशमयी, ज्योतिष्मती होकर विद्वान्, वाणीकुशल पुरुषों द्वारा स्तुति की जाती है। इसी प्रकार कमनीया कन्या भी उत्तम वचन और वाणियों को बोलने वाली, अपने शुभ गुणो से प्रकाशित होती हुई, नायिका, सर्वश्रेष्ठ महिला रूप को धारण कर श्रेष्ठ पुरुषो द्वारा स्तुति की जाती है, नाना कविजन भी उसका यश गाते हैं। हे प्रभात वेला के समान कान्ति और कमनीय गुणो से युक्त कन्ये ! तू उत्तम प्रजाओ से युक्त, भृत्यादि कर्मकर पुरुषो से युक्त अश्व आदि विजय के साधन रूप बलवान् पशुओं के दृढ़ आश्रय वाले गौ आदि पशु और भूमि आदि मुख्य सम्पत्ति से युक्त ऐश्वर्यो को प्राप्त करा। स्त्री द्वारा घर बसने पर पुत्र, भृत्य, अश्व, हाथी, गौ, भूमि आदि समस्त ऐश्वर्य बढे और उनका नाश न हो।

उषा के पक्ष मे—हे उषः ! तू किरणो से युक्त प्रकाशों को देती है। सेना आदि भी शत्रुपीडक होने से 'उषा' है। वह भी राष्ट्र, प्रजा, नायक, चतुरंग सेना, गौ आदि तथा भूमि से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करावे।

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

भा०—जिस प्रकार उषा सूर्य के आगमन से उत्पन्न होती है, वा स्वयं ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है और उत्तम रीति से अन्धकार-नाशः प्रकाश से चमकती है उसी प्रकार जो तू ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाले उत्तम कर्म और उत्तम ज्ञान से शोभित है, उस तेरे द्वारा हे प्रभात वेल की सूर्यप्रभा के समान कान्तिमति ! एव योग्य अनुरूप पति की कामना करने हारी स्त्री ! हे उत्तम ऐश्वर्यवति सौभाग्यवति ! मैं पुरुष उस यशो जनक, उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, दास, भृत्यजनो के उत्तम आज्ञाकारी वर्गों वाले अथवा शत्रु-नाशक वीर सैनिकों के उत्तम दलों सहित अश्वा रोही सेनाओं को सधाने वाले या उसके आश्रय पर स्थापित, बड़े भारी ऐश्वर्य, धन कोश को प्राप्त करूं और भोग करूं ।

अध्यात्म में यशस् = आत्मा, वीर, प्राण, अश्वबुध्य = व्यापक परमात्मा से बोध करने हारा, श्रवः = ज्ञान, वाज, ज्ञान ।

विश्वा॑नि दे॒वी भुव॑नाभि॒चक्ष्या॑ प्रती॒ची चक्षु॑रुर्वि॒या वि भा॑ति ।
विश्वं॑ जी॒वं च॒रसे॑ बो॒धय॑न्ती॒ विश्व॑स्य॒ वाच॑मविदन्मना॒योः ॥९॥

भा०—प्रकाशमान सूर्य की प्रभा जिस प्रकार समस्त लोकों को प्रकाशित करके पूर्व से पश्चिम को जाती हुई बड़े भारी प्रकाशक तेज या सूर्य से विशेष रूप से प्रकाशित होती है और समस्त प्राणिमात्र को चलने-फिरने और कार्य्य व्यवहार करने के लिये जगाती हुई समस्त चेतनावान्, मान या ज्ञान के इच्छुक पुरुष की वाणी को प्राप्त करती है उसी प्रकार उत्तम गुणों से उक्त स्त्री समस्त लोकों, पदार्थों को विशाल ज्ञान से युक्त चक्षु द्वारा साक्षात् करके साक्षात्, सबके सन्मुख विशेष रूप से शोभा को प्राप्त होती है । वह समस्त प्राणीमात्र को सत् कर्म के आचरण करने के लिये ज्ञान प्रदान करती हुई मान, सत्कार या ज्ञान के इच्छुक समस्त विद्वान् मनुष्यों के वाणी को प्राप्त करे, विद्वानो का उपदेश ग्रहण किया करे ।

अध्यात्म में—वह ज्योतिष्मती साक्षात् आत्मतत्वमयी चितिशक्ति ज्ञानप्रकाशक चक्षु होकर प्रकाशित होती है । उत्तम पद को प्राप्त होने के

लिये जीव को प्रबुद्ध, ज्ञानवान् करती है और मननशील स्तुतिकर्त्ता की या ज्ञानमय परमेश्वर की वेदवाणी को प्राप्त करती है।

पुनः॑पुनर्जाय॑माना पु॒रा॒णी स॑मा॒नं वर्ण॑म॒भि शुम्भ॑माना।
श्व॒घ्नीव॑ कृ॒त्नुर्विज॑ आमिना॒ना मर्त॑स्य दे॒वी ज॒रय॒न्त्यायुः॑॥१०।२५॥

भा०—जिस प्रकार प्रतिदिन प्रकट होने वाली, प्रवाह से नित्य उषा एक समान प्रकाशित रूप प्रकट करती है और कुत्तों की सहायता से मृगों को मारने वाली व्याधिनी या कुक्कुर आदि पशुओं को मारने वाली भेड़िया के समान पोरु पोरु काटने वाली या बाज पक्षिणी के समान भय से व्यथित प्राणियों को काल धर्म से विनाश करती हुई, मरणधर्मा प्राणी की आयु को समाप्त कर देती है उसी प्रकार उत्तम गुणो से प्रकाशित होने वाली सौभाग्यवती स्त्री, वार वार उत्तम रूपो मे प्रकट होने वाली या वार वार पुत्र प्रसव करती हुई और अपने समान वर्ण, रूप, गुणों से युक्त पुरुष को या प्रसव द्वारा पुत्र को प्राप्त करके शोभा को प्राप्त होती हुई उद्वेग करने वाले, भयजनक, बाधक कारणों और शत्रुओं को कुत्ता आदि पशुओं को वृकी या व्याघ्री के समान विनाश करती हुई पुर अर्थात् अन्तःपुर मे जीवन स्वरूप होकर या स्वयं वृद्ध होकर अपनी और अपने साथ अपने संगी पति की आयु को वृद्धावस्था तक प्राप्त कराती हुई जीवन व्यतीत करे।

व्यू॒र्ण्वती॑ दि॒वो अन्ताँ॑ अबो॒ध्यप॒ स्वसा॑रं सनु॒तर्यु॑योति।
प्र॒मि॒न॒ती म॑नु॒ष्या॑ यु॒गानि॒ योषा॑ जा॒रस्य॒ चक्ष॑सा॒ वि भा॑ति॥११॥

भा०—सूर्य की प्रातःकालिक प्रभा जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई आकाश के पर्यन्त अर्थात् दूर दूर तक के भागों को भी जगा देती या प्रकाशित कर देती है निरन्तर, नित्य प्रकाश के आगमन से आप से आप भाग जाने वाली या अपनी बड़ी भगिनी के समान साथ रहने वाली रात्रि को दूर कर देती है और वह मनुष्यो के आयु के वर्षों को या स्त्री पुरुष आदि के बने जोड़ो को काल धर्म से नाश करती

हुई अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से स्त्री के समान मानो प्रसन्न होकर रात्रि को या उषा-काल को अपने उदय से विनाश कर देने वाले सूर्य के दर्शन से वह विशेष शोभा से खिल उठती है। उसी प्रकार स्त्री दोषों को दूर करती हुई अपने गुणों से ज्ञान प्रकाश के परली सीमाओं को जान ले अर्थात् उत्तम कोटि के शास्त्रों का भी ज्ञान करे। अपनी भगिनी को निरन्तर, सदा, अपने से दूर देश में सम्बन्ध करावे। अर्थात् एक ही घर में कई बहनें न विवाही जावें। नहीं तो कलह हो जाने से परस्पर भगिनीपन का स्नेह भी नाश हो जाता है। वह स्त्री मनुष्य के आयु के वर्षों को व्यतीत करती हुई विद्वान् धर्मोपदेष्टा पुरुष के दर्शन, ज्ञान, सत्संग या कथनोपकथनों द्वारा विशेष शोभा को प्राप्त हो। अथवा अपने आयु को वृद्धावस्था तक पहुंचा देने वाले अपने प्रिय पति के दर्शन या उपदेश से विशेष शोभा को प्राप्त हो।

प॒शून्न चि॒त्रा सु॒भगा॑ प्रथा॒ना सिन्धु॒र्न क्षोद॑ उर्वि॒या व्य॑श्वैत्।
अमि॑नती॒ दैव्या॑नि व्र॒तानि॒ सूर्य॑स्य चेति र॒श्मिभि॑र्दृशा॒ना ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार संग्रहशील वैश्य प्रजा पशुओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और जिस प्रकार समुद्र या वेगवती नदी जल को प्राप्त होकर बढ़ती या फैलती है उसी प्रकार अति अधिक तेज को प्राप्त होकर, उत्तम ऐश्वर्यवती, सूर्य की सुन्दर प्रात. काल की प्रभा वृद्धि को प्राप्त होती हुई सर्वत्र फैलती है। इसी प्रकार सञ्चयशील एव गुणों से आदर करने योग्य उत्तम सौभाग्यवती स्त्री बड़े शील तथा अधिक ज्ञान और तेज से बढ़ाती हुई अपने यश को बढ़ाती हुई सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार प्रात प्रभा देव, परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि नियमों को न विनाश होने देती हुई अर्थात् भक्त, व्रतपालक जनों से पालन कराती हुई सूर्य की किरणों सहित देखी जाती और उनसे ही जानी जाती है, एवं सूर्य-किरणों से ही अन्यों को जगत् के पदार्थ दिखाती और उनका ज्ञान कराती है। उसी प्रकार उत्तम महिला भी देव, परमेश्वर सम्बन्धी,

सन्ध्या उपासना, अग्नि-होत्रादि और देव अर्थात् विद्वानो सम्बन्धी बलि-वैश्वदेव और आतिथ्य सत्कार तथा देव अर्थात् अग्नि, जल, पृथिवी आदि पञ्चभूत तथा शरीरस्थ इन्द्रियो के हितकारी परोपकारक जगत् के हित तथा शरीर के हित के स्नानादि नित्य कृत्यो को कभी न विनाश करती हुई, उनको करने से कभी न चूकती हुई, देव अर्थात् अपने प्रिय इच्छुक पति के कार्यों की हानि न करती हुई, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ज्ञान-प्रकाशो से तत्वो का दर्शन करती हुई और औरो को दिखाती हुई ज्ञान प्राप्त करे और करावे। अथवा वह स्त्री महानदी जिस प्रकार जल राशि का विस्तार करके बडी हो जाती है उसी प्रकार सञ्चय-शील होकर पशुओ को बढाती हुई बहुत अधिक विविध प्रकार से समृद्ध हो।

उप॒स्तच्चि॒त्रमा भ॑रा॒स्मभ्यं॑ वाजिनीवति ।
येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ १३ ॥

भा०—हे पति की कामना करने हारी कमनीये कन्ये। हे ऐश्वर्य और अन्न की वृद्धि, उत्पत्ति तथा परिशोधन या परिपाक आदि करने में कुशल नववधू ! तू हमारे लिये ऐसा नाना प्रकार का उत्तम, संग्रह करने योग्य धन, ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान कर जिससे हम पुत्रो और पौत्रों का भी पालन पोषण करें और उन्हे शिक्षित बनाएं।

उषो॑ अ॒द्येह गो॑म॒त्यश्वा॑वति विभावरि।
रे॒वद॒स्मे व्यु॑च्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

भा०—उषा, प्रातःप्रभा किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और गति-मान् या व्यापक तेजस्वी सूर्य से युक्त होने से 'अश्वावती' है। वह विशेष कान्ति से युक्त होने से 'विभावरी' है। वही भक्तो की स्तुतियो से युक्त होने के कारण 'सूनृतावती' होती है। उसी प्रकार हे कान्तिमति ! पति को हृदय से चाहने वाली प्रियतमे ! कमनीये ! कान्ति-सुभगे ! हे गृह मे उत्तम पशु-सम्पदा और देह मे उत्तम इन्द्रिय शक्तियों से युक्त ! हे अश्व आदि वेगवान् साधन, हाथी घोडे आदि सवारी के पशुओं तथा रथों

और अश्वारोहियों की स्वामिनि ! तथा सांसारिक सुख दुःखो के भोक्ता उत्तम आत्मा से युक्त ! अथवा कल पर कार्य न छोड़ने वाली, आलस्य रहित ! हे विशेष गुणों से प्रकाशमान, रात्रि के समान सुख से शयन आदि का सुख देने वाली ! हे उत्तम ज्ञान वाणी को बोलने हारी सुकण्ठि ! मधुरालापिनि ! तू इस गृहस्थ मे और इस जीवन काल मे हमे ऐश्वर्य-सम्पन्न-गृह सुख विविध प्रकारों से प्रदान कर । अथवा विवाह काल में 'नववधू' गौ आदि पशु सम्पदा से 'गोमती' और रथ मे अश्व जुते रहने से 'अश्वावती' है वह अन्न आदि से युक्त होने से 'सूनृतावती' है ।

युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार उषा प्रातःकाल के समय उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त होने से 'वाजिनीवती' है वह लाल घोड़ों के समान लाल वर्ण के प्रकाशो को फैलाती है, उसी प्रकार हे कान्तिमती नववधू ! तू उत्तम ऐश्वर्यजनक मङ्गल क्रियाओं को करने हारी होकर लाल वर्ण के या वे रोक चलने वाले अश्वो को रथ मे लगा और स्नेह से युक्त अश्व के समान बलवान् पुरुषों को अपने अधीन भृत्य नियुक्त कर, और हमें समस्त उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करा ।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

भा०—हे एक दूसरे के हृदय मे व्यापने वाले वर वधू ! पति पत्नी ! तुम दोनों विरोधी आपवादो का नाश करने हारे एवं गुणों और अनुरागों से दर्शनीय ! हे समान चित्त वाले तुम दोनों हमारे घर के सामने आकर गोचर्म से मढ़े या तांत से बंधे लोह, पीतल धातुओं से सजे और सुवर्ण के समान चमकते हुए रथ को रोको और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो।

अध्यात्म मे—शरीर प्राण और अपान दोनों रोगों के नाशकारी

होकर इन्द्रियों और आत्मा से युक्त रमण योग्य सुखकारी देह को हमारे वर्तमान जीवन के अनुकूल नियम में रक्खें ।

यावि॒त्था श्लोक॒मा दि॒वो ज्योति॒र्जना॑य च॒क्रथुः॑ ।
आ न॒ ऊर्जं॑ वहतमश्विना यु॒वम् ॥ १७ ॥

भा०—दिन रात्रि जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश को मनुष्यों के हित और सुख के लिये सेवन करने योग्य बना देते हैं उसी प्रकार जो आप दोनों तेजस्वी गुरु से प्राप्त प्रकाशक वेदवाणी रूप ज्योति का इस प्रकार से समस्त जनों के हित के लिये उपदेश करते हो, हमें आप दोनो हमारे कल्याण के लिये उत्तम अन्न, बल और पराक्रम को प्राप्त कराओ ।

एह दे॒वा म॑यो॒भुवा॑ द॒स्रा हिर॑ण्यवर्तनी ।
उ॒ष॒र्बुधो॑ वहन्तु॒ सोम॑पीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

भा०—जिस प्रकार सुखप्रद सूर्य और पवन प्रकाश और पदार्थों का उपभोग प्रदान करने के लिये प्रातःवेला को प्रकट करने वाले किरणों को हमें प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार दान आदि उत्तम गुणों वाले, सुखों के मूल उत्पादक, बाधक कारणों के नाश करने वाले, हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले होकर उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिये प्रात.काल की वेला में चेतन या जागृत होने वाले विद्वानों को प्राप्त करावें ।

[९३]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ अग्नीषोमौ देवते ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ३ विराड्नुष्टुप् । २ भुरिगुष्णिक् (अनुष्टुब्गर्भा), न्यूनेन वाऽनुष्टुप् । ४ स्वराट् पंक्ति । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् । ९, १०, ११ गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अग्नी॑षोमावि॒मं सु मे॑ शृणु॒तं वृ॑षणा॒ हव॑म् ।
प्रति॑ सू॒क्तानि॑ हर्यतं॒ भव॑तं दा॒शुषे॒ मयः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे अग्ने ! ज्ञानवन् विद्वन् ! और हे सोम उत्पादक पितः ! शम आदि गुणों से युक्त परीक्षक जनो ! आप दोनों मेघ के समान ज्ञानोपदेशों की वर्षा करने हारे हो। मेरे इस ग्राह्य वचन को श्रवण करो और कुछ मेरे हित के लिये ग्राह्य, श्रवण करने योग्य उपदेश, ज्ञान-प्रवचन का श्रवण कराओ। और वेद के सूक्तों के प्रतिदिन प्रवचन, व्याख्यान करने की अभिलाषा करो। अपने द्रव्य और सर्वस्व को अर्पण करने वाले शिष्य जन के लिये कल्याणकारक होओ।

राष्ट्रपक्ष में—अग्नि, अग्रणी नायक, सोम ऐश्वर्यवान् आज्ञापक दोनों प्रजा के वचन श्रवण करें और उनकी प्रार्थनाओं पर उत्सुकता से ध्यान दें और उनके लिये सुखकारी हों। आत्मा और ब्रह्म भी अपने भक्तों की स्तुति श्रवण करते, स्तुतियों द्वारा भक्त को चाहते और सुख देते हैं।

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे अग्नि और सोम, आचार्य और उत्तम विद्वन् ! आप दोनों के इस ज्ञानमय वचन का जो आज और सदा ही आदर करे उसको उत्तम वीर्य, ब्रह्मचर्य वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों का पोषण कर प्राणों और शीघ्र क्रिया करने मे चतुर मन, आत्मा और कर्मेन्द्रियों के हितकर्म से युक्त बल को धारण कराओ।

राष्ट्रपक्ष में—जो प्रजा राजा और मन्त्री की आज्ञा-वचन का आदर करे उसको वे पशुओं अश्वादि रथों के उत्तम बल और अधिकार दें।

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम्।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

भा०—हे अग्ने ! हे सोम, वायो ! जो तुम दोनों के बीच भावी में प्रचुर अन्न को उत्पन्न करने वाली घृतादि की आहुति प्रदान करता है वह प्रजा सहित उत्तम बल से युक्त पूर्ण आयु को विविध प्रकार से भोग करे। हे अग्रणी ज्ञानवन् ! ब्राह्मण ! हे सबके आज्ञापक राजन् ! जो आप दोनों

के राष्ट्र को वश करने मे योग्य बना देने वाली कर की अदायगी कर देते हैं वह उत्तम प्रजा, बल और पूर्णायु का भोग करें।

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—हे अग्नि और सोम विद्वन्! एवं राजन्! तुम दोनों का वह वीर्य भी विदित ही है कि आप दोनों ज्ञान, व्यवहार और वाणियों को हर लेते हो। तुम दोनों अपने समीप बसने वाले, अन्तेवासी आच्छादक छात्र को माता पिता के हितकारी पुत्र के समान ज्ञान-साधना को प्रदान करो और बहुतों के लिये हितकारी एक सूर्य के समान आत्मरूप ज्योति को प्राप्त कराओ।

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

भा०—समान एक काल और एक देश मे क्रियाशील होकर जिस प्रकार अग्नि और सोम, प्रकाश और वायु दोनों आकाश या सूर्य के प्रकाश मे नाना रुचिकर कार्यों को धारण करते हैं और जलप्रवाहों को वृष्टि रूप से मेघ मे से मुक्त कर देते हैं, बरसा देते हैं उसी प्रकार उत्तम विद्वान् शिक्षक हे ज्ञानवन् और हे शम आदि के शिक्षक आचार्य! तुम दोनो ज्ञान के आधार पर इन नाना रुचिकर विज्ञानों को समान क्रिया और प्रज्ञा वाले होकर तुम दोनो धारण करो। तुम दोनों मेघ मे स्थित जलों के समान बन्धन मे बधे प्राण वाले प्राणियो को निन्दा योग्य पीडा और गर्हणीय पाप बन्धन से मुक्त करो।

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६॥२८॥

भा०—अग्नि और सोम इन दोनो मे से अग्नि को जिस प्रकार वायु सूर्य के बल से धारण करता है और दूसरे आकाशस्थ मेघ को जिस प्रकार

वेगवान् प्रबल वायु का झकोरा पर्वत पर जा टकराता है और वे दोनों ही अग्नि और सोम बड़े भारी बल से बढ़ते हुए इस महान् दृश्य जगत् को परस्पर लेन देन तथा सुसम्बद्ध रहने के लिये बहुत बड़ा बना लेते हैं। उसी प्रकार पृथ्वी माता के विजय के निमित्त वेग से जाने हारा पुरुष ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में एक अग्नि अर्थात् अग्रणी, ज्ञानवान् के रूप में प्राप्त होता है। और दूसरा बाज़ के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा दृढ़ अभेद्य जनसमूह में से दूसरे सोम, ऐश्वर्यवान् आज्ञापक श्रेष्ठ पुरुष को दूध से मक्खन के समान मथ कर प्राप्त करे। वे दोनों विद्वान् और ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन वेद ज्ञान और बड़े ऐश्वर्य से वृद्धि को प्राप्त होते हुए इस महान् लोक को महान् राष्ट्र के बनाने के लिये तैयार करें।

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि और सोम, अग्नि और वायु दोनों मिल कर प्राप्त हुए चरु आदि खाद्य पदार्थ को भस्म कर देते हैं और अपने बीच से सूक्ष्म रूप से धारण करके वर्षणशील होकर उससे स्वयं तृप्त हो, अन्यों को सुखी करते हैं। अपने उत्तम रक्षा सामर्थ्य से उत्तम सुख देने वाले होकर शान्ति और रोग नाश करते हैं उसी प्रकार हे अग्ने! अग्रणी, मुख्य ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! हे 'सोम' ऐश्वर्यवन् राजन्! अथवा आचार्य और शिक्षक! तुम दोनों आपके पास प्रस्तुत किये 'हवि' ग्राह्य स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करो, स्वीकार करो। उसको चित्त से चाहो। और समस्त अधीन शिष्यों और प्रजाजनों पर ज्ञान और सुखों की वर्षा करने वाले होकर उस स्वीकृत पदार्थों का सेवन करो। आप दोनों अपने उत्तम ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य से निश्चय से दुष्टों के नाशक व उत्तम सुख शरण देने वाले होओ और दानशील पुरुष के लिये शान्ति प्राप्त करने और दुःखों को दूर करने वाले उपाय प्रदान करो।

यो अ॒ग्नीषोमा॑ ह॒विषा॑ सप॒र्याद्दे॑व॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ यो घृ॒तेन॑ ।
तस्य॑ व्र॒तं र॑क्षतं पा॒तमंह॑सो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥८॥

भा०—जो पुरुष उत्तम संस्कृत 'हवि' अर्थात् चरु से अग्नि और वायु दोनों की परिचर्या करता है अर्थात् उनमें उत्तम पदार्थ की आहुति देता है और जो परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार करने वाले चित्त से युक्त होकर घृत से और विद्वानों का अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि जलों से सत्कार करता है वे दोनों उसके सत्य भाषण, तप, स्वाध्याय आदि नित्य कर्मों का पालन करते हैं और वे दोनों उसको अनेक प्रकार के पापाचरण और ज्वरादि दुःखों से बचाते और प्रजाजन के हित के लिये बड़ा सुख प्रदान करते हैं। इसी प्रकार अग्रणी, विद्वान् राजा दोनों का जो अन्नादि द्वारा आदर-सत्कार करते और विद्वानों के प्रति सत्कार और आदरवान् चित्त से और जलादि से सत्कार करते हैं उनके नियमों का पालन करते, उसे पाप कर्मों से बचाते, प्रजाजन को शासन और शास्त्रानुशासन द्वारा बड़ा सुख प्रदान करते हैं।

अग्नी॑षोमा॒ सवे॑दसा॒ सहू॑ती वनतं॒ गिरः॑ । सं दे॑व॒त्रा ब॑भूवथुः ॥९॥

भा०—अग्नि और वायु जिस प्रकार एक समान रूप से चरु को ग्रहण करते हैं और समस्त पृथिवी, जल, आकाश, अन्तरिक्ष आदि पदार्थों पर समान रूप से व्याप जाते हैं उसी प्रकार ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् मन्त्री और राजा, आचार्य और शिष्य दोनों समान ज्ञान और ऐश्वर्यवान् होकर एक दूसरे के समान, एक साथ ही वरण योग्य होकर स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं। वे विद्वान् पुरुषों के बीच में एक साथ मिल कर ही शक्तिशाली और कार्यसम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

अग्नी॑षोमाव॒नेन॑ वां॒ यो वां॑ घृ॒तेन॒ दाश॑ति । तस्मै॑ दीदयतं बृ॒हत् ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार घृत और जल के साथ अग्नि और वायु दोनों के बीच ग्राह्य अंश को प्रदान करता है उसके लिये वे दोनों बहुत प्रकाश करते हैं। अग्नि में घृताहुति देने से वह बहुत उज्ज्वल हो जाता है और

वायु में जलांश अधिक आ जाने से वृष्टि द्वारा अन्नादि पदार्थ अधिक मात्रा मे होते हैं, उसी प्रकार हे विद्वन् ! हे राजन् ! जो भी पुरुष तुम दोनो में किसी को स्नेह से या तेजस्विता से या नम्रता सेवा तथा कर आदि प्रदान करता है उसको आप बहुत २ ज्ञान और ऐश्वर्य प्रकाशित करते और प्रदान करते हैं।

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त अग्नि और वायु या अग्नि और जल के समान उपकारक स्वभाव वाले विद्वान् पुरुषो ! तुम दोनो हमारे स्वीकार करने योग्य इन पदार्थों को प्रेम से स्वीकार करो और हमें सदा एक साथ प्राप्त होओ।

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२।२६।१९

भा०—अग्नि और जल या अग्नि और वायु के समान राष्ट्र का शिक्षण और पालन करने वाले आप दोनो हमारे अश्वों को खूब पालन और हमारे दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौवो को और अन्न उत्पादक भूमियो को खूब हृष्ट-पुष्ट और जल से सेचित करो। हमारे धनाढ्य पुरुषों के आश्रय पर राष्ट्र के रक्षक सैन्यो का पालन करो और हमारे प्रजा-पालन रूप यज्ञ को खूब अन्न-समृद्धि और सुख-सामग्री से युक्त करो।

[९४]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, १० निचृज्जगती। ६, १२, १३, १४ विराड् जगती। २, ३, १६ त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। विराट वा जगती। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप्। भुरिक् पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

इमं स्तोम॒मर्ह॑ते जा॒तवे॑दसे॒ रथ॑मिव॒ सं म॑हेमा मनी॒षया॑।
भ॒द्रा हि नः॒ प्रम॑तिरस्य सं॒सद्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१

भा०—जिस प्रकार बुद्धि-पूर्वक वेग से जाने वाले रथ को संचालित करते और उसका उपयोग करते और उसकी देख भाल और रक्षा करते हैं उसी प्रकार पूजनीय समस्त पदार्थों के जानने वाले विद्वान् और ऐश्वर्यों के स्वामी धनाढ्य तथा वेदो के परम उत्पत्ति स्थान परमेश्वर इनके उपदेश, प्रवचन तथा उपासना के लिये इस स्तुति को बुद्धि पूर्वक, बड़े विचार से अच्छी प्रकार करें जिससे बुरे परिणाम उत्पन्न न हों। जैसे वेगवान् रथ के सञ्चालन में थोडा सा चूकने पर बहुत हानि होती है, इसी प्रकार विद्वानो, ऐश्वर्यवानो और परमेश्वर की स्तुति और आदर-सत्कार में चूक जाने पर भी बहुत हानि होती है। इस विद्वान् और ऐश्वर्यवान् की सभा और सत्संग में निश्चय से हमें सुख और कल्याण के देने वाली पवित्र बुद्धि तथा उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस परमेश्वर की उपासना मे हमे सुखकारिणी उत्कृष्ट मति प्राप्त होती है। हे ज्ञानवन्! अग्रणी नायक! परमेश्वर तेरे मित्रभाव में रहते हुए हम कभी दुखी और विनाश को प्राप्त न हों और कभी तेरा व्रत खण्डित न करें।

यस्मै॒ त्वमा॒यज॑से॒ स सा॑धत्यन॒र्वा क्षे॑ति॒ दध॑ते सु॒वीर्य॑म्।
स तू॑ताव॒ नैन॑मश्नोत्यंहु॒तिरग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥२॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! विना अश्व के भी, अग्नि या विद्युत् के बल से जिस प्रकार रथ चला जाता है उसी प्रकार तू जिसको थोडा सा भी अपना ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है वह अपने विना सहायक के, सब काम सिद्ध करता है, वह विना शिक्षक के, उत्तम और कुशल हो जाता है, वह शत्रुओं को विना चतुरंग के वश कर लेता है, विना अश्व आदि सवारी के अपने उद्देश्य तक पहुच जाता है, अग्नि या विद्युत् के बल से चलने वाले रथ के समान वह पृथ्वी पर आदर-पूर्वक रहता है। वह उत्तम वीर्य, बल, तेज को धारण करता है। वह स्वयं

वृद्धि को प्राप्त होता और औरों को भी बढ़ाता है उसको पाप, दुःख, पीड़ा, बाधा कुछ भी प्राप्त नहीं होता। हे ज्ञानवन्! हे नायक! हे परमेश्वर! हम तेरे मित्र भाव में रह कर कभी पीडित न हों।

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में अग्नि को अति प्रदीप्त करते हैं, वह समस्त यज्ञ कर्मों को साधता है, आहुति किये हविष्य को समस्त वायु जल आदि पदार्थ अग्नि के द्वारा ही प्राप्त करते हैं और अग्नि सूर्य की किरणों को अपने में रखता है उसी प्रकार हे विद्वन्! राजन्! हम तुझे अति उज्वल, तेजस्वी, प्रतापी बनाने में समर्थ हों। तू ज्ञानों और राष्ट्र के कार्यों की साधना कर, उनको प्राप्त कर, अपने वश कर। तेरे आश्रय पर ही विद्वान् पुरुष, दान किये हुए अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का भोग करते हैं। तेरे आश्रय रहकर देव अर्थात् विजयेच्छु जन प्राप्त अन्न-वेतनादि को भोगते हैं। तू सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों को और अदिति अर्थात् भूमि माता के पुत्रों, वीर सैनिकों को सब ओर से धारण कर। हम भी उनको ही चाहते हैं। हम तेरे मित्रभाव में कभी पीडा को न प्राप्त हों।

परमेश्वर के पक्ष में—तुझ तेजःस्वरूप को हम प्राप्त कर सकें, तू हमें ज्ञान और कर्मों का उपदेश कर। तेरे आश्रय पर विद्वान् जन और कामना वाले जीव गण कर्म फल भोगते हैं। तू सूर्यों और जीवन्मुक्तों को धारण करता है हम भी उनकी कामना करते हैं। शेष पूर्ववत्।

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा-पर्वणा वयम्।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञार्थ अग्नि के लिये हम ईंधन लाते हैं, चरु पदार्थ तैयार करते हैं, पर्व, पर्व पर हम उसे चेताते हैं और वह हमारे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के समस्त साधनों को उपस्थित करता है उसी प्रकार हे राजन्! ज्ञानवन्! नायक! हम तेरी वृद्धि और तेज को

बढ़ाने के लिये तेजस्वी, उज्ज्वल होने के साधनों का संग्रह करें। तेरे निमित्त सब प्रकार के उत्तम अन्नों और स्वीकार करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें। प्रत्येक पालन करने और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले साधन और वेदज्ञानमय व्यवस्था-पुस्तक या शास्त्र के एक-एक पर्व, या अध्याय-अध्याय से हम ज्ञान प्राप्त करते हुए और तुझे चेताते हुए तेरे मित्रभाव मे रहकर कभी पीड़ित न हो। हमारे जीवनों के लिये उत्तम उत्तम ज्ञानो और उत्तम उत्तम कार्यों को खूब अच्छी प्रकार से अनुष्ठान कर।

परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—तेजःस्वरूप तुझको धारण करें, तेरे लिये स्तुतिवचन कहें, तेरी सेवा करें, वेदानुशासन के प्रतिपर्व, प्रति अध्याय अथवा पर्व पर्व पर तेज और ज्ञान का सम्पादन करें। तू सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये ज्ञानो और कर्मो का उत्तम रीति से उपदेश कर।

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥५।३०॥

भा०—इस सभापति, राजा और विद्वान् के राज्य मे प्रजाओं के रक्षक पुरुष और दोपाये, भृत्य, कमकर आदि और जो चौपाये सब जन्तु प्रकट चिह्नों या गुणों सहित होकर विचरें। अर्थात् राजपुरुषों, भृत्यों के भी शरीरो पर उनके भिन्न भिन्न विभाग का चिह्न, पदक आदि हों और पशुओं पर भी चक्र, शूल आदि का चिह्न हो। हे राजन्! तू पूजा, आदर सत्कार करने योग्य उत्तम ज्ञानवान् होकर सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और गुणों से महान् सामर्थ्य वाला है। तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों।

परमेश्वरपक्ष में—परमेश्वर के बनाये दोपाये, चौपाये तथा अन्यान्य सभी प्राणी प्रजाओं के रक्षा करने हारे होकर ही विचरते हैं। परमेश्वर पूज्य, अद्भुत सामर्थ्यवाला, महान् है। उसके प्रेमभाव में हम कभी पीड़ित न हों। इति त्रिंशो वर्गः।

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥६

भा०—हे विद्वन् ! अध्यक्ष ! तू अध्वर अर्थात् हिंसा कर्म से रहित, प्रजाओं के हिंसन, परिपीड़न आदि से रहित, प्रेम भाव से मिल कर रहने और प्रजापालन के कार्य का संयोजक, उसको चाहने वाला और शत्रु से कभी नष्ट या पराजित न होने वाले राष्ट्र का स्वामी है और तू सबसे मुख्य सब अधिकारों और ऐश्वर्यों का स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को वितरण करने हारा है । तू ही सबसे मुख्य शासक एवं ज्ञानोपदेष्टा है । तू राष्ट्र के कण्टकों, दुष्ट पुरुषों को दूर करके उसे स्वच्छ, पापाचरणों से रहित करने वाला, एवं सबको पवित्र करने वाला, पंक्तिपावन है । तू जन्म से ही, स्वतःसिद्ध, स्वभावत. 'यज्ञ में ब्रह्मा के समान, रात्रि में दीपक के समान सबके आगे, मुख्य, अग्रणी पद पर स्थापित है । तू समस्त ऋत्विजों के यज्ञोपयोगी कर्मों को जानने वाले विद्वान् के समान, समस्त ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यों को सुसंगत करने तथा सभा आदि के नियमों को जानता हुआ, उनको हे बुद्धिमान् खूब पुष्ट, दृढ़ कर देता है । हे ज्ञानवन् ! नायक ! तेरे मित्र-भाव में हम पीडित न हों ।

परमेश्वर समस्त यज्ञों का स्वामी होने से 'अध्वर्यु' है, सर्वश्रेष्ठ सुखों का दाता होने से 'होता', ज्ञानप्रद होने से 'प्रशास्ता', हृदयपावन होने से 'पोता', सब का साक्षी और हित-चिन्तक होने से 'पुरोहित' है ।

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥७

भा०—जिस प्रकार उत्तम रूपवान्, सबको एक समान दिखाने हारा, दूर रह कर भी विद्युत् के समान खूब चमकता है, रात के अन्धकार को पार करके भी स्वयं देखता अर्थात् दूर तक प्रकाशित करता है, उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष सब प्रकार से उत्तम, सुन्दर मुख या दृढ़ अंग

वाला या उत्तम प्रतीति या ज्ञान से युक्त, अन्यो को भी उत्तम ज्ञान कराने हारा, सबको समान रूप से देखने वाला, निष्पक्षपात, दूर रह कर भी विद्युत् के समान अधिक रुचिकर, प्रकाशमान, तेजस्वी होकर रहता है। हे विद्वन् ! तू रात में अन्धकार को भी पार कर जाने वाले अग्नि के समान अज्ञान-अन्धकार को पार करके सबसे अधिक दूर तक देखता और अन्यो को अपने ज्ञान से तत्वों को दिखलाता है। हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हम तेरे मित्र भाव मे रहकर कभी पीडा, कष्ट, रोग और अज्ञान से दुखी न हों।

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥८॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! हमारे आज्ञा देने हारे, ऐश्वर्यवान् एव अभिषेक प्राप्त राजा का रथ सबसे मुख्य और शक्ति और बल से पूर्ण सबसे आगे चलने वाला हो। और हमारा उपदेश और शास्त्र भी अनधिकारी पुरुषो के लिये दुःख से ज्ञान करने योग्य, दुर्गम अथवा दुष्ट बुद्धि और दुष्टाचरण करने वालों को पराजय करने वाला हो। अथवा हमारा आज्ञा-वचन शत्रुओ के समक्ष मे न आने वाला हो। उसके रहस्य भेद को शत्रु न समझ सकें। हे विद्वानो, हे विजयशील सैनिको ! तुम लोग उसके वचन को अच्छी प्रकार जानो। और और भी पुष्ट, बलवान् करो। अर्थात् अग्रणी नायक की आज्ञा के अनुकूल चलकर उसके आज्ञा-वचन को प्रबल करो, उसका अनुमोदन करो। हे विद्वन् ! नायक ! तेरे मैत्रीभाव में रहकर हम पीडित अन्न से व्यथित न हों।

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥९॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे नायक ! तू दु.खदायी और दुष्परिणामजनक वचनों को कहने वालों और लोगों को बुरी बात सिखाने वालों को नाना

दुण्डों से पीड़ित करके राष्ट्र से दूर कर। जो लोग दूर देश में और समीप में भी कोई भी दुष्ट बुद्धियों और दुःखदायी, हीन आचार चरित्रों वाले, प्रजा के माल को हड़प जाने वाले, खाऊ लोग हैं उनको नाना दण्डों से दण्डित करके प्रजा से परे हटा, उनको प्रजा में मत रहने दे। और यज्ञ, परस्पर सत्संग और ज्ञानोपदेश तथा परमेश्वरोपासना आदि कार्यों की वृद्धि के लिये तथा 'यज्ञ' अर्थात् उपास्य या पूजा और आदर के योग्य प्रजापालक राजा और आचार्य के हित के लिये स्तुति, चर्चा और उपदेश करने वाले पुरुष के लिये सुखप्रद साधन उपस्थित कर। हम तेरे मैत्री-भाव में रहकर कभी दुष्ट पुरुषों द्वारा पीडित न हों।

यद॑युक्था अरु॒षा रोहि॑ता रथे॒ वात॑जूता वृष॒भस्ये॑व ते॒ रवः॑।
आदि॑न्वसि व॒निनो॑ धू॒मके॑तुनाग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वेग से चलने वाले यान या रथ में दीप्ति से युक्त, दृढ़, वायु के वेग से जाने वाले दो वेगदायक यन्त्रों को सञ्चालित करना है तब साड के समान धुधकारने का सा शब्द होता है, जल से युक्त अग्नि के धूम के से झण्डे से वह अग्नि युक्त होता है, इस प्रकार एंजिन द्वारा अग्नि-रथ चलता है। उसी प्रकार हे अग्रणी नायक! जब तू अपने रथ में रोष रहित, सुस्वभाव, सुशील, हृष्ट पुष्ट अश्वों को जोड़ता है तब वन अर्थात् सेनासमूह के स्वामी रूप से विद्यमान तुझ श्रेष्ठ पुरुष का वृषभ या बरसाने वाले सजल मेघ के समान शब्द या वचन भी गम्भीर गर्जना के तुल्य हो। तभी तू शत्रुओं के हृदय में कंपकंपी पैदा कर देने वाले ध्वज से युक्त होकर आगे बढ़। तेरी मित्रता में रहकर हम कभी पीडित न हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अध॑ स्व॒नादु॒त बि॑भ्युः पत॒त्रिणो॑ द्र॒प्सा यत्ते॑ यव॒सादो॒ व्यस्थि॑रन्।
सु॒गं तत्ते॑ ताव॒केभ्यो॒ रथे॒भ्योऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥११॥

भा०—जिस प्रकार वन में लगे अग्नि के चटचटा शब्द से पक्षी भय

खाते है और द्रुत गति से जानेवाले या वृक्ष-पत्राहारी और तृणचारी पशु विविध स्थानों में आश्रय के लिये जा छिपते या व्याकुल हो जाते हैं। अथवा द्रुत गति वाले, वृक्षों को जला देने वाले अग्नि के ज्वाला कण तृणो को भस्म करने वाले होकर विविध दिशाओं में फैल जाते हैं उसी प्रकार उसके पश्चात् हे रणनायक ! तेरे भयंकर शब्द या गर्जना या रणवाद्य से पक्षियों के समान भीरु हृदय वाले, रथारोही शत्रुजन भी भय खाएं और द्रुत गति से ले जाने वाले, तृणचारी अश्व विशेष रूप से स्थिर होकर रहे। तब तेरे अधीन रहने वाले रथारोही, वीर पुरुषों के लिये विजय और सुख प्राप्त हो। हे नायक ! तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हो।

अ॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य॒ धाय॑सेऽवया॒तां म॒रुतां॒ हेळो॒ अद्भु॑तः।
मृ॒ळा सु नो॒ भूत्वे॑षां॒ मनः॒ पुन॒रग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार मित्र, सूर्य या दिन के प्रकाश और ताप को वरुण, रात्रि काल की शीतलता को धारण करने के लिये नीचे और ऊपर की ओर आने जाने वाले, वायुगण का वेष्टन अर्थात् वातावरण भी अद्भुत, आश्चर्यकारी रूप से बना हुआ है और इनका स्तम्भन बल हमें सुखकारी होता है उसी प्रकार स्नेह करने और प्रजा को मृत्यु कष्ट से बचाने वाले और सबसे श्रेष्ठ वरण करने योग्य, दुष्ट शत्रुओं के वारक राजा और न्यायाधीश के अधिकार-बल और शासन को धारण-पोषण करने के लिये अधीन होकर कार्यों पर जाने वाले मनुष्यों, विद्वानों, सैनिकों और प्रजाओं का यह वेष्टन अर्थात् घेरा डाले रहना और राष्ट्र में जाल के समान फैले रहना, आना, जाना और आक्रमण करना भी अति आश्चर्यकारी हो। अथवा मित्रो और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण अर्थात् पालन पोषण के लिये नीचे मार्ग पर जाने वाले, नीचवृत्ति के, कुपथगामी पुरुषों को विस्मयकारी रूप से, जैसा उनके जीवन में कभी भी नहीं हुआ हो, ऐसा घोर अनादर, अपमान और कष्ट हो। हे राजन् ! तू हमें सुखी कर और इन प्रजाजनो, विद्वानो और वीर पुरुषो का चित्त सदा उत्तम मार्ग में रहे।

और हे नायक! विद्वन्! तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों। ('हेडः'— हिडि गत्यनादरयोः। हेड अनादरे। हेड वेष्टने।)

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी आदि पांचों दिव्य पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक, तीव्र गतिशील और श्रेष्ठ प्रकाशवान् अग्नि या विद्युत् है उसी प्रकार हे ज्ञानवन्! हे राजन्! हे परमेश्वर! तू ही समस्त ज्ञानी, विजिगीषु और तेजस्वी पुरुषों में श्रेष्ठ, विजिगीषु और तेजस्वी है। तू ही अद्भुत, स्नेहवान्, प्रजाओं को प्राण वायु के समान मृत्यु से बचाने वाला सच्चा मित्र है। तू देह में बसने वाले गौण वसु आदि प्राणगण में मुख्य आत्मा के समान बसने वाले प्रजाजनों में श्रेष्ठ, बसने और उनको बसानेवाला, एवं ब्रह्माण्ड में पृथिवी आदि लोकों में सबसे श्रेष्ठ है। सब में बसने हारा, व्यापक और सबको बसाने हारा है। तू उपासना आदि यज्ञकर्म तथा संग्राम और अन्य दानादि श्रेष्ठ कार्यों में सबसे श्रेष्ठ है। तेरे अति विस्तृत शरणप्रद, सुखकारी आश्रय में हम सदा रहें और हम तेरे मित्रभाव में रह कर कभी कष्ट प्राप्त न करें।

तत्ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१४॥

भा०—हे ज्ञानवन्! विद्वन्! राजन्! तेरा यही कार्य कल्याणकारक और प्रजा का सुखकारक है कि जो तू अच्छी प्रकार ज्ञानों और पराक्रमों से युक्त सैन्य बलों से तेजस्वी होकर अपने गृह और इन्द्रिय दमन और राज्य-शासन में ही राज्यैश्वर्य और अन्नादि ओषधि रस से परिपुष्ट होकर और प्रजाओं को सबसे अधिक सुख देने वाला हो और तू स्तुति का पात्र बन। तू दानशील, कर आदि देने वाले प्रजाजन के हित और रक्षा के लिये राज्य, उत्तम रत्न और श्रेष्ठ ऐश्वर्य और आत्मा को रमण

कराने वाला, आत्मज्ञान धारण कर। हे ज्ञानवन्! पुरुष! एवं नायक राजन्! तेरी मित्रता में रहते हुए हम कभी पीड़ित न हों।

परमेश्वर के पक्ष में—हे प्रभो! वही तेरा सबसे अधिक कल्याणजनक सुखकारी रूप है कि तू तेज.स्वरूप है। तू अपने अति आनन्दमय रूप में सबसे अधिक आनन्दमद और ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति किया जाता है। तू ही समस्त सुख और ऐश्वर्य को धारण करता है। तेरे प्रेम भाव में मग्न रह कर हम कभी पीड़ित न हों।

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५॥

भा०—हे अखण्ड! नाशरहित परमेश्वर! आचार्य, एवं अखण्ड शासन वाले बलवान् राजन्! तू उत्तम ऐश्वर्यवान् है। तू जिसको समस्त कार्यों में पापरहित शुद्ध आचरण का उपदेश प्रदान करता है और जिसको तू बल से और ज्ञान से सन्मार्ग में चलाता है वह उत्तम पुत्र पौत्रों से और ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है। हे राजन्! विद्वन्! प्रभो! हम भी तेरे दिये ज्ञान, बल और प्रजा से समृद्ध ऐश्वर्य से युक्त हों।

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥
॥ १६ ॥ ३२ ॥ ६ ॥

भा०—हे ज्ञानप्रकाशक! विद्वन्! राजन्! प्रभो! हे ज्ञानप्रद! सुखप्रद! विद्याप्रकाशक! तू सब कुछ जानने हारा है। वह तू कृपा करके हमारे उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामित्व जीवन और ज्ञान को इस लोक, इस जन्म और इस राष्ट्र में खूब बढ़ा और हमें प्राण, अपान तथा दिन और रात्रि, सूर्य और मेघ, अविनाशी कारण, सागर या नदी गण, पृथिवी और विद्युत् या महान् आकाश ये सब भी हमें वह परम सुख-सौभाग्य प्रदान करें और बढ़ावें। इति द्वात्रिंशो वर्गः।

इति षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

[९५]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ औषस सत्यगुणविशिष्टः शुद्धोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९ भुरिकपङ्क्तिर्व्यूहेन त्रिष्टुव् वा ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

भा०—जैसे दो स्त्रियें भिन्न भिन्न रूप रंग वाली, अपने शुभ प्रयोजन के निमित्त विचरती हैं और वे दोनों एक दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती पोपती हैं और जैसे एक की गोद में मनोहर श्याम रंग का बालक हो और दूसरी की गोद मे शुक्र, शुद्ध, उज्वल वर्ण का बालक हो। उसी प्रकार प्रकाश और अन्धकार से भिन्न भिन्न रूप के दिन और रात्रि अपने उत्तम जगत् के कल्याण करने के प्रयोजन से मानो दोनो स्त्रियों के समान विचरते हैं। वे दोनों एक दूसरे के या पृथक् पृथक् अपने अपने अग्नि और सूर्य या चन्द्र और सूर्य दोनों को बालक के समान ही अपना रस प्रदान करके पुष्ट करते हैं। अर्थात् रात्रि के गर्भ से उत्पन्न सूर्य का पोषण दिन करता है और दिन से उत्पन्न अग्नि का पोषण रात्रि करती है। सूर्य और अग्नि का उन दोनो को अधिक उज्वल रूप मे प्रकट करना उनका पोषण करना है। एक में या अपनी जननी रूप दिन-वेला में जलों और रसों का हरण करने वाला सूर्य अपनी रश्मियों से जल को धारण करने वाला होता है। और दूसरी रात्रि मे शुद्ध कान्तिमान् अग्नि या जल ही उत्तम तेजस्वी होकर दिखाई देता है। अथवा दोनों रात्रि और दिन, भिन्न भिन्न रूप के होकर उत्तम प्रजा-पालन के कार्य में परस्पर मिलकर बसे हुए संसार को बालक के समान पालते हैं। दिन से भिन्न रात्रिकाल मे उष्णता को दूर करने वाला चन्द्र अपने गुण से धारण करने योग्य ओषधि रस से युक्त होता है और दूसरी, रात्रिकाल से भिन्न दिनवेला में कान्तिमान सूर्य

उज्वल रूप से दिखाई देता है। अथवा आकाश और पृथिवी दोनो संसार रूप बालक को या सूर्य और अग्नि या मेघ और अग्नि को पालते हैं, सूर्य और मेघ दोनो जल लेने और लाने से 'हरि' और 'स्वधावान्' हैं। अग्नि तेजस्वी होने से 'शुक्र' है।

अध्यात्म मे—विरूप अर्थात् भिन्न रूप के प्राण और अपान यह दो प्राण की गतियां हैं। वे देह मे बसे आत्मा को पुष्ट करती हैं। एक देह को धारण करने और अन्न को पचाने और भूख लगाने वाला होने से प्राण 'हरि' है, दूसरा अपान अर्थात् नाभि से नीचे के अधश्चारी प्राण-शक्ति मे शुक्र, वीर्य जो देह में कान्तिजनक होता है वह आश्रित है। इसी प्रकार ब्राह्मण वर्ग और क्षत्र वर्ग, ये दोनों शान्त और उग्र स्वभाव से भिन्न भिन्न होकर भी परस्पर मिलकर प्रमुख विद्वान् और नेता को, तथा बसते प्रजाजन को पालते हैं, एक में ज्ञानवान् विद्वान् है दूसरे मे तेजस्वी नायक है। आकाश और पृथिवी दोनो दो भिन्न भिन्न रूप वाली होकर वत्सरूप वायु या मेघ को पुष्ट करते हैं अर्थात् जल से पूर्ण करते हैं या बसे प्राणि संसार को पालते हैं। एक की गोद में 'हरि' सूर्य है दूसरे की गोद में 'शुक्र' अर्थात् जल है।

दशे॒मं त्वष्टु॑र्जनयन्त॒ गर्भ॒मत॑न्द्रासो युव॒तयो॒ विभृ॑त्रम्।
ति॒ग्मानी॑कं॒ स्वय॑शसं॒ जने॑षु वि॒रोच॑मानं॒ परि॑ षीं नयन्ति ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार दस जवान स्त्रियें मनुष्यो में विशेष तेज से तेजस्वी, तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाले या तीक्ष्ण सैन्य वाले अपने बाहुबल से यशस्वी पुरुष को अपने अपने पति रूप से परिणय करती हैं और वे दसों जैसे आलस्य रहित होकर अपने तेजस्वी पति से प्राप्त विविध उपायो से भरण पोषण किये गर्भ को आलस्य रहित होकर उत्पन्न करती है, उसी प्रकार ये दश दिशाएं, जो उनमें बसी प्रजाएं परस्पर मिलने और न मिलने अर्थात् पृथक् पृथक् रहते से हैं, वे दसों लोगों मे विविध गुणों से प्रकाशमान, तीक्ष्ण सेना-बल से युक्त, अपनी भुजाओ से कीर्त्ति

की कामना वाले पुरुष को, सूर्य की दिशाओं के समान सब तरफ से घेर लेतीं, उसकी शरण में प्राप्त होती हैं और वे उस विविध उपायों से भरण पोषण करने वाले बलवान् पुरुष की तेजस्वी सैन्यबल को तेजस्वी सूर्य के समान प्रतापी वश करने में समर्थ करते हैं। आलस्य रहित होकर उत्पन्न करते हैं।

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद् वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥

भा०—इस अग्रणी नायक के प्रजाजनों के हितार्थ तीन रूप होते हैं। एक रूप उसका समुद्र में है अर्थात् वह समुद्र के समान गम्भीर हो। एक रूप उसका महान् आकाश या सूर्य में है अर्थात् वह सूर्य के समान तेजस्वी और आकाश के समान महान्, सब पर वशी है। तीसरा रूप जलों या प्राणों में है अर्थात् वह सबके जीवनों का आधार और शान्तिदायक है। वह तीन ही कार्य करता है जैसे प्रथम, वह अपने मुख्य दिशा या देश का शासन करे। दूसरे, राजाओं और पृथिवी निवासी प्रजाजनों के बीच में प्राणस्वरूप मुख्य राजसभा के सदस्यों का अच्छी प्रकार शासन करे। तीसरा, सब काम ठीक ठीक प्रकार से धारण करे और विधान अर्थात् क़ायदे-क़ानून की व्यवस्था करे।

अग्नि के पक्ष में—अग्नि के तीन रूप हैं, एक समुद्र में वाडवाग्नि, दूसरा आकाश में सूर्य, एक प्राणों में जाठर या अन्तरिक्ष में विद्युत् वह सूर्य रूप से उदय होकर पूर्व दिशा को प्रकट करता है, ऋतुओं को बनाता है, सब काम ठीक ठीक नियम से निभाता है। इसी प्रकार काल के तीन रूप भूत, भवत् और भविष्यत्। वह सर्वत्र हैं। वह सूर्य रूप से उक्त तीन कार्य करता है। आत्मा के भी तीन जन्म या रूप हैं। एक समुद्र अर्थात् जल में जीवनोत्पादक अंश, दूसरा आकाश में तेजो रूप, तीसरा प्राणों में वायु रूप। वह आत्मा पार्थिव देहों के बीच मुख्य दिशा अर्थात् चेतना को प्रकट करता है, प्राणों को वश करता और अपने अनुकूल

समस्त कर्म करता है। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन रूप—एक महान् आकाश मे, एक सूर्य मे, एक प्राणो मे। वह सब लोको मे मुख्य शक्ति को धारण करता है वह गतिमान् पदार्थों को चलाता और सब को अपने अधीन ठीक ठीक प्रकार से बनाता या रचता है।

क इ॒मं वो॑ नि॒ण्यमा चि॑केत व॒त्सो मा॒तॄर्ज॑नयत स्व॒धाभि॑ः।
ब॒ह्वी॒नां गर्भो॑ अ॒पसा॑मु॒पस्था॑न्म॒हान्क॒विर्निश्च॑रति स्व॒धावा॑न् ॥४॥

भा०—सूर्य और तत्सदृश राजा की बालक के समान उत्पत्ति का रहस्य कहते हैं। इस छुपे रहस्य को कौन जानता है कि बालक स्वधाओ से, प्राणशक्तियो से माताओ को प्रसव करने मे प्रेरित करता है या प्रकट करता है। समस्त प्राणिनो को बसाने वाला सूर्य रूप बालक अपने धारण-पोषण सामर्थ्यो, कान्तियो से माता रूप दशों दिशाओ को प्रकट करता है। मेघ रूप वत्स जलों से समस्त ओषधियों की उत्पादक भूमियो से अन्न उत्पन्न करवाता है। वृष्टि जलों से भूमियों मे ओषधि, अन्न, वृक्षादि उपजते हैं। उसी प्रकार सबका बसाने वाला राजा अन्नों और वेतनो तथा स्वराष्ट्र को शासन, धारण, पोषण की शक्तियो से ही विद्वान् ज्ञानी पुरुषों अथवा अपने को राजा बनानेवाली प्रजाओं को प्रकट करता है या उनको अपने राजा बनाने के लिये प्रेरित करता है। मातृगर्भ मे जिस प्रकार गर्भ रूप बालक बहुत से जलो की गोद मे से ही प्रकट होता है और सूर्य जिस प्रकार बहुत से जलो अर्थात् समुद्र मे से निकलता प्रतीत होता है और आत्मा जैसे बहुत से नाना प्राणों के भीतर गर्भ के समान घिरा रह कर उनके बीच मे से प्रकट होता है, उसी प्रकार तेजस्वी राजा बहुत सी, नाना प्रकार की आप्त प्रजाओं के बीच गर्भ के समान घिरा हुआ या उनको अपने वश मे ग्रहण करने हारा होकर, उनके बीच मे से ही उत्पन्न या प्रकट होता है। वह स्वयं अपनी शक्ति से युक्त होकर गुणों से महान् और क्रान्तदर्शी होकर प्रकट होता है। उसी प्रकार अग्नि अपने तेजों से मातृ रूप काष्ठों को उज्ज्वल करता है। वह विद्युत् रूप से

जलों के बीच से प्रकट होता है। वह दूर तक दिखाने वाले आदित्य रूप से आकाश में विचरता है।

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार इन गर्भ धारण करने हारी माताओं के भीतर गर्भाशय में बाद में वेदना पीड़ा उत्पन्न करने वाला बालक वृद्धि को प्राप्त होता है। और वह कुटिल आकार की नाड़ियों के ऊपर अपने आत्मा के बल पर या माता के अपने खाये अन्न पर पलता है। दोनों माता पिता उत्पन्न होते हुए पीड़ाजनक या तेजस्वी बालक से उस समय भय खाते हैं कि कहीं वह बाहर आता हुआ माता की मृत्यु आदि का कारण न हो। वे दोनों उसके प्रत्यक्ष देखने पर पीड़ाजनक बालक को ही स्नेह करते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वयं अपने तेजों से प्रकट होने वाला उत्तम श्रेष्ठ नायक, राजा कुटिल, कूट षड्यन्त्रकारियों के भी ऊपर, उनसे अधिक प्रबल होकर, अपने बल से यशस्वी होता हुआ और इन प्रजाजनों के बीच, उनके ही मानो गोद में, उन पर अधिष्ठित होकर वृद्धि को प्राप्त होता अर्थात् अधिक शक्तिशाली हो जाता है। उत्पन्न या प्रकट होते हुए उस सूर्य के समान तेजस्वी राजा से राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा स्ववर्ग और शत्रुवर्ग दोनों भय करते हैं। और वे दोनों उसके सन्मुख आकर उस सिंह के समान पराक्रमी एवं सहनशील और शत्रुओं के हिंसक बलवान् राजा को आदर और प्रेम से देखते और उसकी सेवा करते अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। सूर्य प्रकट होता हुआ दशों दिशाओं के ऊपर विद्यमान रहता है, दिन रात्रि दोनों उदयकालों में उससे भय करतीं अर्थात् रात्रि भागती और दिन उसके पीछे चलता है, दोनों उसके अधीन हैं। उदय के बाद उस अन्धकारनाशक सूर्य को पूर्व और पश्चिम दोनों सूर्य का सेवन करती हैं। विद्युत् कुटिलता से जाने वाले मेघस्थ जलों के बीच में ऊपर ऊपर पृष्ठ भाग पर रहता है, अपने तेज से चमकता

है, उसके प्रकट होने पर अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों कांपते है, उसका सेवन करते हैं। अग्नि काष्ठों के बीच मे ऊर्ध्व ज्वाला होकर अपने तेज से प्रकट रूप से जलता है। दोनो अरणि-काष्ठ जल जाने के भय से डरते हैं, वे उसी जलाने वाले से स्नेह भी करते हैं। इति प्रथमो वर्गः॥

उभे भुद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः॥ ६॥

भा०—सेवने योग्य, शोभन अंग वाली, सुखप्रद दो स्त्रियां जैसे एक ही पुरुष को प्रेम करें उस प्रकार मानो दोनो पक्षों की प्रजाएं जिस उत्तम पुरुष को प्रेम करती हैं, जिस प्रकार हंभारती हुई गौवें अपने शीघ्रतापूर्वक गमनो द्वारा अपने बच्चों के पास पहुंचती हैं उसी प्रकार भूमिवासी प्रजा-जन भी जिसके पास प्रेम से पहुचते हैं और जिस प्रकार नाना यज्ञ सामग्रियो से दक्षिणायन काल मे अथवा दायें हाथ से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार जिस वीर नायक विद्वान् जन को नाना स्वीकार योग्य उपायो द्वारा दक्षिण अर्थात् दायें हाथ की ओर सुशोभित करते हैं, वह समस्त क्रियाकुशल पुरुषों में से सबका स्वामी, सबसे बड़ा हो। सूर्य को आकाश और पृथ्वी दोनो सेवते हैं, किरणें उसे अपने प्रकाशो सहित प्राप्त होती है। दक्षिण मे वे किरणें उसके प्रकाश को अधिक उज्वल कर देते हैं। वह सब यज्ञ क्रियासाधकों का स्वामी है।

उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन्।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति॥७॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनो को अपने वश करता हुआ ऊपर उठाता और नियम मे रखता है और समस्त भूमण्डल से सार भूत, व्यापक, सूक्ष्म जल को ऊपर खीच लेता है और पुनः बरसाकर भूमियों को नये हरे चोले पहना देता, उसी प्रकार जो नेता, सेनानायक शत्रुओं के लिये भयंकर होकर दोनों पक्षों की शस्त्र-वर्षण-कारी सेनाओं को दो बाहुओं के समान युद्ध के लिये उद्यत करता

है, उनको सदा आक्रमण के लिये तैयार रखता है और उनको अच्छी प्रकार तैयार करता हुआ आक्रमण करने का उद्योग करता है वह समस्त राष्ट्र से शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त, वलवान्, पराक्रमशील, निरन्तर गति-शील सैन्य-वल को उठा लेता है, चुन लेता है और माता के समान अपने शरीर को अर्पण करके रक्षा करने वाली सेनाओं को नयी नयी पोशाकें प्रदान करता है। अथवा मातृ-रूप भूमियों को नये वस्त्रों के समान नये रक्षक,सैन्य प्रदान करता है। शुक्रम् इत्युदकनाम। निघ०।

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार किरणों और जलों से युक्त होकर अपने प्रदीप्त तेज को और अधिक उत्कृष्ट कर लेता है और दूर तक प्रकाश फेंकने द्वारा अन्तरिक्ष को भी स्वच्छ कर देता है तव प्रकाशमान किरणों की एकत्र स्थिति होती है उसी प्रकार राजा जव एक ही सभा-भवन में ज्ञानी पुरुषों और आप्त जनों या भूमि निवासी प्रजाओं और विद्वान् आप्त जनों सहित समान रूप से संगत होकर भी अपने उज्वल रूप को उनसे उत्कृष्ट वना लेता है, धारक, बुद्धिमान्, व्यवस्थापक विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुष सबके आश्रय रूप, सबको एकत्र बांधने वाले मुख्य केन्द्रस्थ पद को सुशोभित करता है तव वही विद्वानों की राजकीय सभा वन जाती है। अर्थात् देवसभा या राजसभा में विद्वानों और भूमिवासी प्रजाओं के प्रतिनिधि हों। विद्वान्, ज्ञानी और सभा पर वश करने में समर्थ पुरुष मुख्य सभापति पद पर विराजें।

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९॥

भा०—बड़े भारी सूर्य का अन्धकार को नाश करने वाला, विशेष रूप से देदीप्यमान, तेज जिस प्रकार आकाश या अन्तरिक्ष को व्याप लेता है उसी प्रकार हे सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! नायक

राजन्! बड़े दानशील, तेरा शत्रुओं को पराजय करने वाला, विविध प्रकार की प्रजा को प्रिय लगने वाला, अति देदीप्यमान बड़ा भारी तेज भी सबको बांधने वाले, मुख्य, आश्रय रूप भूलोक या राष्ट्र को या मुख्य पद को प्राप्त करता है। तू अपने समस्त यशों से सूर्य और अग्नि के समान ही खूब तेजस्वी होकर कभी नाश को प्राप्त न होने वाले, स्थायी रक्षा-प्रबन्धों से हमारी रक्षा कर।

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जल के प्रवाह को मेघ रूप से उत्पन्न करता है। अथवा वह ऊपर उठने वाले जल-प्रवाह को या दीप्ति को दूर तक जाने वाला या भूमि को प्राप्त होने वाला करता है और ऊपर उठे जलों से ही पृथिवी को व्याप लेता है अर्थात् उन्हें भी भूमि पर बरसा देता है और समस्त देने योग्य जलों या अन्नों को परिपाक योग्य ओषधि वनस्पतियों के बीच में धारण पोषण करता और नयी उत्पन्न होने वाली लताओं में रस को परिपाक करने वाले तेज रूप से व्यापता है। उसी प्रकार राजा भी मरु भूमियों में जल प्रवाह को नहरों के रूप में बनवावे। वह मार्ग और भूमि को जल तरङ्ग के समान उत्तम बनवावे। जल तरंगों या ऊर्ध्व देश में स्थित जलों से भूमि को सिंचवावे। प्राणियों के पेटों में सब प्रकार के अन्न-दान प्रदान करे। अथवा भीतरी कोषों में सब दान देने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करे। नयी उत्तम भूमियों में, भूवासिनी प्रजाओं में उनके भीतर विचरे।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥१२

भा०—अग्नि जिस प्रकार काष्ठ से बढ़ता हुआ विशेष दीप्ति से चमकता है उसी प्रकार हे अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी राजन्! पूर्वोक्त प्रकारों से हमारे बीच एक साथ तेजस्वी होने के उपाय से बढ़ता

और हम राष्ट्र वासियों को बढ़ाता हुआ ऐश्वर्य से युक्त ज्ञान, अंश और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये विशेष रूप से चमक। सूर्य, मेघ, अखण्ड शासन, समुद्र, पृथिवी और आकाश ये सब हमें वह ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें। इति द्वितीयो वर्गः।

[९६]

कुत्स आंगिरस ऋषि ॥ द्रविणोदाः शुद्धोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्द —त्रिष्टुप्। ४ विराट्। ५ निचृत् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि वळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥१॥

भा०—ऐश्वर्य की कामना करने वाले, विजयेच्छु लोग ऐश्वर्यों के देने वाले अग्रणी और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को धारण करें और वे प्राणों को, आप्त जनों को स्नेही मित्र और बन्धु जनों को और बुद्धि बल को भी अपने वश में करें। वह ऐश्वर्य देने वाला नायक, वीर पुरुष पुरातन, अपने से पूर्व के नायकों के समान उनके चरण-चिह्नों पर चलता हुआ और शत्रुओं को पराजय करने वाले सैन्य-बल से विजयी और यशस्वी होता हुआ शीघ्र ही सब प्रकार के विद्वान् कवियों के काव्यमय स्तुति-वचनों को वस्तुतः, ठीक ठीक अपने में धारण करे। परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सदा समस्त विद्वानों की स्तुति का पात्र है, वह पुराण पुरुष है। वह प्राणों को, सूर्य को और प्रज्ञानों को वश करता है, वे विद्वान्, ऐश्वर्यप्रद परमेश्वर को अपने में सदा धारण करते हैं।

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२॥

भा०—वह परमेश्वर ज्ञान से पूर्ण और सब संसार से भी पूर्व विद्यमान, ज्ञानमय, परम कवि परमेश्वर द्वारा प्रकाशित वेद वाणी से और सनातन, चैतन्यमय कारण से मननशील पुरुषों की इन समस्त प्रजाओं

को उत्पन्न या प्रकट करता है। अथवा मन्वन्तरों में उत्पन्न होने वाली मनुष्य की इन प्रजाओं को उत्पन्न करता है। वही विविध वसु अर्थात् बसे हुए लोकों के स्वामी रूप सब जगत् के प्रकाशक सूर्य से प्रकाश और सूक्ष्म जलांशों को धारण करता है। उस परमैश्वर्यप्रद सब के आगे विद्य-मान अनादि सिद्ध परमेश्वर को विद्वान् जन धारण करते हैं। राजा भी पूर्व के मेधावी, ज्ञानवान् पुरुषों की ज्ञानमय उपदेश-वाणी से मननशील पुरुषों में बसी मनुष्य की प्रजा को उत्पन्न करे। विविध बसी प्रजा के स्वामी की दृष्टि से ज्ञान और कर्मों का प्रकाश करता हुआ, उनको धारण करे। विद्वान् गण उसी ऐश्वर्यप्रद नायक को धारण करें।

तमी॑ळत प्रथ॒मं य॑ज्ञ॒साधं॒ विश॒ आरी॒राहु॑तमृ॒ञ्जसा॒नम् ।
ऊ॒र्जः पु॒त्रं भ॑र॒तं सृ॒प्रदा॑नुं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस सब से प्रथम विद्यमान, सर्वश्रेष्ठ, महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ को वश करने वाले, अथवा यज्ञों और श्रेष्ठ कर्मों द्वारा प्राप्त करने योग्य परम पुरुष की उपासना, स्तुति प्रार्थना, करो। प्राप्त करने योग्य वा स्वयं शरण में आने वाली प्रजाओं को उत्तम रीति से समृद्ध करते हुए, बल और अन्न से उत्पन्न, पुरुष को क्षुधादि मरण से त्राण करने वाले, भरण-पोषण करने वाले तथा सर्पणशील, व्यापक चेतना या बल को देने वाले, प्राण और अन्न को उत्पन्न करने वाले सर्वपूज्य धनैश्वर्य के दायक परमेश्वर को देवगण धारण करें।

स मा॑त॒रिश्वा॑ पुरु॒वार॑पुष्टिर्वि॒दद् गा॒तुं तन॑याय स्व॒र्वित् ।
वि॒शां गो॒पा ज॑नि॒ता रोद॑स्योर्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥४॥

भा०—वह परमेश्वर आकाश में व्यापक वायु के समान जगत् को निर्माण करने में उपादान रूप प्रकृति के परमाणु परमाणु में व्यापक, एवं प्रमाता, ज्ञानकर्ता आत्मा के भी भीतर वर्तमान रह कर बहुत से अभिलाषा करने योग्य ऐश्वर्यों और काम्यसुखों की सम्पत्ति को देने हारा, सब सुखों, ज्ञान-प्रकाशों को प्राप्त कराने हारा होकर पुत्र के लिये माता

पिता के समान और शिष्य को आचार्य के समान, ज्ञानमयी वाणी वेद का ज्ञान कराता है। वह समस्त प्रजाओं का रक्षक, सूर्य और पृथिवी और आकाश व पृथिवी का उत्पादक है। विद्वान् गण उसी समस्त ऐश्वर्यों को देने वाले ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को धारण करते और उसकी स्तुति करते हैं। इसी प्रकार राजा, अपनी माता पृथिवी के आधार पर जीने वाला तथा उस पर निवास करने वाला बहुत से ऐश्वर्यों का दाता, सुख-प्रद होकर प्रजाओं को पुत्र के समान जान भूमि आदि प्रदान करे। वह प्रजाओं का रक्षक और राजा-प्रजा वर्गों का उत्पादक है। विजयेच्छु वीर जन उस ऐश्वर्यप्रद, वृत्तिदाता नायक की रक्षा करें।

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार स्त्री पुरुष दोनों परस्पर अच्छी प्रकार मिल कर एक बालक को दुग्ध आदि पान कराते, पालते-पोसते हैं और जिस प्रकार रात दिन अच्छे प्रकार संगत होकर एक दूसरे के वर्ण का अर्थात् रूप का नाश करते हुए अपने बीच में स्थित सूर्य को बालक के समान धारण करते हैं और वह कान्तिमान् होकर आकाश और भूमि के बीच में शोभा पाता और चमकता है। किरण गण उस प्रकाश और जीवन देने वाले सूर्य रूप अग्नि को धारण करते हैं। तथा जिस प्रकार विद्वान् गुरुजन उस गुरुदक्षिणादि देने वाले बालक को अपने भीतर शिष्य रूप से धारण करते हैं, उसी प्रकार दिन रात्रि के समान दो प्रकार की संस्थाएं, विद्वत्सभा और राजसभा, दोनों परस्पर संगत होकर वेदभाव को नाश करती हुई एक ज्ञानवान् पुरुष को पुष्ट करें। सबको रुचिकर, प्रिय नायक, ज्ञानवान् विद्वानों और भूमि के वासी प्रतिनिधियों के बीच में विशेष रूप से विराजे। विद्वान् पुरुष ज्ञान और ऐश्वर्यों के देने वाले उस अग्रणी नायक को व्यवस्थापक के रूप में धारण करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥

भा०—जो समस्त ऐश्वर्यों का आश्रय, मूल कारण और समस्त वास करने हारे जीवों और राष्ट्रवासियों को एक साथ मिलाने हारा, सब को जोड़ने हारा, एक दूसरे से लेन-देन के और आदर-सत्कार और परस्पर संगति के व्यवहार को बतलाने हारा, अभिलाषा करने योग्य पदार्थ का इच्छानुरूप रीति से प्राप्त कराने वाला है उस अग्रणी नायक, ऐश्वर्यप्रद पुरुष को अविनाशी स्थिर पद की या दीर्घजीवन की रक्षा करते हुए विद्वान् और वीर जन धारण करते हैं। परमेश्वर सब ऐश्वर्यों का आश्रय तथा बोध कराने वाला पृथिवी आदि लोकों का ज्ञान कराने वाला है। वही विद्यादि तथा श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान कराता है। वही काम्य कर्मों का ज्ञान कराने वाला तथा आश्रय है। मोक्षपद अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त दशा को प्राप्त हुए विद्वान् जन उसी को ऐश्वर्यप्रद, ज्ञान-स्वरूप करके मानते और जानते हैं।

नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥

भा०—अब और पहले भी समस्त ऐश्वर्यों का एकमात्र आश्रय, उत्पन्न हुए कार्य-जगत् के और पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले संसार के एक-मात्र आधार, अनादि काल से वर्तमान, अविनाशी कारण और वर्तमान मे विकार को प्राप्त होने वाले और व्यापक तथा अन्नान्य बहुत से असंख्य पदार्थों के रक्षक, धारण करने वाले ऐश्वर्यप्रद, जीवनप्रद, सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर को समस्त विद्वान् गण और दिव्य शक्तियां धारण करती हैं। वह उनमे व्यापक है। उसी प्रकार नायक पुरुष भी ऐश्वर्यों का आश्रय, वर्तमान में उत्पन्न और आगे होने वाले प्राणियों और अब, विद्यमान और आगे प्राप्त होने वाले सब पदार्थों के रक्षक पुरुष को देव, विद्वान् जन मुख्य पद पर स्थापित करें।

द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यों का दाता, राजा और परमेश्वर शीघ्र गति करने वाले, वेगवान् रथ आदि वा जगम धन, पशु आदि का हमें दान दे वह परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन, सुवर्ण रजतादि का प्रदान करे। वह वीर पुरुषो से युक्त सेना या वीरों को उत्पन्न करने वाले अन्न को हमें दे। और वह हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९॥४॥

भा०—व्याख्या देखो मण्डल १।सू०९५।मं०११॥इति चतुर्थो वर्गः।

[९७]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—गायत्री । १, ७, ८ पिपिलिका-मध्या निचृद् । ३, ६ निचृद् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हमारे पाप मल को सुवर्ण के मल को आग के समान, अपनी ज्ञानाग्नि से भस्म करके दूर कीजिये और हमारे प्राण, देह और ऐश्वर्य को शुद्ध, प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिये, पुनः आपसे प्रार्थना है कि हमारे पाप को भस्म करके दूर कीजिये।

इसी प्रकार विद्वान्, राजा और सभाध्यक्ष भी हमारे असत्य भाषण, रोग, आलस्य तथा अज्ञान आदि दोषों को तथा हमारे बीच में रहने वाले पापकारी पुरुष को दूर करें और दण्डित करें। इसी प्रकार सूक्त में समझना चाहिये। इस सूक्त का ईश्वर परक अर्थ देखो अथर्ववेद आलोक-भाष्य का० ४। सू० ३३।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! हम लोग उत्तम क्षेत्र अर्थात् कर्मों के उत्तम बीजरूप संस्कारों के वपन के लिये उत्तम देह, सन्तान-

वपन के लिये उत्तम स्त्री और अन्न वपन के लिये उत्तम से उत्तम भूमि को प्राप्त करने की इच्छा से और उत्तम मार्ग, भूमि, ज्ञान वाणी और और व्यवहार को प्राप्त करने की इच्छा से और प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों और उत्तम लोकों या निवास के प्राप्त करने की इच्छा से तेरी उपासना करें, तुझे प्राप्त हो और परस्पर संगत होकर अध्ययन, यज्ञ आदि सत्कर्म करें। हे ज्ञानवन्! तेजस्विन्! आप कृपा कर हमारे पाप मल को भस्म कर डालो।

प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३॥

भा०—जो हमारे विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष हैं, हे अग्रणी नायक! विद्वन्! प्रभो! उनमें से आप ही सबसे अधिक प्रजा को सुखकारी और कल्याणकारी हैं। और वे सब उत्तम रूपसे सभापति और सभासद् रूप से मान-आदर प्राप्त करें। हमारा पाप, रोग, आलस्य तथा दुराचार, असत्य-भाषण, चौर्य, हिंसा आदि बुरे कर्म दण्ड, प्रायश्चित्त और उपदेश आदि से राजा द्वारा या आपकी कृपा से भस्म कर दूर कर दिये जायं।

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥४॥

भा०—जो तेरे ही अधीन रह कर, हे विद्वन्! तेजस्विन्! विद्वान् जन उत्तम रूप से प्रकट होते हैं उसी प्रकार तेरे अधीन रह कर हम लोग भी उत्तम बनें। अर्थात् आचार्य के अधीन जैसे शिष्य उत्तम विद्वान् हो जाते हैं, उत्तम राजा के अधीन प्रजाएं भी उसी प्रकार सुशिक्षित, सुसभ्य बनें। हमारे पाप-कर्मों को आप भस्म करके दूर करें।

प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥५॥

भा०—सूर्य और अग्नि के समान जिस बलवान्, विद्वान्, तेजस्वी राजा के भी किरणों और ज्वालाओं के समान तेज और विद्वान् पुरुष सब को निकलते और व्यापते है वह आप हमारे पापों को दूर करें।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥६॥

भा०—हे सब तरफ, सब बातों में सुखस्थानीय ! सब में मुख्य ! तू क्योंकि सब प्रकार से और सबके ऊपर विराजमान है, तेरे शासन से हमारे समस्त पापाचरण दूर हों। परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'विश्वतोमुख' है। सर्वोपरि शक्तिशाली होने से 'परिभू' है।

द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥७॥

भा०—हे सब तरफ मुखों वाले अर्थात् सब स्थानों पर मुख्य पदाधिकारी को अपने नियम में चलाने हारे! नाव से जैसे नदी को पार किया जाता है उसी प्रकार तू शत्रुओं से हमें पार कर, उन पर हमें विजयी कर। हमारे हत्याकारी पापी पुरुष को तथा शत्रु से उत्पन्न दुःख को निवारण कर। परमेश्वर हमारे द्वेष भावों से हमें नदी से नाव के समान पार करे। मनुष्य के हृदय में बैठे क्रोध और द्वेष तथा अन्यान्य भीतरी शत्रुओं से पार होना कठिन होता है। ईश्वर का भजन ही उनसे पार कराता है।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८॥५

भा०—वह तू नौका से जिस प्रकार महानद को पार किया जाता है उसी प्रकार हमें सुख, शान्ति और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिये पार कर और हमारे शोक, दुःख और अन्य पापों को दूर कर। इति पञ्चमो वर्गः।

[९८]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्। १ विराट्। ३ निचृत्। तृच सूक्तम् ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—हम लोग समस्त नरों के हितकारी विद्वान् राजा और परमेश्वर की शुभ मति, उत्तम ज्ञान और शासन में सदा रहें। क्योंकि वह तेजस्वी, सबसे ऊपर, सबका स्वामी होकर उत्पन्न हुए समस्त लोकों का आश्रय करने योग्य, आधार और भजन और सेवा करने योग्य है। जिस

प्रकार इस काष्ठ आदि से उत्पन्न होकर अग्नि और इधर पूर्व दिशा से उत्पन्न होकर सूर्य इस समस्त विश्व को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह सबका हितकारी राजा और विद्वान् पुरुष इस राष्ट्र से ही उत्पन्न होकर इस समस्त विश्व को विशेष रूप से देखता और समस्त ज्ञान को प्रकाशित करता है। इस प्रकार समस्त नरों का हितकारी पुरुष सूर्य के सदृश होकर बलवान् होता है। परमेश्वर इस विश्व के द्वारा ही प्रसिद्ध होता है, इस विश्व को साक्षी, नियन्ता रूप से देखता है। वह भी सूर्य के समान इसको प्रकाशित करता है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥२॥

भा०—सब मनुष्यों का नेता, सबका सञ्चालक, नायक परमेश्वर सूर्य और महान् आकाश में व्यापक है, वह इस संसार के अंग अंग मे व्यापक होकर इस समस्त पृथिवी मे व्यापक है, वह सर्वत्र रसों का सेचन करने हारा होने से समस्त ओषधियो में भी प्रविष्ट हो रहा है। वह विद्युत् के समान वर्षा से जल सेचन करने हारा होकर बड़े भारी बल से समस्त संसार को चला रहा है। वह हमे दिन और रात हिंसक शत्रु आदि नाशकारी मृत्यु से बचावे।

राजा के पक्ष मे—राजा ज्ञानवान्, विद्वानों के समुदाय में और सामान्य पृथिवीवासी प्रजा मे और शत्रुओं का संतापकारी सैनिक जनों के प्रति आदर से आश्रय लेने योग्य होता है। उन पर ऐश्वर्यों का वर्षण करता है, वह शत्रुओं पर शरवर्षणकारी होकर सैन्यों के भीतर प्रविष्ट होता है। वह बल से ही अग्रणी पुरुष सबके आश्रय योग्य होकर हम प्रजाजन को सब हिंसक शत्रुओं से बचावे। विद्युत् अग्नि और सूर्य वृष्टि का कारण होने से 'पृष्ट' है।

अथवा परमेश्वर-पक्ष में—वह विद्वानों द्वारा नाना प्रकार से प्रश्नों द्वारा जानने योग्य है। वह आकाश, भूमि, ओषधि, जल आदि सब में व्यापक है।

वैश्वा॑नर॒ तव॒ तत्स॒त्यम॑स्त्व॒स्मान्रायो॑ म॒घवा॑नः सचन्ताम् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥३॥

भा०—हे सब नायकों का स्वामी, सर्वोपरि, सर्वहितकारी ! तेरा वह परम सामर्थ्य, यश अवश्य सत्य सदा स्थिर ही रहे । हमें ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् उनके पालक, जन प्राप्त हों । ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के स्वामी सम्पन्न पुरुष हमारे बीच में स्थिर होकर रहे । प्रजा का मित्र, सर्वश्रेष्ठ, समस्त अखण्डनीय विद्वान् और विजयी पुरुष, मेघ और सागर पृथिवी और सूर्य सब हमें वह समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें । इति षष्ठो वर्गः ।

[९९]

कश्यपो मरीचिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्जातवेदा देवता ॥ छन्दः—निचृत् त्रिष्टुप् ।
एकर्चं सूक्तम् ॥ *

---

* इस सूक्त पर अनुक्रमणीकार कात्यायन ने लिखा है कि—'जातवेदस एका । जातवेदस्यम् । एतदादीन्येकभूयांसिसूक्तसहस्रमेतत्तु कश्यपार्षम् ।' इसी प्रकार ऋग्वेद-भाष्यकार स्कन्दस्वामी लिखते हैं—'अतः परं कश्यपार्षं उत्सृष्टाध्ययनं एकाधिकं सूक्तसहस्रम् । तस्यैतदेकर्चं आद्यं सूक्तम् । एवं हि भगवान् शौनक आह ।

पूर्वा पूर्वा सहस्रस्य सूक्तानामेकभूयसाम् ।
जातवेदस इत्याद्या कश्यपार्षस्य शुश्रुम ॥ इति ॥

यस्यैकाधिकानां सूक्तानां सहस्रस्य सूक्तस्य कश्यपार्षस्य सर्वसूक्तेषु पूर्वापूर्वैषा ऋक् । जातवेदस्य इत्याद्यमेकर्चमिति । एतद्द्वयमपि श्रुतवन्त एव नाधीतवन्त इत्यर्थः ।

अर्थात्—'जातवेदस०' इत्यादि १००१ सूक्त कश्यप ऋषिदृष्ट हैं । स्कन्द लिखते हैं—इसके आगे कश्यपदृष्ट वेद का अध्ययन छूट गया है जो १००१ सूक्त था । उसका आदिम यह एक ऋचावाला सूक्त है । ऐसा ही शौनक ऋषि ने (बृहद्देवता में) कहा है (पूर्वा पूर्वा०) अर्थात्

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥७॥

भा०—हम लोग ऐश्वर्य के स्वामी को पुष्ट करने और ज्ञान-सम्पन्न आचार्य के प्रसन्न करने के लिये ऐश्वर्य का लाभ करें। वह आचार्य शत्रुता का आचरण करने वाले के धन को सर्वथा भस्म कर दे। वह हमें दुर्गम से दुर्गम दुःखप्रद कष्टों और दुर्गतियों से नाव से नदी के समान पार करे।

परमेश्वर के पक्ष में—हम ज्ञान के एकमात्र आश्रय परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ज्ञानानन्द को प्राप्त करें। वह शत्रुता करने वाले, द्वेषबुद्धि वाले पुरुष के ज्ञान को नष्ट कर देता है। परमेश्वर हमें सब कठिन दशा और दुर्गतों से पार करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

[१००]

वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूताः वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः । २, १३, १७ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्ति । ६, १०, १६ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ११, १८ विराट् त्रिष्टुप । ७, ८, ९, १२, १४, १५, १९ निचृत् त्रिष्टुप् । व्यूहेन वा सर्वास्त्रिष्टुभः । एकोनविंशत्यृच सूक्तम् ॥

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

भा०—वायु गण से युक्त सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से संयुक्त होकर जल वर्षाने वाला होता है और वह

कश्यपदृष्ट १००१ सूक्तों की पहली पहली यह ऋचा है। यह जातवेदा सूक्त एक ऋचावाला है, ऐसा हमने भी सुना है। देखा नहीं है। सम्भव है कि यहां कश्यपदृष्ट १००० सूक्त 'खिल' हों। गूढ रहस्य होने से उनका पढ़ना-पढ़ाना छूट गया है और वह लुप्त हो गये हैं

आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है। वह जलों में व्यापक होकर भरण पोषण करने वाले अन्न वायु, जल इत्यादि पदार्थों में प्रकाश और ताप रूप में प्राप्त करने योग्य होकर हमारी जीवन रक्षा के लिये समर्थ होता है उसी प्रकार जो प्रजा पर मेघ के समान ऐश्वर्यो और शत्रुगण पर शस्त्र-अस्त्रों की वृष्टि करने में समर्थ, बलवान और बलवान्, वीर्यवान् पुरुषों में विद्या, ओज, तेज, पराक्रम आदि गुणों से युक्त होकर आकाश में सूर्य के समान, ज्ञान में और पृथिवी और पृथिवी पर स्थित समस्त पदार्थों मे और प्रजाजनों के बीच महाराज के समान तेजस्वी और सजल मेघवत् वाणी, आज्ञा देने वाले प्रभुपद पर विराजने वाला यज्ञों में अग्नि और मुख्य पुरोहित के समान संग्राम में स्वीकार करने योग्य, वायु के समान प्रबल, वेगवान्, वीर सैनिक गणों तथा विद्वानों और प्रजाजनों का स्वामी, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा हम राष्ट्रवासियों की रक्षा के लिये हो।

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य का जाने का मार्ग पथा अधीन ग्रहों को नियन्त्रण करने का महान् सामर्थ्य अन्य ग्रहों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जिस प्रकार सूर्य का मेघों को नाश करने वाला और शोषणकारी ताप प्रत्येक पोषणकारी अन्नादि पदार्थों मे व्यापक होता है वह अपने प्रकाशों से ही सबसे अधिक जल वर्षण करने वाला होता है। वह वायुगण से युक्त सूर्य हमारे जीवनों की रक्षा करने के लिये समर्थ होता है। उसी प्रकार सूर्य के समान जिस तेजस्वी पुरुष का याम अर्थात् यम वा नियन्ता होने का महान् पद, अधिकार, सामर्थ्य और प्रयाण करने का मार्ग शत्रुओं और अधीनस्थों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जिसका शत्रुओं का संतापजनक पराक्रम प्रत्येक संग्राम में विघ्नकारी और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाश करने हारा हो वह अपने मित्रों सहित

अपने प्रयत्नों द्वारा अति बलवान् होकर वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर नरों तथा विद्वानों का स्वामी, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पृथ्वीपति ही हमारी रक्षा के लिये हो।

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३॥

भा०—सूर्य के रश्मिगण जिस प्रकार जलों को प्रदान करने वाले होते हैं और बल या व्यापक सामर्थ्य से युक्त या सबसे बढ़कर दूर तक जाते हैं उसी प्रकार जिस महान् राजा के नीति के मार्ग बल, वीर्य, पराक्रम को बढ़ाने वाले और सैन्य-बल से अवर्जित अर्थात् उससे युक्त रहते हैं। वह समस्त शत्रुओं को पार कर जाने हारा बलों से वीर सैनिकों और विद्वानों का स्वामी राजा हमारी रक्षा करने वाला हो।

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४॥

भा०—वह पूर्वोक्त राजा ज्ञानवान्, अग्नि के समान तेजस्वी और प्राणों के समान जीवनधारी पुरुषों सहित होकर भी उनमें सबसे अधिक ज्ञानी, तेजस्वी और जीवन शक्ति से युक्त हो। वह वर्षणकारी मेघों के सहित सूर्य के समान प्रजा पर सुखों का वर्षक, परोपकारी और वीर पुरुषों के साथ रहकर भी सबसे अधिक बलवान् और सुखों का वर्षक हो। वह मित्रों के साथ सबसे बढ़कर मित्र हो। वेदमन्त्र के ज्ञाता पुरुषों के साथ रहकर उनसे अधिक वेदों का अर्थज्ञ हो। वह साम आदि गान करने और उत्तम स्तुति करने हारे भक्तों के साथ रहकर उत्तम सामज्ञ और उत्तम स्तुतिकारी, सबमें श्रेष्ठ हो। ऐसा वीर सैनिकों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा और आचार्य हमारी रक्षा और ज्ञान वृद्धि के लिये सदा हो।

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५॥२॥

भा०—तीव्र वेग वाले वायुओं सहित विद्युत् जिस प्रकार अन्नों के उत्पादक जलों को आघात कर वृष्टि द्वारा हम लोगों की प्राणरक्षा के लिये होता है उसी प्रकार वह तीव्र, वायुवेग से जाने वाले, वीर सैनिकों का स्वामी, महान् ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति, पुत्रों के समान प्रिय, शत्रुओं को रुलाने वाले, अति भयंकर, एक ही समान आश्रय या छावनी में रहने वाले वीरों, भटों से नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में शत्रुओं को पराजित करने हारा और अपने सैनिकों के अन्नादि वेतनों के लिये युद्ध करने वाले शत्रु सैन्यों को विनाश करता हुआ तथा उनके ऐश्वर्यों को प्राप्त करता हुआ हमारी रक्षा के लिये हो। अथवा संग्राम में वाजियें मारता हुआ अर्थात् विजय करता हुआ। इत्यष्टमो वर्गः।

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६॥

भा०—जो क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला अथवा मन्यु अर्थात् अभिमानयुक्त शत्रु को नाश करने वाला या अपने ही भीतरी क्रोध आदि का नाशक होकर संग्राम का करने वाला है और जो इस संग्राम के अवसर में हमारे अपने नायक और वीर पुरुषों के सहाय में शत्रुओं का नाश करता है वही सूर्य के प्रकाश के समान न्याय-व्यवहार का देने वाला होकर, सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करता है। वही सज्जनों का पालक, नाना प्रजाओं द्वारा स्तुति किया हुआ, बहुत से शत्रुओं से ललकारा हुआ, वीर पुरुष वीर सैनिक पुरुषों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा हमारी सदा रक्षा के लिये हो।

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७॥

भा०—रक्षा करने हारे वीर पुरुष और ज्ञानवान् विद्वान् और तेजस्वी पुरुष तथा रक्षा और उत्तम ज्ञान, तेज आदि सद्गुण उस पूर्वोक्त वीर पुरुष को शूरवीरों के योग्य संग्राम में हर्षित करते, उसकी स्तुति

करते, उसके गुणों का प्रकाश करते और उसको उपदेश करते हैं। ऐसे वीर पुरुष को ही पृथ्वी निवासी प्रजागण अपने रक्षण कार्य करने योग्य धन और जीवन सर्वस्व का पालक तथा रक्षक नियत करते हैं। वह सब प्रकार के अनुग्रह और विग्रह आदि कर्म करने मे समर्थ है। वह अकेला ही वीर भटों का स्वामी होकर सेनापति हमारी रक्षा के लिये हो।

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८॥

भा०—हर्षों के अवसरों पर और संग्राम के कालो में प्रजाजन और नायक पुरुष और बलों के धारण करने वाले सैन्य से उसी महारथी की शरण मे रक्षा प्राप्त करने के लिये आते हैं और उसी वीर पुरुष को वे धन प्राप्त करने के लिये भी प्राप्त होते हैं। वही घोर अन्धकार में भी सूर्य के समान प्रकाश देता और मार्ग दिखाता है। वह वीर सैनिकों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा हम प्रजाजनों की रक्षा के लिये हो।

स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९॥

भा०—वह वीर पुरुष, सेनानायक अपने बढ़ते हुए और उमड़ते हुए बडे बड़े शत्रुओं को भी अपनी बाईं भुजा से वश करे। या अपने बाईं तरफ की सेना से वह शत्रुओं को बाध ले। और वह दायें हाथ में अपने पराक्रम से किये विजय आदि कर्म तथा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्यों को और सिद्धहस्त सैन्यों को अच्छी प्रकार वश करे वह शत्रु को उखाड फेंकने वाले बल से ही ऐश्वर्यों को प्राप्त करता और अन्यों को प्राप्त कराता है। वह वीर भटों का स्वामी, वीर सेनापति हमारी रक्षा के लिये हो।

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१०॥९॥

भा०—वह सैनिक व राजा ऐश्वर्यों का दान करने हारा तथा उत्तम स्वामी होकर रथों, रथारोही सैनिकों से तथा ग्रामों, जनसमूहों तथा

सैन्यसमूहों से और समस्त कृषि करने वाली प्रजाओं व शत्रुकर्षक सैन्यों से और वह बलवीर्य पराक्रमो से युक्त होकर विजय लाभ के लिये अश्व के समान सदा ही, अति शीघ्र दुर्दमनीय, असाध्य शत्रुओं को भी वश करने हारा हो, वह वीर भटों का स्वामी सेनापति या राजा हम प्रजा-जनों का रक्षक हो। इति नवमो वर्गः ॥

स ज़ामिभिर्यत् समजाति मीह्ळेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११॥

भा०—जब वह बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त होकर, एवं बहुत से शत्रुओं से युद्ध में ललकारा जाकर अपने बन्धुवर्गों से और बन्धुरहित, अथवा बन्धु बान्धवों से भिन्न अन्य वीर पुरुषों से सहायवान् होकर संग्राम तथा युद्ध में तीव्र वेग से जाने वाले वीर भटों से विजय प्राप्ति के लिये मिल कर शत्रुओं को उखाड़ लेता है तब वह वीरों का स्वामी, सेना-पति शरण में आये हम आप्त प्रजाजनों और हमारे पुत्रों और पौत्रों की रक्षा करने में समर्थ हो।

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२॥

भा०—हमारी रक्षा के लिये वह वीर सैनिकों और विद्वानों सहित शत्रुहन्ता राजा शस्त्र-अस्त्र को धारण करने वाला, प्रजा के नाशक पुरुषों को दण्ड द्वारा विनष्ट करने वाला, दुष्टों के चित्तों में भय उत्पन्न करने वाला, शत्रुओं के भीतर उद्वेग उत्पन्न करने वाला, सदा दण्ड देने में समर्थ, सहस्रों विज्ञानों का जानने वाला तथा सहस्रों चित्तों तथा ज्ञानी पुरुषों का स्वामी, सैकड़ों पदार्थों को प्राप्त करने वाला, स्वयं महान् या बड़े भारी सामर्थ्य और सत्य ज्ञान से प्रकाशमान, तेजस्वी, बल से ही वह सेना द्वारा शत्रु-नाशकारी महावीर के समान, पांचों जनों के बीच उन पर शासक रूप से विद्यमान हो।

'पाञ्चजन्यः'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। अथवा

। गन्धर्व, अप्सरस, देव, असुर, राक्षस (सा०)। अथवा अध्यापक, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनापति, सर्वजनाध्यक्ष, ये पांच (द०)

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३॥

भा०—उसका शत्रुओं को संताप देने वाला, घोर शब्दकारी, महान् घोष करते वाला, गर्जनशील, अस्त्रसमूह अतिशक्तिशाली, खूब गरजे और मानो शत्रुओं को ललकारे। और उसका तेज सूर्य के तेज के समान चमचमाता हो। उसी को सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। उसी को सब प्रकार के धन प्राप्त होते हैं। ऐसा वीर पुरुषों का स्वामी हमारी रक्षा के लिये नियुक्त हो।

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४॥

भा०—जिसका शत्रुओं को नाश करने का सामर्थ्य और वचन अर्थात् आज्ञा-वचन निरन्तर, बेरोक, अखण्डित होकर आकाश और भूमि के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की सब तरफ़ से, सब प्रकारों से बलपूर्वक रक्षा करता है, वह स्तुति और हर्ष को प्राप्त होकर उत्तम उत्तम विज्ञानों से प्रजा का पालन करे। वह वीरों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा हमारा रक्षक हो।

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥१५॥१०॥

भा०—जिसकी दान, प्रकाश आदि गुणों से युक्त परली सीमा को अपने बल, सामर्थ्य से न देव अर्थात् योद्धा गण, न मरने वाले मनुष्य, न आप्त जन प्राप्त कर सके, वह शस्त्र-अस्त्र बल से पृथ्वी और आकाश तथा सामान्य प्रजा और राजवर्ग दोनों से बढ़ा हुआ वीरों और विद्वानों का स्वामी ऐश्वर्यवान् राजा हमारी रक्षा के लिये हो। वह महान् देव, परमेश्वर जिसके परम पार को न कोई विद्वान्, न सूर्य आदि देव, न

मरने वाले प्राणी और न प्राणगण अपने सामर्थ्य से पा सकें, वह अपने विवेचक और प्रकाशक ज्ञान और प्रलयकारी सर्व संहारकारी अनन्त बल से आकाश और पृथ्वी के विस्तार से कहीं बड़ा है। वह हमारी रक्षा करे। इति दशमो वर्गः।

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६॥

भा०—खूब सधे हुए, युद्धकुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी, सेनापति की सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच में लाल पोशाक वाली और श्याम वर्ण के अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, उत्तम व्यापक साधनों से युक्त या स्वय बहुत बड़ी पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी, विजय कार्य में लगी हुई सेना मुख्य मुख्य केन्द्र स्थानों पर शस्त्र वर्षण करने में समर्थ, बलवान्, रथारोही महारथी को धारण करती हुई, अति वेग व उत्साह से जाने वाली होकर ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये जानी जाती है।

अग्नि के पक्ष में—अग्नि की ज्वाला लाल और नीली, उत्तम किरणों वाली, प्रदीप्त शिखा, धुरा स्थानों के बल पर वेग वाले रथ को धारण करती हैं। वह हमारे लिए सुखप्रद हो, वह प्रजाओं के बीच ज्ञान करने योग्य हैं।

एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७॥

भा०—हे राजन्! ऐश्वर्यवन्! वेगवान्, सरल, सधे हुए बड़ी शक्तियों या अश्वों का नायक शब्द विद्या या महान् घोष और भयकर उत्पन्न करने की विद्या को जानने वाला, विजिगीषु, युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला, शत्रुओं में भय सञ्चार के साधनों का वेत्ता और उत्तम धनों और उपायों का वेत्ता, ये सब उत्तम विद्वानों की वाणियों के वक्ता विद्वान् और साधना-सम्पन्न पुरुष इन और उन नवीन और प्राचीन, समीप और दूर के और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, अपने और पराये, सब

प्रकार के शत्रु को वश करने के उपायों का अनेक प्रश्नों से पूछे जाकर तुझ बलवान् सेनापति या राजा को उपदेश करें। अर्थात् भली प्रकार से समझाएं।

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्।
सन॒त्क्षेत्रं॒ सखि॑भिः श्वि॒त्न्येभिः॒ सन॒त्सूर्यं॒ सन॑दपः सु॒वज्रः॑ ॥१८॥

भा०—बहुतसी प्रजाओं से स्तुति और आदर को प्राप्त होकर राजा पृथिवी पर प्रजा को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को और लुक-छिप कर प्राणियों के प्राणों को नष्ट कर देने वाले, हत्यारे पुरुषों को आक्रमणों से और शस्त्र या बाण के प्रयोग से अच्छी प्रकार नाश कर दे और तेजस्वी और श्वेत वर्ण के उज्वल, चरित्रवान् मित्र वर्गों के साथ मिलकर भूमि के क्षेत्र का अच्छी प्रकार विभाग करे, बांट ले और वह सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करे और उत्तम वीर्यवान् होकर जलों के समान शान्तिप्रद, सुखद, आप्त पुरुष। तथा शान्तिमय प्रजाजनों को स्वयं प्राप्त करे और मित्र राजाओं के बीच में विभाग करे।

वि॒श्वाहेन्द्रो॑ अधिव॒क्ता नो॑ अस्त्वप॑रिह्वृताः सनुयाम॒ वाज॑म्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥१९॥११॥

भा०—विद्याओं को साक्षात् देखनेहारा और ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाशक विद्वान्, आचार्य और सभाध्यक्ष, हम पर हमेशा अध्यक्ष होकर उपदेश करने और आदेश देने वाला हो। हम लोग सब प्रकार से कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित होकर सौम्यभाव से उत्तम अन्न, ऐश्वर्य, धन आदि अपने आचार्य और राजा को प्रदान करें और उससे उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें। उस धर्मात्मा राजाओं आचार्य को मित्रगण, श्रेष्ठजन, माता, समुद्र, भूमि और आकाश ये सब बढ़ावें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०१]

आंगिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृज्जगती । २, ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४, ७ विराड् जगती । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९, ११ त्रिष्टुप् । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे पुरुषो ! स्वयं सुप्रसन्न तथा अन्यों को आनन्दित करने वाले स्वामी के लिये अन्न आदि पालनकारी सामग्री सहित वचनों का आदरपूर्वक प्रयोग करो, उत्तम वचन तथा अन्नादि से उसका सत्कार करो । अथवा अपने पालक स्वामी प्रमुख राजा के आगे ऐसा वचन कहो जिससे वह प्रसन्न होकर तुमको उत्तम आजीविका, पालन-साधन और अन्नादि प्रदान करे । हे मनुष्यो ! जो राजा, सेनापति तथा राष्ट्रपति, उत्तम सधे हुए अश्वों से युक्त सैन्यबल से काले अन्धकार को गर्भ में रखने वाली रात्रियों को जैसे प्रकाश से सूर्य विनाश करता है उसी प्रकार कर्षण अर्थात् प्रजापीड़न करने वाले शत्रु को अपने भीतर रखने वाली शत्रु सेनाओं को अच्छी प्रकार विनाश कर सके । ऐश्वर्य और यश चाहने वाले तुरुप उस बलवान्, शत्रुओं पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुखों का मेघ के समान वर्षण करनेवाले वज्र अर्थात् शस्त्र-अस्त्र-बल को अपने दायें हाथ में लिये, वीर भटों के स्वामी, राष्ट्रपति को हम प्रजाजन मित्र भाव के लिये स्वीकार करें ।

आचार्य के पक्ष में—जो आचार्य धर्मानुकूल, सरल, वशीकृत इन्द्रियों के अभ्यास तथा अध्ययन द्वारा तामस भावों को अपने भीतर रखनेवाली दुश्चेष्टाओं को विनाश करता है, जिज्ञासु जनों के गुरु, अज्ञान के वर्जन करने वाले ज्ञानोपदेश में कुशल, विद्याओं को मेघ के समान वर्षाने वाले उस आचार्य को श्रवण योग्य वेदज्ञान के अभिलाषी हम लोग सखा भाव के लिये स्वीकार करें ।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

भा०—जो राष्ट्रपति, वीर पुरुष निरन्तर सबको सन्तुष्ट करने और प्रजाओं मे हर्ष उत्पन्न करने वाले क्रोध और शत्रुस्तम्भनकारी बल से विविध स्कन्धावार अर्थात् छावनी वाले शत्रु को विनाश करने मे समर्थ हो और जो पुरुष शस्त्र-अस्त्र को धारण करने वाले, प्रबल तथा खूब सुसंबद्ध, सुदृढ़ शत्रु को भी विनाश करने मे समर्थ हो और जो व्रतों, नियम और व्यवस्थाओ के न पालन करने वाले केवल अपना ही पेट पालने और भरने वाले को भी नाश करे और जो ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता अन्य शोषक अर्थात् बलनाशक विरोधी न होने के कारण प्रजाओं का रक्त शोषण करने वाला हो उसको भी सर्वथा परास्त करे, उस वीर सुभटों सहित वीर पुरुष को हम प्रजाजन सखा भाव के लिये स्वीकार करें।

आचार्य, परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—निरन्तर आत्मशान्तिप्रद ज्ञान अज्ञान को खण्ड खण्ड नाश करे। जो आत्मा को घेर लेने वाले, केवल पेट भरने वाले व्रत, यम, नियम आदि सदाचार से रहित आचरण को नाश करे, न सूखने वाले, सदा बढ़ते रक्त शोषक लोभ को जो वर्जित करे और विद्वानो, शिष्यों और प्राणो सहित आत्मरूप इन्द्र को अपना मित्र बनावे।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

भा०—जिस परमेश्वर का बड़ा भारी बल आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप रहा है और जिसकी बनाई नियम व्यवस्था में चन्द्र या वायु चल रहे हैं और जिसके महान् सामर्थ्य या शासन को समस्त समुद्रगण और महानदियां भी स्वीकार करती हैं उस महान् शक्तियों और समस्त वायुगणों तथा सबके प्राणों के स्वामी परमेश्वर को हम मित्र भाव

के लिये पुकारते हैं उसे स्वीकार करते हैं। उसी को हम अपना अन्तरंग सुहृद् करके जानें।

राजा के पक्ष में—जिसके महान् सामर्थ्य तथा शासन को राज-प्रजावर्ग, 'वरुण' दुष्टों का वारक सेनापति, 'सूर्य' सदृश तेजस्वी विद्वान्, 'सिन्धवः' तीव्र वेगवान् अर्थात् पुरुषार्थी प्रजाएं प्राप्त हैं। अथवा जिसके बड़े सामर्थ्य को आकाश, पृथिवी, वायु, सूर्य और सागर आदि विशाल पदार्थ प्राप्त हैं अर्थात् उपमानरूप से उसके बड़े सामर्थ्य को दिखलाते हैं। अर्थात् जो आकाश और पृथिवी के समान सबका धारक, पोषक, वायु के समान प्रबल, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्रों के समान गम्भीर है उस राजा को हम अपना सुहृद् बनावें।

यो अश्वा॑नां॒ यो गवां॒ गोप॑तिर्व॒शी य आ॑रि॒तः कर्म॑णि-कर्मणि स्थि॒रः।
वी॒ळोश्चि॒दिन्द्रो॒ यो असु॑न्वतो व॒धो म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥४॥

भा०—जो प्रजाओं और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ, बलवान्, जितेन्द्रिय, पृथिवीपति होकर अश्वों और गौओं का स्वामी है और जो स्थायी रूप से राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में प्रस्तुत किया जाता और आघोषित किया जाता है और जो यज्ञादि कार्य, अभिषेक और विद्या-प्राप्ति आदि करने वालों से भिन्न बलवान्, शत्रु का भी मारने वाला है उस प्रबल सैनिक पुरुषों और विद्वानों के स्वामी पुरुष को हम मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार जो कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मन को वश करने वाला होकर 'गोपति' है अर्थात् प्रत्येक कार्य में स्थिर ज्ञान-वान् है। प्राणायाम आदि योगाभ्यास के प्रबल बाधक विघ्नकारी दुष्ट पाप को भी नाश करता है, उस परमेश्वर, आचार्य और आत्मा को हम अपना सखा बनावें।

यो विश्व॑स्य॒ जग॑तः प्राण॒तस्पति॒र्यो ब्र॒ह्मणे॑ प्रथ॒मो गा अवि॑न्दत्।
इन्द्रो॒ यो दस्यूँ॒रध॑राँ अ॒वाति॑रन्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥५॥

भा०—जो परमेश्वर जंगम, प्राणधारी, समस्त संसार का पालनकर्ता है। और जो महान् सामर्थ्यवान् वेदज्ञ विद्वान् का सब से प्रथम, आद्य गुरु होकर उसके लिए वेदवाणियों का उपदेश करता है। और जो परमेश्वर सज्जनों और अन्य प्राणियों को नाश करनेवाले दुष्ट पुरुषों को नीचे, दुःखदायी लोकों या जन्मों को पहुंचाता है, उस समस्त प्राणधारियों के स्वामी परमेश्वर को हम अपने परम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसको हम अपना परम सखा मानें।

राष्ट्रपति के पक्ष में—जो राष्ट्र के सब जंगम पशु और प्राणियों का पालक है, जो वेदज्ञ विद्वान् को भूमि और पशुओं का दान करे, दुष्टों को नीचे गिरावे वह हम प्रजाओं का मित्र हो।

यः शूरे॑भि॒र्हव्यो॒ यश्च॑ भी॒रुभि॒र्यो धाव॑द्भि॒र्हू॒यते॒ यश्च॑ जि॒ग्युभिः॑।
इन्द्रं॒ यं विश्वा॒ भुव॑ना॒भि सं॑द॒धुर्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥६।१२॥

भा०—जो परमेश्वर शूरवीर पुरुषों द्वारा स्तुति करने योग्य है और जो भीरु, भयभीतों द्वारा भी प्रार्थना किया जाता है। जो भागते हुए और जो विजय करते हुओं से भी आदर और प्रेम से स्मरण किया जाता है, जिसको समस्त प्राणी और लोक साक्षात् अपने भीतर धारण करते हैं उस महान् शक्तियों और समस्त प्राणियों के स्वामी को हम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसे अपना परम सखा मानें। इसी प्रकार वह वीर, राष्ट्रपति राजा हमारा परम मित्र हो जिसे शूरवीर ललकारें या अपना सहायक मित्र करें। जिसे भीरु जन भी अपना आश्रय स्वीकार करें। जिसे मैदान छोड कर दौडने वाले और मैदान पर विजय पाने वाले दोनों प्रकार के लोग अपना शरण और सहायक मानें, जिस राजा को सब प्रजाजन अपना साथी करके मानें अथवा जिससे सन्धि करें।

रु॒द्राणा॑मेति प्र॒दिशा॑ विचक्ष॒णो रु॒द्रेभि॒र्योषा॑ तनुते पृ॒थु ज्रयः॑।
इन्द्रं॑ मनी॒षा अ॒भ्य॑र्चति श्रु॒तं म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥७॥

भा०—जो उत्तम चातुर्य आदि गुणों वाला, विविध विद्याओं तथा प्रजा के शासन कार्यों को देखने हारा, विद्वान् होकर शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों के उत्तम शासन तथा ज्ञानोपदेष्टा जनों के उत्तम अनुशासन, प्रदेश या उपदेश से बड़े भारी बल को प्राप्त कर लेता है और जैसे स्त्री या भेद-नीति की वाणी भी जिस प्रकार वीर पुरुषों की सहायता से बड़ा शत्रुसंहारक बल प्रकट कर सकती है, उसी प्रकार जो राजा शत्रुओं को रुलाने वाले वीरों की सहायता से अपने महान् राष्ट्र बल को बढ़ा लेता है और जिस ऐश्वर्यवान् और बलवान् प्रसिद्ध पुरुष को गुरु से उपदिष्ट वेद-वचन को बुद्धि के समान स्तुति वाणी साक्षात् स्तुति करती है उस वीर पुरुषों को हम अपने मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं।

आचार्य के पक्ष में—आचार्य शिष्यों के अनुशासन से अधिक बल प्राप्त करता है। वाणी भी विदुषी स्त्री के समान शिष्यों या प्राणों के द्वारा ही बड़ा बल बढ़ाती है। बुद्धि द्वारा ही विस्तृत होकर गुरु-उपदेश को भी उस इन्द्र अर्थात् आचार्य का ही आदर करती है। उसी विद्यार्थियों के परम गुरु को हम भी आत्मकल्याण के लिए स्वीकार करें।

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः॥८॥

भा०—हे वीर सैनिक पुरुषों के अध्यक्ष! चाहे तू सर्वोत्तम स्थान में या साधारण शुद्ध घर या जीवन-दुःखों के दूर करने के लिए वृत्ति उपाय में तृप्त होकर रहे तो भी तू हमारे यज्ञ या स्थिर राज्य शासन को प्राप्त हो। तेरी कामना से या तेरे सहित हम लोग सत्य ऐश्वर्ययुक्त एवं सत्य आराधना से युक्त अन्नादि उत्तम पदार्थ प्राप्त करें।

इसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी चाहे ऊचे से ऊचे स्थान या पद को प्राप्त हो या वह छोटी से छोटी स्थिति पर हो, वह हमारे श्रेष्ठ यज्ञ-कार्य में आवे, उसके लिये हम सच्चे हृदय से अन्नादि दें, उसका सत्कार करें।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तेरे सहित, हम लोग ऐश्वर्य को प्राप्त करें। हे उत्तम कार्यकुशल ! तेरे साथ मिलकर हम अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करें, हे बहुत बड़े ऐश्वर्य को धारण करने वाले ! और हे सेनाओं, अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामिन् ! सेनापते ! तू अपने गणों, भृत्यजनो और दल-बल सहित वीर भटो और विद्वानो सहित इस प्रजापालन रूप यज्ञ वा सुव्यवस्थित राष्ट्र में प्रजाजनों पर या राजसिंहासन पर स्थित होकर स्वयं तृप्त हो और औरों को आनन्दित कर ।

आचार्य के पक्ष में—हे विद्यावान् ! तेरे साथ मिल कर हम शान्ति-दायक शास्त्र-ज्ञान को प्राप्त करें । हे ब्रह्म ज्ञान के कराने वाले ! हे उत्तम ज्ञानबल युक्त ! तेरे संग से हम प्राप्त करने योग्य तथा शिष्यों को देने योग्य ज्ञान प्राप्त करें । हे शक्तियों से युक्त अथवा शिष्यों से युक्त और वायु के समान आलस्यरहित, अप्रमादी शिष्यों सहित अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ में रहकर अति उत्तम, सर्वोपरि पद पर विराजमान हों ।

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! जो तेरे अधीन विद्वान् जन और अश्व, अश्वारोही गण हैं उन सहित तू तृप्त, संतुष्ट और प्रसन्न होकर रह, भोजन करने हारा जिस प्रकार अपने दोनों जबाड़ों को खोलता है उसी प्रकार तू भी राष्ट्र के भोग्य पदार्थों को भोग करने और शत्रु-राज्यों को बल द्वारा प्राप्त करने के लिये दायें बायें की दोनों सेनाओं को विस्तृत कर और जिस प्रकार भोजनकर्त्ता पुरुष खाते समय जीभ चलाता है उसी प्रकार हे राजन् ! राष्ट्र के ऐश्वर्यों को भोग करने के लिये रसपान करने वाली जिह्वा के समान प्रजा-शासन और शत्रु-दमन करने वाली दो प्रकार की वाणियों को प्रकट कर । अथवा जिह्वा के समान अगली दो सेनाओं

का संचालन कर। हे उत्तम सुखप्रद राजन्! तुझे अश्व और विद्वान् दूर दूर तक ले जावें। हे प्रजाओं को चाहने वाले उनके प्रिय! तू हम प्रजा-जनों के अन्न आदि भोग्य पदार्थों को और युद्ध आदि राष्ट्रकार्यों को ग्रहण कर।

आचार्य के पक्ष में—वह प्रिय शिष्यों के साथ प्रसन्न होकर रहे। वह ऐहिक और पारमार्थिक सुखों और ज्ञान-वाणियों को प्रकट करे। विद्वान् शिष्य उसे धारण करे। हे आचार्य! तू हम गृहस्थ जनों के अन्नों को स्वीकार कर।

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥१३

भा०—वायु के वेगादि गुणों से स्तुति करने योग्य शत्रुओं को वर्जन करने हारे सेनापति के रक्षक हम लोग उस ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता के साथ रहकर ही संग्राम करें और ऐश्वर्य का लाभ करें। शेष पूर्ववत्। इति त्रयोदशो वर्गः।

[१०२]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। ३, ५—८ निचृज्जगती। २, ४, ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम्॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु॥१॥

भा०—हे प्रभो! स्वामिन्! तेरी वाणी और बुद्धि जो ज्ञान और कर्तव्य प्रकट करती है, साक्षात् पूजनीय तेरी इस बड़ी आदरणीय ज्ञान-प्रद और कर्मप्रद वाणी को मैं स्तुति करने वाले वचन तथा कर्म में धारण करता हूँ। विद्वान जन और विजय की कामना करने वाले पुरुष उस शत्रु पराजयकारी राजा, सेनापति को आनन्द, उत्सव, उत्तम काम तथा

शासन के कार्य मे या जन्म आदि के अवसर में अपने बल द्वारा हर्षित करते और उसके साथ स्वय हर्षित होते हैं ।

अ॒स्य श्रवो॑ न॒द्यः स॒प्त बि॑भ्रति॒ द्यावा॒क्षामा॑ पृथि॒वी द॑र्श॒तं वपुः॑ ।
अ॒स्मे सू॑र्याचन्द्र॒मसा॑भि॒चक्षे॑ श्र॒द्धे कमि॑न्द्र चरतो वितर्तु॒रम् ॥२॥

भा०—इस परमेश्वर के महान् सामर्थ्य को बहने वाली नदियें, और सूर्य और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष सब अपने स्वरूप मे धारण कर रहे हैं । हे परमेश्वर ! हमे दिखाने और आंखों से ज्ञान कराने और सत्य ज्ञान को धारण कराने के लिये यह तेरे सूर्य और चन्द्रमा दोनों प्रकाशमान होकर नाना प्रकार से आते जाते हुए गति कर रहे हैं ।

राजा के पक्ष में—तेरे ही यश और ऐश्वर्य को सर्पणशील, समृद्ध प्रजाएं, नदियों के समान धारण करती हैं । पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों तेरे गुणों को अपने में धारण करते हैं । सूर्य, चन्द्र और शान्ति के देने वाले स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान देने और विश्वास योग्य पदार्थों को उपदेश देने के लिये विचरण करें ।

तं स्मा॒ रथं॑ मघव॒न् प्राव॑ सा॒तये॒ जैत्रं॒ यं ते॑ अनु॒मदा॑म संग॒मे ।
आ॒जा न इ॑न्द्र॒ मन॑सा पुरुष्टुत त्वा॒यद्भ्यो॑ मघव॒ञ्छर्म॑ यच्छ नः ॥३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तेरे जिस समस्त दुःखों पर विजय करने वाले रसस्वरूप, सबको अपने में रमण करने वाले स्वरूप को अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेने पर योगदशा में, हे बहुत सी प्रजाओं से स्तुति करने योग्य ! दु.खों को दूर करने वाले, तुझे प्राप्त करने वाले योगकाल में हे आत्मन्, परमात्मन् ! हम अनुक्षण, निरन्तर आनन्द रस का लाभ करते हैं । तू उसी रसस्वरूप को हमे सदा आनन्द लाभ कराने के लिये प्रकट कर । हे ऐश्वर्यवन् ! हे परम पूज्य परमेश्वर ! मन से तुझे चाहन वाले हमें तू शान्ति और सुख प्रदान कर ।

राजा तथा सेनापति के पक्ष मे—जिस तेरे विजयशील रथ को देख कर हम प्रसन्न होते है, हे राजन् ! तू उस रथ को ऐश्वर्य विजय के लाभ

के लिये आगे बढ़ा। हे राजन्! मन से तुझे चाहने वाले हम लोगों को तू सुखमय शरण प्रदान कर।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन्! सेनापते! तुझ सहायक के साथ मिलकर हम लोग विजय लाभ करें। तू प्रत्येक संग्राम के अवसर पर हमारे प्राप्त होने योग्य, ग्राह्य सेना के टुकड़े को अथवा जन, वस्त्र, शस्त्र, कोश, ऐश्वर्य आदि के हिस्से को उत्तम रीति से सुरक्षित रख। हमारे लिये हे ऐश्वर्यवन्! तू धन को सुगमता से प्राप्त होने योग्य कर और हमारे कार्यों, शरीरों और मनोरथों के नाशक, बाधक शत्रुओं के बलों को हे ऐश्वर्यवन्! अच्छी प्रकार तोड़ डाल अर्थात् नष्ट कर दे।

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव॥५।१४॥

भा०—हे समस्त ऐश्वर्यों के धारण करने हारे वीर नायक! निश्चय से तुझसे स्पर्द्धा करने वाले, तेरे सदृश बल और ज्ञान वाले ये नाना जन भी विविध व्यवहारों में कुशल, एवं नाना विद्याओं के प्रवक्ता जन ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य सहित विद्यमान हैं। इन सब में से तू ही ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्ति के लिये हमारे विजयकारी, मुख्य रथ अर्थात् महारथी पद पर विराजमान हो, क्योंकि तेरा चित्त और ज्ञान खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित, स्थिर और अच्छी प्रकार नियमित है। इति चतुर्दशो वर्गः।

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥

भा०—हे राजन्! सभापते एवं परमेश्वर! तेरी बाहुएं अर्थात् अनन्त शक्तियें शत्रुओं को पीडन करने वाली अगल-बगल की सेनाएं भूमियों का विजय करने वाली हैं और दोनों बाहु अर्थात् छाती का भाग अपने विस्तार और बल सामर्थ्य से वृषभ को भी जीतने वाला, उसमे

भी अधिक शक्तिशाली हो। और तू स्वयं अमित, अनन्त ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त, सबसे श्रेष्ठ तथा प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा और शत्रुओं को वध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला और प्रत्येक काम में सैकड़ों ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य और पराक्रमों वाला संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाला है। वह ऐश्वर्यवान् स्वामी बल, पराक्रम से अपने समान किसी को न रखने वाला, अनुपम और सबके सामर्थ्य को मापने वाला पैमाना है और उस तुझ को भजन करने हारे भक्त जन एवं शरणार्थी और ऐश्वर्य के इच्छुक सभी जन विविध रूपों से स्तुति करते हैं। आत्मा ख = इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञानों का कर्त्ता एवं परमेश्वर आकाशस्थ ब्रह्माण्डों का स्रष्टा होने से 'खर्जंकर' है।

उत्ते॑ श॒तान्म॑घव॒न्नुच्च॒ भूय॑स॒ उत्स॒हस्रा॑द्रिरिचे कृ॒ष्टिषु॒ श्रवः॑।
अ॒मा॒त्रं त्वा॑ धि॒षणा॑ तित्विषे म॒ह्यधा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! तेरा ज्ञान, ऐश्वर्य, यश मनुष्यों में सौ से भी अधिक बढ़े और उसमें भी अधिक संख्यावाले पुरुषों से अधिक हो। हजारों से भी अधिक हो। बड़ी भारी, अति पूजनीय, उत्तम विद्या, बुद्धि और वाणी, अपरिमित बलशाली तुझको अधिक तेजस्वी बनावे और हे शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारे! तू मेघों को सूर्य के समान अपने बढ़ते हुए विपरीत आचरण करने वाले शत्रुओं को दण्डित कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर! सैकड़ों, सहस्रों और उनसे भी अधिक असंख्यात लोकों और ब्रह्माण्डों से भी तेरा सामर्थ्य बढ़ कर है। अनन्त बलशाली तुझको बड़ी भारी पूजनीय वेदवाणी प्रकाशित करती है। तू जीवों को देह बन्धनरूप दुष्टों को ज्ञान वज्र से तोड़ने हारा है। तू हमारे अज्ञान आवरणों को नाश कर।

त्रि॒वि॒ष्टि॒धातु॑ प्रति॒मान॒मोज॑सस्ति॒स्रो भूमी॑र्नृपते॒ त्रीणि॑ रोच॒ना।
अती॒दं विश्वं॒ भुव॑नं ववक्षिथाश॒त्रुरि॑न्द्र ज॒नुषा॑ स॒नाद॑सि ॥८॥

भा०—हे परमेश्वर! तू बल, पराक्रम और तेज का कारण पृथिवी,

जल, तेज, वायु, आकाश, ब्रह्माण्ड के धारण करने वाले इन तत्वों के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, स्वल्प, अधिक और सम मात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय होकर प्रत्येक पदार्थ के रचनेहारा है। तू पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों को उन सबसे बढ़ कर धारण कर रहा है, उनसे भी महान् है। हे समस्त जीवों के पालक ! तू सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों से महान् है। तू इस समस्त संसार या ब्रह्माण्ड को उससे महान् होकर उसे धारण कर रहा है। हे ऐश्वर्यवन् ! तू स्वभाव से और अनादि काल से शत्रु रहित है, तेरा कोई नाश करनेवाला नहीं, तू अविनाशी है।

राजा के पक्ष में—तू औरों के बल को नापनेवाला तीन गुणा शक्तिशाली हो। तीनों उत्तम, अधम और मध्यम, स्व, पर और उदासीन तीनों की तीनों भूमियों या राष्ट्रों को, तीन प्रजा के रुचिकर तेजोवर्धक, न्याय, बल और राज्य शासन, को सब से बढ़ कर धारण करने में समर्थ हो। तू इस समस्त राज्य को धारण कर और स्वभावतः उसी से तू अजातशत्रु होकर रह।

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः॥ ६॥

भा०—हे राजन् ! हम लोग विजयशील, तेजस्वी पुरुषों और विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ तुझको स्वीकार करें। तू ही संग्रामों में सदा शत्रुओं का पराजय करने हारा हो। वह ऐश्वर्यवान् राजा ही हममें से प्रत्येक पदार्थ को अति समीप होकर उसका ज्ञान करने वाले रहस्यतत्वज्ञ इस शिल्पादि के बनाने वाले पुरुष को उत्तम उत्तम पदार्थों के उत्पादन कार्य में सब के आगे प्रमुख करे। और जिस प्रकार शिल्पी पृथिवी फोड़ कर निकले हुए वृक्ष के काष्ठ को रथ बना देता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् पुरुष, राजा या सेनापति सबसे उत्तम या ऊर्ध्वचारी होकर शत्रु सेना को फोड़ने में समर्थ रथ नाम सेनाङ्ग को उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने और

उत्तम रीति से सेना के प्रशासन कार्य में सबके आगे प्रमुख स्थान पर नियत करे अर्थात् शत्रु भेदन में कुशल महारथी को सर्वाग्रणी बनावे।

परमेश्वर के पक्ष में—हम समस्त दिव्य गुण वाले प्रकाशक, लोकों और विद्वानों में प्रथम, मुख्य तेरी स्तुति करते हैं। तू सब मनुष्यों का वशीकर्त्ता तथा सबसे श्रेष्ठ है। वह तू परमेश्वर इस तेरे नित्य मनन करने वाले, स्तुतिकर्त्ता, कर्मकर्त्ता जीव को और रमण साधन देह को वनस्पति के समान उत्पन्न होने के लिये समर्थ करता है। अथवा रमण करने वाले उत्तमांग या मूर्धास्थल या सूर्यबिम्ब को भेदन करने वाले आत्मा को सबसे प्रथम अपने उत्तम ऐश्वर्य और आज्ञा मे ले लेता है।

त्वं जि॑गेथ॒ न धना॑ रुरोधि॒थार्भे॑ष्वा॒जा म॑घवन्म॒हत्सु॑ च।
त्वामु॒ग्रमव॑से॒ सं शि॑शीम॒स्यथा॑ न इन्द्र॒ हव॑नेषु चोदय ॥ १० ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! छोटे मोटे तथा बड़े बड़े संग्रामों में तू विजय प्राप्त कर। तू ऐश्वर्यों को अपने पास ही मत रोके रह, प्रत्युत प्रजाओं और भृत्यों के उपकार में व्यय कर। उग्र, भयानक, शत्रुबल के नाश करने में समर्थ तुझको हम अपनी रक्षा के लिये आश्रय करके तुझे खूब तीक्ष्ण और उत्तेजित करें और तेरा आश्रय लेकर शत्रुओं का खूब नाश करें और हमें हे ऐश्वर्यवन्! तू युद्ध-आह्वानों में, संग्रामों में और स्वीकार करने योग्य उत्तम कर्मों मे प्रेरित कर।

हे परमेश्वर! तू हमें छोटे बड़े सब उद्देश्यों और संग्रामों में विजय प्राप्त करा। हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करा। तुझ बलशाली का आश्रय लेकर अपनी रक्षा के लिये हम शत्रुओं का नाश करें। तू उत्तम कर्मों में हमें प्रेरित कर।

वि॒श्वाहेन्द्रो॑ अधिव॒क्ता नो॑ अ॒स्त्वप॑रिह्वृताः सनुयाम॒ वाज॑म्। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११॥१५॥

भा०—व्याख्या देखो म० १। सू० १००। मन्त्र १९। इति पञ्चदशो वर्गः।

[१०३]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ।
२, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८ त्रिष्टुप् ॥

तत्त॑ इन्द्रि॒यं प॑र॒मं प॑रा॒चैरधा॑रयन्त क॒वयः॑ पु॒रेदम् ।
क्ष॒मेदम॒न्यद्दि॒व्य॑१॒॑न्यद॑स्य॒ समी॑ पृच्यते सम॒नेव॑ के॒तुः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरा वह परम ऐश्वर्य, सामर्थ्य या सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है जिसको क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग बहुत पहले काल से अपने दूरदर्शी पारमार्थिक साक्षात्कारो द्वारा 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार यथार्थ रूप से धारण कर रहे है, ज्ञान करते चले आ रहे है। यह ईश्वर का महान् सामर्थ्य पृथिवी मे कुछ भिन्न ही प्रकार का है और आकाश या सूर्य मे वह सामर्थ्य भिन्न प्रकार का है। प्रेम युक्त चित्तवाली स्त्री जिस प्रकार अपने प्रिय पति से जा मिलती है उस प्रकार, अथवा युद्ध मे लड़ती सेना जैसे परसेना से जा भिडती है उसी प्रकार यह परमेश्वर का ज्ञापक, प्रकाशक दोनो प्रकार का स्वरूप परस्पर सुसगत हो जाता है। एक दूसरे के अनुकूल उपकार्य उपकारक भाव से सम्बद्ध है। पृथिवी मे नाना जीव सृष्टि, ओषधि, लता, अन्न, अग्नि इत्यादि सभी पदार्थ है। आकाश मे सूर्य, वायु, मेघ आदि पर दोनो स्थानों मे स्थित ईश्वर के ये महान् सामर्थ्य एक दूसरे के उपकारक होते हैं। पृथ्वी के जल मे मेघादि की उत्पत्ति और मेघ, सूर्य, वायु आदि के द्वारा पृथ्वी पर जीव ससार की उत्पत्ति और जीवन, अन्न आदि होते हैं।

राजा के पक्ष मे—यह राजा का बड़ा भारी ऐश्वर्य या शासन बल है जो एक तो पृथिवी निवासी प्रजा मे व्यवस्था रूप से, दूसरा राजसभा में है। वह उभयत्र उसका ज्ञापक होकर परस्पर सम्बद्ध है।

स धा॑रयत्पृथि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ वज्रे॑ण ह॒त्वा निर॒पः स॑सर्ज ।
अह॒न्नहि॒मभि॑नद्रौहि॒णं व्यह॒न्व्यं॑सं म॒घवा॒ शची॑भिः ॥ २ ॥

भा०—वेद भगवान् ईश्वर के महान् सामर्थ्यों का वर्णन करते है। वह परमेश्वर सूर्य के समान पृथिवी को धारण करता है और उसको विशाल आकार का बनाता है जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् या प्रबल वायु से मेघ को आघात करके वृष्टि के जल को उत्पन्न करना है उसी प्रकार परमेश्वर भी विद्युत् के बल से दो भिन्न २ प्रकार के वायुतत्वों को मिलाकर जलों को निर्माण करता है। सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न करता, रोहिणी नक्षत्र के योग में उत्पन्न मेघ को छिन्न-भिन्न करता और विविध स्कन्धों वाले मेघ को विविध प्रकार से नाश करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी अपनी बड़ी बड़ी शक्तियों से सर्वत्र व्यापक, महान्, अन्धकारमय जगत् के कारण तत्व, प्रकृति को आघात करता, उसमें प्रविष्ट होता है और ससार को प्रकट कर देने वाले महान्, हिरण्यगर्भ रूप अण्ड को भेदता है, उसे विभक्त कर नाना लोक बनाता है। विविध पृथिवी आदि पञ्चभूतों रूप स्कन्धों से युक्त या विविध शाखाओं से युक्त वृक्ष के समान विस्तृत सर्ग को भी विविध रूपों में विभक्त करता या विनाश करता या प्रकट करता है।

राजा के पक्ष मे—वह पृथिवी को शासन द्वारा धारण करता, राष्ट्र को बढ़ाता है, शस्त्रास्त्र बल से शत्रु को मार कर प्रजाओं की वृद्धि करता है। मेघ के समान उमड़ते शत्रु का नाश करता, विविध छावनियों को बसाने वाले और वट के समान फैलने वाले शत्रु के राज्य या क्षात्रबल को छिन्न-भिन्न करता है।

स ज़ातूर्भर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

भा०—वह परमेश्वर जगत् में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणियों का पालन पोषण करने हारा, अपने सत्य स्वरूप को धारण करने वाला, अपने महान् सामर्थ्य से नाश होने वाली सृष्टियों को और आत्मा के देहबन्धनों को विविध प्रकारों से विनाश करता हुआ विशेष रूप से व्याप

रहा है। हे शक्तिशालिन्! ज्ञानस्वरूप प्रभो! तू नाशकारी दुष्ट पुरुष को नाश करने के लिये उसके बध का उपाय करता है और हे ऐश्वर्यवन्! तू श्रेष्ठ पुरुषों और प्रजा के पालक स्वामीजनों के शत्रुओं को पराजय करने योग्य बल और ऐश्वर्य की वृद्धि कर।

राजा या सभा सेनादि के अध्यक्ष के पक्ष में—वह विद्युत् से बने शस्त्रास्त्रवाला अथवा प्रजा का पोषक, अपने पराक्रम से दुष्ट पुरुषों की नगरियों और गढ़ों को तोडता हुआ विविध दिशाओं में विचरे। वह विद्वान् विवेकी होकर दुष्टों पर शस्त्र का प्रयोग करे। भले पुरुषों तथा प्रजा के स्वामी या वैश्य वर्ग के बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करे।

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥

भा०—वह शक्तिशाली परमेश्वर नाशकारी अज्ञान को नाश करने के लिये अति समीप प्राप्त होता हुआ निश्चय से सबको प्रेरणा करने हारा होकर ज्ञान की वृद्धि के लिये जिस प्रसिद्ध तेजोमय स्वरूप को धारण करता है वह उस अपने स्तुति करने वाले जन के लिये स्तुति करने योग्य नाम और स्वरूप को मनुष्यों के इन कल्पित अनेकों वर्षों तक धारण कर रहा है।

राजा के पक्ष में—दुष्ट पुरुषों में भी कीर्त्ति प्राप्त करने के लिये राजा जिस प्रसिद्ध नाम को धारण करे वह बहुत से वर्षों तक धारण करे। अर्थात् वह चिरस्थायी कीर्त्ति प्राप्त करे।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय। स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि॥५॥१६॥

भा०—हे मनुष्यो! इस परमेश्वर का यह प्रत्यक्ष दीखने वाला बहुत प्रकार का और बहुत अधिक सबका परिपोषक स्वतः पुष्ट, दृढ, परिपूर्ण वह परम बल देखो और बल, वीर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये उस महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा पर श्रद्धा, दृढ विश्वास करो।

अथवा उस परमेश्वर के दृढ़ सत्य व्यवस्था को बल वृद्धि के लिये धारण करो। वह गतिमान् समस्त सूर्यादि लोकों में व्याप्त है। वह व्यापक आकाशादि पदार्थों तथा भोक्ता जीवों को भी अपने वश में किये है। वह समस्त ओषधि, अन्न, लता, वृक्ष, वनस्पतियों तथा प्रताप और तेज के धारक सूर्य अग्नि आदि को भी वश करता है। वह समुद्र, मेघ आदि में स्थित जलों, प्राणों, लिंग शरीरों तथा व्यापक जगत् निर्मातृ उपादान कारणावयवों को भी वश कर रहा है। भोग और सेवन करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को वश कर रहा है।

आत्मपक्ष में—इस अपने आत्मा के बड़े भारी बल का साक्षात् करो और इस 'इन्द्र' आत्मा के 'श्रत्' सत्य रूप को जानकर उस पर विश्वास करो, उसका आदर करो। वह वेद-वाणियों, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों, तापधारक लोकों और देह गत धातुओं को और कर्मों, ज्ञानों और भोग्य सुखों को प्राप्त करता है।

राजा के पक्ष में—राजा का बढ़ा हुआ बल देखो और बल की वृद्धि के लिये उस पर विश्वास, भरोसा करो। राजा वह भूमियों, गो-सम्पत्ति तथा अश्वों, ओषधियों, नदी, ताल आदि जलस्थानों और वनों को अपने वश करे। इति षोडशो वर्गः।

भूरि॑कर्मणे वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ स॒त्यशु॑ष्माय सुनवाम॒ सोम॑म्।
य आ॒दृत्या॑ परिप॒न्थी॑व॒ शूरोऽय॑ज्वनो वि॒भज॒न्नेति॒ वेदः॑ ॥ ६ ॥

भा०—जो शूरवीर पुरुष अदानशील, कंजूस, दूसरों को अधिकार और आवश्यक भोजन, धन, वेतन आदि भी न देने वाले अत्याचारी पुरुषों को सब प्रकार से भयभीत करके उनसे चोर डाकू के समान धन को छीन ले आता है उस राष्ट्र के बहुत अधिक कार्य करने वाले, सत्य और न्याय के बल से बलवान्, सुखों के वर्षक नरश्रेष्ठ पुरुष के लिये हम लोग ऐश्वर्य उत्पन्न करें और राज्यपद का अभिषेक करें।

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥

भा०—हे सेनापते ! जिस कारण से तू सोता हुआ साप जिस प्रकार बिजली की कडक से जाग जाता है उसी प्रकार सोते हुए, बेखबर पडे साप के समान कुटिल, सामने से चढाई करने वाले शत्रु को अपने प्रबल शस्त्र-बल से खूब अपनी शक्ति का परिचय करा देता है, कि सुधर जाओ नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, इसलिये तू अपने बल को खूब अच्छी प्रकार दृढ बनाये रख । काम अभिलाषा से हृष्ट पुष्ट हुए अपने पति को देख कर जिस प्रकार स्त्रियें अधिक प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार हे राजन् ! अति हर्ष से युक्त तुझको प्राप्त करके राष्ट्र के पालन करने वाली सेनाएं, और ज्ञानी पुरुष और वेग से जाने वाले रथी और वीर योद्धा और समस्त विद्वान् और विजिगीषु जन, तेरे हर्ष में हर्षित हों ।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार पृथ्वी पर सूखा डालने वाले अर्थात् न बरसने वाले या बलवान् जल से भरे हुए, पृथिवी से जौ आदि धान पैदा करने वाले बढते हुए मेघ को और जल से भरे हुए उसके भागों को विविध प्रकार से छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! तू प्रजा के रक्त शोषण करने वाले, अपने पेट और कोशक को भरने वाले, कुत्सित अन्न के खाने और अन्यों को देने वाले, विघ्नकारी शत्रु को और नगर को घेरने वा नाश करने वाले शत्रु की नगरियों को जब विविध उपायों से तोड़ता है तब मित्र राजा, सर्वश्रेष्ठ सेनापति, शासनकारी, अति वेग से जाने वाला सैन्यदल, भूमिवासी प्रजाजन और सूर्य या आकाश के समान विद्वान् जन हमारी वृद्धि करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१०४]

१, २, ५ स्वराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७ त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

योनि॑ष्ट इन्द्र नि॒षदे॑ अकारि॒ तमा नि षी॑द स्वा॒नो नार्वा॑ ।
वि॒मुच्या॒ वयो॑ऽव॒साया॒श्वा॑न्दो॒षा वस्तो॒र्वही॑यसः प्रपि॒त्वे ॥ १ ॥

भा०—दिन और रात प्राप्त करने योग्य समीप में ढोकर ले जाने में समर्थ अश्वों, अश्वारोहियों को अब साथ ले तथा युद्धादि कार्य से मुक्त करके और ज्ञानवान् या वेग से जाने वाले अन्य पदाति सैन्यों को छोड़ कर अथवा पक्षियों के समान पिञ्जरे में बंधे कैदियों को छोड कर ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार अपने आसन पर विराजता है उसी प्रकार हे राजन् ! हे विद्वन् ! तेरे विराजने के लिये स्थान, आसन बनाया जावे तू उस पर विद्वान् या अन्तरिक्ष में गर्जते मेघ के समान विराज। अर्थात् युद्धादि द्वारा सिंहासन पर विराज। अथवा किरणों को दूर दूर तक फैला कर सूर्य जिस प्रकार अपने स्थान अन्तरिक्ष में विराजता है उसी प्रकार घोड़ों या अश्वारोही वीर कार्य-कुशल पुरुषों को देश विजय और शासन के लिये छोड़ कर आप सिंहा-सन पर विराजे।

अध्यात्म में—प्राप्त विषय का ज्ञान कराने वाले ज्ञानेन्द्रियों को विषयों से छुडाकर आत्मा अपने आश्रय हृदय देश में विराजे। जो ईश्वर अपने प्राप्त ज्ञानी और भोक्ता जीवों को मुक्त करता है वह हृदय देश में विराजे।

ओ त्ये नर॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ गु॒र्नू चि॒त्तान्स॒द्यो अध्व॑नो जगम्यात् ।
दे॒वासो॑ म॒न्युं दास॑स्य श्चम्न॒न्ते न॒ आ व॑क्षन्त्सुवि॒ताय॒ वर्ण॑म् ॥२॥

भा०—वे नाना देशवासी नायक, प्रजाओं के मुख्य पुरुष ऐश्वर्यवान् राजा और ज्ञानवान विद्वान् के पास रक्षा, शरण और ज्ञान प्राप्त करने

के लिये आवें। वह शीघ्र ही उनको उत्तम उत्तम मार्गों का उपदेश करे। दानशील, अन्नादि का दाता विद्वान् स्वामी अपने अधीन सेवक जन के क्रोध, उद्वेग को सदा दूर करते रहें। वे हम प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम कार्य में लगाये गये को वरण करने योग्य उत्तम धन, वेतन आदि प्राप्त करावें। अथवा देव विद्वान् गण, नाशकारी दुष्ट पुरुष के क्रोध को नाश करें। और हम में से उत्तम मार्ग पर जाने वाले को उत्तम वर्ण, पद या धन प्राप्त करावें।

अव॒ त्मना॑ भरते॒ केत॑वेदा॒ अव॒ त्मना॑ भरते॒ फेन॑मु॒दन्।
क्षी॒रेण॑ स्नातः॒ कुय॑वस्य॒ योषे॑ ह॒ते ते स्या॑तां प्रव॒णे शिफा॑याः ॥३॥

भा०—एक पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करके और ज्ञानवान् होकर भी अपने मतलब से, अपने स्वार्थ से चक्र वृद्धि ब्याज आदि द्वारा बढ़े हुए धन और ज्ञान को नीच उपाय से प्राप्त करता है और नीच कार्य में ज्ञान और धन का उपयोग करता और दूसरा स्वभावतः नीच उपाय से धनादि हरता है वे दोनों जलाशय में मानों जल से व्यर्थ नहाते हैं। वे दोनों भीतर मलिन होते हैं। वे दोनों कुत्सित यव वाले अर्थात् दरिद्र की स्त्रियां जिस प्रकार नदी की ढाल में खड़ी अथवा परस्पर के आक्षेप, निन्दा, कलहवृत्ति के नीच व्यवहार में पड़कर आपस में लड़तीं और नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार वे दोनों भी नष्ट हो जाते हैं। अथवा ऐश्वर्य प्राप्ति का उत्तम उपाय जान करके भी स्वार्थ के निमित्त नीच उपाय से धन संग्रह करता है वह मानो जल से स्नान करके भी अपने निमित्त जल में फेना ही प्राप्त करता है। और यदि कुत्सित अन्न खाने वाले दरिद्र पुरुष की दो स्त्रियां हों तो वे दोनों नदी प्रवाह के समान कलह के नीच व्यवहार में डूब कर नष्ट हो जाती हैं।

यु॒योप॒ नाभि॒रुप॑रस्या॒योः प्र पूर्वा॑भिस्तिरते॒ राष्टि॒ शूरः॑।
अ॒ञ्ज॒सी कु॑लि॒शी वी॒रप॑त्नी॒ पयो॑ हिन्वा॒ना उ॒दभि॑र्भरन्ते ॥ ४ ॥

भा०—मेघ के समान प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य देने वाले, सब प्रजाओं को परस्पर मिलाये रखने वाले, सबके जीवनाधार, राष्ट्र के प्राण स्वरूप पुरुषों का केन्द्र या आश्रय होकर राजा सबको मोहित करता है। वह शूरवीर होकर समुद्र के समान धनैश्वर्यों से पूर्ण, समृद्ध प्रजाओं के साथ राज्य करता और राष्ट्र में प्रकाशित होता है और खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है। जिस प्रकार जल बहाती हुई, बढ़ती उमड़ती हुई नदियां जलों से समुद्र को भर देती हैं उसी प्रकार उस समुद्र समान पुरुष को नाना उत्तम गुणों से युक्त या अन्न समृद्धि से भरी पूरी कुलिश अर्थात् शस्त्रास्त्र से राष्ट्र की रक्षा करने वाली और वीर नायक को अपने पालक रूप से धारण करने वाली अथवा वीर्यवान् पुरुषों को पालन करने वाली प्रजाएं बल, वीर्य की वृद्धि करती हुई समुद्र को जल से भरने के समान ऐश्वर्यों से उसे पूर्ण कर देती हैं। इति सप्तदशो वर्गः।

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५॥

भा०—मार्ग जिस प्रकार भवन के रूप में बने डाकू के घर तक जाता है ठीक इसी प्रकार जो वह न्यायसरणि या आप्त प्रजा दीख रही है वह एक मार्ग के समान डाकू के घर को ही अपना शरण सा जानती हुई प्राप्त हो सकती है। अर्थात् प्रजाजन न्याय लेने के लिये डाकुओं के गढ़ को ही राजसभा सी जान कर उसमें भी प्रवेश कर सकती है। फलतः प्रजा भी बुरे राजा को अच्छा राजा जानकर उसके अधीन हो जाती है। तब हे ऐश्वर्यवन्! स्थिर रूप से निर्धारित किये धर्म मार्ग से हमें ले चल। और स्त्री-भोग का व्यसनी जिस प्रकार स्त्री-व्यसन में ही नाना धन नाश कर डालता है उसी प्रकार तू हमें अपने व्यसनों के कारण पराये हाथों मत दे डाल, हमारा विनाश मत कर।

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन ! तू हमारे बीच में जीवन प्रदान करने से स्तुतियोग्य सूर्य के समान सर्व जीवनप्रद, तेजस्वी पद पर प्राप्त हो। वह तू प्रजाओं के बीच सब प्राणियों से स्तुति करने योग्य हिंसा, पीडा आदि पापाचरण से रहित रहने में लगा रह। तू अपने राष्ट्र के भीतर रमण करने वाली, तेरा पालन करने वाली और तेरे द्वारा भोगी जाने योग्य प्रजा को भी अपनी अन्तःपुर की भोक्तव्य स्त्री के समान थोडा भी पीड़ित मत कर। तेरे बड़े भारी सामर्थ्य और ऐश्वर्य पद और अधिकार के लिये हमारा सदा बड़ा आदर भाव बना रहे।

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

भा०—हे अनेक प्रजाओं से सत्कार करने योग्य ! आदरणीय, माननीय राजन् ! मैं भी तेरा मान करता हूं। तेरे कार्य और वचन सत्य और आदर योग्य माने जायें। तू सब सुखों को वर्षाने हारा, मेघ और सूर्य के समान उदार, बलवान् होकर बडे भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये हमें प्रेरित कर। हे राजन् हमें वे बने, बिन सजे, टूटे फूटे, ढहे घर में मत रख और हममें से भूख से पीडित जनों को अन्न और दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ प्रदान कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे स्तुत्य ! मैं तेरा मनन करता हूँ। तुझ पर हमारी श्रद्धा है। तू हमें महान् ऐश्वर्य की तरफ ले चल। कर्म और उत्तम कर्मफल से रहित योनि अर्थात् भोगयोनि पशु आदि शरीर में मत डाल। हम भूखे प्राणियों को अन्न और जल दूध आदि सदा प्रदान कर।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन ! राजन ! हमें मत मार। हमें कभी त्याग मत कर। हमारे प्रिय भोजनों और भोगने योग्य वस्तुओं को मत चुरा अर्थात् हमसे मत छीन और मत छीनने दे। हे ऐश्वर्यवन् ! हे शक्तिशालिन् ! हमारे

गर्भगत सन्तानों को मत विनाश होने दे। अर्थात् भय से व्यथित करके गर्भिणी स्त्रियों को दुःखित मत कर और मत होने दे, हमारे सहोदर, जन्म से एक साथ उत्पन्न कच्चे पात्रों के समान स्वरूप बल वाले, असमर्थ, पालन करने योग्य बालकों को मत विनष्ट कर अर्थात् गर्भगत और कच्ची उमर के बच्चों की रक्षा कर। हे परमेश्वर! हमारे गर्भों को और नाना जन्मोपार्जित कर्मों से युक्त पालन करने योग्य देहों को कच्चे घडे के समान मत टूटने दे, उनकी रक्षा कर। इति अष्टादशो वर्गः।

अ॒र्वाङे॑हि॒ सोम॑कामं त्वाहुर॒यं सु॒तस्तस्य॑ पिबा॒ मदा॑य।
उ॒रु॒व्यचा॑ ज॒ठर॒ आ वृ॑षस्व पि॒तेव॑ नः शृणुहि हू॒यमा॑नः ॥९॥१९॥

भा०—हे राजन् तू प्रजा के साक्षात् कार्यव्यवहार मे आगे आ। अथवा अश्वादि द्वारा जानने वाला या साक्षात् आदर सत्कार योग्य या तेजस्वी होकर हमें प्राप्त हो। तुझे विद्वान् ऐश्वर्य का इच्छुक कहते हैं। यह अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है। उसको प्रजा के हर्ष और आनन्द प्राप्त कराने के लिये प्राप्त कर, उसका उपभोग कर। तू विशाल और विविध सत्कारों, ज्ञानो और सामर्थ्यों से युक्त होकर उदर मे दुग्ध आदि के समान अपने उत्पन्न होने के स्थान राष्ट्र मे ही बलवान् होकर रह, उसमें सुखो की वर्षा कर और हमारे पालक के समान आदर पूर्वक बुलाया जाकर हमारी प्रार्थनाओं को सुन।

अध्यात्म मे—हे आत्मन्! तू साक्षात् हो। तू आनन्द का इच्छुक है। इस आत्मानन्द रस का पान कर। अपने स्वरूप में बल प्राप्त कर, और हमारे स्तुति-वचन सुन।

[१०५]

१—१९ आप्त्यस्त्रित ऋषि, आङ्गिरस कुत्सो वा। विश्वे देवा देवता॥ छन्दः— १, २, १६, १७ निचृत्पङ्क्तिः। ३, ४, ६, ९, १५, १८ विराट् पङ्क्तिः। ८, १० स्वराट् पङ्क्तिः। ११, १४ पङ्क्तिः। ५ निचृद् बृहती। ७ भुरिग्बृहती। १२ महाबृहती। १९ निचृत् त्रिष्टुप्॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥१॥

भा०—चन्द्र जलों के मध्य अर्थात् जलमय होकर और आकाश में उत्तम रश्मियों से युक्त होकर गति करता है। हे ज्ञानी पुरुषो! आकाश में विशेष दीप्तियें या किरणें सुवर्ण के समान धार वाली होकर तुम लोगों के ज्ञान गोचर नहीं होतीं। हे सूर्य और पृथिवी! तुम दोनों मुझ ज्ञानेच्छु पुरुष को इस उक्त रहस्य का ज्ञान प्राप्त कराओ।

राष्ट्रपक्ष में—प्रजाओं और ज्ञानवान् पुरुषों, विद्वत्सभा के बीच उत्तम वेगवान् रथ या वाहनों से युक्त होकर प्रजाओं को आह्लाद देने वाला, प्रजा के चित्तों को अनुरंजन करने वाला राजा राष्ट्र में भ्रमण करता है। किन्तु हित और रमणीय स्वभाव वाले तेजस्वी पुरुष, हे प्रजाजनो! आप लोगों के स्थान तक नहीं आते। हे राज-प्रजावर्गो! या विद्वान् आचार्य और गुरुजनो! मेरे इस रहस्य का आप दोनों ज्ञान कराओ और करो।

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥

भा०—जिस प्रकार धन के अभिलाषी जन धन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार स्त्री, पत्नी पति को प्राप्त होकर प्रसन्न होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर जिस प्रकार निषेक करने योग्य पुष्टिकारक धातु, वीर्य का एक दूसरे को प्रदान करते और लेते हैं उसी प्रकार धन और धनाभिलाषी दोनों भी सुखवर्धक, पुष्टिकारक अन्नादि लेते और देते हैं। धन ही अन्नादि देता है और अर्थी धन द्वारा ही लेता है। इसी प्रकार पृथ्वी और सूर्य, राजा और प्रजा भी मिलकर वर्षण योग्य जल तथा बलवान् पुरुषों के योग्य बल वीर्य का परस्पर आदान प्रदान करते और जिस प्रकार भूमि सूर्य प्रकाश लेकर उसको अपना जल प्रदान करती है और स्त्री जिस प्रकार आश्रय, वस्त्र अन्न और हृदय-प्रेम आदि लेकर पति को अति सुख

प्रदान करती है और गौ जिस प्रकार घास आदि खाकर क्षीर दोहन करती है उसी प्रकार प्रजा या भूमि भी, राजा के बल पराक्रम को लेकर बाद सारमय बहुमूल्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। हे सूर्य और पृथिवी के समान स्त्री पुरुषो! राजा और प्रजाओ! गुरु शिष्यो! तुम दोनों मेरे इस प्रकार के कथन का सत्य रहस्य जानो।

मो षु दे॑वा अ॒दः स्व॒॒_र्व॑ पादि दि॒वस्परि॑।
मा सो॒म्यस्य॑ शं॒भुवः॒ शूने॑ भूम॒ कदा॑ च॒न वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥३॥

भा०—हे विद्वानो और विजयाभिलाषी पुरुषो! वह परला सूर्य समान तेजस्वी राजा तथा पारलौकिक सुख, आकाश मे अन्तरिक्ष से भी परे विद्यमान सूर्य के समान ही ज्ञान प्रकाश के उत्तर काल मे होता है वह कभी नीचे न गिरे, कभी नष्ट न हो, ऐश्वर्य के योग्य शान्ति देने वाले राजा के विपरीत हम प्रजाजन कभी न हों। हे राजा, प्रजावर्गो! तथा गुरु शिष्यो! स्त्री पुरुषो! मेरे इस उपदेश युक्त वचन को आप लोग जानो। हे ज्ञानेच्छु शिष्यो! वह परम सुखकारी ज्ञान प्रकाश गुरु से प्राप्त होकर नष्ट न हो। हम शिष्य जन शिष्यो के हितकारी शान्तिकारी, कल्याणजनक गुरु के सुख सेवादि कार्य मे कभी आलस्य न करें। गृहस्थ सुख के देने और रमण क्रीडा करने वाली स्त्री से प्राप्त होने वाला वह गृह्य-सुख कभी नष्ट न हो। हम दाराजन ऐश्वर्यवान् शान्तिदायक पति की सेवा परिचर्या मे प्रमाद न करें।

य॒ज्ञं पृ॑च्छाम्यव॒मं स तद्दू॒तो वि वो॑चति।
क्व॑ ऋ॒तं पू॒र्व्यं ग॒तं कस्तद्बि॑भर्ति॒ नूत॑नो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥४॥

भा०—शिष्य कहता है हे विद्वान् गुरो! मै उत्तम रक्षा करने के साधनो से सम्पन्न सब सुखों, ऐश्वर्यों के दाता, सर्व पूजनीय, परम उपास्य प्रजापति परमेश्वर को लक्ष्य करके प्रश्न करता हूं। वह तू तपस्वी, ज्ञानवान्, परिचर्या करने योग्य आचार्य रूप होकर राजा का सदेशहर दूत जिस प्रकार खोज खोज कर, गहरी गहरी बातें बतलाता है उसी

प्रकार तू विविध ज्ञानों को या विशेष ज्ञानों का विविध प्रकार से उप- देश करता है, पूर्व ऋषियो से प्राप्त वेद का सत्य ज्ञान कहां है और नये वर्तमान के ज्ञान को कौन नया विद्वान् धारण करता है। उपदेश करने और लेने हारे गुरु शिष्य मेरे उपदेश किये इस प्रकार के प्रश्नो का ज्ञान सम्पादन करें। मूल सत्य कारण अब कहा गया और उसको कौन सा नूतन कारण धारण करता है इस बात को आकाश और पृथिवी ही जानते है।

इसी प्रकार रक्षा-साधनो से युक्त, प्रजापति राजा के विषय में प्रश्न करूं या जानना चाहूँ तो उसका विशेष ज्ञान गुप्त दूत ही बतला सकता है। पूर्व के राजाओं और अधिकारियों से प्राप्त धन कहा है और अब उसको कौन धारण करता है? यह राज प्रजावर्ग सब अच्छी प्रकार जानें। सबसे छोटा यज्ञ कौन है। यह विद्वान् ही बतलावे। पूर्व का जीवन का मूल कारण वीर्य आदि कहां जाता है और नया पुत्र आदि कौन उसको धारण करता है। माता पिता इस रहस्य को जानें।

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥२०

भा०—हे दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् जनो और पृथिव्यादि लोको! जो ये तुम नाना पृथिवी आदि लोक सूर्य के प्रकाश मे तीनों कालों और तीनों लोकों मे व्यापक या प्रत्यक्ष विद्यमान हो तुम्हारा मूल कारण आदि प्रवर्तक बल कहा है। उस प्रवर्त्तक बल से भिन्न 'अनृत' अर्थात् जड, प्रकृति अब कहा है। तुम्हारी अनादि काल से चली आई धारण करने और बल देने या उत्पन्न करने वाली पुन. अपने मे समा लेने वाली शक्ति कहां है। हे गुरु शिष्य दोनो! मुझ विद्वान् से इस तत्व का ज्ञान प्राप्त करो।

ये जो आप विद्वान् जन है सत्य ज्ञान के प्रकाश मे उत्तम, मध्यम और निकृष्ट कोटि के पुरुषों मे या तीनों कालों मे हैं। आपके लिये

सत्य और असत्य कहां है। सनातन की वेदवाणी या मुख्य आज्ञा कहां स्थित है। यह राजा प्रजा वर्ग दोनो जानें। इति विंशो वर्गः।

कद्व॑ ऋ॒तस्य॑ ध॒र्ण॒सि कद्वरु॑णस्य॒ चक्ष॑णम्।
कद॑र्य॒म्णो म॒हस्प॒थाति॑ क्रामेम दू॒ढ्यो॑ वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥६॥

भा०—तुम्हारे मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल, वीर्य के बल को मेघ या समुद्र के समान धारण करने वाला कहा है। सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन या ज्ञान कैसा है सूर्य के समान तेजस्वी, सब दुष्टो के नियन्ता, कठिनता से चिन्तना करने योग्य, बुद्धि के अगम्य परमेश्वर को किस महान् उपदेशमय मार्ग से प्राप्त करें।

हे शूरवीर, ज्ञानी पुरुषो! तुम्हारे ऐश्वर्य को धारण करने वाला राजा कहां है? दुःखो के वारक राजा का चक्षु अर्थात् राज्यप्रबन्ध देखने का साधन कहा है? न्यायकारी शत्रु नियन्ता राजा के किस किस न्याय मार्ग से हम दुष्ट पुरुषो को वश करें। राज प्रजावर्गो! तुम दोनो इस बात का अच्छी प्रकार ज्ञान करो।

अ॒हं सो अ॑स्मि॒ यः पु॒रा सु॒ते वदा॑मि॒ कानि॑ चित्।
तं मा॑ व्यन्त्या॒ध्यो॒३॒॑ वृको॒ न तृ॒ष्णजं॑ मृ॒गं वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥७॥

भा०—मैं जीव वही हूं जो पूर्व काल मे, इस देह से पूर्व भी विद्यमान रहा। और इस उत्पन्न जगत् मे या इस देह के उत्पन्न हो जाने पर अब कुछ पदो या वाक्यों का उच्चारण करता हूं। भेडिया जिस प्रकार प्यासे मृग को जा पकडता है, उसकी प्यास लगी की लगी रह जाती है और व्याघ्र उसके प्राण अपहरण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार उसी मुझ जीव को मानसी व्यथाएं और चिन्ताएं और देह के रोग आदि आ घेरते हैं। जीव की कामनाओं की प्यास पूरी नहीं हो पाती और चिन्ताए जीवन समाप्त कर देती हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

राष्ट्रपक्ष मे—मैं वही राजा हूं जो पहले अभिषेक काल में कुछ एक

वचन कहता हूँ। प्यासे मृग को बाघ के समान अब मुझे प्रजापालन की चिन्ताएं खाए जाती हैं। राज प्रजावर्ग दोनों उसको जानें और दूर करें।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः। मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥

भा०—हे सैकड़ों कर्मों और ज्ञानों के स्वामिन्! प्रभो! परमेश्वर! पास रहने वाली या आलिंगन करने हारी बहुत सी स्त्रियां जिस प्रकार अपने दरिद्र या वृद्ध पति को बहुत कष्ट देती हैं उसी प्रकार ग्राह्य विषयों तक पहुचने वाली इन्द्रियां सब तरफ मुझ जीव को संताप उत्पन्न करती हैं। मूषक जिस प्रकार विना धुले माडी आदि से मढे सूतों को खा जाता है या जैसे मूषा अपनी तैलादि से युक्त पुच्छ आदि को स्वादु जान कर खाता है उसी प्रकार मानस चिन्ता और शारीरिक रोग तेरी स्तुति करने हारे मुझे खाये जाते हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

मुझ प्रजाजन को सौतों के समान पास के जन या परशुओं को धारण करने वाले शस्त्र-धर शत्रुजन पीड़ित करते हैं। हे राजन्! तेरे स्तुति करने वाले को मानस चिन्ताएं खाए जाती हैं। हे दुष्टों को रुलाने वाले वीर राजा और न्यायाधीश तुम दोनों मुझ प्रजाजन की इस स्थिति को जानो और उपाय करो।

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९॥

भा०—जो ये सात या सर्पणशील, निरन्तर गति करने हारे दीपक या सूर्य की किरणों के समान फैलने वाले और अश्व की रासों के समान देह को वश करने वाले सप्त प्राण हैं उनके आश्रय मेरी नाभि, देह का केन्द्र स्थान या सुप्रबन्ध व्याप्त है। आप्तजनों में श्रेष्ठ अथवा प्राणों के तत्वों को जानने हारा योगी या आत्मा ही सब अज्ञान बन्धनों को पार करके उस परम ज्ञान रहस्य को जान लेता है। वही परम बन्धुता को

प्राप्त करने के लिये परमेश्वर की स्तुति करता है। हे स्त्री पुरुषो! या हे गुरु शिष्यो! आप मुक्त आत्मा के इस रहस्य को जानो।

राष्ट्रपक्ष में—ये जो सात राष्ट्र को वश करने वाले देह में सात धातु और सात प्राणो के समान राज्य के सात अग हैं उनमें ही मुक्त राजा और प्रजाजन दोनो का शासन सुप्रबन्ध स्थित है। आपः अर्थात् आप्त प्रजाजनो का हितकारी मित्र, शत्रु और उदासीन तीनो में से अधिक शक्तिमान् या तीनो के भीतर व्यापक ज्ञानवान् पुरुष उस तत्व को जाने। वह परस्पर के बन्धु भाव की वृद्धि के लिये सब को उपदेश करे। राज प्रजा वर्ग दोनों मेरे इस तत्व-वचन को समझें।

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी॥१०॥२१

भा०—आकाश के बीच में जिस प्रकार जल वर्षण करने वाले मेघ विराजते हैं उसी प्रकार वे जो सुखों के देने वाले महान् ज्ञानप्रकाश वाले आकाश के समान विशाल हृदयाकाश के बीच स्थित पांच प्राण हैं वे एक साथ मिल कर रहने वाले संगियों के समान होकर नित्य रहते हैं। यही बात विद्वान् पुरुषों के बीच में उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है।

राष्ट्रपक्ष में—बडी भारी राजसभा के बीच पांच नरश्रेष्ठ पांचों प्रकार की प्रजा के मुख्य प्रतिनिधि हों। वे एक साथ मिल कर रहें। विद्वानों के बीच कहने योग्य वचन को कहें। राज-प्रजावर्ग इस प्रबन्ध को भली प्रकार जानें।

पञ्च उक्षण.—पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, आकाश में सूर्य, दिशाओं में चन्द्रमा, 'स्व·' अर्थात् दूर आकाश में नक्षत्र। (तैत्ति०) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, दूर आकाश में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र और जलों में विद्युत्। (शाखायन ब्रा०) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत्। (सा०)। अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य इनके प्रकाश (दया०)

अध्यात्म में—पञ्च प्राणादि, पञ्च वायुगण ।

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥

भा०—जिस प्रकार आकाश के बीच मे किरणें किसी रुकावट के आजाने पर उसी पर पडती है। इसी रीति से वे सूर्य की किरणें क्रान्ति-मार्गों पर गति करते हुए चन्द्र को भी प्राप्त होती है। और वे ही सूर्य की किरणें विशाल समुद्र के जलों पर भी पडती है, इस प्रकार से वे चन्द्र को प्रकाशित करती है और उदय और अस्त कालो मे जलपृष्ठ पर भी अद्भुत दृश्य उत्पन्न करती है। उसी प्रकार ये उत्तम रीति से पालन पोषण करने के साधनों वाले, उत्तम ज्ञानो से युक्त विद्वान् जन और उत्तम यान साधन रथो वाले वीर जन विजयेच्छु शत्रुराजा के रोकने के निमित्त बीच ही मे आखडे हों। वे मार्गों पर जाते हुए चोर पुरुष को पकड लेवें। और बडी भारी प्रजाओं के भीतर जाते हुए या बडी बडी नदियों को तैरते हुए चोर पुरुष को भी पकडें। अर्थात् वे सूने रास्ते चलते हुए या भीड मे छुपते हुए अपराधी को भी पकडें। हे राजा प्रजाजनो ! और गुरु शिष्यो ! आप राज प्रजावर्गों के विषय मे यही व्यवहार जानो। वे उत्तम ज्ञान तथा तेजस्वी पुरुष मोक्ष ज्ञान के बीच मे संयमपूर्वक दमन कर्म में निष्ट होकर विराजते हैं। नाना मार्गों मे जाते हुए तथा बडे बलशालीन प्राणों मे गति करने वाले सब दुःखो के छेदन वज्ररूप आत्मा को प्राप्त होते हैं।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार नदियें जल बहाती है और सूर्य जिस प्रकार सत्य अर्थात सबको साक्षात् दीखने वाला या सब वस्तुओं के सत्य स्वरूप को दिखाने वाला अपना प्रकाश सबके हित के लिये फैला देता है, वह प्रकाश को किसी से छिपाकर नहीं रखता है, उसी प्रकार हे विद्या

के देनेवाले विद्वान् पुरुषो और जिज्ञासु शिष्यो ! आप लोग उस परम अति स्तुत्य, सद्यः प्राप्त, अपने मे धारित और सबके हितकारी, लाभदायक वेदमन्त्रो मे विद्यमान उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य सत्य वेद ज्ञान को सबको प्रदान करो, ग्रहण कराओ और उसको फैलाओ। हे स्त्री पुरुषो ! हे राज प्रजावर्गो ! हे गुरुशिष्यो ! मेरे इस उपदेश का ज्ञान करो।

अग्ने तव॒ त्यदु॒क्थ्यं॑ दे॒वेष्व॒स्त्याप्य॑म्।
स नः॑ स॒त्तो म॑नु॒ष्वदा दे॒वान्य॑क्षि वि॒दुष्ट॑रो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी: १३

भा०—हे सकल विद्याओ के जानने हारे विद्वन् ! तेरा वह ज्ञान करने योग्य उत्तम विद्यामय ज्ञान, ज्ञान की कामना करने हारे शिष्यों और विद्वानो मे भी प्राप्त करने योग्य है। अथवा तेरा शिष्यों के प्रति वह उत्तम बन्धु भाव है। तू उच्च आसन पर विराज कर और उनके अज्ञान आदि दोषो को नाश करने मे समर्थ और अधिक विद्वान् होकर मननशील शिष्यो और विद्वानो से युक्त होकर हममे से धन देने मे समर्थ तथा ज्ञान के जिज्ञासु शिष्य जनो को सब प्रकार के ज्ञानो का लाभ करा। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्)।

स॒त्तो होता॑ मनु॒ष्वदा दे॒वाँ अच्छा॑ वि॒दुष्ट॑रः।
अ॒ग्निर्ह॒व्या सु॑षूदति दे॒वो दे॒वेषु॒ मेधि॑रो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥१४॥

भा०—उच्च आसन पर विराजमान, शिष्यो और सत्सगियो के अज्ञानादि दोषो और दु:खो का नाश करने हारा, मननशील पुरुषो का स्वामी, सब ऐश्वर्यों और ज्ञानो का दाता, अधिक गुणवान् या अपेक्षा से अन्यो से अधिक विद्वान् होकर ज्ञानवान्, अग्रणी नायक और आचार्य, विद्वानों, धन और ज्ञान के अभिलाषी पुरुषों को ग्रहण करने योग्य अन्न, धनादि और ज्ञानों को प्रदान करे। वह स्वयं विद्वान् सूर्य के समान अन्य विद्या के अभिलाषी जनों के बीच मेधावी, बुद्धिमान्, वाग्मी होकर

रहे। नायक राजा विजयेच्छु वीरों को धनैश्वर्य दे और उनके बीच में शत्रुनाशक तेजस्वी सूर्य के समान होकर रहे।

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी॥१५॥२२॥

भा०—जो सर्वश्रेष्ठ, सबसे वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक वीर नायक, राजा, परमेश्वर और विद्वान् ऐश्वर्य, ब्रह्म ज्ञान तथा द्रव रक्षण आदि कार्य सम्पादन करता है उस वेद वाणी के जानने वाले, श्रेष्ठ मार्ग के बतलाने वाले और पृथ्वी के स्वामी को हम याचना करें, उसकी उपासना करें अथवा महान् परमेश्वर या विद्वान् जिस शिष्य को वेदज्ञ बना देता है हम उसे सत्संग के लिये प्राप्त हों। वह स्तुति करने योग्य, नव शिक्षित सदा प्रसन्न होकर हृदय से विचार विचार कर ज्ञान को विविध प्रकारों से प्रकट करे और उसका विस्तार करे, वह उसका उपदेश प्रमाण योग्य, विश्वास्य, सत्य हो। अथवा आचार्य हृदय से मनन योग्य ज्ञान प्रकट करे और नवीन शिष्य उस सत्य ज्ञान को प्राप्त करे। शेष पूर्ववत्।

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी॥१६॥

भा०—आकाश में या प्रकाश के निमित्त जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार जो यह परम उत्कृष्ट मार्ग मुमुक्षु और जिज्ञासु जनों को प्राप्त करने योग्य, सबके स्वीकारने योग्य, प्रकाशमान अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न ज्ञान-प्रकाश के प्राप्त करने के लिये उपदेश प्रवचन द्वारा गुरु शिष्य परम्परा से उपदेश किया जाता है, हे विद्वान् पुरुषो! हे जिज्ञासुओ! वह महान् ज्ञानमार्ग, वेदप्रतिपादित मार्ग कभी उल्लंघन करने योग्य नहीं है। हे मरणशील, अज्ञानी पुरुषो! तुम लोग उसको नहीं देख रहे हो। आओ उसके साक्षात् करने का यत्न करो। शेष पूर्ववत्।

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी॥१७॥

भा०—दुःखो मे फंसा हुआ पुरुष तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों से घिरा हुआ मानो कुए मे गिरे मनुष्य के समान ही उत्तम विद्वान्, ज्ञान और हस्तावलम्ब देने वाले दयाशील पुरुषो को अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये पुकारता है, उनके पास जाता है। वेद वाणी का तथा बड़े भारी ब्रह्माण्ड का स्वामी, प्रभु परमेश्वर और वह दयाशील पुरुष चारों तरफ से आघात करने वाले कष्टों और पापो से बचाने के लिये बड़ा यत्न करता हुआ उसकी पुकार को गुरु के समान श्रवण करता है।

विद्या, शिक्षा और ब्रह्मचर्य, इन तीनो मे निष्णात होकर पुरुष कूप अर्थात् हृदयगुफा मे अवहित, सावधान, दत्तचित्त, ध्याना-वस्थित होकर अपनी रक्षा तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये उत्तम दिव्य गुणो को धारण करता और विषयो में क्रीड़ाशील इन्द्रियगणों को अपने वश करता है। तब वह स्वयं बडी भारी वेद वाणी का पालक, विद्वान् ज्ञानी होकर और पापाचार से पृथक् होकर बड़ा यत्न करता हुआ उस परमपद, ब्रह्म के स्वरूप या भीतरी आत्मादि के ज्ञान को श्रवण करता है। शेष पूर्ववत्।

अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ठ्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी॥१८॥

भा०—जिस प्रकार लाल रंग का मांसखोर बाघ मार्ग से जाते पुरुष को देखे और पीठ में थकान अनुभव करने वाले बढ़ई के समान झुक करके उस पर जा पड़ता है और जिस प्रकार मासो को विभाग करने वाला आकाश मार्ग से जाने वाला चन्द्र विशाल आकाशस्थ क्रान्ति मार्ग से जाते हुए सूर्य को देखता है। बढ़ई जिस प्रकार झुक कर काम करता करता पीठ में पीड़ा अनुभव करने लगता है और वह बार बार

बैठ बैठ कर पुनः उठता है उसी प्रकार चन्द्र भी बार बार कलाकार या धनुषाकार कुबड़े के समान हो हो कर और आमावास्या काल में लुप्त हो होकर बार बार उदित होता है। तेजस्वी, समस्त विद्याओं को प्राप्त करने वाला शिष्य जन ज्ञानों तथा बलों का सग्रह करता हुआ, सूर्य या चन्द्र के समान तेज, ज्ञानोपदेश, शील, सदाचार आदि का अपने में धारण करने हारा होकर सन्मार्ग से जाते हुए अपने में बड़े गुरु आदि को अवश्य देखे और उसका अनुकरण करे। पीठ में पीडा को अनुभव करने वाला बढ़ई जैसे बार बार उठता है उसी प्रकार शिष्य जन भी बार बार पूछने या प्रश्न करने के कार्य में खूब आनन्द लेने वाला, खूब प्रश्नाभ्यासी होकर समस्त संदेहों का समाधान कर कर के और गुरु के उपदेशों को सुन सुन कर और गुरु की बार बार पूजा सत्कार और विनय कर कर के ऊपर उठे, उन्नत पद को प्राप्त करे।

एनाङ्गूषेण व॒यमिन्द्र॑वन्तो॒ऽभि ष्या॑म वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥१८॥२३॥१५

भा०—इस उपदेश देने हारे विद्वान् तथा उसके दिये उपदेश से हम सब प्रकार के वीर पुरुषों और बलवान् प्राणों से युक्त होकर ऐश्वर्यवान् स्वामी तथा आचार्य के अधीन रह कर, उसको प्रमुख रूप से अपनाते हुए हम विरोधी शत्रु और भीतरी काम, क्रोध आदि दुर्व्यवहारों और दुराचारों को दूर करने वाले बल को प्राप्त करने में सदा तैयार रहें। शेष पूर्ववत्। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

इति पञ्चदशोऽनुवाकः॥

[१०६]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—१—६ जगती। ७ निचृत् त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१—६ निषादः। ७ धैवतः॥

इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमू॒तये॒ मारु॑तं॒ शर्धो॒ अदि॑तिं हवामहे। रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन॥१

भा०—हम लोग ऐश्वर्यवान् राजा, उपदेशप्रद आचार्य, विद्युत् और सूर्य मरण भय से बचाने वाले प्राण तथा मित्रजन, सर्वश्रेष्ठ दुःखों के वारक तथा समुद्र, अग्नि, विद्युत् आदि तत्वज्ञानी, ज्ञानप्रकाशक विद्वान् तथा अग्रणी नायक जन और विद्वानों, वीरभटों तथा अन्यान्य वायुओं और प्राणों के बल, शत्रुघातक सैन्य को पिता, माता, आचार्य तथा मूल उत्पादक कारण, शत्रुघातक सैन्य तथा परब्रह्म आदि अन्य अखण्ड शक्ति वाले तत्वों और पूज्य पुरुषों को अपनी रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये स्वीकार करें। और उत्तम दानशील या रक्षाकारी पुरुष जिस प्रकार दुर्ग अर्थात् विषम स्थानों से रथ को बचा ले जाते हैं उसी प्रकार प्रजाओं को सुख से बसाने वाले और विद्यादि उत्तम गुणों से रहने वाले पुरुष हमारी सब प्रकार के पाप से रक्षा करें, बचावें।

त आ॑दित्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये भू॒त दे॑वा वृत्र॒तूर्ये॑षु श॒म्भुव॑: ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥२॥

भा०—जैसे सूर्य के किरण अथवा अखण्ड, अविनाशी अग्नि आदि तत्व दिव्य शक्ति और तेज से युक्त एवं बल के देने वाले होकर मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश करने के कार्यों में सब सुखजनक और शान्तिजनक होते हैं। उसी प्रकार हे सूर्य के समान तेजस्वी, राष्ट्र के मुख्य कार्यों और ऐश्वर्यों को अपने हाथ में लेने वाले विद्वान्, विजयार्थी और दानशील पुरुषो! आप लोग आओ और बढ़ते शत्रुओं के नाशकारी संग्रामों के अवसरों में सब प्राणियों और प्रजाओं के कल्याण के लिये शान्ति उत्पन्न करने वाले होकर रहो। विषम भूमियों में रथ को बचाकर लेजाने वाले सारथियों के समान आप लोग हम लोगों को सब प्रकार के पापाचारों से, सब तरह से बचाते रहो।

अव॑न्तु नः पि॒तर॑: सुप्रवाच॒ना उ॒त दे॒वी दे॒वपु॑त्रे ऋता॒वृधा॑ ।
रथं॒ न दु॒र्गाद्व॑सवः सुदानवो॒ विश्व॑स्मान्नो॒ अंह॑सो॒ निष्पि॑पर्तन ॥३॥

भा०—हमारी उत्तम प्रवचन अर्थात् ज्ञान और धर्म का उपदेश करने में कुशल पालक पिता माता और गुरुजन रक्षा करें और हमें ज्ञान दें। और विद्वान्, तेजस्वी किरणों और रत्नादि पदार्थों के समान पुत्रों को उत्पन्न करने वाले, स्वच्छ जलों के समान ज्ञानों और उत्तम आचरणों की वृद्धि करने वाले, अन्नादि के देने और प्रकाश करने वाले, भूमि और प्रकाश करने वाले, भूमि और सूर्य के समान पुष्टि और शिक्षा के देने और ज्ञान का प्रकाश करने वाले माता और पिता दोनों हमारी रक्षा करें। वे सब सुखकारी जल की वृष्टि करने वाले सूर्यादि लोकों के समान सब प्रजाओं को सुखसे बसाने वाले जन हम लोगों को विषम स्थान से रथ को सारथी के समान सब प्रकार के पापाचरणों से बचावें।

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥४॥

भा०—इस राष्ट्र में हम लोग नायक वीर पुरुषों से स्तुति करने योग्य तथा मनुष्यों के शासक ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न बलवान् शत्रु-नाशकारी वीरों के स्वामी और उनका आश्रय सबके पोषक, सूर्य समान तेजस्वी पुरुष को विशेष ज्ञान, बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हुए हम सुखजनक साधनों से युक्त उसकी याचना करते हैं और उसकी शरण आते हैं। शेष पूर्ववत्।

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शंयोर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन॥५॥

भा०—हे वेदवाणी के पालक एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन्! विद्वन्! और ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! परमेश्वर! तेरा जो मनुष्यों को हित-कारी शान्तिदायक और दुःख विनाशक धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके देने वाला ज्ञान है उसे हमारे लिये सदा ही सुखदायक कर, सुगम बना। हम उसे ही चाहते हैं, उसे ही प्राप्त हों। शेष पूर्ववत्।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६॥

भा०—विद्युत् वेग से जाने वाली होकर कूप आदि गहरे स्थान में गिरता हुआ मेघों को छिन्न-भिन्न करने वाले शक्ति या समस्त कर्मों के पालक जलों के भीतर उनको फाड़ने मे समर्थ तेज को प्रकट करता है। इसी प्रकार विद्युत् आदि विद्याओं का प्रकट करने वाला विद्वान् निरन्तर ज्ञानवान् होकर, मन्त्रार्थों और सत्य सिद्धान्तों का साक्षात् करने वाला होकर, कूप आदि गिर जाने के विषम स्थान मे अज्ञानान्धकार के नाशक, सब कर्म सामर्थ्यों और वाणियों के पालक, विद्याज्ञान और धन के स्वामी परमेश्वर आचार्य और नायक पुरुष को रक्षा तथा ज्ञान वृद्धि लिये पुकारता है, उससे प्रार्थना करता है कि वह उसे गिरावट के स्थानो से बचावे। शेष पूर्ववत्।

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥७॥२४

भा०—प्रकाश देने वाली, अविनाशी, नित्य ज्ञान को देने वाली विद्या, माता और आचार्य आदि हमें दिव्य ज्ञानों, गुणों और सामर्थ्यों सहित पालन करे। त्राण करने वाला रक्षक, राजा विद्वान् और परमेश्वर हमारा पालन करे। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१०७]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः। विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप् ॥ तृच सूक्तम् ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

भा०—विद्वानो का विद्या दान और दानशील पुरुषो का अन्न, धन आदि देना और विद्वानों, विजयी वीर पुरुषो का परस्पर मिलना तथा दिव्य पदार्थों का परस्पर संयोग अर्थात् सुसगत होकर रहना और उत्तम

शिल्प आदि सुख प्राप्त कराता है। हे तेजस्वी, किरणों और १२ मासों के समान सुख, विद्या और ऐश्वर्यों के देने और लेने हारे या अखण्ड शक्ति ब्रह्म और राजशक्ति के धारक पुरुषो! आप लोग सबको सुखी करते रहो। जो आप लोगों की शुभ मति और ज्ञानशक्ति उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली है वह विद्वान् को तथा दरिद्र पुरुष को भी सदा नये से नये रूप में प्रकट होकर प्राप्त हो।

उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भि॒ स्तू॒यमा॑नाः।
इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के साम, सगीतो द्वारा स्तुति किये जाकर या उत्तम वचनों द्वारा आदर पूर्वक प्रार्थना किये जाकर विद्वान् और विजयी पुरुष सूर्य की किरणो के समान अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित हमें प्राप्त हों। इसी प्रकार आदरपूर्वक प्रार्थित ऐश्वर्यवान् पुरुष अपने ऐश्वर्यों सहित और वीरगण अपने अन्य सहयोगी विद्वानों सहित सूर्य और पृथिवी किरणों या १२ मासो के समान आचार्य और राजा आदि पूजनीय पुरुषो अपने शिष्यों और भृत्यों सहित हमें सुख प्रदान करें।

तन्न॒ इन्द्र॒स्तद्वरु॑ण॒स्तद॒ग्निस्तद॑र्य॒मा तत्स॑वि॒ता चनो॑ धात्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥३॥२५॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति, सब दुःखों का वारक, सबसे श्रेष्ठ, अग्रणी नायक तथा ज्ञानी पुरुष, शत्रुओं का नियन्ता और न्यायकारी पुरुष, उत्पादक माता पिता, धर्ममार्ग का प्रेरक आचार्य तथा परमेश्वर ये सब हमें नाना प्रकार के ऐश्वर्य, अन्न, सद्वचन नाना प्रकार के सुख, शिक्षण आदि प्रदान करें। शेष पूर्ववत्। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[१०८]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ९, १०, १३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र और अग्नि ! वायु और आग के समान अमात्य और राजन् ! आप दोनो का अति अद्भुत रमणसाधन, विजयी रथ या राष्ट्र शासन का काम समस्त लोकों, देश तथा जल स्थल और आकाश सबको दीखता और अपने प्रकाश से चमकता है, उस रथ से आप दोनों एक ही रथ पर महारथी और सारथी के समान बैठे हुए आओ, हमें प्राप्त होओ और उत्पन्न हुए अन्नादि भोग्य पदार्थ तथा ऐश्वर्य का पान करो, उपभोग करो ।

आधिदैविक मे—इन्द्र, अग्नि अर्थात् सूर्य के प्रकाश और प्रताप, दोनो से युक्त किरण, उनका चित्रतम रथ सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता है । वे दोनों एक ही साथ आते हैं और जल का पान करते हैं, उसे सूक्ष्म रूप से खींच लेते हैं ।

अध्यात्म मे—इन्द्राग्नी' जीव और परमेश्वर इनका अद्भुत रथ देह और ब्रह्माण्ड, दोनों मे दोनो समान रूप से अधिष्ठित हैं । एक सोम अर्थात् अन्नादि का भोक्ता और दूसरा परमानन्द रसमय है ।

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२॥

भा०—यह समस्त भुवन, लोक जितना विस्तृत है और जितना यह बहुत विस्तृत विशालता से गभीर, अगाध है उतना ही ऐश्वर्यमय राष्ट्र भी हो । इन्द्र और अग्नि सूर्य और वायु और सूर्य के समान तेजस्वी राजन् और सेनापते ! तुम दोनों के चित्त के सतोष और ज्ञान और पालन करने और भोग करने के लिये यह राष्ट्र बहुत अधिक हो ।

अध्यात्म मे—जीव और परमेश्वर के लिए तो यह समस्त ससार चिन्तन और ज्ञानवर्धन तथा आनन्द अनुभव के लिये परमानन्दमय हो

जाता है। सूर्य और वायु दोनों समस्त विश्वभर के जल को अपने में धारण करते हैं।

चक्राथे हि सध्र्य१ङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३॥

भा०—सूर्य और वायु दोनों जिस प्रकार मिलकर वर्षा करने वाले मेघ के जल के वर्षाने वाले होकर वर्षा कर देते हैं अपना नाम, जन्म, स्वरूप आदि सब प्रजाओं के सुख के लिये समर्पित कर देते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में वे दोनों इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और उत्तम अग्रणी या नायक विद्वान् पुरुष दोनों एक साथ मिलकर अपने नाम या शत्रुओं को झुका डालने वाले बल को एक साथ ही मिलकर प्रजा के सुखदायी रूप में कर देते हैं और वे दोनों मेघ को सूर्य के समान, बढ़ते हुए शत्रु को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे दोनों एक साथ मिले हुए ही बलवान् एवं प्रजाओं पर सुख और शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों को बरसाने में समर्थ होकर अपने उच्च आसनों पर विराज कर, जमकर या परस्पर का ज्ञानोपदेश ग्रहण करते हुए बलवान्, सब सुखों के देने वाले सोम अर्थात् समृद्ध राष्ट्र ऐश्वर्य की वृद्धि कर देते हैं, प्रजाओं को खूब सुखी, समृद्ध कर देते हैं। गुरु शिष्य भी परस्पर मिलकर एक दूसरे का नाम यशस्वी करते हैं, विघ्नों का नाश करते हैं, एक दूसरे के संग में बैठकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर सुखपूर्वक बलवान् शिष्यगण या वीर्य पालन और ब्रह्मचर्य वृद्धि करते हैं।

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

भा०— यज्ञ में अग्नियों के प्रज्वलित हो जाने पर चरुओं को घृतों से मिलाते हुए स्रुचा को हाथ में स्थिर करते हुए अर्थात् पकड़ते हुए कुश आसन बिछाते हुए अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों तीव्र सोम रसों से सबके लिये सुचित्त भाव वाले हो जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्र और

अग्नि के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुष राजा और मन्त्री या वायु और अग्नि के समान सेनापति और राजा दोनों अग्नियो के समान तेजस्वी नायको के खूब उत्तेजित हो जाने पर अपने गुणों का खूब प्रकाश करते हुए बाहुओं के समान सेनाओ को तथा राष्ट्र के स्त्री पुरुषों, भूमियो तथा वाणी और प्रजा लोको को नियम में बद्ध, सुसंयत करके साथ ही विस्तृत शास्य प्रजाजन को खूब विस्तृत करते हुए अति तीव्र, शत्रुओं के प्रति वेग से जाने वाले, जलों के समान सौम्य गुण वाले, उत्तम पदो पर अभिषिक्त हुए नायकों सहित उत्तम सुखप्रदाता प्रजा के चित्तानुरंजन करने के लिये हमारे प्रति आवें। इस मन्त्र मे नीचे लिखे स्रुच् के शब्दार्थों पर विचार करने से स्त्री पुरुषों के परस्पर प्रजोत्पत्ति और गुरु शिष्य के ज्ञानप्राप्ति के उत्तम सिद्धान्तो पर भी प्रकाश पड़ता है।

'स्रुच्'—स्रुचश्चेतद्वेदीश्चाह। विश्वा वेदि घृताची स्रुक्। श० ९। २। ३। १७॥ योषा हि स्रुक्। श० १। ४। ४। ४॥ युजौ ह वा एते यज्ञस्य यत् स्रुचौ। श० १। ८। ३। २७॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७। ४। १। ३६॥ वाग् वै स्रुक्। श० ६। ३। १। ८॥ गौर्वास्रुचः। तै० ३। ३। ५। ४॥ इमे वै लोका स्रुचः। तै० ३। ३। १। २॥ यजमानः स्रुच.। तै० ३। ३। ६। ३।

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य॥५॥२६

भा०—हे वायु और अग्नि के समान परस्पर उपकारक स्वामी, भृत्य और राजा और मन्त्री, क्षत्र ब्रह्म एवं स्त्री पुरुषो! आप दोनों जिन वीर्यों, बलों और सामर्थ्यों को जिन नाना प्रकार के सुंदर पदार्थों को या रुचिकर कार्यों को और पुरुषार्थ युक्त और सुखवर्षक कार्यों को प्रकट करें अर्थात् आचरण में लाएं और आप दोनों जो चिरस्थायी शुभ, मङ्गलजनक, कल्याणकारी मित्रता के कार्य हैं उन सबके साथ युक्त

होकर तैयार किये हुए सांसारिक ऐश्वर्य तथा राज्य और ओषधि-रसों तथा अन्न और शारीरिक बल आदि का उपभोग करो।

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! मैं तुम दोनों को यज्ञ में, यज्ञ के सम्पादन के लिये पुरोहितों के समान वरण करता हुआ, योग्य कार्य कुशल जानकर जो कुछ भी कहूं, उपदेश करूं यह ज्ञानोपदेश हममें से केवल प्राणों में रमण करने वाले ज्ञान रहित पुरुषों को विविध प्रकार से ग्रहण कर ज्ञानवान् होना चाहिये। हे इन्द्र और अग्नि के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों उस सत्य श्रद्धा को प्राप्त होओ और प्राप्त ज्ञान और उससे प्राप्त सांसारिक पदार्थों का सुख प्राप्त करो। यह राष्ट्र तथा ऐश्वर्य बलवान् पुरुषो के विविध उपायों से भोग्य है। उसी के लिये मुख्य रूप से वरण करता हुआ अमात्य राजा अथवा सेनाध्यक्ष या सभाध्यक्ष दोनों को उपदेश करता हूं कि आप दोनों सज्जन हितकारिणी, सत्य धारण करने वाली वाणी को प्राप्त हों और तब न्यायानुकूल ऐश्वर्य का भोग करें।

यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥

भा०—जिससे हे ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुषो! आप दोनों प्रकार के जन अपने घर में स्वतः आनन्द प्रसन्न रहते हो जिस कारण से आप दोनों ब्राह्मणों के बीच में और राजा की सभा में राजा के द्वार पर भी आदर प्राप्त करने वाले हो। इस कारण से ही आप दोनों प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारे होकर आवो और सम्पन्न सोम, राष्ट्रैश्वर्य तथा शासकपद का उपभोग करो। तात्पर्य यह है कि गृह में सम्पन्न विद्वानों और राजाओं के आदर योग्य पुरुषों को शासन कार्य में नियुक्त करना चाहिये। दरिद्र और निर्गुणों को नहीं।

यदि॑न्द्राग्नी यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु यद् द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् स्त्री पुरुषो ! क्योंकि बलवान्, यम नियमो मे निष्ठ पुरुषो मे शत्रुओं के नाशकारी धर्मार्थ-काम-मोक्ष चारो के अभिलाषी, हिंसक दुष्ट पुरुषों के वश करने वाले पुरुषों मे द्रोह-कारी या धनाभिलाषा से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने वाले पुरुषों में, प्राणमात्र पर आजीविका करने वाले या अन्यो को प्राणप्रद पदार्थ अन्नादि देने वाले पुरुषो में और सबको विद्यादि से परिपूर्ण करने वाले उच्च कोटि के पुरुषो में आदरपूर्वक रहते हो इस कारण से समस्त सुखों और ज्ञानों के वर्षक होकर आप दोनों सर्वत्र आओ, जाओ और उत्पन्न हुए ऐश्वर्ययुक्त बलवर्धक पदार्थों का उपभोग करो, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो ।

यदि॑न्द्राग्नी अव॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्यां॑ प॒रमस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ९ ॥
यदि॑न्द्राग्नी प॒रमस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१०॥

भा०—जिस कारण से वायु और विद्युत् के समान न्यायाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष उत्तम गुण से रहित अर्थात् निकृष्ट गुण वाली, मध्यम गुण वाली और अति उत्तम गुणों वाली तीनो प्रकार की पृथिवी में अधिकार, मान और सत्कार पूर्वक रहते हैं उसी से वे दोनो सब प्रजा को सुखप्रद होकर प्राप्त हों और प्राप्त ऐश्वर्य का भोग करें ॥ ९ ॥

भा०—शेष पूर्ववत् । पूर्व मन्त्र में अवम, मध्यम, परम इस क्रम से पृथिवी के विशेषण हैं दूसरे मन्त्र में परम, मध्यम और अवम इस क्रम से विशेषण हैं । वायु और अग्नियों की स्थिति और क्रम दोनों प्रकार की जाननी चाहिये, एक भूमि से अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से आकाश में जाने वाले और दूसरे आकाश से मध्यम अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से पृथिवी को आने वाले ये दो प्रकार के वायु और अग्नियों का वर्णन है ।

उसी प्रकार चढ़ते और उतरते क्रम से योग्य विद्वान् अधिकारियों का भी वर्णन समझना चाहिये। अर्थात् छोटे अधिकार वाले अपने से बड़े अधिकारी से निवेदन करते हैं और बड़े छोटे अधिकारियों को आज्ञा करते हैं। दोनों ही प्रकारों से वे प्रजा को सुखकारी हों।

यदि॑न्द्राग्नी दि॒वि ष्ठो यत्पृ॑थि॒व्यां यत्पर्व॑ते॒ष्वोष॑धीष्व॒प्सु ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥११॥

भा०—क्योंकि वायु और अग्नि ये दोनों तत्व सूर्य में भी है। पृथिवी में, पर्वतों में, ओषधियों में और समुद्र, नदी आदि जलों मे भी विद्यमान हैं, वे दोनों इसी कारण से सुखों को देने वाले होकर सर्वव्याप्त हैं। वे दोनों उत्पादित अन्नादि रस मे भी रहते है। वायु अग्नि के उपकारक जन विद्वानों के बीच, प्रजावासियों के बीच, मेघों के समान पालक, शिक्षक पर्वतों के समान अचल, राजाओं के बीच ओषधियों के समान शत्रुओं के नाशक सैन्यों मे और प्राणों के समान आप्तजनों में भी आदरपूर्वक रहते है। इसलिये वे सर्व सुखप्रद होकर हमे प्राप्त हों और हम ऐश्वर्य का भोग करें।

यदि॑न्द्राग्नी॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दये॑थे ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥१२॥

भा०—जिस कारण से ऊपर की तरफ गये हुए वायु और अग्नि तत्व दोनों सूर्य और अन्तरिक्ष के बीच मे जल के साथ युक्त होकर स्वयं तृप्त, जलपूर्ण होते और सब प्राणियों को सुखकारी होते हैं। इसी से वे दोनों जलों के वर्षणकारी होते है। वे प्राप्त होते और जल को भूपृष्ठ पर से पान करते है। इसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश देने वाले पुरुष के ज्ञान प्रकाश के मध्य मे रहकर उदय को प्राप्त होने वाले इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी पुरुष अपने शरीर को धारण करने वाली आजीविका या अन्न से तृप्त हों। वे बलवान् हृष्ट पुष्ट होकर आवें। पुन प्राप्त वीर्य, ऐश्वर्य आदि गृहस्थोचित पदार्थों का भोग करें।

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।१३।२७

भा०—इस प्रकार से ऐश्वर्य का भोग करते हुए पूर्वोक्त प्रकार के विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् स्त्री पुरुष हमारे लिये समस्त धनों को अच्छी प्रकार विजय करें। शेष पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः।

[१०९]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः ॥

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१॥

भा०—हे इन्द्र और अग्ने! हे आचार्य और शिक्षक! हे राजन् और विद्वन्! मैं उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को चाहता हुआ अथवा मैं स्वयं गृहस्थ रूप से बसे हुए पुरुषों मे सर्वश्रेष्ठ होकर ज्ञानवान् या ज्ञातिगण और एक वंश, पद, समाज और कुल मे उत्पन्न हुए लोगो को अपने हृदय से विविध प्रकार का उपदेश दूं। आप दोनो से कोई और दूसरा पुरुष मेरे लिये और अधिक उत्तम ज्ञानवान् और बुद्धिमान् नही है। वह मैं आप दोनों की ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि को प्राप्त और तदनुकूल कर्म को करूं।

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्॥२॥

भा०—हे इन्द्र और अग्नि, विद्युत् अग्नि या वायु और अग्नि के समान जीवनप्रद और ज्ञानप्रद पिता और आचार्य! विपरीत गुणों वाले, गुणहीन जमाई कन्या को प्राप्त करने के लिये अधिक धन व्यय करता है और अपना अति निकट सम्बन्धी अपनी स्त्री का भाई अर्थात् साला भी भगिनी के प्रेम से उत्तम जमाई को प्रसन्न रखने के लिये बहुत सा

धन प्रदान करता है, परन्तु उन दोनों से भी कहीं बहुत अधिक ऐश्वर्यों के देने वाले आप दोनों को मैं सुनता हूँ। और मैं समस्त ऐश्वर्य के उत्तम दान प्राप्त करने के लिये आप दोनों के अति नवीन, नये से नया, उत्तम से उत्तम स्तुति समूह को प्रकट करता हूँ।

मा छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे॥ ३॥

भा०—हम लोग अपने पालन करने वाले माता पिता, गुरु, आचार्य तथा अन्य पालक जनों के प्रजा तन्तुओं, सन्तानों, शिष्यों, उनकी नियत की हुई मर्यादाओं तथा उनके प्रकाशित विज्ञान किरणों का हम कभी उच्छेद या विनाश न करें। इस बात की आशिषें और शुभ कामनाएं करते हुए और पूर्वोक्त पालक गुरु जनों के नाना प्रकार के सामर्थ्यों को समस्त लोकों के प्रकृति अनुकूल उनको सुख पहुचाने के लिये नियमित व्यवस्थित करते हुए और अन्यों को प्रदान करते हुए बलवान् वीर्यवान् पुरुष मेघों के समान दानशील होकर पवन विद्युत् से मेघों के समान इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर प्रज्ञा बुद्धि और वाणी के समीप उसके आश्रय होकर सुख का लाभ करते हैं, क्योंकि वे दोनों ही मेघों के समान दृढ़ और विपत्ति और भय से कभी न भागने वाले अविनाशी स्वभाव वाले हैं।

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु॥४॥

भा०—हे इन्द्र और विद्युत् या विद्युत् और अग्नि या वायु और अग्नि के समान सर्वोपकारी जीवन और ज्ञान के देने वाले तेजस्वी गुरुजनो! दिव्य आदि गुणों से प्रकाशमान प्रज्ञा बुद्धि ही अति अभिलाषा युक्त प्रियतमा स्त्री के समान आप दोनों के अति हर्ष और सुख के लिये सब प्रकार के आनन्द रस तथा ऐश्वर्यों और योग्य विद्यार्थी को उत्पन्न करती है। अथवा वे आप दोनों सूर्य चन्द्र, दिन रात तथा स्त्री पुरुषो

के समान परस्पर मिलकर सर्व दुःखकारी शत्रु और दुराचारी और कष्टों के नाशक उपायो और उत्तम व्यवहारों से युक्त होकर प्राप्त होओ और समस्त प्रजाओं में, जलो में जल के समान अपने मधुर स्वभाव तथा ज्ञान और आनन्द से खूब मिल जाओ। वे तुम्हारे और तुम उनके हो जाओ। जैसे कामनायुक्त स्त्री, पिता और आचार्य के सुख और हर्ष के लिये ही पुत्र को उत्पन्न करती है। उसी प्रकार उत्तम विद्या भी "सोम" अर्थात् शिष्य को उत्पन्न करती है। "ततोऽस्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।" स्त्री पुरुष जिस प्रकार दानादि से कल्पहस्त हैं और कोमलता आदि गुणों और शुभ आभूषणादि से उत्तम कर कमल वाले होकर अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करते और जलो मे जल के समान मिलकर एक हो जाते हैं। 'समापो हृदयानि नौ'।

युवमिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥२८॥

भा०—विद्युत् और आग दोनों पदार्थों को मैं जल के फाड़ने के कार्यों मे बहुत अधिक बल वाला सुनता हूं। उन दोनों के इस क्रियात्मिक विज्ञान को मैं गुरुमुख से श्रवण करूं। वे दोनों इस प्रत्यक्ष बढ़ने योग्य सुसंगत, शिल्पादि मन्त्रो और वैज्ञानिक कार्यों मे बनाये गये पदार्थ रथ आदि मे बैठ कर अति हर्ष प्रदान करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र मे विद्युत् और अग्नि के समान तेजस्वी पवन और सूर्य के समान सर्व प्राणप्रद, दुष्ट रोगादि के नाशक विद्वान् और बलवान् जन तुम दोनों राष्ट्र के ऐश्वर्य, भूमि, पशु आदि के विभाग के कार्य और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो के उच्छेदन के कार्य में सबसे अधिक बलवान् सुनता हूं। वे दोनों प्रकार के जन बढ़ाने योग्य, अति विस्तृत सुव्यवस्थित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्य के निमित्त सब कार्य-व्यवहारों के द्रष्टा होकर उत्तम आसन पर विराज कर अभिषिक्त हुए राजा या राष्ट्रपति को खूब अधिक हर्षित करें, उसके बल को खूब तृप्त और पूर्ण करें। गुरु शिष्यादि भी ज्ञानरूप

धन के वितरण और अज्ञान नाश के कार्य मे प्रबल हो। और अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ में विराज कर ज्ञान से तृप्त हो और अन्यों को तृप्त करें।

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या॥६॥

भा०—उक्त दोनो वायु और अग्नि तत्व इन दोनो के समान गुण वाले पूर्वोक्त जन सैन्यों द्वारा किये जाने वाले युद्धो में अपने महान् सामर्थ्य से समस्त मनुष्यों से बढ़ जाते है। वे अपने महान् पराक्रम और सामर्थ्य से पृथिवी से भी बढ़ जाते है। वे दोनो अपने महान् पराक्रम से सूर्य से भी अधिक हो। वेग मे वे दोनो नदी प्रवाहों से भी अधिक वेगवान् हों। गम्भीरता और गुरुता मे पर्वतो से भी अधिक बडे हो। वे समस्त भुवनो, लोकों और उत्पन्न होने वाले पदार्थों से शक्ति और गुणों मे अधिक हो।

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभि'।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन्॥७॥

भा०—ये सूर्य की रश्मियां ही है जिनसे समस्त जीवो के पालक ओषधिगण तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार वे ही ये सूर्य की रश्मियो के समान ज्ञान के प्रकाश हैं जिनके साथ मिल कर हमारे पालक गुरुजन समान पद, स्थान, मान, आदर, सत्कार प्राप्त करते हैं। हम उनके आश्रय पर ही रहे। हे सूर्य के समान तेजस्विन् अग्नि के प्रकाशक आप दोनों भद्र पुरुषो! बल, वीर्य तथा शस्त्र शक्ति को अपने वश मे रखते हुए हमें खूब समृद्ध करो। हमें सब प्रकार से शिक्षा दो और उत्तम कर्मों और ज्ञानो से रक्षा करो।

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥८॥२६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! ज्ञानवन्! आप दोनो शत्रुओं के गढो को तोड़ने हारे, शत्रु को निवारण करने वाले शस्त्रास्त्र बल तथा विज्ञान को

अपने हाथ में अर्थात् वश में धारण करने वाले होकर हमारी यज्ञों और संग्रामो में रक्षा करो। शेष पूर्ववत्। एकोनत्रिंशद् वर्गः॥

[११०]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ ऋभवो देवता॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ३, ७ विराड जगती। ६, ८ निचृज्जगती। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्।
नवर्चं सूक्तम्॥

तृतं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः॥१॥

भा०—मेरा उत्तम ज्ञान और कर्म अति विस्तृत होकर फिर भी उसी प्रकार पूर्ववत् अधीन द्रव्यों और शिष्यो की रक्षा करता, फैलाता और गुरुपरम्परा से शिष्यादि को उत्पन्न करता है, अति स्वादुयुक्त, मधुर रस-धारा के समान ज्ञानधारा प्रवचन अर्थात् उपदेश के लिये अथवा अध्याप्य शिष्य के हितार्थ उपदेश की जाती है यह आश्चर्यकारी विद्वान् पुरुष समस्त दिव्य रत्नों से भरे समुद्र के समान उत्तम गुणों और विद्या के प्रकाशों से परिपूर्ण है। आप्त, सत्य ज्ञान, वेद से सुशोभित होने वाले विद्वान् योग्य पुरुषो! आप लोग उत्तम उपदेश प्रद वाणी द्वारा उपदेश किये गये ज्ञानरस से अच्छी प्रकार स्वयं तृप्त होओ और अन्यों को भी तृप्त करो।

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम्॥२॥

भा०—हे पाक यज्ञो के न करनेहारे अथवा हे परिपक्व ज्ञान और अनुभव और निश्चय वाले विद्वान् पुरुषो! नवागत, कम उमर के लोगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन, वृद्ध तथा आगे, ऊंचे मान योग्य पदों पर जाने वाले कुछ एक मेरे प्रिय आप्त बन्धु होकर आप लोग सब तरफ़ समस्त जीवों के रक्षा करने और सुख उपभोग करने में सर्व-श्रेष्ठ बल

और ज्ञान की इच्छा करते हो तो आओ, आगे बढो। जिस प्रकार अन्त-रिक्ष में उत्पन्न होने वाले मेघ वायु के महान् यल से प्रेरित होकर सूर्य के अधीन रहते हैं और जिस प्रकार उत्तम धनुर्धारी पुरुष अपने पराक्रम की अधिकता से सूर्य के समान तेजस्वी दानशील राजा, अमात्य या सेनापति के पद या स्थान को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आप लोग उत्तम ज्ञान करने योग्य विद्या विज्ञान से युक्त होकर ब्रह्मचारीगण जिस प्रकार समावर्त्तन के बाद अपने उत्पादक पिता के घर में आजाते हैं उसी प्रकार आप ज्ञानवान् पुरुष भी समस्त सुखों के देने वाले, समस्त ज्ञानैश्वर्यों के देनेवाले आचार्य के समान ज्ञान के सूर्य समस्त जगत् के उत्पादक परम प्रभु परमेश्वर के घर अर्थात् शरण को प्राप्त करो।

सौधन्वनासः—सु-धन्वन्। रिविधिविगत्यर्थः (भ्वादिः) अतः कनिन्। धन्वेति अन्तरिक्षनामसु पदनामसु च पठ्यते।

तत्स॑वि॒ता वो॒ऽमृ॑त॒त्वमासु॑व॒दगो॑ह्यं॒ यच्छ्र॒वय॑न्त॒ ऐत॑न।
त्यं चि॑च्चम॒सम॑सु॑रस्य॒ भक्ष॑ण॒मेकं॒ सन्त॑मकृणुता च॒तुर्व॑यम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! सूर्य जिस प्रकार अमृत, चेतनता, जीवन या अन्न और प्राण को प्रदान करता है, अन्न की कामना करते हुए कृषक जन खेत जाते हैं। प्राणों के पोषण में रत प्राणी के खाने योग्य अन्न को खेत में बो बोकर एक गुना अनाज को चौगुना कर लेते हैं, उसी प्रकार आचार्य ज्ञानों का उत्पादन करने वाला विद्वान् और सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर आप लोगों को वह कभी न छिपाने योग्य सूर्य के प्रकाश के समान अगोप्य, प्रकट, उज्ज्वल अमृतस्वरूप, आत्मतत्व और परम ज्ञान प्रदान करे जिसको स्वयं गुरुमुखों द्वारा श्रवण करने और अन्यों को श्रवण कराने की इच्छा करते हुए आगे बढ़ो और हम जिज्ञासु गृहस्थों के पास आओ। अन्न के समान ग्रहण करने योग्य, पवित्र इस प्राणों में रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी, योगी पुरुष के प्राप्त करने या भोगने योग्य जीवन-सुख या ज्ञान को एक को चौगुना करो। अर्थात्

अपने बल को बढ़ाओ और जीवन की १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक की करने का यत्न करो। अथवा एक ही ज्ञान को चार प्रकार से करके अध्ययन करो, एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋग्, यजु, साम, अथर्व रूप से अध्ययन करो। अथवा एक ही जीवन रूप यज्ञ को चार आश्रम भेद से ४ भागो मे बांट दो। अथवा एक ही जीवन को धर्मार्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों से युक्त करो।

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥४॥

भा०—ज्ञान विज्ञानो से युक्त वाणी को धारण करने वाले, मरणशील होकर भी सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, उत्तम कोटि के ब्रह्मज्ञानी पुरुष शान्तिदायक कर्मों का आचरण करके अमृतस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं। और वे सूर्य के समान तेजस्वी, दीर्घदर्शी होकर वर्ष मे सूर्य के समान ही ज्ञानों और नाना कार्यों से नाना सुखों को प्राप्त करते हैं।

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम्।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः॥ ५॥ ३०॥

भा०—जिस प्रकार अन्न को चाहने वाले किसान लोग सरकण्डे की दण्डी से खेत मापते या तीखी फाली से खेत बनाते हैं और शिल्पी लोग नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए एक वर्त्तन को सींक के बने पैमाने से माप लेते या तीक्ष्ण शस्त्र छेनी आदि से गढ़कर बना लेते है उसी प्रकार विनाश न होने वाले नित्य पदार्थों में श्रवण, गुरुपदेश अर्थात् सत्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए उसके अति समीप तक पहुच कर उसका साक्षात् कर, हस्तामलकवत् उसका वर्णन करने वाले सत्य ज्ञान के ज्ञाता विद्वान् पुरुष उन अविनाशी पदार्थों के सदृश उपमान को दृष्टान्त के रूप मे चाहते हुए अति तीक्ष्ण ज्ञान से उसकी दण्डी से क्षेत्र को मापने के समान विविध प्रकार से ज्ञान करते

हैं और पूर्वोक्त पात्र के समान ही सदृश धर्मों वाले दृष्टान्त को चाहते हुए प्रयत्नशील एक अद्वितीय देह में चक्षु आदि प्राणों से भिन्न सबके पालक आत्मा को और ब्रह्माण्ड में सबके संचालक, प्रयत्नशील समस्त जगत् के पालक एकमात्र, अद्वितीय परमेश्वर को विविध प्रकारों से जानते हैं।

राष्ट्र के पक्ष में—साधारण जनों से भिन्न विशेष पुरुषों में ही यश या ऐश्वर्य की स्थापना करने की इच्छा करते हुए विद्वान् जन उस यश ऐश्वर्य के योग्य पुरुष को ही ऐश्वर्यवान् करते हुए सत्य ज्ञान और विशाल सामर्थ्य से तेजस्वी पुरुष प्रयत्नशील, उपयोगी, साहसी एक पालक को तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र बल से विविध उपायों से उसको प्रमुख नायक बनाते हैं।

सूर्य के पक्ष में—किरण गण अन्न उत्पन्न करना चाहते हुए समीप प्राप्त होकर अपने समान तेजस्वी सूर्य को चाहते हुए अपने तीक्ष्ण ताप से एक सर्वपालक सूर्य का अपने उत्पत्ति-स्थान क्षेत्र के समान विविध प्रकार से ज्ञान कराते हैं। इति त्रिंशो वर्गः।

आ म॒नी॒षाम॒न्तरि॑क्षस्य॒ नृभ्यः॑ स्रु॒चेव॑ घृ॒तं जु॑हवाम वि॒द्मना॑।
त॒र॒णि॒त्वा ये पि॒तुर॑स्य सश्चि॒र ऋ॒भवो॒ वाज॑मरुहन्दि॒वो रजः॑॥६॥

भा०—खूब प्रकाशमान किरणें जिस प्रकार पृथिवी आदि लोकों पर अन्नों को उत्पन्न करती हैं, वे आकाशस्थ लोकों तक भी प्राप्त होती हैं और जो अति शीघ्र ही, इस जगत् को अन्न आदि पालक या जीवनप्रद पदार्थ को प्राप्त कराती हैं और जो अन्तरिक्ष के बीच में स्थित रहकर मनुष्यों के हित स्रुच से जैसे घृत अग्नि पर दिया जाता है उसी प्रकार जल की [illegible]ी करती हैं हम उन किरणों के ज्ञान के लिये ज्ञानपूर्वक अपनी बुद्धि को [illegible]वें। उसी प्रकार सत्य ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् जन ऐश्वर्य को प्राप्त [illegible]रते हैं, वे सूर्य के समान तेजस्वी लोकों या पदों को प्राप्त होते हैं। जो [illegible] ही इस प्रजागण को पालनकारी साधन प्राप्त कराते हैं और आकाश [illegible] बरसते बादल से जल के समान वाणी द्वारा ज्ञान का उपदेश करते

है उनके अधीन हम ज्ञानपूर्वक स्तुति या अपनी पूजा को या बुद्धि को प्रदान करें।

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

भा०—हमारा ऐश्वर्यवान् शत्रु-संहारक राजा और सेनापति एवं आचार्य तेज से सूर्य के समान खूब प्रकाशित होने वाले और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होकर सदा नये से नया अर्थात् नये से नये, उत्तम विचारो वाला हो। वह विद्वान् ही ज्ञानो, ऐश्वर्यों और संग्रामो से और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं सबको बसाने वाला और उनमे तेजस्वी होकर बसने वाला और समस्त सुखों का देने वाला, दानशील हो। हे विद्वान् और विजयेच्छु पुरुषो! आप लोगो के ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से आप लोगो के प्रिय दिवस अर्थात् अनुकूल और अभिमत दिवस मे हम लोग ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी शत्रुओ की सेनाओं के मुकाबले पर डटे रहे, उनको विजय करें।

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८॥

भा०—हे सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार शिल्पी लोग चाम की गाय को भी अपने उत्तम क्रिया कौशल से वास्तविक गाय के समान रूपवान् आकार वाला बना देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी उत्तम आचरण द्वारा वेद वाणी को सब प्रकार से अङ्ग अङ्ग से रूपवान्, क्रियासमृद्ध करो। गोपाल जन जिस प्रकार बछड़े से उसकी माता को या लोग बच्चे से उसकी माता को मिला देते हैं उसी प्रकार हे विद्वन् लोगो! आप लोग भी विद्याओ का उपदेश करने हारे विद्वान् से उत्तम ज्ञान, अध्ययनाध्यापन, वेदारम्भ आदि संस्कार द्वारा ज्ञानकुशल विद्यार्थी को वार बार संयुक्त करो। मन से प्रमाता आत्मा को उत्तम वेग से संयुक्त करो। अन्तेवासी शिष्य से उपदेशकारी आचार्य को युक्त

करो, वसने वाले जीव से सब जगत् के मापक, निर्माता परमेश्वर को उत्तम योग क्रिया द्वारा युक्त करो और हे उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग उत्तम कर्माचरण से ही दीर्घजीवन से युक्त या जराजीर्ण माता पिता दोनों को युवा बलवान् करो अर्थात् सेवादि से उनको सदा स्वस्थ और बलवान् करो । अथवा युवानौ पितरौ जिव्री अकृणोतन उत्तम उत्तम आचरणों द्वारा ही जवान माता पिता को वृद्ध और दीर्घजीवन वाला कर । युद्ध वीर पुरुष चाम से बाण फेंकने की तांत या धनुष् की डोरी बनावें । फिर शब्द करने वाली कसी डोरी को बाण से संयुक्त करें । उत्तम धनुर्धर लोग उत्तम क्रियाकौशल से जीवनयुक्त जवान हृष्ट पुष्ट हो पालकों को सभाध्यक्ष सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करें ।

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥९॥३१॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! तू विद्यावान् सत्यज्ञान से प्रकाशित विद्वानों का स्वामी होकर बल और ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त हमें अपने ज्ञानों सहित प्राप्त हो और संग्रह करने योग्य अपने सुंदर ज्ञान को हमें प्रदान कर । उसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से युक्त राजा सूर्य के समान होकर संग्राम के कार्य में वीर्यवान् पुरुषों, वेगवान् अश्वों से हमें प्राप्त हो । और हमें अद्भुत संग्रह योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे । शेष पूर्ववत् । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[१११]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१–४ जगती । ५ त्रिष्टुप् ।
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥

भा०—अपने विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष से जाने वाले रथ को बनावें । वे ही उत्तम प्रबन्ध से युक्त अश्व

कल पुर्जों को धारने वाले बिजुली को धारण करने वाले रथ को वेग से दूर लेजाने में समर्थ दो यन्त्रो को भी बनावें। ज्ञानवान् पुरुष अपने पालक माता पिताओं के सुख के लिये अपनी जवानी की उमर को उनकी सेवा योग्य बनावें। और ज्ञानवान् पुरुष बच्चों के पालने के लिये माता को सदा साथ रहने में समर्थ और शक्ति से युक्त बनावें अथवा ज्ञानपूर्वक सोच समझकर आचरण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष अपने रमण साधन रथरूपी समान देह को उत्तम व्यवहारो और आचरणों से युक्त, उत्तम चेष्टाओं के करने में चतुर, फुर्तीले रथ के समान उत्तम चाल चलने वाला बनावें। बाह्य ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों दोनों को बलवान् करें। जिससे वे ऐश्वर्यवान् आत्मा को धारण करने में समर्थ और बल-वान् सुखवर्षक प्राणों को धारण करने वाले हों और पालनकारी प्राण अपान के अभ्यास द्वारा अपने जीवन को दीर्घ जीवन वाला सदा जवान बनावें। बच्चे के लिये माता के समान मन को बलवान् करने के लिये उसके प्रमाता आत्मा था उपदेष्टा गुरु आचार्य और परमेश्वर को सदा संग रहने वाला करें। परमेश्वर को सदा अपने साथ का सहायक बनावें। शिल्पी लोग उत्तम रथ बनावें। ऐश्वर्यवान् राजा आदि को वहन करने वाले वृषाण अर्थात् अण्डकोशों से युक्त बलवान् घोड़ों को युक्त करें। अपने मा बाप, राजा प्रजा, भूमि और भूपति दोनों के लिये अपनी जवानी को लगावें। प्रजारूप वत्स के लिये इस माता रूप गो को सदा संयुक्त करें! राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां तेनाद्य वत्समिव लोक-मिमं पुषाण?

आ नो॑ य॒ज्ञाय॑ तक्षत ऋभु॒मद्वयः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य सु॒प्र॒जाव॑ती॒मिष॑म्।
यथा॒ क्षया॑म॒ सर्व॑वीरया वि॒शा तन्नः॒ शर्धा॑य धासथा॒ स्वि॑न्द्रि॒यम्॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमारे जीवन को उत्तम वैदिक यज्ञ या पूर्णायु रूपी यज्ञ प्राप्त करने के लिये सत्य ज्ञान के प्रकाश से युक्त अथवा अति बलवान् प्राण से युक्त करो और उत्तम ज्ञान और बल

की प्राप्ति के लिये उत्तम सुखजनक प्रिय सन्तानों से युक्त अन्नादि समृद्धि को सब प्रकार से तय्यार करो। जिससे हम लोग सब प्रकार के शत्रुओं को कंपा देने वाले वीर पुरुषों से युक्त प्रजा से युक्त होकर सुख से रहें। हमारा वह बल तेज और ऐश्वर्य शत्रुनाशक बल की वृद्धि के लिये अच्छी प्रकार सुख से धारण करो। अथवा हम उत्तम प्रजा से युक्त कामना को ज्ञान और बल की वृद्धि के लिये करें और समस्त पुत्रों सहित स्त्री के साथ सुख से रहें। इन्द्रियों को बलवृद्धि के लिये अच्छी प्रकार दमन करें।

आ तक्षत सातिम॒स्मभ्य॑मृभवः सातिं रथा॑य सातिमर्व॑ते नरः।
सातिं नो जैत्रीं सं म॑हते विश्वहा॑ जा॒मिमजा॑मिं पृत॑नासु सक्षणि॑म्॥३॥

भा०—हे विद्वान् और अधिक धनाढ्य पुरुषो! आप लोग हमारे लिये उत्तम भोग योग्य, सुखजनक नाना पदार्थ भली प्रकार बनाओ। हे नायक पुरुषो! आप लोग रथ प्राप्त करने के लिये और अश्व प्राप्त करने के लिये भोग योग्य धन पैदा करो। बन्धु और उससे भिन्न शत्रु को भी संग्रामों में जीत लेने वाले विजय देने वाले हमारे धन सामग्री का सब दिन सब कोई आदर करे।

ऋ॒भु॒क्षण॒मिन्द्र॒मा हु॑व ऊ॒तय॑ ऋ॒भून्वाजा॑न्म॒रुतः॒ सोम॑पीतये।
उ॒भा मि॒त्रावरु॑णा नू॒नम॒श्विना॒ ते नो॑ हिन्वन्तु सा॒तये॑ धि॒ये जि॒षे॥४॥

भा०—ज्ञान और रक्षा के लिये मैं सत्य ज्ञान से प्रकाशमान विद्वान् पुरुषों के बसाने वाले उनके आश्रय, अति तेजस्वी पद पर विराजमान आचार्य और राजा को 'इन्द्र' स्वीकार करता और कहता हूँ और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये अति बल से और सत्य ज्ञान से प्रकाशित शक्तिशाली और विद्वान पुरुषों को वेगवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् और वायु के समान बलवान् विद्वान रूप से प्राप्त करूं। दोनों स्नेही मित्र और सर्वश्रेष्ठ अश्वारोही राजा और सेनापति, देह में प्राण और अपान गृह में दोनों स्त्री पुरुष वे सब सुखों को प्राप्त करने, ज्ञान और कर्मों के सम्पादन करने और शत्रुओं को विजय करने के लिये हमें प्रेरित करें।

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ५।३२॥

भा०—बड़े भारी धन, बल और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाला तेजस्वी पुरुष पोषण करने, यज्ञ करने और संग्राम करने के लिये शत्रुओ का नाश करे और हमें खूब तीक्ष्ण करे और संग्रामो का विजय करने हारा पुरुष बलवान्, वेगवान् होकर हमारी रक्षा करे। शेष पूर्ववत्। इति द्वात्रिंशो वर्गः।

[११२]

कुत्स आंगिरस ऋषिः ॥ आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ द्वितीयस्य अग्निः शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०, २१, २२ निचृज्जगती । ४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती । १९ विराड् जगती । ३, ५, २४ विराट् त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । २५ त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१॥

भा०—मैं भूमि और सूर्य के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों का वर्णन करता हूं। प्रथम चयन की हुई इष्टि अर्थात् याग साधन के लिये जिस प्रकार प्रदीप्त कान्तिमान अग्नि को यजमान और उसकी पत्नी दोनों प्राप्त करते हैं उसी प्रकार सूर्य और पृथिवी के समान प्रजावर्ग दोनों पूर्व के विद्वानों और विजयशील राजाओं द्वारा सञ्चित ज्ञान और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये राज्य तन्त्र के व्यवस्थापन के कार्य और शत्रु पर प्रयाण करने के कार्य में अन्धकार मय मार्ग में दीपक के समान पहले ही से समस्त बातों के जान लेने के लिये अति तेजस्वी, उत्तम, प्रजा को अच्छा लगने वाले कान्तिमान्, मनोहर अग्रणी नायक पुरुष को प्राप्त करते हैं। हे राज प्रजावर्गो! हे स्त्री पुरुषो! आप दोनो जिन रक्षाओं के निमित्त

या जिन-रक्षा, साधनों से युक्त होकर संग्राम में अपने भाग को प्राप्त करने के लिये कार्यकुशल पुरुष को सुप्रसन्न करते और उसकी शरण जाते हो उन रक्षा आदि साधनों से ही आप दोनों अच्छी प्रकार आओ।

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

भा०—उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने हारे, विषय भोगादि से आसक्त न होने वाले त्यागी जिज्ञासु पुरुष ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार ज्ञान के उत्तम प्रवक्ता के पास उपस्थित होते हैं उसी प्रकार उत्तम रीति से युद्ध करने वाले या उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन शत्रुओं के नाश करने और ऐश्वर्य के दान लेने के लिये तुम दोनों विजयशील रथ-बल पर अथवा आप दोनों के स्थायी राज्यशासन पर आश्रय करते, स्थिरता प्राप्त करते हैं। उस समय हे राष्ट्र के भोक्ता दो मुख्य अधिकारियो, राजा अमात्य, राजा रानी, राजा सेनापति आदि युगल पुरुषो! आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों से परस्पर की संगति के कार्य में धारण करने योग्य प्रजाओं की रक्षा करते हो उन ही उपायों से आप दोनों हमें सुखपूर्वक प्रसन्नता से प्राप्त होवो।

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

भा०—उस उत्तम तेजस्वी, अमर आत्मा के उत्तम शासन में जिस प्रकार प्रजाओं-देहों में प्राण और अपान दोनों रहते हैं और अन्यों से न प्रेरित होने वाली, अदम्य या नित्य, वाणी को बलवान् बनाते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों भी ज्ञानप्रकाश में कुशल अमर अविनाशी परमेश्वर के उत्तम शासन में बलपूर्वक प्रजाओं के बीच में निवास करो। इसी प्रकार हे मुख्य राजा रानी, राजा अमात्य, राजा सेनापति

आदि युगलो ! आप दोनो भी राजसभा मे कुशल दीर्घजीवी, अमर यशस्वी सबके उत्तम शासन या आदेश के भीतर उन प्रजाओं के हित के लिये उनके बीच मे निवास करो। आप दोनो अयोग्य पुरुषो से शासन न होने योग्य, अथवा पूर्व कुछ भी पुत्र रत्नादि न उत्पन्न करने हारा। धारण करने योग्य, वाद मे गर्भ धारण करने मे समर्थ, कुमारी कन्या या गौ के समान अन्नादि रत्नो को दान कराने वाली भूमि को नाना ऐश्वर्यों से सेचन करते हो. उन रक्षादि उपायो से आप अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

'अस्वं धेनुम्'—इस असू धेनु का विवरण देखो अथर्ववेद मे वशा सूक्त।

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

भा०—सर्वत्र सब पदार्थों को अपने वेग से उथल पुथल और प्रेरित करने में समर्थ वायु अपने से उत्पन्न अग्नि के बल से पृथिवी और आकाश दोनो को धारण करने वाला और अति वेगवान् पदार्थों मे सब से अधिक शीघ्रगामी होकर रहता है। उसी प्रकार सब तरफ़ आक्रमण करने हारा दिग्विजयी पुरुष अपने राज्यप्रसारक सैन्य-बल के बल से राज-वर्ग और प्रजा-वर्ग दोनों पर शासनकारी या माता पिता दोनो को आदर करने वाला और हिंसाकारी शत्रुओं पर वेग से आक्रमण करने वाला या सूर्य के समान वेगवान् तेजस्वी होकर जिन नाना रक्षादि व्यवहारो से विशेष शोभा को धारण करता है। और जिन उत्तम उपायो से कर्म, उपासना और विज्ञान इन तीनों की विद्या अर्थात् त्रैविद्या, वेदों को जानने वाला अथवा अरि, मित्र और उदासीन तीनो को अपने वश करने वाला, विलक्षण, अतिचतुर, कुशल, विद्वान् होता है अथवा जिनसे माता, पिता और गुरु का मान्यकर्त्ता पुरुष विद्वान् हो जाता है। उनही उपायों सहित हे अश्विगणो हमारे समीप आओ।

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उदन्दनमैरयतं स्वर्दृशे। याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥ २३॥

भा०—हे विद्वान् आचार्य और शिक्षक पुरुषो ! माता, पिता और योग्य स्त्री पुरुषो ! आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों और ज्ञान वाणियों से स्तुतिशील, सब प्रकार से अपनाये हुए, विनीत एवं उपवीत अथवा सब कष्टों, अज्ञानों या दुःखों से घिरे हुए शुद्धाचारी, अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को परम ज्ञानमय परमेश्वर या परम सुख का दर्शन करने के लिये उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हो, उसे ऊंचा उठाते और जिन ज्ञान, रक्षा आदि उपायों से ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को और आगे बढ़ाते हो, उन उपायों से हमें भी प्राप्त होवो।

परमेश्वरपक्ष में—प्राण और अपान दोनों वासनाओं से वा अज्ञान से घिरे, कर्म॰ बंधनों में बंधे स्तुतिकर्त्ता उपासक आत्मा को परमात्मा के दर्शन के लिये ऊपर उठाते हैं। राजा और सेनापति प्रार्थना करने वाले, शत्रुओं के कारागार मे बंधे और बन्दी बने हुए पुरुष को उबारते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

याभि॒रन्त॑कं॒ जस॑मान॒मार॑णे भु॒ज्युं याभि॑रव्य॒थिभि॑र्जिजि॒न्वथुः॑ ।
याभिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒य्यं॑ च॒ जिन्व॑थ॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् ॥६॥

भा०—प्रत्यक्ष आमने सामने शत्रु सेना के आजाने पर होने वाले युद्ध में शत्रुओं पर आघात करने वाले प्रजा के दुःखों और शत्रुओं का अन्त कर देने वाले पुरुष को जिन उपायों से और प्रजा के पालक, बड़े ऐश्वर्य के भोक्ता सम्पन्न पुरुष को जिन पीड़ा या कष्ट से बचाने वाले उपायों से प्रसन्न और पुष्ट, सन्तुष्ट करते हो और जिन उपायों से कर्मकर शिल्पियों को भृति आदि द्वारा बांधने वाले, बड़े एञ्जिनीयर और वस्त्रादि बनाने वाले, शिल्पज्ञ, उत्तम कारीगरों को सन्तुष्ट करते हो, हे पूर्वोक्त राजप्रजावर्गो ! आप दोनों उन उपायों से एक दूसरे के उपकारक होवो।

याभिः॑ शु॒चन्तिं॑ धन॒सां सु॑षं॒सदं॑ त॒प्तं घ॒र्मम्ो॒म्याव॑न्त॒मत्र॑ये ।
याभिः॒ पृश्नि॑गुं पुरु॒कुत्स॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! राजा और विद्वान् जनो! जिन उपायों से प्रजाजनो के हृदयो को और नगरों की निवास भूमि को शुद्ध पवित्र करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनो को, ऐश्वर्यों के दान देने वाले उत्तम सभा के अध्यक्ष को, सन्तप्त पुरुष को और तेजस्वी पुरुष को इस राष्ट्र मे वसनेवाले जन समूह के हित के लिये सब प्रकार से सुरक्षित करते हो। और जिन उपायों से नाना प्रकार की गौओ के पालक या अन्तरिक्ष मे जाने वाले वैमानिक वर्ग और नाना शस्त्रास्त्रो के स्वामी, शस्त्रागार के रक्षक वर्गों की और उनके रक्षक सेनापति की रक्षा करते हो उन सब उपायों सहित तुम दोनो हमे प्राप्त होवो।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥८॥

भा०—जिन रक्षा आदि उपायो से, शक्तिशाली सेना और वेद-वाणियों और उत्तम कर्मों से हे समस्त सुखों के वर्षा करने हारे सभा-सेनाध्यक्षो! आप दोनों धर्म-मार्ग से पराङ्मुख जाने वाले चक्षुर्हीन, अन्धे, अज्ञानी पुरुष को सम्यग् दर्शन करने के योग्य अच्छी प्रकार बना देते हो और जिन उत्तम कर्मों से पङ्गु, लगड़े को चलने मे अच्छी प्रकार समर्थ कर देते हो। और जिन शक्तियो से आप दोनों ठगों की शिकार बनी बटेरी के समान अति दीन प्रजा को ठगों और शत्रुओं से छुड़ाते हो उन उन उपायो से युक्त आप दोनों हमे भी प्राप्त होइये।

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥९॥

भा०—जिन विज्ञान, दीप्ति आदि उपायों और प्रयोगों से अन्न और जल से बने गतिशील प्राण का स्वयं ज्ञान करते हो और अन्यों को उसका अनुभव कराते हो। अथवा जिन उपायों से समुद्र के समान आनन्द-रसो के सागर महान् आत्मा को मधुर रस से पूर्ण रूप मे जान लेते हो, और आप दोनो कभी स्वयं जीर्ण न होकर प्राण अपान रूप से जिन

उपायो से सब प्राणो मे मुख्य रूप से बसने वाले आत्मा को बल प्रदान करते हो । और जिन उपायो से आप दोनों बलशाली विज्ञान शास्त्रों के सुनने वाले, अतिविद्वान् अथवा गुरुमुख से श्रवण करने योग्य वेदोपदेश के स्वामी सब लोगो के हितकारी पुरुप के समान वाणी के स्वामी, श्रोत्र के स्वामी और शरीर के नायक अन्य प्राणो के स्वामी आत्मा को सब प्रकार से रक्षा करते हो उन उपायो से हे प्राण और अपान ! हमारे पास भी आओ और हमे ज्ञान प्राप्त कराओ ।

विद्वानो और शिल्पियो के पक्ष मे—जिन विज्ञान के उपायो से समुद्र को भी मधुर सुखदायी बनाते हो या जिन उपायो से जल मे भरे समुद्र के पार जाते हो, जिन उपायो से सबसे श्रेष्ठ राजा को प्राप्त होते हो, जिन उपायों से बलवान्, वेगवान् नरो के नायक पुरुप को प्राप्त होते हो, उन्हीं सब उपायों, ज्ञानो सहित हमे प्राप्त होवो ।

याभिर्विश्पलां धनुसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१०॥३४

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! जिन विज्ञान के उपायों से ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली, कभी न मारी जाने वाली, दृढ़, प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप मे स्वीकार करने वाली विशाल सेना या सेना-पति को सहस्रों सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले संग्राम मे तृप्त करते हो अर्थात् सेनाओं को शस्त्रास्त्र, रथ आदि आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करते हो और जिन उपायो और क्रियाओं सहित राष्ट्र पर वश करने वाले अश्व सेनाओं के स्वामी, सबके आज्ञापक सेनापति को प्राप्त होते हो । उन सहित ही हमे भी प्राप्त होवो ।

अध्यात्म मे—प्राण, अपान जिन सामर्थ्यों से अन्तःप्रविष्ट प्राणों के पालक, ऐश्वर्यों के भोक्ता अविनाशी आत्मा को तृप्त और सुखी करते हैं, वे दोनों जिन बलों से सबके वशी, प्राणो के पति सबके प्रेरक आत्मा को प्राप्त हों उन सामर्थ्यों से हमे भी प्राप्त हों । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

भा०—हे उत्तम रीति से देने हारे विद्वान् शिल्पियो ! जिन उपायों और साधनो से विद्वान् पुरुष के सन्तानों के लिये, व्यवहारशील वैश्य प्रजावर्ग के लिये दीर्घ काल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले अथवा बहुत अधिक ज्ञान, धनादि के स्वामी के हित के लिये मेघ के समान राजा और विद्वान् गुरु का धन और ज्ञान का अक्षय कोश मधुर जल के समान ज्ञान और सुख का वर्षण करते हो और जिन साधनों सहित आप दोनों सर्व सहायको से युक्त स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुष को प्राप्त हैं उनके सहित हमें भी प्राप्त होइये ।

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२

भा०—जिन विज्ञान युक्त साधनो से पृथ्वी को तथा नदी को जल के प्रवाह से आप दोनो मेघों के समान पूर्ण कर देते हो और जिन विज्ञान साधनों से बिना घोडे के रथ को विजय करने के लिये यन्त्रादि साधनों से अच्छी प्रकार चला देते हो तीनों भुवनों में तेजस्वी गुण, कर्म, स्वभाव तीनो मे उज्वल पुरुष, अथवा अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों तेजों को जानने हारे वैज्ञानिक, अग्नि, जल, विद्युत् तीनों के तत्वज्ञ पुरुष जिन उपायों से ऊपर जाने वाली जलधाराओं, किरणों और विद्युत् धाराओं को उठाने मे समर्थ होते हैं उन सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१३॥

भा०—जिन साधनो और उपायों से ज्ञान को धारण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त होते हो या जिन उपायों से इस समस्त विश्व के धारक सूर्य का सब प्रकार से ज्ञान करते हो और जिन

उपायो से खेतों, भूमियों अन्नो, जीवों के उत्पादक स्थावर जंगम की उत्पादकभूमियों का ज्ञान करते हो और जिन उपायों से अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम तीनों को प्राप्त होने वाले कृषिज्ञ, वणिक् और योद्धा पुरुष को प्राप्त होते और उसकी रक्षा करते हो उन सब साधनों से आप दोनो मुख्य और गौण शिल्पी आदि विद्वान् जन हमें भली प्रकार प्राप्त हो।

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शंबरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१४॥

भा०—जिन रक्षा साधनो और उपायों से आप दोनों मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न कर देने वाले सूर्य और वायु के समान प्रजा के शान्ति सुख के नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के कार्य में बड़े भारी अतिथिजनों के आश्रय और उनके प्रेम और सत्कार से प्राप्त होने वाले, उनको अर्घ पाद्य, आचमनीय आदि जलों द्वारा तृप्त करने वाले और प्रजा को भी कूप, नहर आदि द्वारा वर्षा धाराओं से मेघों के समान तृप्त करने वाले सूर्य के समान तेज, ज्ञान प्रकाश के देने और धारण करने वाले पुरुष को प्राप्त होते हो। शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि युद्ध कार्य में जिन साधनों से दुष्टों के हराने वाले वीर पुरुषों को प्राप्त होते हो इन ही साधनों सहित हमें भी प्राप्त होवो।

याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१५॥३५॥

भा०—जिन उत्तम साधनो और साधनाओं से वैद्यजन वमन करने वाले और विविध ओषधादि रसों के पालक पुरुष की रक्षा करते हैं उसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त प्रशंसित वमन अर्थात् प्राप्त ज्ञान को अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले गुरु और विविध विद्याओं के ज्ञान-रस को पान करने वाले शिष्य की रक्षा करते और उनको प्राप्त होते हो और जिन साधनों से ज्ञानवान, नव वधू को प्राप्त करने वाले पुरुष को अथवा धन-राशियों को गिनने में कुशल धन को अपनी स्त्री के समान पालने

वाले धनाढ्य पुरुष की रक्षा करते हो और जिन उपायो से और अश्व के मर जाने पर केवल रथ वाले, असहाय पुरुष और विविध अश्वों और अश्वारोही जनो के स्वामी और अति विस्तृत राष्ट्र के स्वामी की सेवा, परिचर्या करते हो। उन सब साधनों से आप हमें भी प्राप्त होवो। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

याभि॒र्नरा॑ श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभिः॑ पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथुः॑।
याभिः॒ शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम्॥१६॥

भा०—जिन ज्ञान-साधनो और रक्षा के उपायो सहित हे नायक पुरुषो! आप दोनो सुख से सोते हुए प्रजाजन और सबको शान्तिदायक सुख से शयन कराने वाले राजवर्ग को विविध दुःखो से रहित और इस राष्ट्र मे शासक रूप से विद्यमान, मननशील पुरुष और प्रजापति राजा को जाने के मार्ग, विज्ञान, भूमि आदि प्राप्त कराते हो। जिन उपायो सहित बाणो की पंक्तियो और शरधारी या शत्रुहन्ता सेनाओ को किरणों से ओत-प्रोत, सूर्य के समान तेजस्वी और प्रजाओ के शासन मर्यादाओं को बाधने वाले शासक पुरुष की रक्षा और राष्ट्र-हित के लिये शत्रुओ की तरफ चलाते हो, उन साधनो सहित हमे भी प्राप्त होवो।

याभिः॒ पठ॑र्वा॒ जठ॑रस्य म॒ज्मना॒ग्निर्नादी॑देच्चि॒त इ॒द्धो अ॒ज्मन्ना।
याभिः॒ शर्या॑त॒मव॑थो महाध॒ने ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम्॥१७॥

भा०—जिन साधनों और रक्षा के उपायों सहित भुक्त पदार्थों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले पेट की सब कुछ पचा लेने वाली आग के समान वीर तथा धर्मात्मा राजा सब भुक्त अर्थात् अधीन देशो को महान् बल से चमकाता है और जिन साधनो से युक्त होकर सञ्चित काष्ठो में लगे और भडके हुए चिताग्नि के समान जलते हुए संग्राम में वीर भटो को अपने तेज से भस्म करने वाला, पठनशील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाले आचार्य और वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति आगे बढ़ता है और जिन साधनों से युक्त होकर संग्राम मे हिंसक पुरुषों

पर चढ़ाई करने वाले शरों और शाखाओं सहित आक्रमण करने वाले सेनापति की रक्षा करते हो उनके सहित होकर तुम दोनों नायक पुरुष हमें भी प्राप्त होवो। पठर्वा—पतद् अर्वा। पृषोदरादित्वात् साधुः। ठत्वं छान्दसम्। पठतो ऋच्छति वा।

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८

भा०—हे विद्वन्! जिनके द्वारा ज्ञानपूर्वक तू अन्यों को ज्ञान कराता है। हे सेनाध्यक्ष और सैनिक जनो! आप दोनों जिन उपायों और रक्षा-साधनों से खूब युद्ध करने में समर्थ होते हो और जिन उपायों से आप दोनों सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में सूर्य और विद्युत् के समान तथा ज्ञान वाणियों को विशद ज्ञान करने कराने के लिये गुरु शिष्य के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को विविध प्रकार से प्राप्त करने के लिये मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो। जिन साधनों से मननशील या शत्रुओं के रोकने और थामने में समर्थ, मुख्य युद्ध विद्या के ज्ञाता, शूरवीर सेनापति को प्रेरने योग्य बाण आदि तथा सेना आदि बल से अच्छी प्रकार रक्षा करते हो उन रक्षा-साधनों सहित हमें प्राप्त होवो।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १६

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग जिन उत्तम ज्ञानपूर्वक किये रक्षा-साधनों से विविध प्रकार के आनन्द प्राप्ति के लिये पतियों के साथ यज्ञ द्वारा संयोग करने वाली पत्नी जनों को विवाहित करते या गृहस्थ में प्रवेश कराते हो और जिन उपायों से तेजस्विनी, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा प्रदान करते हो और जिन उपायों से उत्तम दानशील पुरुष को उत्तम देने योग्य ज्ञान और द्रव्य प्राप्त कराते हो उन उपायों सहित आप दोनों हमें भी प्राप्त होवो।

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावती सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २०।३६

भा०—हे दो मुख्य अधिकारियो ! राजा, अमात्य आदि जनो ! तुम दोनो ! जिन रक्षासाधनो और उपायो से नित्य ज्ञान और द्रव्य के देने वाले प्रजाजन और विद्वान् जन के हित के लिये शान्ति और सुख-कारक होते हो और जिन उपायो और साधनो से सुख सामग्री, ऐश्वर्य के भोक्ता और पालक पुरुष की रक्षा करते हो, जिनसे पृथ्वी के स्वामी अध्यक्ष ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करते हो और सत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष और सत्य ज्ञान और अन्न के धारण करने वाली रक्षणशील पुरुषों की उत्तम विद्या या नीति से युक्त उत्तम रीति से प्रजा के भरण पोषण करने वाली नीति की जिन उपायो से रक्षा करते हो उन उपायो से आप हमे प्राप्त होवें । इति षट्त्रिंशो वर्गः ।

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२१॥

भा०—जिन रक्षा साधनों, ज्ञानपूर्वक उपायो और नीतियो से आप दोनों अग्नि के समान तेजस्वी तथा शत्रु पक्ष को कृश, दुर्बल करने वाले सेनापति पुरुष की शत्रुओं को उखाड फेंकने के संग्राम आदि कार्य मे परिचर्या करते हो, उसके अधीन रहकर उसकी आज्ञा पालन करते हो और वेग के संग्राम और शीघ्र गमन आदि कार्य मे जिन उपायों से जवान पुरुषों और वेगवान् अश्वों और अश्वारोही सेनादल की रक्षा करते हो और जिन उपायों से वेग मे आगे बढने वाले वीरो को मधु मक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले प्रिय अन्न प्रदान करते हो उन उपायों सहित हमे प्राप्त होवो ।

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २२

भा०—हे मुख्य पुरुषो ! आप दोनों जिन उपायों से नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य संग्राम में भूमियों के विजय के लिये युद्ध करने वाले वीर नायक पुरुष को बढ़ाते हो और जिन साधनों से खेत के समान सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री और पुत्र के लाभ करने के निमित्त पुरुष को प्रसन्न और शक्तिशाली करते हो, जिन उपायों से हमारे रथों की रक्षा करते हो और जिन उपायों से अश्वों और रथारोही, अश्वारोही पुरुषों की रक्षा करते हो उन्हीं सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २३

भा०—जिन साधनों से ऐश्वर्य के अर्जन करने और शत्रु का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष के शस्त्रास्त्र, सेनाबल की आप दोनों सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्मों से युक्त होकर रक्षा करते हो और जिन उपायों से शत्रु के नाशक और शत्रुओं का वध करने वाले की खूब अच्छी प्रकार रक्षा करते और उसको आगे बढ़ाते हो जिन उपायों से शत्रु के नगरों को ध्वंस करने वाले और बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो उन उपायों सहित हमें प्राप्त होवो ।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! या दो मुख्य पुरुषो ! सभासेनाध्यक्षो ! .प दोनों हमारे हित के लिये उत्तम कर्म या क्रियायोग का उपदेश ने वाली वाणी का उपदेश करो । हे दुःखों, दुष्ट पुरुषों और शत्रु का न .। करने हारे मुख्य पुरुषो ! हे सुखों का वर्षण करने वाले और व न पुरुषो ! आप दोनों हमारे हित के लिये उत्तम कर्मों का उपदेश करने वाली बुद्धि या मानस शक्ति या प्रेरणा को करो । तुम दोनों को मैं प्रकाशरहित अन्धकारमय मार्ग में प्रकाश करने के लिये और द्यूत आदि छल

कपट के व्यवहार से रहित धर्ममार्ग में गमन कराने के लिये नित्य बुलाता हूं। आप हमें ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम के विजय कार्य में वृद्धि करने के लिये समर्थ होवो।

द्युभि॑र॒क्तुभिः॒ परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥२५॥३७॥७॥

भा०—हे दो मुख्य पुरुषो ! आप दोनों हमारी सब दिनों और रातों में न नाश करने योग्य, कल्याणकारी, उत्तम उत्तम ऐश्वर्यों से सब प्रकार से रक्षा करो। शेष पूर्ववत्। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः।

अथाष्टमोऽध्यायः।

[११३]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ १—२० उषा देवता। द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि ॥ छन्दः—१, ३, ९, १२, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ७, १८—२० विराट् त्रिष्टुप्। २, ५ स्वराट् पङ्क्तिः। ४, ८, १० ११, १५, १६ भुरिक् पङ्क्तिः। १३, १४ निचृत्पङ्क्ति। विंशत्यृच सूक्तम् ॥

इ॒दं श्रेष्ठं॒ ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रागा॑च्चि॒त्रः प्र॑के॒तो अ॑जनिष्ट॒ विभ्वा॑। यथा॒ प्रसू॑ता सवि॒तुः स॒वायँ॑ ए॒वा रात्र्यु॒षसे॒ योनि॑मारैक् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री पुत्रोत्पादक पुरुष के पुत्र के उत्पन्न करने के लिये गर्भाशय को रिक्त करती है। अथवा उत्पादक पति के ऐश्वर्य वृद्धि और कामना करने योग्य पति के वसने के लिये गृह को बनाती है और जिस प्रकार रात्रि सूर्य के उत्पन्न या उदय होने के लिये और उषाकाल के लिये स्थान प्रकट करती है। उसी प्रकार समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली समस्त जीवों को रमण कराने वाली, प्रलय दशा, सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर के ऐश्वर्य तथा सामर्थ्य को प्रकट करने के लिये और उसी प्रकार दिन में सन्धि वेला के समान सर्ग और प्रलय

के बीच के सन्धि वेला को प्रकट करने के लिये भी आश्रय रूप काल को प्रकट करती है। और जिस प्रकार समस्त तेजस्वी पदार्थों में उत्तम तेजस्वी सूर्य उदय होता है अद्भुत या चेतना या चिद् रूप में रमण करने वाला उत्तम ज्ञानवान् पुरुष महान् परमेश्वर के साथ मिलकर सुख, ऐश्वर्य और आनन्द से युक्त हो जाता है यह साक्षात् सर्वश्रेष्ठ सब ज्योतियों में परम ज्योति, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म प्रकट होता है।

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

भा०—लाल बछड़े वाली लाल गाय या श्वेत वर्ण की गौ के समान अति देदीप्यमान सूर्य रूप बछड़े को साथ लिये हुए लाल आभा वाली उषा आती है। और फिर इसी के स्थानों पर काली वर्ण वाली गौ के समान काली अन्धकार वाली रात्रि भी आती है या काली अन्धकार वाली रात्रि उसके लिये स्थान त्यागती अर्थात् प्रदान करती है। उसको अपना विश्राम स्थान देकर चली जाती है। दिन और रात्रि दोनो समान पद के स्नेह मे वधे हुए दो सहोदर भाई या मित्र या बहनो के समान रहती हुई कभी नाश न होने वाली एक दूसरे के पीछे आती हुई अपने अपने प्रकाश सूर्य और चन्द्र नक्षत्रादि के प्रकाशों से प्रकाशित होती हुई परस्पर एक दूसरे को दूर हटाती हुई एक दूसरे का नाश करती हुई अपना अपना स्वरूप प्रकट करती हैं।

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

भा०—दो बहनो या दो भाई बहनो के समान एक साथ विचरने ले दिन और रात्रि दोनो का मार्ग एकसा और अनन्त है। वे दोनो न गुरु से अनुशासित दो शिष्यों के समान, राजा से आज्ञा किये दो भृत्यों के समान, देव अर्थात् प्रकाशमान सूर्य से शासित होकर या परमेश्वर के शासन में स्थित होकर एक दूसरे के पीछे होकर चलते हैं।

वे दोनो सुन्दर अंगो वाले भाई बहनों के समान परस्पर संग भी नहीं करते, एक स्थान पर ठहरते भी नहीं। वे दोनो एक समान चित्त वाले दो मित्रों के समान होकर भी एक दूसरे से भिन्न रूप वाले तमः और प्रकाशस्वरूप हैं।

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ४॥

भा०—उत्तम कान्तिवाली, उत्तम धन, ज्ञान, यश और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली, विविध व्यवहार और कान्तियो से चित्र एवं पूजनीय विदुषी के समान प्रतीत होती है। जो हमारे लिये गृह के द्वारो के समान दुःखो के वारक साधनो या तमो विनारक प्रकाशो को विशेष रूप से प्रकट करती है। वह समस्त जगत् को हमारे अर्पण करके हमारे लिये ऐश्वर्य प्रकाशित करती है और समस्त लोको को अपने भीतर ले लेती है।

जिह्मश्ये३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥५॥१॥

भा०—सब पापों को भस्म कर देने वाली उषा किसी पुरुष को टेढ़े मेढे सोने के लिये और किसी को उठकर काम पर जाने के लिये और किसी को सब प्रकार के भोग सुखों को प्राप्त करने और किसी को यज्ञ दान करने के लिये और किसी को धन प्राप्त करने के लिये और अति सूक्ष्म पदार्थों या सूक्ष्म तत्व को या भीतरी दहराकाश को देखने वाले अध्यात्म साधकों को उस महान् परमेश्वर का विशेष रूप से साक्षात् कराने के लिये समस्त लोकों को प्रकट करती है या जगा देती है। इति प्रथमो वर्गः॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥ ६॥

भा०—प्रभात एक को धन, राज्यैश्वर्य प्राप्त करने के लिये एक को अन्न तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक को बड़े भारी यज्ञ करने के लिये

और एक को धनादि प्राप्त करने के लिये और नाना प्रकार के जीवनोपायों को प्रकट करने के लिये समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को व्यापती और प्रकट करती है।

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥

भा०—यह सूर्य की पुत्री के समान उषा, शुद्ध प्रकाश को धारण करती हुई विविध प्रकाशों को प्रकट करती हुई दिखाई देती है। वह मानो समस्त पृथ्वी पर के ऐश्वर्य की स्वामिनी है। हे उत्तम ऐश्वर्य वाली विदुषी के समान प्रभातवेले! तू आज इस जगत् मे विविध गुणों के समान प्रकाशों को प्रकट कर। युवती कन्या विद्वान् तेजस्वी कामना युक्त पुरुष की इच्छा पूर्ण करने वाली होने से 'दिवः दुहिता' है। शुद्ध वीर्यों या वस्त्रों को धारण करने से 'शुक्रवासा': है। ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती होने से 'सुभगा' है।

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

भा०—यह उषा पूर्व की गुजरी हुई उषाओं के मार्ग का अनुसरण करती है और अनन्त काल तक आगे आने वाली उषाओं मे से सबसे पहली है। वह प्रकट होती हुई प्राणी ससार को जगाती, उठाती हुई मानो किसी भी मरे मुर्दे पुरुष को जगाती, चेतन करती हुई सी प्रकट होती है। इसी प्रकार विदुषी स्त्री अपने से पूर्व की या परम पद परमेश्वर को प्राप्त होने वाली विदुषी स्त्रियों के चले मार्ग का अनुगमन करे। आगे आने वाली, अपने से छोटे उम्र की स्त्रियों मे प्रमुख रहे। पुरुष को उन्नति मार्ग में प्रेरित करती हुई, अपने गुणों को प्रकाश करती हुई, मुर्दे मे जान सी फूंकती हुई अकर्मण्य पुरुष को भी कर्मण्य और साहसी बनावे।

उषो यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य ।
यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्न॑: ॥ ९ ॥

भा०—हे उषः ! जो तू अच्छी प्रकार प्रकाशित करने के लिये अग्नि अर्थात् सूर्य को उत्पन्न करती है और सूर्य के प्रकाश से जो तू विविध पदार्थों को प्रकट करती है । और जो तू यज्ञ करने वाले मनुष्यों को व्यापती है, उनको प्रेरित करती है वह तू विद्वान् पुरुषों में सुखकारी, उत्तम कार्य करती है ।

स्त्री के पक्ष मे—स्त्री यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करती है, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ज्ञान प्रकाश से सब पदार्थों का ज्ञान कराती और गृहस्थादि यज्ञ के करनेवाले पुरुषों को उबारती है । इन कार्यों से वह विद्वानों के बीच उत्तम सुखकारी कार्य को करती है ।

किय॒ात्या यत्स॒मया॒ भवा॑ति॒ या व्यू॒षुर्याश्च॑ नू॒नं व्यु॒च्छान् ।
अनु॒ पूर्वा॑: कृपते वावशा॒ना प्र॒दीध्या॑ना॒ जोष॑म॒न्याभि॑रेति ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—जो उषाएं प्रकट हुईं और जो अभी तक प्रकट हो रही हैं वे सब कितने काल तक ही रहती हैं ? अर्थात् उनका स्थितिकाल दीर्घ नहीं होता । यह उषा भी दीप्तिमती होकर पूर्व की उषाओं के समान ही प्रकट होती है और अच्छी प्रकार गुण रूप किरणों से चमकती हुई आगे आने वाली अन्य उषाओं से अनुकरण की जाती है । ठीक इसी प्रकार जो स्त्रिया पतियों के साथ रहती है, जो अपने यौवनादि गुणों को प्रकट करती हैं, उनमें से प्रत्येक स्त्री का उषाकाल अर्थात् कमनीय कन्या रहने का काल कितनी देर है ? अर्थात् बहुत न्यून है । पति की कामना करती हुई वह अपने से पूर्व की स्त्रियों के चले सन्मार्ग पर उनका अनुकरण करती हुई कार्य करने में समर्थ होती है और स्वयं गुणों मे उज्वल होकर अन्य स्त्रियों सहित प्रेम को प्राप्त होती है । इति द्वितीयो वर्गः ।

ई॒युष्टे ये पूर्व॑तरा॒मप॑श्यन्व्यु॒च्छन्ती॑मु॒षसं॒ मर्त्या॑सः ।
अ॒स्माभि॑रू॒ नु प्र॑ति॒चक्ष्या॑भू॒दो ते य॑न्ति॒ ये अ॑प॒रीषु॒ पश्या॑न् ॥ ११ ॥

भा०—जो मनुष्य पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा को देखते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं। जो आगे आने वाली उषाओं में भी पूर्व की खिली उषा को देखें वे भी सुख को प्राप्त होते हैं। हमें भी वह प्रत्यक्ष साक्षात् हो। हम भी सुख को प्राप्त हों।

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभात वेला के समान तेज और कान्ति को धारण करने वाली स्त्री ! तू समस्त अप्रीतिकारक, द्वेषोत्पादक कर्मों को दूर करती हुई, सत्य व्यवहार को पालन करने वाली सत्य व्यवहार, ज्ञान, यज्ञ, अन्न और ऐश्वर्य के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली, उत्तम सुखों को देने वाली और उत्तम शुभ वाणियों को उच्चारण करती हुई, विद्वानों की उपदिष्ट विशेष नीति या कान्ति या धारण करने योग्य यज्ञोपवीत आदि चिह्न को धारण करती हुई यहां, इस गृह में आज सबसे उत्तम स्त्री होकर प्रकट हो। विवाहादि में कन्या 'सुमङ्गली' होती है। वह गोभिल के अनुसार यज्ञोपवीतिनी होती है।

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥

भा०—कमनीय गुणों से युक्त पापों को नाश करती हुई उषा के समान उत्तम गुणों से युक्त स्त्री निरन्तर पहले के समान विविध गुणों को प्रकट करे और सुख पूर्वक निवास करे, और वह अब भी ऐश्वर्य से युक्त होकर इस लोक तथा पतिगृह को प्रकाशित करे। और वह आगे आने वाले दिनों में भी विशेष गुणों को प्रकाशित करे और जरा अर्थात् आयु की हानि न करती हुई मृत्यु के दुःखों से रहित होकर आत्मरूप से अपने को अमृत जानती हुई स्वयं धारण किये धर्मों, उत्तम पदार्थों तथा 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करने वाले अन्न आदि पदार्थों सहित जीवन सुख-प्राप्त करे। उषा काल रूप से या प्रवाह से अजर, अमृत और नित्य है।

व्य॑ञ्जिभिर्दि॒व आता॑स्वद्यौ॒दप॑ कृ॒ष्णां नि॒र्णिजं॑ दे॒व्या॑वः ।
प्र॒बो॒धय॑न्त्यरु॒णेभि॒रश्वै॒रोषा या॑ति सु॒युजा॒ रथे॑न ॥ १४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार सूर्य के किरणों से दिशाओ में विशेप रू से प्रकाश करती है उसी प्रकार कमनीय स्त्री भी अपने तेजस्वी पति के ज्ञानप्रकाशक विशेष गुणो से समस्त क्रियाओ और विद्याओं में विशेष रूप से चमके। प्रकाश करने वाली उषा जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार-मय रूप को दूर कर देती है या रात्रि को दूर करके सब पदार्थों के उज्वल रूप को प्रकट करती है उसी प्रकार उत्तम स्त्री भी राजस, तामस और मलिनता को दूर करके अपने शुद्ध कान्तिमय सुन्दर रूप को प्रकट करे, स्वच्छ रहे। उषा जिस प्रकार अरुण किरणों से सबको जगाती हुई उत्तम सहयोगी आदित्य के साथ गमन करती है उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त कन्या भी अपने अनुराग युक्त गुणों से सबको उत्तम ज्ञान कराती हुई और लाल घोडो सहित जुते हुए रथ से तथा अनुराग युक्त होकर संसार मार्ग मे यात्रा करे।

आ॒वह॑न्ती॒ पोष्या॒ वार्या॑णि चि॒त्रं के॒तुं कृ॑णुते॒ चेकि॑ताना ।
ई॒यु॒षी॑णामुप॒मा शश्व॑तीनां विभाती॒नां प्र॑थ॒मोषा व्य॑श्वैत् ॥१५॥३॥

भा०—उषा जिस प्रकार पोषण करने योग्य, वृद्धि करने योग्य और वरने, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों को लाती हुई सबको जगाती हुई आश्चर्यजनक प्रकाश करती है और वह अनादि काल से आने वाली समस्त उषाओं की उपमा अर्थात् उनके समान धर्मों को धारण करती हुई और विशेष सूर्य की दीप्ति मे युक्त आगामी उषाओ मे प्रथम होकर व्याप्त होती है उसी प्रकार पोषण योग्य ऐश्वर्यों, धनों को सब प्रकार से धारण करती हुई स्वय ज्ञान लाभ करती हुई अपने परिवार मे आश्चर्य-जनक ज्ञान प्रकट करे। वह बहुत सी पूर्व काल की, अपने मे पूर्व उत्पन्न सच्चरित्र स्त्रियों के समान उत्तम गुणो को धारण करने वाली, सर्वोपमा-योग्य हो और विशेष विद्या और कान्ति में चमकती हुई स्त्रियों में भी

प्रथम, सबसे श्रेष्ठ होकर विविध प्रकार से विख्यात हो। इति तृतीयो वर्गः।

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ १६॥

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग उठो! उन्नति मार्ग पर चलो! आलस्य छोड़ कर उठ जाओ। प्रभात काल में हमें शरीर का सचालन करने वाला जीवात्मा प्राप्त होता है अर्थात् वह पुनः सोने के बाद जागृत रूप में प्रकट होता है। अन्धकार, मोह दूर हटता है और प्रकाशमान् सूर्य आगे बढ़ा चला आता है। वह उषा सूर्य के गमन करने के लिये मार्ग छोड़ती जाती है। हम भी उसे प्राप्त हों। जहां विद्वान् जन जीवन की वृद्धि करते हैं। अथवा हम भी उस सूर्य को प्राप्त करें जिसके आश्रय होकर प्राणी गण समस्त जीवन सुख से व्यतीत करते हैं। इसमें उपासक के अध्यात्म ज्योति के उदय का भी वर्णन है।

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत्॥१७॥

भा०—विशेष दीप्ति वाली उषाओं के आने पर ज्ञानों को धारण करने वाला विद्वान्, स्तुति करता हुआ एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओत-प्रोत वेद वाणियों को प्रकट करता है। उसी प्रकार विशेष दीप्ति से युक्त प्रभातों में नित्य हा स्त्री को विवाहने वाला पुरुष विद्वान् होकर गुणों का वर्णन करता हुआ सुखजनक वाणियों को बोला करे। उषा जिस प्रकार स्तुति करने वाले के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करती है और उपासक ध्यानी के स्तवन करते करते प्रभात का प्रकाश कर देती है उसी प्रकार हे उत्तम स्त्री! तू भी ऐश्वर्यवती होकर सुख-कर प्रीति-युक्त वचन कहने वाले पति के सुख के लिये आज दिन वह नाना प्रकार के गुण प्रकट कर और हमारे सुख के लिये उत्तम सन्तति से युक्त अपने जीवन को और अन्नादि को प्रकाशित कर।

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

भा०—अपने को उपासना मे भगवान् के प्रति सर्वात्मना अर्पण कर देने वाले पुरुष के हित के लिये जो किरणो से युक्त उषाएं सब-प्राणो से युक्त या सबो को प्रेरित करने हारी अथवा वीरवती होकर प्रकट होती हैं और उसके दुःखों को दूर करती हैं। उन व्यापक सूर्य या प्राण को देने वाली, उसको प्रकट करने वाली उषाओ को वायु या प्राण के समान उत्तम स्तुति वाणियो के उच्चारण करते करते सूर्य के उदय होजाने पर परमेश्वर का उपासक भोग करे। अर्थात् प्राणायाम और स्तुति भजन कीर्त्ति तथा मन्त्रोच्चारण करते करते ध्यानी पुरुष को प्रभातवेला मे सूर्योदय हो जावे और इस प्रकार वह उषाओं का आत्मिक सुख प्राप्त करे।

इसी प्रकार सुख देने वाले पति पुरुष को कमनीय कन्याएं भी सब वीर पुत्रों से युक्त और पशु आदि सम्पदा से तथा मधुर वाणियों से युक्त होकर विविध सुखों को प्रकट करती और दुःखों को दूर करती हैं। और ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी या ऐश्वर्यवान् पुरुष ही ज्ञानवान् गुरु के समान वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्राप्त करके स्नातक हो जाने पर उन अश्वादि पशुओ को देने और पालने वाली स्त्रियों को पति रूप मे प्राप्त हो। एक वचन और बहुवचन का प्रयोग जात्याख्या मे है।

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

भा०—यह उषा सूर्य की किरणो को प्रथम प्रकट करने वाली है। और वह उषा सूर्य का मुख है। वह यज्ञ का झण्डे के समान ज्ञापन करने वाली है। वह परमेश्वर की उत्तम स्तुतियों को प्रकट करती है। वह सबसे वरण करने और सेवन करने योग्य होने से 'विश्ववारा' है। इसी प्रकार हे सबसे वरण करने योग्य, श्रेष्ठ या सब उत्तम पदार्थों और सुखों को चाहने वाली स्त्री! तू उत्तम विद्वान् तेजस्वी पुत्रो की माता

हो। पुत्र की सेना के समान रक्षक और माता पिता दोनो का मुख अर्थात् दोनो मे मुख्य हो और गृहस्थ रूप यज्ञ की चेताने वाली, गुणों में विशाल और सुखो की वृद्धि करने हारी होकर प्रकट अर्थात् पति गृह मे प्रकाशित हो। वेदज्ञ विद्वान् तथा परमेश्वर के लिये उत्तम स्तुति युक्त वचन कहने वाली हमारे दुःखों को दूर कर और हमे समस्त जनों में प्रसिद्ध या सन्तानयुक्त कर।

यच्चित्रमप्न॑ उषसो॒ वह॑न्तीजा॒नाय॑ शशमा॒नाय॑ भ॒द्रम्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥२०॥४

भा०—प्रभात वेलाएं जिस प्रकार यज्ञ करने वाले तथा ईश्वरार्चना करने वाले, स्तुतिशील पुरुप के सुख के लिये अद्भुत रूप, उत्तम स्तुति योग्य कर्म को और सुख और कल्याणजनक ज्ञान को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार कामनानुकूल स्त्रियां अपने साथ संग करने वाले प्रशंसित, गुणवान् पुरुप के लिये आश्चर्यजनक पुत्र और कल्याण और सुखमय जीवन को प्राप्त करती हैं। शेष पूर्ववत्। इति चतुर्थः वर्गः।

[११४]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ रुद्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३, ६, ८, ९ विराट् जगती च। १०, ४, ५, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् निचृत् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इ॒मा रु॒द्राय॑ त॒वसे॑ कप॒र्दिने॑ क्ष॒यद्वी॑राय॒ प्र भ॑रामहे म॒तीः।
यथा॒ शमस॑द्द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ विश्वं॑ पु॒ष्टं ग्रामे॑ अ॒स्मिन्न॑नातु॒रम्॥१॥

भा०—अब विद्वान् राजा का वर्णन करते हैं। दुष्टों को रुलाने वाले, अन्यों को ज्ञान का उपदेश करने वाले तथा ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी, बलवान्, केश जटा वाले पूर्ण युवा, दोपनाशक वीर पुरुपों के स्वामी या शत्रुओं के नाशकारी या ऐश्वर्य युक्त वीर गणों के स्वामी, राजा या सभाध्यक्ष के गुण वर्णन के लिये हम इन मनन करने योग्य ज्ञान-वाणियों को धारण

करते हैं। जिससे दोपाये और चौपायों के सुख के लिये सुख, कल्याण हो और इस ग्राम या जनपद में सब कोई हृष्ट पुष्ट और दुःख, रोग, शोक आदि से कभी पीड़ित न हो।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

भा०—हे दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले! संसार के दुःखों को दूर करने वाले! अध्यात्म ज्ञान के उपदेश देने हारे! आचार्य! ज्ञानरोधक अविद्या आदि के नाशक! प्रभो! हमें सुखी कर और हमें ब्रह्मानन्द प्रदान कर। शत्रु सेना के वीरों के नाश करने वाले तेरा अन्न, बल, वीर्य, पदाधिकार, मान, आदर द्वारा हम सत्कार करें। मननशील विवेकी पालक राजा हमें जो कुछ भी शान्तिदायक और दुःखों का नाशक साधन प्रदान करता है हम उसको ओषधि के समान उपयोग करें। हे दुःखों को दूर भगाने हारे हम तेरी उत्तम नीतियों के अनुसार चलें।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

भा०—हे रुद्र! उपदेशों के देने हारे! हे प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे! हम लोग वीर पुरुषों को बसाने वाले तेरी शुभ मति को विद्वान् पुरुषों के सत्संग द्वारा प्राप्त करें। तू हमारी प्रजाओं को सुखी करता हुआ ही सर्वत्र विचरण कर और हम सुखी, अहिंसित वीर पुरुषों और पुत्रों के साथ तेरे लिये अन्न आदि प्रदान करें।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग विद्या, न्याय और तेज से देदीप्यमान, तेजस्वी, युद्ध के विजयी और प्रजा पालन रूप उत्तम कर्म के साधक अति कुटिल, टेढ़े, शत्रुओं से कभी पराजित न होने हारे, दूरदर्शी पुरुष को अपने सुख दुःख आदि निवेदन करें। वह विद्वानों के क्रोध अथवा अनादर आदि

करने वाले पुरुषों को हमसे दूर करे। हम इस शत्रुरोधक वीर पुरुष की शुभ मति, धर्मानुकूल प्रज्ञा और बल को प्राप्त हों।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

भा०—ज्ञान, न्याय तथा तेज से प्रकाशित व्यवहार से श्रेष्ठ गुणों का उपदेश करने वाले मेघ के समान निष्पक्षपात और उत्तम सात्विक आहार करने हारे रोष रहित, अति देदीप्यमान, तेजस्वी, पूर्ण ब्रह्मचारी, जटिल, विद्वान् अथवा सुन्दर मुकुटधारी, सूर्य के समान दीप्तिमान्, रुचिकर, सुन्दर रूपवान् पुरुष को आदरपूर्वक निवेदन करें तथा उसका सत्कार करें। वह अपने हाथ में वैद्य के समान रोगों के समान शत्रुओं का वारण करने वाले साधनों, कष्टों के नाशक, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों और उत्तम उपायों को धारण करता हुआ हमें सुख, शरण, कवच और गृह और शस्त्रास्त्र साधन प्रदान करे। इति पञ्चमो वर्गः।

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

भा०—पिता का आशीर्वचन जिस प्रकार पुत्रों को बढ़ाने हारा होता है उसी प्रकार हे मरणादि क्लेश से रहित ज्ञानवन्! विद्वन्! पालक ज्ञानोपदेष्टा गुरु का यह वचन, उपदेश वीर, वायु के समान बलवान्, आलस्य रहित शिष्यों को बढ़ाने वाला कहा जाता है। हे विद्वन्! हमारे शरीर, मन और आत्मा पुत्र और पौत्र आदि के सुख के लिये स्वादु से भी स्वादु, आनन्दप्रद मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर और सुखी कर।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

भा०—हे दुष्टों के रुलाने वाले! न्यायाधीश! राजन्! एवं रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन! तू हमारे में से विद्या और बल में बड़े का

विनाश मत कर। हममें से छोटे बालक को मत विनष्ट होने दे। हममें से वीर्य सेचन मे समर्थ युवा पुरुष को नष्ट मत कर। हममें से जो जीव निषेक द्वारा गर्भाशय मे स्थित है उनको नष्ट मत होने दे। हमारे पिता और माता को मत मार। हमारे प्रिय शरीरो को मत पीड़ित होने दे।

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥८॥

भा०—हे दुष्टो के रुलाने हारे राजन्! तू हमारे पुत्र और पौत्र आदि संतति पर हिंसा का प्रयोग मत कर। हमारे जीवन पर आघात मत कर। हमारी गौओं और हमारे घोड़ों पर भी हिंसा का प्रयोग मत कर। उनको मत मार और दूसरों को मत मारने दे। क्रोध, मन्यु वाला उत्साही तू हममे से वीरों को मत मार। हम उत्तम अन्न, कर तथा उत्तम कर्मों वाले होकर तुझ से सदा ही यह प्रार्थना करते हैं।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे॥९॥

भा०—पशुओं का पालक ग्वाला जिस प्रकार समस्त दुग्ध आदि पदार्थ तथा पशुसमूहों को भी स्वामी को ही प्रदान करता है इसी प्रकार हे पालक राजन्! गुरो! प्रभो! तेरे ही लिये इन स्तुति-वचनों तथा ग्राह्य पदार्थों को मैं समर्पित करता हूं। हे विद्वान् पुरुषों के पालक राजन्! शिष्यो के पालक गुरो! तू हमें सुख, सुखकारक ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान कर। तेरी शुभ मति कल्याणकारक और सबसे अधिक सुखजनक है, और इसी कारण हम लोग तेरी रक्षा और ज्ञानैश्वर्य को ही सदा चाहते हैं।

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥१०॥

भा०—हे वीर पुरुषों को अपने आश्रय मे बसाने हारे राजन्! तेरे राष्ट्र में रहने वाले गाय आदि पशु के हत्यारे और पुरुषों के हत्यारे हिंसक

मनुष्य को तू राष्ट्र से दूर कर। इस प्रकार हम और तुझ राजा दोनो को सुख प्राप्त हो। हे प्रजाजन को सुख देने वाले राजन्! तू हमे सुखी कर। गुरु के समान सर्वोपरि शासक होकर हमे उपदेश कर। और तू ऐहिक और पारमार्थिक दोनों सुखो को बढ़ाने वाला या राजवर्ग प्रजावर्ग दोनो का वर्धक, दोनों का स्वामी या ज्ञान कर्म दोनो का स्वामी होकर हमें भी अपनी शरण और सुख प्रदान कर।

अवो॑चाम॒ नमो॑ अस्मा अव॒स्यवः॑ शृ॒णोतु॑ नो॒ हवं॑ रु॒द्रो म॒रुत्वा॑न्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११॥

भा०—रक्षा और ज्ञान के चाहने वाले हम लोग इस शरणप्रद और ज्ञानप्रद राजा और आचार्य के मान के लिये सदा आदर सत्कार सूचक पद 'नमस्ते' आदि का उच्चारण करें। और वह विद्वान् वीर पुरुषों और ज्ञानेच्छु शिष्यो का स्वामी दुष्टो का रोदनकारी राजा और उत्तम उपदेशदाता आचार्य हमारी प्रार्थना सुने। शेष पूर्ववत् ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[११५]

कुत्स आंगिरस ऋषि ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षडृच सूक्तम् ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥१॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार किरणो का समूह रूप, तेजोमय है। वह मित्र अर्थात् वायु, प्राण, वरुण अर्थात् मेघ या जल और अग्नि इन सब को आश्चर्य कर रूप से दिखाने वाला, सबका प्रकाशक, चक्षु के समान सबका साक्षी रूप सा होकर उदय को प्राप्त होता है और वह आकाश, पृथिवी और वायुमण्डल सबको प्रकाश से भर देता है और जगम और स्थावर दोनो के जीवन के समान है। उसी प्रकार परमेश्वर समस्त तेजस्वी पदार्थों और विद्वानों का आश्चर्यकारी प्रकाशक, ज्ञानदर्शक और

मार्गदर्शक, चक्षु के समान सर्वसाक्षी है। वह बलस्वरूप एवं चक्षु आदि से ग्रहण भी नहीं किया जाता है। वह प्राण, अपान, जाठर तथा वायु, जल और अग्नि सबका अद्भुत द्रष्टा और प्रवर्त्तक है। वह सब का प्रेरक होकर आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में व्याप रहा है। वह ही स्थावर जंगम सब में व्यापक, सबका अन्तर्यामी है।

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॒ रोच॑मानां॒ मर्यो॒ न योषा॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात्।
यत्रा॒ नरो॑ देव॒यन्तो॑ यु॒गानि॑ वितन्व॒ते प्रति॑ भ॒द्राय॑ भ॒द्रम् ॥२॥

भा०—विवाह काल में जिस प्रकार पुरुष अपने अनुरूप रुचि की, प्रेमपात्री स्त्री के पीछे पीछे चलता है उसी प्रकार कान्ति वाली, प्रकाशमयी उषा के पीछे पीछे सूर्य भी चलता है। जिसके आश्रय पर नाना सुखों की कामना करने वाले विद्वान् पुरुष कल्याणकारी पुरुष के हाथ उसको सुखकारी स्त्री रूप ऐश्वर्य प्रदान करके युग अर्थात् जोड़े बना देते हैं। इसी प्रकार जिस सूर्य का आश्रय लेकर विद्वान् गणितज्ञ जन, भले को भले पदार्थ प्रदान करते हुए पांच पांच सवत्सरों की गणना से कृत, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों की कल्पना करते हैं।

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति स॒द्यः॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के नील या श्याम वर्ण की किरणें विशेष ज्वरादि नाशक होने से प्राणियों को सुखकारक होती हैं और चित्र विचित्र वर्ण वाले शबल वर्ण अर्थात् रक्त, नील, पीतादि वर्ण के मिश्रित किरण भी उक्त नील वर्ण के किरणों के अनुसार ही प्राणियों को अधिक हर्षोत्पादक होते हैं। वे नीचे झुकते हुए पृथिवी के और आकाश के पृष्ठ पर सब तरफ पडती हैं वे ही आकाश और पृथ्वी पर सर्वत्र शीघ्र ही फैल जाती हैं।

उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा के वेगवान् अश्वारोही जन और तेजस्वी आचार्य के विद्याओं में वेग से आगे बढ़ने वाले

विद्यार्थी जन कल्याणकारी, सुखजनक, सुसभ्य और पीत वस्त्र को धारण करने वाले या मृगचर्म से श्याम वर्ण या पीत वर्ण सब आश्चर्य जनक, अपने गमन करने योग्य नियत मा पर जाने वाले होकर सभी द्वारा अनुमोदन या अभिनन्दन करने योग्य हों। वे बड़ों को नमस्कार आदर सत्कार करते हुए ज्ञान और तेज के उच्च पद तक प्राप्त होते हैं। और शीघ्र ही सूर्य और पृथ्वी के समान दम्पति होकर गृहस्थ आश्रम को प्राप्त होते हैं। अथवा वे राज-प्रजा वर्ग को व्याप लेते हैं।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य का जिस प्रकार स्वतः प्रकाशित होकर अन्यों को प्रकाश देना और महान् सामर्थ्य वाला होना यही उसका अनुपम देवत्व और महत्व है। वह लोक-व्यवहार के कार्यों के चलते रहने पर भी बीच में अपने विस्तृत प्रकाश को संहार कर लेता है। सूर्य जब भी एक ही स्थान से किरणें फैलाता है और दिन को प्रकट करता है और बाद में रात्रि-काल सब पर अपना काले वस्त्र के समान अन्धकार रूप आवरण फैला देता है उसी प्रकार सबके प्रेरक परमेश्वर का देवत्व भी वह बड़ा अलौकिक है। परम प्रकाश और अक्षय दान सामर्थ्य भी बड़ा अद्भुत है और उसका महान् सामर्थ्य भी अलौकिक है कि बनाये हुए इस जगत् के बीच में विस्तृत इस लोक को भी संहार कर देता है अर्थात् रचे लोकों का प्रलय कर देता है। जब वह एक तरफ अन्धकार को दूर ने वाले प्रकाशमान सूर्यों को स्थापित करता है तो भी दूसरी ओर न्तर महा प्रलय रात्रि समस्त जगत् पर पुनः सबको आवरण करने अन्धकार को भी फैला देता है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥

भा०—मित्र, वायु आकाश को आवरण करने वाले वरुण अर्थात् मेघ को अथवा मित्र, दिन और वरुण, रात्रि इन दोनों को दिखाने या प्रकट करने के लिये सूर्य जिस प्रकार आकाश में स्थिर होकर अपने तेजो-मय रूप को प्रकट करता है उसी प्रकार सबका प्रेरक और उत्पादक परमेश्वर मित्र अर्थात् मरण से त्राण करने वाली जीवन या सृष्टि और वरुण अर्थात् वारण करने वाले मृत्यु या प्रलय को प्रकट करने के लिये अपने तेज को प्रकट करता है। अथवा अपने मित्र तथा श्रेष्ठ धर्मात्मा भक्त के हृदय मे अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है। इस परमेश्वर का सूर्य के समान देदीप्यमान चिन्मय सामर्थ्य भी अनन्त, निःसीम है। रात्रि के अन्धकार के समान काला या सबको आकर्षण करने वाला, या परमाणु परमाणु को छिन्न-भिन्न करने वाला संहारक बल भी अनन्त है। जिसको सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से गति करने वाली उसकी शक्तिया धारण करती हैं।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६

भा०—आज हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग सूर्य के उदय के समान हृदय में सर्वोत्पादक परमेश्वर के ज्ञानोदय हो जाने पर निन्दनीय पाप से भी सर्वथा मुक्त हो जाओ। शेष पूर्ववत्। इति सप्तमो वर्गः॥

इति षोडशोऽनुवाक. ॥

[११६]

कक्षीवानृषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द —१, १०, २२, २३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ८, ६, १२, १३, १४, १५, १८, २०, २४, २५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ७, २१ त्रिष्टुप्। ६, १६, १६ भुरिक् पंक्ति। ११ पंक्ति। १७ स्वराट् पंक्ति ॥ पञ्चविंशत्यृच सूक्तम् ॥

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः। यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

भा०—जिनका विज्ञान कभी असत्य न हो ऐसे सत्य विद्या, विज्ञान वाले प्रमुख शिल्पियो के उपकार के लिये मै राजा मार्ग में आये पर्वत वृक्ष आदि बाधक पदार्थों को तथा शत्रु जन-समूहों को घास के समान काट गिराऊं और वायु जिस प्रकार मेघस्थ जलों को प्रेरता है, छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार मैं जन-समूहो को अपनी आज्ञा के बल पर चलाऊं। जो वे दोनों सत्य विज्ञान वाले अति अधिक ऐश्वर्यवान्, विशेष हर्षोत्पादक युवा पुरुष के लिये उसकी स्त्री को और सेना को अपने साथ संचालन करने वाले रथ से सुरक्षित रूप से ले जाते हैं।

अथवा असत्य व्यवहार से रहित या नासिका के समान प्रमुख स्थान पर स्थित दोनो सेनाध्यक्षो के साथ मै शत्रु गण को कुश तृण के समान काट गिराऊं और मेघों को वायु के समान सैनिक सघो को सञ्चालित करू। जो वे दोनो सेना के सञ्चालक होकर रथ से विशेष हर्षोत्पादक प्रिय पति के लिये उसकी वधू के समान अति ऐश्वर्यवान् राजा के निमित्त सर्वोत्पादक सर्वाश्रय भूमि को रथ सेना के बल से प्राप्त कराते हैं।

वी॒ळु॒पत्म॑भिराशु॒हेम॑भि॒र्वा॑ दे॒वानां॑ वा जू॒तिभि॒ः शाश॑दाना।
तद्रास॑भो नासत्या स॒हस्र॑मा॒जा य॒मस्य॑ प्र॒धने॑ जिगाय ॥ २ ॥

भा०—हे सेना के नासिका या प्रमुख स्थान पर स्थित, कभी असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो! आप दोनों बलवान् चक्रों या पैरों वाले शीघ्र गतिशील रथों से युद्ध-विजिगीषु पुरुषों की वेगवती सेनाओं से शत्रु सेनाओं को छिन्न-भिन्न करते हो। तब घोर गर्जनकारी तोप आदि यन्त्र सर्व नियामक राजा के प्रचुर धन देने वाले सं[illegible]म मे सहस्रों को विजय करे। अथवा उपराम को प्राप्त हुए शत्रु के सहस्रो सेना बलों का विजय करे।

तुग्रो॑ ह भु॒ज्युम॑श्विनोदमे॒घे र॒यिं न कश्चि॑न्ममृ॒वाँ अवा॑हाः।
तमू॑हथुर्नौ॒भिरा॑त्म॒न्वती॑भिरन्तरिक्ष॒प्रुद्भि॒रपो॑दकाभिः ॥ ३ ॥

भा०—जैसे कोई मरता हुआ पुरुष अपने जीवन रक्षा के लिये धन का त्याग कर दे, उस समय जिस प्रकार दो नाविक जलों पर चलने वाली और पानी को भीतर न जाने देने वाली, सुदृढ़ नावों से पार उतार देते हैं। इसी प्रकार शत्रु-हिंसक और प्रजापालक पुरुष भी रण में मरने मारने पर उतारू होकर अपने भोक्ता या पालक राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को समुद्र के समान संकट दशा में त्याग देता है। ऐसी दशा में शीघ्रगामी अश्वों और रथों के स्वामी अध्यक्ष जन अपने आत्मिक बल और विचार मन्त्रणा युक्त वाणियों रूप नावों से उठा लें, उसे संकट से पार करें।

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४॥

भा०—तीन रात और तीन दिन लगातार अति वेग से चलने वाले अश्वों के समान वेग से जाने वाले सैकड़ों चरणों वाले और छः अश्व अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त समुद्र, रेता और कीचड़ तीनों प्रकार की भूमियों में अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों पर चलने वाले तीनों प्रकार के रथों से सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को समुद्र के, रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के तथा जल से युक्त कीचड़ वाले स्थल के पार पहुंचाया करें।

अध्यात्म में—'भुज्यु' आत्मा है 'अश्व' शरीर में लगे मन सहित पांच इन्द्रियें हैं। शत सौ वर्ष हैं। 'नासत्य' नासिकास्थ प्राण अपान हैं। तीन रात, तीन दिन बाल्य, यौवन और जरावस्था तथा उनके प्रारम्भ के तीन काल शैशव, नव यौवन, नई-ढलती हैं। समुद्र धन्व और आर्द्र तीनों ज्ञान, कर्म और उपासना हैं।

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥८॥

भा०—विद्यावान्, शिल्पवान् पुरुष सैकड़ों चक्षुओं वाली अथवा अनेकों चक्षुओं वाली नाव पर बैठे हुए ऐश्वर्य के भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वय को घर लाते है वे वस्तुतः अवलम्बन रहित आश्रय के स्थल से रहित और सहायता के लिये जहा कुछ पकड़ा न जा सके ऐसे समुद्र में पराक्रम करते है।

अध्यात्म मे—'शतारित्रा' नाव शत-वर्ष जीवी देह है। उस पर बैठे हुए आत्मा कर्म फल भोक्ता को प्राण और अपान या गुरु और परमेश्वर 'अस्त' अर्थात् परम शरण मोक्ष तक पहुंचाते हैं तो वे दोनों उस आत्मा को ऐसी दशा में पहुंचाते हैं जहां प्रथम आरम्भ अर्थात् कर्म का उदय न हो, द्वितीय अनास्थान अर्थात् देह मे स्थित न हो, तृतीय अग्रभण अर्थात् कर्म का बन्धन न हो ऐसे समुद्र अर्थात् रस-सागर आनन्दमय समुद्र मे वे उस आत्मा को प्रेरित करते हैं। अथवा यह जगत् कामनामय समुद्र है, जो 'अनारम्भण' है अर्थात् इसमें कुछ करते नहीं बनता, अनास्थान अर्थात् कोई आश्रय या शरण नहीं, 'अग्रभण' अर्थात् शाखावलम्ब या हस्तावलम्ब नही हैं। इत्यष्टमो वर्गः।

यमश्विना दृदथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६॥

भा०—हे शीघ्रगामि रथों के सञ्चालन करने मे कुशल शिल्पियो! तुम दोनो कभी न मरने वाले अश्व के स्वामी, राजा को श्वेत, चमकता हुआ या अति बलशाली मार्गगामी साधन देते हो वह सदा अनादि सिद्ध, सदाकाल के लिये कल्याणदायक हो, वह तुम दोनों का बहुत बड़ा कीर्तिजनक दान है। उसी से वेग से जाने वाला साधन सुख से स्थानान्तर पहुचने में समर्थ होता है और सदा ही वणिग् जन या स्वामी ग्राह्य पदार्थों को लेने मे समर्थ होता है। अथवा वेगवान् होकर शीघ्र ही अपने गृह पर पहुच कर स्वामी स्तुति योग्य होता है।

अध्यात्म में—'अवाश्व' अमृत चेतन जीव है। प्राणापान का अभ्यास

उसको 'श्वेत अश्व' अर्थात् शुक्र, व्यापक, अनादि सिद्ध, आनन्दमय ब्रह्म का साक्षात् कराता है। वह बड़ा स्तुत्य, ज्ञान प्रदाता, ज्ञानैश्वर्यवान् अपने प्राप्तव्य पद को पहुंचा हुआ, कृतकृत्य आत्मा 'पेद्व' है और सबका स्वामी परमेश्वर ही सदा अर्थात् उपास्य और शरण लेने योग्य है।

युवं नरा स्तुवते पंज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

भा०—हे सन्मार्ग पर ले जाने वाले शिक्षक विद्वान् पुरुषो! आप दोनों यथार्थ विद्याभ्यास करने वाले, ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान, अश्व के समान कसे कसाये, सदा कटिबद्ध या कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले या अपनी कक्षा में उत्तम रहने वाले शिष्य जन को बहुत अधिक ज्ञान धारण करने मे समर्थ बुद्धि का प्रदान करते हो। हे दोनों नायक पुरुषो! घोड़े के खुर के आकार के बने मेघ के समान जल नीचे बरसाने वाले कारोतर अर्थात् छनने से जल के समान सुख, शान्ति और आनन्द देने वाली विद्या रूप रस के सैकड़ों कलसे सेचन करो, अर्थात् उसे विद्यास्नातक और व्रतस्नातक करो। ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम से शिक्षा प्राप्त करने वाले गुरुजन बहुत ज्ञान दें और बाद में सहस्रधारास्नान के लिये अश्व के खुराकार छनने से जल के शतघटों से राज्याभिषेक के समान अभिषेक कराकर विद्यास्नातक और व्रतस्नातक बनावें। यद्वा—वर्षणशील, व्यापनशील मेघ के समान ज्ञान की वर्षण करने वाले, विद्या में पारंगत आचार्य का उपदेश रूप जो बड़े भारी शुद्ध ज्ञान और आचार शिक्षा को छान पवित्र कर देने वाला छनना है, उससे सुख और आनन्द के देने वाली शिक्षा के मानो सैकड़ों कुम्भों से उसको स्नान करावें।

राजा के पक्ष में—दो वीर सेना और सभा के नायक वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले अथवा उच्च पद प्राप्त होने योग्य अधिकार के योग्य बगल में पेटी आदि वस्त्र धारण करने वाले, राज्यरक्षा के लिये सन्नद्ध पुरुष को नगर को धारण करने, उस पर शासन करने का सामर्थ्य

और अधिकार प्रदान करें और उस पर बलवान् अश्व के खुर के आकार वाले छानने से जल के सैकड़ों कलसों से राज्याभिषेक करें। अश्व के खुर-के आकार का छनना बनाने का अभिप्राय केवल बलवान् अश्वारोही सेना के बल पर राज्यलक्ष्मी प्राप्त कराना है। 'सुरा' अर्थात् जलधारा सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का प्रतिनिधि है।

अध्यात्म में—प्राण और अपान दोनों कक्षीवान् नामक मुख्य प्राण को देह रूप पुर के धारण पोषण का बल प्रदान करते हैं। वह सदा गतिशील होने से 'पज्रिय' है। देह में हृदय और फुफ्फुसों का जोड़ा अश्वके खुरों के आकार का होने से वही रक्त शोधक छनना है उससे सुरा उत्तम जीवन प्रद रस-धारा रक्त के सहस्रों कुम्भ अर्थात् कोष्ठ या सैलों से सेचित किये जाते हैं।

अधिदैवत पक्ष में—आकाश, पृथिवी दोनों अश्वी हैं। वे दोनों प्रकाशमय किरणों से युक्त आकाश में गति करने वाले सूर्य को ब्रह्माण्ड पालन का सामर्थ्य देते हैं। वर्षणशील मेघ के सब से जल के सैकड़ों घड़े मानो छलनी से सहस्र धारा के रूप में बरसाते हैं।

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे आकाश और पृथिवी या दिन रात्रि तुम दोनों मिलकर शीतल जल से अग्नि को और शीतल जल से ही दिन के परिताप को वृष्टि द्वारा निवारण करते हो। तुम दोनों ही कारण क्रम से इस प्राणि-वर्ग 'अन्न से युक्त बल, पराक्रम और सम्पत्ति प्रदान करते हो। पृथ्वी पर नीचे गिरे हुए सब प्रकार के भूख से पीड़ित अन्न आदि के भोक्ता जीव-गण को और भोगने योग्य अन्नादि ओषधि गण को ऊपर उठाते हो, जीवन प्रदान करते और उन्हें जल द्वारा सेचित कर हरा भरा करते हो।

नायकों के पक्ष में—हे वीर नायको! तुम दोनों हिम से अग्नि के निवारण करने के समान शत्रुहनन करने के साधन सेनाबल से सताप-

कारी शत्रु को वारण करो। इस प्रजाजन को पालक बल से युक्त पराक्रम प्रदान करो। तेज के नष्ट हो जाने पर भी उत्साह, धन और प्रज्ञा तीनों बल से रहित राजा को भी समस्त अनुयायी गणों सहित कुशल से उन्नत पद पर पहुचा दो। प्राण और अपान दोनो आहित अग्नि के समान देह के सताप को कम करते, अन्न रस वाली पुष्टि देते, उदर में स्थित अन्न को सब प्राणो सहित शरीर के कल्याण के लिये ऊपर उठाते हैं।

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य॥९॥

भा०—हे सिद्ध विज्ञान के नियमों से युक्त सूर्य और वायु तुम दोनों ऊपर आकाश में मूल आधार वाले, सब के रक्षा करने वाले मेघ को दूर दूर देशों तक ले जाते हो और उसको तिरछे जल वाला बना देते हो। प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को पिलाने के लिये और पृथिवी के स्वामी के। अनेक ऐश्वर्य, घास, धान्य उत्पन्न करने के लिये अनेक जल धाराएं फूट निकलती हैं।

राजा के पक्ष में—वे दोनों प्रमुख नायक रक्षाकारी सैन्य बल को दूर तक भेजें और उसको उच्च अधिकारियों के आश्रय में बद्ध करके कुटिल शत्रु के वारण करने में समर्थ करें। प्यासे को पिलाने के लिये जिस प्रकार जल बहते हैं उसी प्रकार वे वीर जन अपने श्रेष्ठ राजा के सहस्रों ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये वेग से गमन करें।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम्॥१०॥५॥

भा०—युद्ध में डर कर भाग जाने वाले भीरु से जिस प्रकार सेनापति कवच छुड़ा लेता है। उसी प्रकार हे सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों आयु समाप्त करने वाले वृद्ध संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से विभाग करने योग्य धन

सम्पत्ति को मरने से पूर्व ही छुड़ा कर अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो। त्यागी पुरुष के जीवन को उत्तम रीति से बढ़ाओ। हे दुःखों के नाश करने वाले ! तुम दोनों उस पुरुष की कन्याओं के लिये योग्य पति का प्रबन्ध करो। इति नवमो वर्गः॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शताद्रूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! गृहस्थ के नायक नायिकाओ ! तुम दोनों परस्पर कभी असत्याचरण न करते हुए दर्शनीय सुन्दर स्त्री रूप से स्तुति योग्य पुत्र लाभ करने के लिये खूब गहरे छिपे जिस खजाने को खन कर प्राप्त करते हो वह तुम दोनों का प्रशंसा करने योग्य, उत्तम एषणा से युक्त, दुःखों से बचाने वाला और वरणीय, श्रेष्ठ, प्राप्त करने योग्य धन के समान हो।

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच॥१२॥

भा०—हे सन्मार्ग में लेजाने वाले उपदेशक और अध्यापक जनो ! घोर-शब्दकारी विद्युत् जिस प्रकार वृष्टि को प्रकट करती है उसी प्रकार मैं धारण करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त राजा किसी प्रकार की भी हिंसा न करने वाले शमादि युक्त मां बाप और प्रजापालक विद्वान् गुरुओं का शिष्य होकर आप दोनों स्त्री पुरुष वर्गों को ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये अश्व सैन्य या भोक्ता राजा होने के प्रमुख अधिकार से अति उग्र, प्रबल अज्ञान और पाप के नाशक ज्ञान और दण्ड प्रयोग का भी उपयोग करूं, जैसे ज्ञान का धारण करने वाला अथर्ववेद का ज्ञाता विद्वान् तुम दोनों को सकल विज्ञानों में पारंगत आचार्य के मुख्य पद से तुम दोनों को मधुर आनन्द-जनक ज्ञान का प्रवचन करता है। अर्थात् प्रशान्त, वेदविद् विद्वान् जिस प्रकार प्रमुख होकर ज्ञान प्रदान करे उसी प्रकार राष्ट्र की ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये राजा अपने दण्ड आदि उग्र कर्म को

भी मेघ के समान निष्पक्षपात होकर अश्व बल तथा राष्ट्र में व्यापक, भोक्ता राजा होने के मुख्य बल से करे। राजा जब अपने मधु रूप पृथिवी राज्य को प्रजावर्गों को सौंप देता है तब भी उसका भोक्ता होने का मुख्य पद लुप्त हो जाता है और इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी शिष्य वर्गों को अपना पूर्ण ज्ञान देकर अपने बराबर बना देता है तब वह भी उनको स्नातक बना देने से उनके प्रति गुरु का कार्य नहीं करता। इसी को अलंकार से अश्वियों को अश्व के शिर से उपदेश करना और पुनः उसका छेदन करना कहा गया है।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥

भा०—हे कभी असत्य आचरण न करने वालो! और हे मुख पर नासिका के समान यशस्वी, मुख्य पद पर विराजमान! आप दोनों को कार्यकुशल और बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों के पालने और बहुत सी भुजाओं अर्थात् योद्धा वीर जनों सहित बलवान् जानकर पुर की रक्षा करने वाली संस्था बड़े भारी युद्ध यात्रा के काल में बुलाती और मुख्य कार्यकर्त्ता रूप में स्वीकार करती है। आप दोनों गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान ही बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के उस शासन को श्रवण करो। हे अश्व बल के स्वामी, आप दोनों उसको हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब अथवा सुवर्णादि धन को हाथ में रखने वाले वैश्य वर्ग को अथवा सुवर्ण के समान कान्तिमान् हनन साधन से या दल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को आश्रय रूप से प्रदान करो। राजसभा की शक्ति बहुत बढ़ जाने पर उसके सभापति या राजा का बल कम होता है। इसलिये वह 'वध्रिमती' है। क्योंकि उसका पति नपुंसक के समान उदासीन और बलहीन है। ऐसी दशा में दो प्रमुख अधिकारी सभा के कार्यों को वैश्य वर्ग के धन के बल पर चलावें। इस राजसभा में धनाढ्यों का ही बल रहता है

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृतं विचक्षे ॥ १४ ॥

भा०—हे नायक पुरुषो! कभी असत्य मार्ग पर न जाने वाले प्रमुख पुरुषो! जिस प्रकार बार बार आने वाली उषा को घेर लेने वाले अन्धकार के मुख से छुडाकर पदार्थों के प्रकाश करने वाले सूर्य को प्रकट करते हो और जिस प्रकार कोई नर नारी भेड़ियों के मुख से बटेरी को छुडा कर किसी दयाशील की देख रेख में उसे रख दे उसी प्रकार तुम दोनों भेडिये के समान पीठ पीछे से आक्रमण करने वाले डाकू लोगों के प्रजा को खा जाने वाले मुख अर्थात् अयोग्य-से परस्पर प्रतिद्वन्द्विता के अवसर पर व नाना वृत्तियों, व्यवसायों और उद्योगों में गुजर करने वाली, बटेरी के समान निर्बल दुःखी प्रजा को सदा छुटाते रहो और हे बहुतों को पालने और भोगने में समर्थ, आप दोनों विविध न्याय व्यवहारों को देखने के लिये अध्यक्ष पद पर प्रजा पर कृपा और अनुग्रह करने वाले और समर्थ दूरदर्शी विद्वान, प्रज्ञावान पुरुष को नियुक्त करो।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—रात्रि में या अन्धकारमयी अज्ञान दशा में, अथवा सङ्कटावस्था में भोग विलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का शील और चरित्र यों आगे बढ़ने वाला वेदन पक्षी के पत्र के समान कट जाता है। उस समय हे विद्वान् पुरुषो! आप दोनों प्रजावर्ग का पालन करने वाली नीति की रक्षा के लिये, ऐश्वर्य प्राप्ति और प्रजाहित के निमित्त और आगे बढ़ने के लिये शीघ्र ही लोहे की बनी, शत्रु को मारने वाली सशस्त्र सेना को, गाडी में लगे लोहे के पहिये के समान, संयोजित करो। इति दशमो वर्गः ॥

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥

भा०—जो प्रजा के मा बाप के समान पालक पद पर बैठ कर भी राजा चोर सरकार को बनाये और उसे दृढ़ रखने के लिये सैकड़ों प्रतिस्पर्द्धी विद्वान् सभासदों को भी शासन करने में समर्थ सरल स्वभाव के पुरुष को अन्धकार में रक्खे और पीडित करे तो सदा सत्य व्यवहार के करने वाले मुख्य नायक पुरुष दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाशक, उत्तम वैद्यों के समान ज्ञानरहित, उस राजा को राज्यव्यवहार को देखने वाली आंखें प्रदान करें जिससे प्रजा का नाश न हो।

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे॥१७॥

भा०—कन्या जिस प्रकार विवाह काल में विद्वान् पुरुष के साथ काठ के पीढे या रथ पर बैठती है ठीक उसी प्रकार सूर्य की पुत्री के समान उषा गतिशील सूर्य के प्रकाश के साथ अन्धकार पर विजय पाती हुई हे दिन रात्रि! तुम्हारे उत्तम रमणीय रूप पर विराजती है। इसी प्रकार, हे अपने मुख्य स्थान पर विराजने वाले दो प्रमुख पुरुषो! सर्वशासक राजा के समस्त मनोरथों और बल को पूर्ण करने वाली विजयशील सेना अश्व के सैन्य से युक्त होकर भी तुम दोनों के रथ नामक सैन्य पर आश्रित रहती है। सभी विद्वान् और विजयेच्छु योद्धा जन हृदयों से आप दोनों को अनुमति दें। आप दोनों शोभा या लक्ष्मी से युक्त होकर रहो।

गृहस्थ पक्ष में—सूर्य की उषा के समान उत्तम तेजस्विनी बाप की बेटी, काठ के पीढ़े के समान उच्च घोडे से जुते रथ पर विराजे। अथवा विद्वान् पुरुष से युक्त गृहस्थ रूप रथ पर विराजे, हे परस्पर असत्य आचरण न करने वाले वर वधू! तुम दोनों को समस्त पुरुष अनुमति दें। तुम दोनों विद्वान् लक्ष्मी और शोभा से युक्त होकर रहो।

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता॥ १८॥

भा०—हे अश्व सेना के स्वामी दो मुख्य सेनापति और सैन्यवर्गो ! आप दोनों जब युद्ध की कामना करने और शत्रु के नाश करने वाले के लिये और पुष्ट और वेगवान योद्धाओं के स्वामी के लिये वेग से जाते हुए ऐश्वर्य से युक्त गृह या व्यवहार पद को प्राप्त होते हो तब तुम दोनों को परस्पर आश्रित रथ मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला होकर परस्पर संयुक्त हुए आप दोनों को धारण करता है।

हे वर वधू गृहस्थ जनो ! तुम दोनों समान रूप से जाते हुए ज्ञान प्रकाश के देने वाले विद्वान् और अन्नादि से भरण पोषण करने वाले माता पिता के हित के लिये धन धान्य सम्पन्न गृह को प्राप्त होते हो तब एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण, गृहस्थ रूप रमण का साधन, रथ एक दूसरे मे विवाह बंधन मे बधे हुए आप दोनो को धारण करे। वह गृहस्थ रूप रथ वृषभ सुखो का वर्षक और दुःखों का नाशक हो।

र॒यिं सु॑क्ष॒त्रं स्व॑प॒त्यमायुः॑ सु॒वीर्यं॑ नासत्या॒ वह॑न्ता।
आ ज॒ह्नावीं॒ सम॑न॒सोप॒ वाजै॒स्त्रिरह्नो॑ भा॒गं दध॑ती॒मया॑तम् ॥१६॥

भा०—हे सदा सत्य का पालन करने वाले प्रमुख राज-पुरुषो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्य, उत्तम क्षात्रबल, उत्तम राज्यव्यवस्था, उत्तम सन्तान, दीर्घ जीवन, अन्न और उत्तम वीर्य बल धारण करते हुए और एक दूसरे मे समान चित्त वाले होकर अपने सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाले शत्रुओ पर हथियार छोडने वाले सेनापति की या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिये वेगवान अश्वों और भृत्यों सहित दिन में तीन तीन वार आवो।

सुखादि देने वाले तथा वीर्य दान देने वाले सन्तति को दिन मे तीन वार प्राप्त हों। उनकी देख भाल तीन वार कर लिया करें और उनको भोजनादि से सन्तुष्ट किया करें।

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—हे दो प्रमुख नायको ! आप दोनों गन्तव्य, प्रयाण करने योग्य स्थान को सब ओर से घेर लेओ और सुख से गमन करने योग्य मार्गों से अपने सैन्य को रात रात में ले जाओ । विविध प्रकार से पर्वतों के समान अचल शत्रुओं को भी भेद डालने वाले रथ सैन्य से युक्त होकर शत्रुओं के जीवन और बल की हानि करते हुए प्रयाण करो ।

हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों इस भोग्यसुख को प्राप्त होवो । सुखदायक राजस सुखों से रात्रि काल व्यतीत करो । पर्वतों के समान विशाल कष्टों के भी तोडने वाले बल, वीर्य या गृहस्थ के परस्पर रमण साधन उपायों से जरा रहित होकर संसार की यात्रा करो ।

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

भा०—हे शीघ्र तर जाने वाले सैन्य के प्रमुख नायको ! दोनों तुम हजारों सुखों के देने वाले ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये एक एक दिन के युद्ध के लिये वशकारी, सर्व नियामक और जितेन्द्रिय पुरुष को सुरक्षित रक्खो । ऐश्वर्यवान् राजा के बल से बढ़ कर अस्त्रों की शत्रुओं पर वर्षा करते हुए दुःखदायी, सुख के नाशक, विशाल ऐश्वर्यवाली अदानशील शत्रु सेनाओं को अच्छी प्रकार नाश करो । स्त्री पुरुष सहस्रों सुखों के भोगने और एक दिन के भी रमण करने के लिये वश अर्थात् इन्द्रिय संयम का पालन करें । बलवान् होकर अति ज्ञान और धन वाले दुष्ट सुखों के नाशक सुख न देने वाली दुश्चेष्टाओं को परे मार भगावें ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार नीचे, गहरे कूप से भी पान करने के लिये जल ऊपर निकाल लिया जाता है । उसी प्रकार हिंसा के व्यसनी निकृष्ट

कोटि के पुरुष के रक्षण सामर्थ्य से भी प्रजा पालन के लिये शत्रुओं का वारण करो। उसी प्रकार पूज्य, विद्वान् पुरुष के उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान रक्षण सामर्थ्य रूप मेघ से जल के समान शान्तिदायक, दुःखवारक ज्ञान प्राप्त करो। हे प्रमुख नायको! तुम दोनों जिस प्रकार सोने वाले के लिये बिस्तर बिछाया जाता है उसी प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले के लिये अपनी सेनाओं के बल पर विस्तृत भूमि को बढ़ाओ, प्रदान करो।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष कुए से जल के समान शत्रु हिंसक और विद्वान् के रक्षण तथा ज्ञान सामर्थ्य से वरणीय, दुःखवारक बल और ज्ञान प्राप्त करें। सोने वाले को बिस्तर और अज्ञान नाशक विद्वान् को शुभ प्रेममयी वाणी और उत्तम गौ प्रदान करें।

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥

भा०—हे सत्य ज्ञान और व्यवहार वाले विद्वान् प्रमुख पुरुषो! आप दोनों अपने रक्षण और ज्ञान चाहने वाले, स्तुतिशील, विद्वान्, सबके चित्तों के आकर्षक या दुःखों के विनाश करने में समर्थ, धर्म मार्ग पर चलने हारे सरल स्वभाव, सर्व हितकारी पुरुष के व्यवहारों को यथार्थ रूप से देखने के लिये अपनी शक्तियों और ज्ञान वाणियों द्वारा व्यापक, ज्ञानशील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान खोये हुए पशु के समान प्रदान करो। इसी प्रकार माता पिता दोनों भी अपनी रक्षा चाहने वाले, स्तुतिशील, मनोहर, धर्मात्मा, सर्व हितकारी पुत्र या शिष्य को प्रभु के दर्शन के लिये खोये पशु के समान व्यापक परमेश्वर तक पहुंचाने वाले सर्व दर्शक ज्ञान प्राप्त करावें।

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

भा०—सोम रस को यज्ञ पात्र में से जिस प्रकार आहुति देने वाला स्रुवा से ऊपर उठा लेता है उसी प्रकार सेना और सभा के दोनों

नायक विद्वान्, आज्ञापक! ऐश्वर्य लक्ष्मी से सम्पन्न राजा को अमंगलकारी पाप से बधे हुए, प्रजाओं के बीच अपने कार्यों में शिथिल हुए जल में बहते हुए नाव के समान विप्लव अर्थात् धर्म नाश में प्रवृत्त, सन्मार्ग से विचलित हुए राजा को दश रात्र और नौ दिन में उन्नत करें। अर्थात् उनको इतने दिनों का अवसर उठने के लिये दें।

इसी प्रकार विद्वान् पुरुष जब अमङ्गल, अशुचि प्रसूतक या शवके अशौच से युक्त हो तब, उसको जलों में निहला कर दश रात्रि और नव दिन के बाद शुद्ध कर लें।

गृहस्थ स्त्री पुरुष भ्रष्ट, जरायु से बंधे, गर्भगत जलों में लिपटे बालक को जल में स्नान करा लेने पर भी दश रात और ९ दिन के बाद ऊपर उठावें अर्थात् सूतक में भी बालक को दश रात्रि के बाद पुनः स्नान द्वारा स्वच्छ कर नामकरण करें। शवाशौच में भी दश रात्र में जलादि में स्नान कराके शुद्ध करें।

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥१२॥

भा०—हे उक्त मुख्य पुरुषो! नायको! एवं स्त्री पुरुषो! मैं इस राष्ट्र, गृह और देह का पालक राजा आप दोनों के कर्त्तव्यों का वर्णन करता हूं। मैं सुखप्रद, उत्तम भूमि और गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी उत्तम पुत्रों और वीर भृत्यों का स्वामी होऊं। और चक्षुओं से देखता हुआ और दीर्घायु का भोग करता हुआ मैं गृह के समान बुढ़ापे की दशा अर्थात् पूर्णायु को प्राप्त होऊं।

अध्यापक और उपदेशक के पक्ष में—मैं शिष्य उत्तम ज्ञान वाणियों और उत्तम इन्द्रियों का और उत्तम प्राणों का साधक होकर तथा दीर्घ आयु होकर ज्ञान का दर्शन करता हुआ उपदेश देने वाले गुरु को और सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को प्राप्त होऊं ॥ इति द्वादशो वर्गः ॥

[११७]

कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत् पङ्क्तिः । २, ६ विराट् पङ्क्तिः । २२, २५, २१ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ७, १२, १६, १७, १८, १९ निचृत् त्रिष्टुप् । ८, ९, १०, १३–१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, २४ त्रिष्टुप् । धैवतः । पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्या पारंगत, मनस्वी, विद्वान् पुरुषो ! या राजा रानी ! मधुर अन्न तथा ओषधि रस के समान आनन्दप्रद ऐश्वर्य के आनन्द लाभ तथा दमन करने के लिये अति वृद्ध, ज्ञानानुभवी 'होता' नामक योग्य पुरुषों को योग्य कार्याधिकार सौंपने द्वारा विद्वान् पुरुष आप दोनों के प्रति सब बात खोल कर कहता है । आप का दान प्रजा के सुखं वृद्धि करने वाला हो । और आप दोनों की वाणी विविध विद्वानों तथा अधिकारी वर्गों द्वारा सेवन की जाने योग्य हो । हे प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों ऐश्वर्यों सहित हमें सेना और अन्नादि समृद्धि और अनुकूल इच्छा सहित प्राप्त होवो ।

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

भा०—हे उत्तम नायक विद्वान् जनो ! जो आप दोनों का मन से भी अधिक वेग वाला युद्ध क्रीडा करने वाला, उत्तम अश्वों से युक्त रथ प्रजाओं को प्राप्त होता है । अथवा प्रजाओं के मुख से आपकी प्रशंसा कराता है और जिससे आप दोनों शुभ कर्म करने वाले के घर तक जाते हो उस ही रथ से हमारे गृह पर भी सदा आया करो ।

अध्यात्म में—प्राण अपान दोनों का मन से भी अधिक वेगवान अर्थात् व्यापक, उत्तम प्राण आदि अश्वों सहित रथ आत्मा है । वह

रमण कर्त्ता और रस स्वरूप होने से 'रथ' है, प्राणादि से युक्त होने से 'स्वश्व' है। मन से भी तीव्र जाने का अभिप्राय आत्मा का ज्ञानमार्ग में तीव्र होने का है। तद् धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। ईश उप० ॥ वह स्वयं उत्तम कर्त्ता होने से 'सुकृत' है और वह आत्मा पुण्यात्मा के हृदय में प्रकट होता है।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गुणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्व वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! या राजदम्पती ! आप दोनों प्रकाशरहित, अन्धकारमय पाप, अज्ञान से वेद शास्त्रज्ञ पाचों जन ब्राह्मण आदि चार वर्ण तथा तद्-बाह्य इन सब मनुष्य मात्र के हितकारी, विविध तापों और विविध बन्धनों से रहित पुरुष को उनके गण सहित बन्धन से छुड़ाओ और अमङ्गल जनक, अकल्याणकारी प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष के छल कपट के जालों को नाश करते हुए पूर्व के सब सिद्धान्तों के अनुकूल बलवान् होकर प्रेरित करो।

अध्यात्म में—संसार बन्धन 'ऋबीस' है। पांच प्राणों से युक्त भोक्ता चेतन आत्मा 'अत्रि' है। प्राण गणं 'गण' है। आत्मस्वरूप, सर्वप्रपञ्चोपशम, अमात्र 'शिव' है। तद्विपरीत अनात्म प्रत्यय 'अशिव' माया है। प्राण अपान का अभ्यास उसको दूर करता है। देखो ऋ० १।११६।८ ॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥४॥

भा०—हे समस्त सुखों के वर्षक विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं मुख्य अधिकारियो ! दु खदायी, दुर्गम मार्गों के अनवरत चलने आदि से पीड़ित, भय खाकर भगे हुए, छुपे हुए अश्व को जिस प्रकार यत्न से आश्वासन पूर्वक खोजकर युक्ति से रथ आदि में पुनः लगाते हैं उसी प्रकार अति गंभीर ज्ञान के द्रष्टा, विविध ज्ञानों में निष्णात, कार्यों और ज्ञानों में आप्त जनों के बीच विद्वान्, प्रवचनकारी आचार्य उत्तम पुरुष को विविध

कार्यों से प्राप्त करो। आप लोगों के प्रति पूर्व के विद्वानों के किये ज्ञानोपदेश नष्ट नहीं होते।

अध्यात्म में — गूढ़ भोक्ता आत्मा अश्व के समान है। वही द्रष्टा होने से 'ऋषि', स्तुतिकर्त्ता होने से 'रेभ' है। कर्म बन्धनों से 'त्रिमृत' अर्थात् विविध योनियों में चला जाता है। उसको नाना कर्मानुष्ठानों द्वारा प्राप्त करो।

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रजा के दुःखों का दूर करने वाले, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले, विद्वान् स्त्री पुरुषो! एवं प्रमुख नायको! सोते हुए पुरुष को जिस प्रकार जगा के खड़ा कर दिया जाता है उसी प्रकार भूमि की पीठ पर मानो सोते हुए, उसमें गड़े हुए, मिट्टी के नीचे पड़े अन्न को बीज वपन द्वारा उगाओ। अन्धकार में छुपे हुए सूर्य के समान तेजस् या चेतना आयु और जीवन देने वाले अन्न को उत्पन्न करो और भीतर गड़े, दर्शनीय दीप्तियुक्त सुवर्ण को जैसे शोभा अर्थात् शरीर भूषा के लिये खना जाता है उसी प्रकार देह में रुचि और दीप्ति को उत्पन्न करने वाले अन्न को भूमि से बीज वपन द्वारा प्राप्त करो।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी अपने ही उत्पादक रमणकारी अंगों में सोते हुए से अर्थात् गुप्त अन्धकार में रहते सूर्य के समान राजस् तामस कर्म में निगूढ, छुपे सुवर्ण के समान गुप्त जीवात्मा को बालक रूप में अपनी कीर्त्ति तथा सेवा के लिये वीर्य निषेक अर्थात् बीज वपन द्वारा उत्पन्न करें।

इसी प्रकार साधक स्त्री पुरुष भी भीतर सोते हुए अर्थात् गूढ़, तामस-आवरण में छुपे सूर्य के समान, स्वप्रकाश, सुवर्ण के समान कान्तिमान् आत्मा को उत्तम स्तुति के लिये अपने हृदय में प्रकाशित करें और उसका ज्ञान करें। रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं त विद्यात् शुक्रममृतम्। उप० देखो। सू० ११६।११।१२।

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

भा०—हे असत्याचरण से रहित सभा सेनाध्यक्षो ! वीर उत्तम स्त्री पुरुषो ! ज्ञान करने योग्य, शास्त्रो मे विद्वान् उत्तम नियम व्यवस्था में बद्ध पुरुष, तुम दोनो को उस ज्ञान का उपदेश करे जिससे वेगवान् अश्व या अश्व सेना के वेगवान् शत्रु गमनकारी आक्रमण से ही राष्ट्रवासी जन के सुख के लिये मार्ग मार्ग मे मधुर सुखकारी पदार्थों के जलों के घटो के समान सैकडों पात्र आप दोनो प्रदान करो । विशेष देखो सू० ११६। मन्त्र० । मेघ से जल के समान और घडों के जल से छिडकाय के समान राजा अपने पराक्रम से अपनी प्रजा के लिए ऐश्वर्य सुख बरसा दे ।

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७॥

भा०—हे नायक, मुख्य उत्तम पुरुषो ! आप दोनो यथार्थ उपदेश करने मे समर्थ, बीज वपन के समान शिष्य-भूमियो मे ज्ञान वपन करने में कुशल सर्वोपकारक पुरुष को विशेष स्नातक पद प्रदान करो । हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग पालक पिता के आश्रय या गृह पर रहने वाली विकृत, शब्द न करने वाली, अति उत्तम वेद की विदुषी स्त्री के लिये, गृह बसाने के निमित्त जरावस्था तक पहुचने के लिये योग्य पालक पुरुष को पति रूप से प्रदान करो । विशेष देखो सू० ११६। मंत्र १०, ७, २३ ॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे सुखो के वर्षण करने हारे, प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो ! आप दोनों ज्ञानवान् पुरुष को दीप्ति से युक्त तेजस्विनी विद्या का दान करो । उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान मे गुरु के अधीन रह कर विद्याभ्यास करने वाले, अन्तेवासी, ब्रह्मचारी, ज्ञानवान् पुरुष के लिये

महान् सामर्थ्य और तेज प्रदान करो और जो आप दोनों नायक तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य, को प्रवचन करने योग्य सुसम्पन्न ज्ञान और यश प्रदान करते हो, वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ काम है ।

अध्यात्म में—आत्मा ही चेतन और ज्ञानवान् होने से 'श्याव', देह में निवास करने से 'क्षोण', प्रकाश स्वरूप होने से 'कण्व', प्राण रूप देह के नायकों पर अधिष्ठाता होने से 'नार्षद' है । ज्ञान दीप्ति 'रुशती' है । ब्रह्म ज्ञान 'महः' है । आत्मज्ञान 'श्रवः' है । वह गुरुपदेश द्वारा प्राप्त होने से 'प्रवाच्य' है ।

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पियो ! बहुत से रूपों या पदार्थों को बनाते हुए आप लोग दूर जाने के लिये अति बल को धारण करने वाले, वेग-वान्, अदृश्य या बेरोक, अतुल्य बल, आगे आने वाली रोक अर्थात् डाट पर धक्का मारने वाले श्रवण करने योग्य, शब्दकारी दूर तक पहुंचा देने वाले, शीघ्रगामी अश्व अर्थात् अग्नि या विद्युत से चलने वाली गाड़ी या यान को भगाओ । हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों नाना प्रकार के रूप या ऐश्वर्यों को धारण करके भी परमपद प्राप्त करने के लिये सहस्रों उपदेश देने वाले ज्ञानवान्, आत गूढ, अज्ञान नाशक, वेद ज्ञान में कुशल संसार से तराने वाले आचार्य और परमेश्वर का अवलम्बन करो । उसको अपने सब कार्यों में और हृदय में धारण करो और उससे उपदेश ग्रहण करो ।

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥

भा०—हे उत्तम, दानशील ऐश्वर्य के भोक्ता, स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों के ये सब कार्य श्रवण करने योग्य, प्रशंसा करने योग्य तथा अन्नादि उत्पादन और प्रदान सम्बन्धी, अथवा यशोजनक हैं। या वेदोक्त ज्ञान के

अनुसार हो। सूर्य और पृथिवी का एकमात्र आश्रय वह महान् परम ब्रह्म ही समस्त विद्याओं का विज्ञापक अनादि गुरु है। और परस्पर उपदेश लेने और देने वाले और एक दूसरे के ऊपर आश्रित सूर्य पृथिवी के समान गुरु शिष्य और स्त्री पुरुष इन दोनों के सब कार्यों का आश्रय भी वही परमेश्वर और ज्ञानमय वेद सब विज्ञानों का विज्ञान कराने हारा है। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! क्योंकि ज्ञानवान् पुरुष ही आप दोनों को उस परम ब्रह्म और वेद के ज्ञान का उपदेश करते हैं इसलिये आप दोनों विद्वान् पुरुषों को देने के लिये अन्न आदि इच्छानुकूल पदार्थों के साथ प्राप्त होवो और ज्ञान प्राप्त करो और अन्न का दान करो।

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्या रिणीतम् ॥११॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों पालन पोषण करने में समर्थ पुत्र के समान उपदेश किये जाकर मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष को अन्न प्रदान करते हुए, ज्ञान देने में कुशल पुरुष तथा वेदोक्त कर्म के आश्रय रह कर वेद और ब्रह्मचर्य द्वारा बढ़ते हुए, कभी असत्याचरण न करते हुए प्रजा वर्ग के पालन करने वाली नीति को अच्छी प्रकार चलाओ।

इसी प्रकार राष्ट्र के दो प्रमुख नायक या राजा रानी दोनों विविध ऐश्वर्यों से राज्य को पूरने वाले विद्वान् वर्ग के लिये सर्व प्रेरक सूर्य के ज्ञान से या पुत्र के समान मान कर उपदेश और आज्ञा वचन कहते हुए सुवर्ण, रजत, रत्न आदि ऐश्वर्य और अन्न को भूमि से खन कर प्राप्त करते हुए, सूर्य के आश्रय पर जल से और ज्ञानी पुरुष के आश्रय पर ब्रह्म ज्ञान से बढ़ते हुए, प्रजा पालन की नीति को सदा सत्य स्वभाव, न्यायवान् होकर पालन करें।

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

भा०—हे ज्ञान विज्ञान युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान, परम

मेधावी परमेश्वर के रचे हुए वेदमय ज्ञान को अथवा तेजोमय वीर्य, ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करते हुए बलवान् वीर्य सेचन मे समर्थ युवा स्त्री पुरुषो ! आप दोनो उत्तम स्तुति को या कीर्ति को प्राप्त करते हुए, यशस्वी होकर सुवर्ण वे भरे गड़े हुए कलसे के समान किस शयन स्थान पर या किस आश्रम मे और किस महान् उद्देश्य के निमित्त शयन करते हुए दसवें दिन हित और रमण योग्य, एवं आत्मा रूप बीज को उत्तम रूप से वपन करते हो। रजो दर्शन से दसवें दिन अर्थात् स्नान से पाचवीं रात्रि गर्भाधान करने पर सन्तान अति उत्तम होती है यह गर्भ-विज्ञान वादियो का सिद्धान्त है। किस आश्रम मे ? यह प्रश्न है। गृहस्थ मे। यह उत्तर है।

राष्ट्र के प्रमुख पालक भी न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले, बलवान्, सुख से सोती हुई प्रजा को पालन करने वाले होकर सुवर्ण से भरे कलसे के समान दसवें दिन किस आश्रय पर उदवपन करते हैं अर्थात् समस्त शक्ति का वपन करते हैं ? उत्तर है राजा या विद्वानों के आश्रय पर नव दिनों के अनन्तर दसवें दिन राज्याभिषेक होता है। पुत्र के समान दिन और रात्रि हिरण्य कलश के समान तेजस्वी सूर्य को उत्पन्न करते हैं।

युवं च्यवा॑नमश्विना॒ जर॑न्तं॒ पुन॒र्युवा॑नं चक्रथुः॒ शची॑भिः।
यु॒वो रथं॑ दुहि॒ता सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑सत्यावृणीत ॥ १३ ॥

भा०—हे शरीर और आत्मा के बल से युक्त, अश्व के समान हृष्ट पुष्ट युवा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ज्ञान प्राप्त करने वाले उपदेश प्राप्त करते हुए बालक को विद्या और कर्मों के उपदेशों से युवा, जवान करो। तब हे सदा सत्य स्वभाव के स्त्री पुरुषो ! उत्तम तेजस्वी उत्पादक पिता की पुत्री तुम दोनों के बीच मे अति शोभा के सहित रमण योग्य पति को वरण करें।

हे प्रमुख न्यायकारी नायक पुरुषो ! आप दोनो शत्रु को संग्राम

में पराजित करने वाले आज्ञापक, युवा बलवान् पुरुष को शक्तियों और अधिकारों से युक्त करो। सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को सब ऐश्वर्यों को दोहन या पूर्ण करने वाली पृथ्वी निवासिनी प्रजा अपनी राज्य समृद्धि सहित महारथी पुरुष को अपना स्वामी वरण करे।

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
युवं भुज्युमर्णसो निः संमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों युवा, बलवान् और परस्पर संगत होकर शत्रुओं के नाशकारी, बल सम्पादन करने के लिये पालने योग्य अथवा बलवान् पुत्र उत्पन्न करने के लिये पूर्व के विद्वानों से उपदेश किये ज्ञानों, उपायों और मार्गों से पुनः मननशील या पुनः परस्पर सम्मत होवो और तुम दोनों जल से भरे समुद्र से भोग योग्य रत्नादि ऐश्वर्य और व्यापार योग्य पदार्थ या परस्पर के सुख को विमानों और गतिशील नौका आदि साधनों से और सधे हुए सुशील अश्वों से, या उत्तम कार्य में लगी इन्द्रियों से देश से देशान्तर ले जाया करो। अथवा गृहस्थ स्त्री पुरुष पूर्व के आचार्यों से दिखाये या सनातन से चले आये वेद ज्ञानों द्वारा पुनः मननशील होकर युवा होवें। और जल के समुद्र से भोग्य रत्नादि के समान स्त्री पुरुष जन ऋजु, सरल धर्म मार्ग में चलने वाले ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर पालने योग्य वीर्य या ब्रह्मचर्य को धारण करें या परस्पर भोग्य गृहस्थ कर्म का वहन करें।

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान्।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१५॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! एक दूसरे के हृदय में व्यापक! एक दूसरे से सुखों के भोग करने हारे तुम दोनों में से प्रत्येक विवाहित पुरुष बिना व्यथा या पीडा के ही संसार रूपी समुद्र के पार जाने हारा है। वह

उत्तम रीति से गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ होकर ही पालन करने योग्य पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ होकर आहुति करे अर्थात् वीर्याधान करे। तब दोनों वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर मन के वेग से जाने वाले रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ या परस्पर के सुख से परस्पर उत्तम रीति से युक्त होकर कुशलपूर्वक उस गृहस्थ कार्य का निर्वाह करें। इति पञ्चदशो वर्गः॥

अजो॑हवीदश्विना व॒र्तिका वा॑मा॒स्नो यत्सी॒ममु॑ञ्चतं॒ वृक॑स्य।
वि ज॒युषा॑ ययथुः॒ सान्वद्रे॑र्जा॒तं वि॒ष्वाचो॑ अहतं वि॒षेण॑॥ १६॥

भा०—हे सेना और सभा के मुख्य अध्यक्ष पुरुषो! भेड़िये के मुख से जिस प्रकार कोई दयालु पुरुष बटेरी को छुड़ा दे उसी प्रकार भेड़िये के स्वभाव वाले प्रजाभक्षक शासक के मुख या भक्षण कर जाने वाले रक्त शोषक उपायों से आप दोनों जब २ भी प्रजागण को छुड़ाते हो तब २ वह प्रजा सुख से व्यवहार और व्यापार से रहने वाली या उद्योग धन्धों से जीने वाली प्रजा आप दोनों को उत्तम नामों से पुकारती है और आप दोनों विजयशील रथादि साधन से तथा शत्रु जयकारी उपाय से पर्वत के शिखर के समान ऊंचे पद तक विशेष प्रकार से पहुंचते हो और तब सब तरफ फैली शत्रु सेना के रक्खे पदार्थों के विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन को बचाते हो और प्रत्येक पदार्थ या बच्चे २ तक को अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से प्राप्त होते हो। उसको अपने वश कर लेते हो।

वर्त्तिका नाम उषा को दिन और रात्रि दोनों विशेष दीप्ति वाले सूर्य के मुख से पृथक् करते हैं, उदयाचल के शिखर पर प्रतिदिन विजयशील, प्रमुख रथ या स्वरूप से जाते हैं। विविध देशों में व्याप्त अन्धकार के प्रभाव को व्यापक तेज से विनष्ट करते हैं।

इसी प्रकार वृक स्वभाव से तुम माता पिता अपनी सुवृत्त, शील-सम्पन्न पति के अधीन रहने वाली कन्या को बचाओ। ऐसी वह कन्या

तुम से प्रार्थना करती है। अपने विजयी रथ से पर्वत के उच्च शिखर तक चढ़ा मेघ जिस प्रकार जल से सब पदार्थों पर बरसता है उसी प्रकार व्यापन गुण से सब देशों के पुरुषों को मिलाओ।

शतं मेषान्वृक्यै मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनाव धत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७॥

भा०—जैसे अमङ्गलकारी पिता प्रजा के कल्याणकारी प्रजापालक राजा द्वारा अपने घोर अन्धकार को दूर करता है, विविध फोड़ फाड़ करने वाली एवं चोर स्वभाव की राजसभा या शासन व्यवस्था के निमित्त सौ प्रतिस्पर्धी विद्वानों या आयु के १०० वर्षों को शेरनी के लिये सौ भेड़ों के समान बलि देने वाले राजा को हे मुख्य अध्यक्ष जनो! आप दोनों दो आखें प्रदान करो और आंख से अन्धे पुरुष के लिये विविध प्रकार से देखने के लिये सूर्य और चन्द्र का सूर्यातप और चन्द्र तप दोनों के समान शान्तिदायक ज्ञान और सतापदायक दण्ड व्यवस्था करने वाले और उन दोनों को दो आखों के समान दो अध्यक्ष प्रदान करो। ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग में जाने वाले सरल अकुटिल धर्मात्मा राजा के अधीन रक्खो।

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रमुख पुरुषो! हे सुखों की प्रजा पर वर्षा करने हारे नायको! इस प्रकार से अन्धे राज्यकर्त्ता पुरुष को ही जो राज-व्यवस्था, सुख और प्रजा के भरण पोषण का कार्य करने को कहती है वही वृक अर्थात् भेडिया या बाघ के समान प्रजा का नाश करने वाली होती है। इसलिये ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग पर चलने वाले इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय राजा सदा सूर्य के समान दीप्तिमान् होकर सौ और एक अर्थात् १०१ मेष अर्थात् वर्षों तक प्रकाशमान, तेजस्वी रहकर प्रजा को उसके भरण पोषण करने के लिये आज्ञाएं देवे। मेष राशि का भोग

करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहाता है। इसी कारण १०० या १०१ मेष का १०० या १०१ वर्ष ही ग्रहण करना उचित है।

युवति कन्या का उसकी पूर्ण आयु अर्थात् जरावस्था तक पहुचने वाला युवा पुरुष पति जिस प्रकार जितेन्द्रिय होकर १०१ वर्षों तक सुख पूर्वक उसका भरण पोषण करता है। उसी प्रकार वह धर्मात्मा राजा भी प्रजा का अपनी पूर्णायु तक पालन करे।

मही वामूतिरश्विना मयो भूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः।
अथा युवामिदह्वयत्पुरंन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः॥ १६॥

भा०—हे समस्त राज्य, ऐश्वर्य और गृहस्थ के सुखों को भोगने वाले प्रमुख स्त्री पुरुषो! आप दोनो की बडी भारी रक्षणशक्ति, प्रजा को सुख प्रदान करने वाली होती है। आप दोनो बुद्धिमान् होकर त्रुटियों को सुसंगत कर दिया करो और पुर अर्थात् राष्ट्र या नगर को धारण करने वाला तथा पालन पोषण करने की शक्ति, कर्म और प्रज्ञा वाला राजा या विद्वान् पुरुष इस प्रकार आप दोनो को उपदेश करे कि तुम दोनों अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्यों से सुसंगत होकर रहो, परस्पर मिलकर रहो।

अधेनुं दस्रा स्तर्यं१विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्॥२०॥१६॥

भा०—हे विद्वान् और प्रमुख स्त्री पुरुषो एवं अधिकारी जनो! हे दुष्ट पुरुषों के नाश करने हारो! आप दोनों सोने वाले अर्थात् राज्य कार्य में प्रमाद करने वाले आलसी राजा के लिये दूध न देने वाली वन्ध्या गौ के समान ऐश्वर्य या भोग्य पदार्थों के न देने वाली विस्तृत या वन्ध्या, [illegible] या हिंसाशील राजद्रोहिणी विरुद्ध मार्ग में या विद्रोह में [illegible], विपरीत हुई पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेना को नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न करो। अर्थात् द्रोहियों को नाश करके जैसे अन्नोत्पादक सूखी भूमि को जल सींच कर हरा भरा किया जाता है वैसे ही उसको सुख समृद्ध करो।

विशेष हर्ष से युक्त पुरुष के गृहस्थ धर्म के लिये जिस प्रकार जाया अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री को उससे विवाहित कर दिया जाता है उसी प्रकार सेवन करने योग्य भूमि को भी नाना शक्तियों से वश करके बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान् राजा के अधीन नियम पूर्वक प्राप्त कराओ। प्रमादी राजा की प्रजाए विद्रोह करती हैं। उनको बलवान् सेनापति और सभापति शान्त करें और ऐश्वर्य सम्पन्न करें। बहुमित्र राजा के अधीन उसको सुशासन में रक्खें। इति शोडषो वर्गः।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

भा०—अब पूर्वोक्त रूप से फल न देने वाली राष्ट्रभूमि को समृद्ध करने का उपाय बतलाते है—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, एव प्रमुख अधिकारियो! आप दोनों जन भूमि को विशेष रूप से खोदने वाले हल यन्त्र से भूमि को खन कर यव आदि धान्य बोते हुए मनुष्य वर्ग के खाने पीने के लिये इच्छानुरूप अन्न और वृष्टि जल को प्रदान करते हुए और तेजोमय आग्नेयास्त्र से प्रजा के नाश करने वाले, दुष्ट डाकू वर्ग को सब प्रकार से सताप देते हुए, श्रेष्ठ प्रजा वर्ग के हित के लिये सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को शासक बनावो।

अथवा हे सभा सेनाधीशो! शत्रुओं को काट गिरा देने वाले शस्त्र जों के समान दूर करने योग्य शत्रु पक्ष को छेदन करते हुए और मनुष्य वर्ग के हितार्थ सेना बल को पूर्ण करते हुए चमचमाते आग्नेयास्त्र से दुष्टों को भस्म करते हुए श्रेष्ठ राजा के पुत्र के समान प्रजाजन की वृद्धि के लिये तेज और न्याय का प्रकाश करो।

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

भा०—हे अश्व सेना और विद्वत्सभा के स्वामी वीर सेना और विद्वत् सभा के नायक अध्यक्ष पुरुषो! आप दोनों न हिंसा करने वाले,

प्रजापालक और शान्तिविधायक, प्रजापति के पद पर कार्य करने वाले, राष्ट्र को धारण करने में सामर्थ्य को प्राप्त विद्वान्, बलवान् पुरुष को ही अश्व सेना और राष्ट्र का मुख्य पद प्रदान करो। और हे शत्रुओं के नाश करने में कुशल पुरुषो! वह मुख्य पुरुष ऐश्वर्य की कामना करता हुआ आप दोनों को शिल्पियों से बनाये गये मधुर एवं शत्रुओं का पीडन और स्तम्भन करने वाला बल या शस्त्रास्त्र साधन तथा ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त कराता है। और जितना भी कक्षाओं में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ज्ञान है उसका भी उपदेश करता है। अथवा वह सत्य ज्ञान और न्याय शासन चाहता हुआ सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी शासन या आज्ञा और आचार्य के समान ज्ञान का उपदेश करे। गुरु जिस प्रकार उत्तरोत्तर कक्षाओं में कहने योग्य ज्ञान की वृद्धि करता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अधिकारी युक्त श्रेणियों में प्राप्त होने योग्य शासनाधिकार और तदुपयोगी ज्ञान भी प्रदान करे। 'दधीचे'—इन्द्रियं वै दधि। तै० २। १। ५६। दधि हैवास्य लोकस्य रूपम्। श० ७। ५। १। ३॥ सोमो वै दधि। कौ० ८। ९॥ वाङ् वै दध्यङ् आथर्वण. ॥ श० ६। ४। २। ३॥ 'आथर्वणाय'—प्राणो वा अथर्वा। श० ६। ४। २। २॥ अथ अर्वाङ् एव-मेतासु अप्सु अन्विच्छ। गो० पू० १। ४॥

सदा॑ कवी सुम॒तिमा च॑के वां॒ विश्वा॒ धियो॑ अश्विना॒ प्राव॑तं मे।
अ॒स्मे र॒यिं ना॑सत्या बृ॒हन्त॑मपत्य॒साचं॒ श्रुत्यं॑ रराथाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे दूरदर्शी विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो! मैं आप दोनों ′ शुभ कर्मानुकूल मति, ज्ञान और अनुमति को प्राप्त करूं। मुझे समस्त ...ओं, ज्ञानों और रक्षा आदि अनुग्रह को आप लोग प्रदान करें। हे . सत्य व्यवहारशील स्त्री पुरुषो! आप दोनों हमें पुत्र पौत्रादि को प्राप्त होने वाले बड़े भारी प्रसिद्ध और श्रवण या गुरूपदेश द्वारा प्राप्त होने योग्य वेदज्ञानमय ऐश्वर्य को प्रदान करें।

हिर॑ण्यहस्तमश्विना ररा॒णा पु॒त्रं न॑रा वध्रिम॒त्या अ॑दत्तम् ।
त्रिधा॑ ह॒ श्याव॑मश्विना॒ विक॑स्तमु॒ज्जीव॒स ऐ॑रयतं सुदानू ॥ २४ ॥

भा०—हे विद्वानो और विदुषी स्त्री पुरुषो ! आप दोनो राष्ट्र की बढ़ती हुई विद्या के पुत्र अर्थात् उसके पालन, अभ्यास और सेवन करने वाला, ऐश्वर्य को अपने हाथ मे या वश मे करने हारा पुत्र या शिष्य प्रदान करो। हे मार्गदर्शी विद्वान् नायक जनो ! हे उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारो ! मन, वाणी, काय तीनों प्रकार से विशेष विकास को प्राप्त होने वाले विद्वान् पुरुष को दीर्घ जीवन के लिये या राष्ट्र मे जीवन जागृति की वृद्धि के लिये उत्तम शिक्षा दो या उत्तम पद पर स्थापित करो।

इसी प्रकार राष्ट्र के प्रधान नायक पुरुष भी स्वतन्त्र रूप से कुछ न कर सकने वाले सभापति से युक्त सभा के पुत्र या पालक रूप से ऐश्वर्यवान् पुरुष को और बढ़ती हुई राष्ट्रशक्ति के पालक को हित और रमणीय, उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीर पुरुष को नियत करें। राष्ट्र मे जीवन की जागृति और प्राणरक्षा के लिये प्रज्ञा, उत्साह, प्रभु शक्ति या धन, काम, बल और प्रज्ञा इन तीनों मे प्रबल पुरुष को उत्तम, प्रधान पद प्राप्त करावें।

ए॒तानि॑ वामश्विना वी॒र्या॑णि॒ प्र पू॒र्व्याण्या॒यवो॑ऽवोचन् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ वृषणा यु॒वभ्यां॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥२५॥१७॥

भा०—हे विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! सभा-सेनाध्यक्षो ! तथा गुरु शिष्यो ! ये नाना प्रकार के वीर जनों के योग्य बल और वीर्य के द्वारा साधने योग्य, पूर्व के विद्वानो तथा सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर या वेद द्वारा प्रतिपादित जो ज्ञान या बल पराक्रम हैं उन को विद्वान् जन शिष्यों को उपदेश किया करें। हे सुखों के वर्षक, बलवान् पुरुषो ! हम लोग उत्तम पुत्रों, प्राणों और पुरुषों से सहायवान् होकर ऐश्वर्य और वेद ज्ञान का सम्पादन करते हुए विज्ञान का सर्वत्र उपदेश करें। इति सप्तदशो वर्गः।

[११८]

कक्षीवानृषि ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् पंक्तिः । २, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ६, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

भा०—हे राज प्रजा के प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों का वह रथ वाज के समान वेग से जाने हारा, अपने भृत्यों से युक्त, उत्तम रीति से सुखप्रद होकर सदा हमारे पास आवे और जावे । जो तीन स्थानों पर बन्धा हुआ, वायु के वेग से जाने हारा होकर मनुष्य के मन से भी अधिक वेग से जाने हारा है ।

अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! बुद्धि और आत्मन् ! तुम दोनों का यह रमण साधन रथ देह 'श्येन' अर्थात् चेतन ज्ञानवान आत्मा के कारण चेतन, ज्ञानकर्त्ता और गतिमान् होने से 'श्येनपत्वा' है । सुखदायी होने से 'सुमृडीक' है । और आत्मा अपने ही प्राणों से युक्त होने और स्वप्रकाश होने से 'स्ववान्' है । वह प्रत्यक्ष होता है । प्राण, उदान और व्यान में या शिर, छाती और नाभि में बधा होने से 'त्रिबन्धुर' है । प्राणों या मरुत् (Metoblolic Force) के वेग से गतिमान् होने से 'वातरंहा' है मन के वल से ही यह वेगवान् है ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! आप तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त, तीन प्रकार के आवरणों से युक्त, तीन कला युक्त चक्रों से युक्त, उत्तम मनुष्यों या गतियों या श्रृङ्गारों से युक्त, रथ से भूमि के ऊपर, नीचे समीप और दूर आया जाया करो । आप दोनों हमारे गौओं को व्याप

आदि से वृक्ष तथा भूमियो को जल से सेचन किया करो। हमारे अश्वो की वृद्धि करो। और हमारे वीर जनो और पुत्र जनो को खूब बढ़ाओ।

अध्यात्म में—मस्तक, मेरुदण्ड और मासपेशियें इन तीन प्रकार के बन्धन होने से या त्रिविध गुणो के बन्धन होने से देह 'त्रिबन्धुर' है। आत्मा, मन और प्राण तीन प्रकार के कारक पदार्थों से या आत्मा, मन और इन्द्रिय इन तीन से वह 'त्रिचक्र' है। सुख से, पदार्थों को भोगने से 'सुवृत' है। प्राण और अपान या माता और पिता जन हमारे वेद-वाणियो, भूमियो और ज्ञानेन्द्रियो को तथा कर्मेन्द्रियो, विद्वानो और पशुओ को बढ़ावें।

प्र॒वद्या॑मना सु॒वृता॒ रथे॑न॒ दस्रा॑वि॒मं शृ॑णु॒तं श्लोक॒मद्रेः॑।
किम॒ङ्ग वां॒ प्रत्यव॑र्तिं॒ गमि॑ष्ठा॒हुर्विप्रा॑सो अश्विना पुरा॒जाः ॥ ३ ॥

भा०—हे विदुषी वा विद्वान् स्त्री पुरुषो! दुःखों और दुष्ट पुरुषो के नाश करने वाले उत्तम मार्ग से और उत्तम चाल से चलने वाले उत्तम सुख साधनों से युक्त, रथ और रमण साधनो से युक्त होकर भी पर्वत के समान उत्तम और उन्नत पद पर जाते हुए भी इस पवित्र वेद वाणी का श्रवण किया करो। हे प्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों के प्रति पूर्व काल मे उत्पन्न विद्वान्, पूर्व पुरुष, क्या कुछ असम्भव या कुछ निन्द-नीय वाणी कहते रहे? नहीं, कुछ भी नहीं। अथवा हे स्त्री पुरुषो! तुम आदर करने योग्य मेघ के समान सर्वदाता, प्रमुख विद्वान् नायक की वाणी, गुरु वाणी, वेद या मेघ ध्वनि का सदा श्रवण करो।

आ वां॑ श्ये॒नासो॑ अश्विना वहन्तु॒ रथे॑ यु॒क्तास॑ आ॒शवः॑ पत॒ङ्गाः।
ये अ॒प्तुरो॑ दि॒व्यासो॒ न गृध्रा॑ अ॒भि प्रयो॑ नासत्या॒ वह॑न्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पीजनो! आप दोनो को रथ मे लगे हुए अति शीघ्रगामी सूर्य के समान दीप्ति वाले, अति वेग से जाने वाले श्येन पक्षी के समान युद्ध भूमि मे झपट कर दौडने वाले, सरपट घोड़े या विद्युत् आदि यन्त्र दूर देश में पहुचावें। जो अन्तरिक्षों और जलों मे वेग से

जाने वाले गीध के समान लम्बे पक्ष वाले और लम्बी उडान लगाने वाले उत्तम गन्तव्य प्राप्ति-स्थान या ठिकाने तक ले जाते हैं ।

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५॥१८॥

भा०—हे नायक पुरुषो ! सूर्य की कन्या उषा के समान कान्तिमती और सूर्य के समान तेजस्वी नायक की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी प्रेमयुक्त या ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई युवति स्त्री, तुम दोनों के बने रथ पर प्रथम बैठे, तुम दोनों को बडे बड़े डील वाले किरणों के समान लाल रंग के बडे तेजस्वी गतिशील घोडे दो ले जावें । अथवा उत्तम रूप को चाहने वाली वरवर्णिनी युवति ही तुम स्त्री-पुरुषों में से प्रथम रथ पर चढे । इति अष्टादशो वर्गः ।

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

भा०—नाना सुख प्रदान करने हारे, एवं निषेक आदि करने हारे माता पिता जनो ! आप लोग उत्तम आचरणों से नित्य अभिवादनशील तथा उत्तम स्तुति करने हारे पुत्र या शिष्य को ऊपर उठाओ । उसे सब प्रकार से उन्नत करो, हे अन्धकार या दुर्गुणों को नाश करने हारे ! आप दोनों उत्तम वाणियों, शक्तियों और कर्मों द्वारा अध्ययनशील शिष्य को उत्तम या उच्चपद पर प्राप्त कराओ और यात्री को जहाजी जिस प्रकार समुद्र से पार उतार देता है उसी प्रकार पालने योग्य पुत्रादि हितकारी पिता आदि को भी निर्विघ्न पार करो । और युवा पुरुष को इस लोक को छोड कर जाने वाला वृद्ध अर्थात् दीर्घायु करो । अथवा संसार यात्रा करने वाले को बलवान् करो ।

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे नायको ! सन्मार्ग पर ले जाने हारो !

आप दोनो विनय से अपने अधीन सन्मार्ग पर ले जाने योग्य, उपनीत, माता पिता, भाई तीनो सम्बन्धियो से रहित शिष्य को तप से प्राप्त होने योग्य रक्षा, ज्ञान और तेज दायक पराक्रम, वीर्य और ब्रह्मचर्य को धारण कराओ और तुम दोनो खूब लिप्त, विषय तृष्णा मे फसे हुए विद्वान् पुरुष की उत्तम स्तुति प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उसे सन्मार्ग देखने योग्य शास्त्र रूप चक्षु प्रदान करो ।

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं नायक पुरुषो ! आप दोनों अज्ञान निद्रा मे सोने वाले और ऐश्वर्य युक्त अथवा प्रार्थनाशील उत्तम पूर्व पुरुषो से युक्त अथवा पूर्व शुभ संस्कारो से युक्त पुरुष के लिए वेद वाणी को काम धेनु के समान ज्ञान-रस देने वाली बना देते हो, उसको उपदेश करते हो । तुम दोनों उद्योग आदि से निर्वाह करने वाली प्रजा को पापाचार से छुडाओ और प्रजाओ के पालन करने की नीति और दुष्टों के हनन करने की शक्ति प्रदान करो ।

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग दूर, या विजयार्थ जाने हारे वीर पुरुष को तेजस्वी, विद्युत् द्वारा चलने वाला, आगे आये शत्रु को मारने वाला, संग्राम मे शत्रुओ को ललकारने वाला, शत्रु को पराजित करने वाला, भयजनक, बलवान्, सहस्रों ऐश्वर्यों का देने वाला, शत्रुओ पर शरो की और प्रजा पर सुखो की वर्षा करने वाला, दृढ़ अङ्गों वाला शीघ्रगामी, पृथ्वी राज्य के भोगने मे और पालने में और उसे व्याप लेने मे समर्थ सैन्य बल या विमान आदि प्रदान करो ।

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥

भा०—हे उत्तम विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात विद्वान् स्त्री पुरुषो! हे प्रजा को सन्मार्ग पर चलाने हारे नायक पुरुषो! हम लोग ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य को याचना करते हुए, उन प्रसिद्ध आप दोनों को उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये अपना प्रमुख नेता स्वीकार करते हैं। आप लोग उत्तम ज्ञान-वाणियों का सेवन करते हुए ऐश्वर्य से पूर्ण रथ या रमण साधनों से सुख, ऐश्वर्य की वृद्धि करने और उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये हमे प्राप्त होवें।

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ॥११॥१९॥

भा०—हे कभी परस्पर असत्य आचरण न करने हारे विद्वान्, सबल, ऐश्वर्य के भोक्ता स्त्री पुरुषो! एवं नायक जनो! आप दोनो को मैं सप्रेम अन्न और उत्तम स्वीकार करने योग्य वचनों का प्रदान कर अनादि काल से चली आने वाली उषा या प्रभात वेला के खिल जाने पर प्रातः समय आदर पूर्वक नमस्कार करता हूँ और बुलाता हूँ। आप दोनों पक्षी के समान वेग से हमारे गृह पर नये रथ से आइये, पधारिये। विद्वान् स्त्री पुरुषों को इसी प्रकार आदर से अपने गृह पर निमन्त्रित करना चाहिये। इति एकोनविंशो वर्गः।

[११९]

१—१० कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृज्जगती। ३, ७, १७ जगती। ८ विराट्जगती। २, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप्॥

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः॥ १॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! मैं आप दोनों के बहुत अधिक बुद्धि से बनाये गये, बहुतसी आश्चर्यकारी घटनाओं को करने वाले अद्भुत, मन के समान वेग से जाने वाले, अति वेगवान् अश्व से युक्त, यज्ञ योग्य देश में जाने वाले, सहस्रों ध्वजा से युक्त, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से पूर्ण,

सैकड़ो ऐश्वर्यों वाले, शीघ्र गतियो से जाने वाले, धनैश्वर्य के धारण और प्रदान करने वाले, रथ अर्थात् विमानादि का उत्कृष्ट गमन को लक्ष्य करके वर्णन करता हूं।

देह पक्ष मे—यह देह रचना मे बहुत आश्चर्यकारी रचनाओ से पूर्ण है। मन की प्रेरणा से चलने वाला है। जीव ही इसमे अश्व अर्थात् भोक्ता रूप से विराजने वाला है। यज्ञ अर्थात् उपासना करने योग्य परमेश्वर के भजन करने के लिये बना है। अथवा यह देह यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसगत अंगों से बना है या यज्ञ अर्थात् पञ्चाहुति द्वारा निर्मित है और पूर्ण जीवन भोगने के लिये मैं उसे स्वीकार या धारण करता हू। और यह रथ रूप देह अनेक ज्ञान करने वाले ज्ञान-तन्तुओं या ज्ञान-साधनो से युक्त है। नाना भोग योग्य सामर्थ्यों से या भोक्ता आत्मा और इन्द्रियो से सम्पन्न है। सौ बरस तक वास करने योग्य है। वह शीघ्र गतियो से युक्त या अन्न का भोक्ता या सुखों से पूर्ण है। सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला है। वह अन्न के आश्रय पर रहता है।

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! रथ के उत्तम मार्ग में जिस प्रकार रथ की ऊची स्थिति रक्खी जाती है उसी प्रकार इस देह और आत्मा के धारण पोषण का कार्य उत्तम मोक्ष मार्ग मे जाने वाले के लिये ही प्रतिक्षण रक्खा जावे। और जिस प्रकार रथ पर सवार होने से शीघ्र ही सब दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार इसको शासन करने के निमित्त उपदेश करने वाले गुरुजन भली प्रकार प्राप्त हों। मैं जिज्ञासु पुरुष गुरु से प्राप्त, अति प्रदीप्त, उज्ज्वल ज्ञान-रस का मेघ से गिरते जल के समान उत्तम रीति से उपभोग करू। हमे ज्ञान प्रदाता और रक्षक जन प्रतिक्षण प्राप्त हों। और आप दोनों के रमण करने

योग्य रथ के समान हमारे गृहस्थ आश्रम को अन्न सम्पत्ति और पराक्रम शक्ति भी सब तरफ़ से प्राप्त हो।

सं यन्मिथः पंस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३॥

भा०—जब परस्पर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, एक दूसरे को युद्ध में विजय करने के लिये यत्नशील होकर आदरणीय, अपरिमित या अपराजित विजयशील वीर पुरुष रण में या किसी अन्य सुन्दर रमणीय उत्सव आदि के शुभ अवसर पर एकत्र होते हैं और जब हे विद्वान् नायको वा स्त्री पुरुषो! आप दोनों श्रेष्ठ विद्वान् धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को प्राप्त होते हो तब उत्तम रीति से सेवने योग्य रणस्थल और सभा-भवन में भी आप दोनों का ही उत्तम रथ विशेष रूप से युद्ध आदि विद्या में कुशल जाना जाता है।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्य१ंदिवोदासाय महि चेति वामवः॥४॥

भा०—हे प्रजा पर सुखों की और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने में कुशल नायको! अथवा बलवान् वीर्यवान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों विद्वानों और वेगवान् अश्वारोहियों से युक्त, सबके पालक और सबके भरण पोषण करने हारे नायक को अपने नाना उपायों से पालक जनों के हित के लिये विशेष रूप से अपने ऊपर धारण करते हुए विशेष जय प्राप्त कराने वाले प्रयत्न करें। क्योंकि ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिये आप दोनों की संसार में बड़ी भारी रक्षा समझी जाती है।

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्। आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती॥५॥२०॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों के ही परस्पर प्रेम और इच्छा पूर्वक मिलकर एक हो जाने वाले, बलपूर्वक धारण करने योग्य, रमणकारी,

आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल विद्वान्, आचार्य और पुरोहित तुम दोनो को उत्तम रीति से बीजवपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिये विवाहित करते हैं, तुम दोनो को गृहस्थ के कर्त्तव्य में बांधते हैं। तुम दोनो का इस गृहस्थ में स्वामित्व समान रूप से हो। इस कार्य में हे पुरुष, तेरे सखा भाव में जाने वाली, तेरा मित्र होकर रहने वाली, पुरुष के हृदय को जीतने वाली अथवा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वधू ही वरण करे। तब तुम दोनों एक दूसरे के पति पत्नी होकर रहो। अथवा तब तुम दोनो एक दूसरे का हृदय जीतने वाले अथवा सन्तानोत्पादक पति पत्नी होकर रहो।

सभा सेनाध्यक्षों या नायको के पक्ष मे—हे प्रमुख नायको! तुम दोनों के ही जुड़ने वाले बलपूर्वक संग्राम करने योग्य रथ को आज्ञाकारी दो उपदेशक सारथी ही शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देने के लिये इस राष्ट्र के हित के लिये नियम में चलावें। मित्र भाव को प्राप्त होने वाली स्त्री के समान सेना और सभा तुम दोनों का पति रूप से वरण करे। तुम दोनों विजयशील सभा और सेना के स्वामी होकर रहो।

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनो उत्पन्न होते ही शब्द करने वाले, रोने वाले बालक की प्रसव क्रिया के भी पूर्व से ही खूब रक्षा करो और इस लोक मे आये नव बालक के परिताप, ज्वर आदि दुःख को शीतल जल या छाया से घाम के समान दूर करो। तुम दोनों स्त्री पुरुष शयनशील शिशु की इन्द्रियों मे अथवा गाय के समान दूध पिलाने वाली उसकी उत्पादक माता में बालक की रक्षा करने वाले दूध की वृद्धि करो और स्तुत्य गुणो से युक्त, अभिवादनशील बालक दीर्घ जीवन से युक्त होकर बड़ा हो।

इसी प्रकार हे विद्वान् शिक्षक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उपदेश करने योग्य शिष्य की रक्षा करो। मां, बाप, भ्राता अथवा विविध तापों से रहित बालक को तपस्या द्वारा युक्त हो जाने पर शीतल जल के समान शान्तिदायक, ज्ञानमय विद्योपदेश से स्नान कराओ। शान्ति और कल्याण के इच्छुक शिष्य की वाणी में ज्ञान की वृद्धि करो। तुम्हारा अभिवादनशील शिष्य दीर्घ आयु हो।

इसी प्रकार हे नायक जनो ! प्रार्थी पुरुष को उपद्रवों से बचाओ। इस राष्ट्र में बसी प्रजा के संताप को शान्तिदायक उपाय से दूर करो। सोने वाले अचेत प्रजाजन के रक्षा के उपाय और बल को पृथ्वी पर बढ़ाओ। स्तुति योग्य वन्दनीय गुरुजन दीर्घायु हो।

युवं वन्द॑नं॒ निर्ऋ॑तं जर॒ण्यया॒ रथं॒ न द॑स्रा कर॒णा समि॑न्वथः।
क्षेत्रा॒दा विप्रं॑ जनथो विप॒न्यया॒ प्र वा॒मत्र॑ विध॒ते दं॒सना॑ भुवत्॥७॥

भा०—जिस प्रकार उत्तम गति से जाने वाले रथ को प्राप्त कर शत्रुओं के नाशकारी रथी और सारथी दोनों परस्पर मिल कर दूर देश तक चले जाते हैं इसी प्रकार हे दर्शनीय रूप वाले एवं एक दूसरे के दुःखों को दूर करने वाले स्त्री पुरुषो ! कार्य करने में कुशल होकर उपदेश करने योग्य वेदवाणी से युक्त नित्याभिवादन योग्य निरन्तर सत्य ज्ञान के उपदेष्टा विद्या-वृद्ध पुरुष का संसार की दूर की यात्रा पार करने के लिये सत्संग करो। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग उत्पत्ति स्थान गर्भाशय से बालक के समान विविध विद्याओं में पूर्ण शिष्य को उत्पन्न करो और विशेष स्तुति योग्य वाणी से तुम दोनों को नाना कर्मों का उपदेश करने वाले विद्वान् की प्रतिष्ठा अच्छी प्रकार प्राप्त हो।

बालक के पक्ष में—जब तुम दोनों गृहस्थ के करने वाले स्त्री पुरुष परस्पर संगत होवो तब तुम दोनों स्तुति योग्य जरण्या अर्थात् जरायु के साथ बाहर आये विविध गुणों से पूर्ण रमणीय बालक को क्षेत्र अर्थात्

गर्भाशय से उत्पन्न करो और तब तुम दोनो की विशेष व्यवहारकुशलता से इस कार्य मे नाना कार्यों को करने वाले की प्रभुत्व या प्रतिष्ठा हो।

अगंच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग अपने पालक माता पिता के त्याग से कुछ खिन्न से हुए एवं आप दोनो की स्तुति या विद्याध्ययन करते हुए बालक वा शिष्य को प्राप्त करें। अथवा हे राज प्रजावर्गो ! अपने पालक जन गुरु आदि से विद्या प्राप्त करके दूर देश मे स्थित, कृपाशील सर्व सुखों के त्याग द्वारा पीडित, तपस्वी पुरुष को प्राप्त होओ। इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही निश्चय से तुम दोनो को सुखदायिनी, आश्चर्यजनक ज्ञान, उपाय और अभीष्ट सिद्धियें भी प्राप्त हों। यदि स्त्री पुरुषों को पुत्र न प्राप्त होता हो तो वे किसी ऐसे बालक को जिसको उसके मां बाप छोड़ चुके हों और आश्रय चाहता हो अपना पुत्र बना लें और उससे ही उन के सब अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो सकते हैं।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥६॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो ! जिस प्रकार अति हर्ष मे मस्त होकर मधुमक्षिका कूजती है उसी प्रकार कान्तिमान् तेजस्वी परमेश्वर या अचार्य का पुत्र या शिष्य, साधक विद्वान् सोम, परम ज्ञान और आनन्द रस के परम हर्ष या ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य के दमन या पालन मे सावधान होकर तुम दोनो को मधुर ज्ञान का व्यक्त वाणी द्वारा उपदेश करे। और आप से आप मधुर अन्नादि पदार्थ प्राप्त करें। आप दोनो वर्ग सकल विद्याओं को धारण करने वाले शिष्यों को प्राप्त होने योग्य या धारणीय गुणों को प्राप्त आचार्य, विद्वान् उपदेष्टा के मनन करने योग्य ज्ञान का सब प्रकार से सेवन करो। और वह तुम दोनो के प्रति विद्या से युक्त

मस्तक के समान उन्नत और मुख्य पद प्राप्त करके उपदेश करे। विशेष व्याख्या देखो सू० ११६। मं० १२॥

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥१०।२१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! हे राज प्रजावर्गों! हे राष्ट्र में मुख्य पदों के भोक्ता नायक पुरुषो! आप दोनों उच्चतम आसन को प्राप्त करने वाले राजा और प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये बहुतमे प्रजाजनों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले, परस्पर स्पर्धा करने वाले, प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के पार पहुंचा देने वाले, अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाले, शत्रुहिंसक बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल, वीर योद्धाओं से, किरणों से सूर्य के समान तेजस्वी, विजयशील योद्धा संग्रामों में पराजित न होने वाले, समस्त शत्रु मनुष्यों को पराजय करने में समर्थ, बलशाली राष्ट्रपति या सूर्य के समान ही शासन कार्य या अन्धकार को दूर करने में कुशल पुरुष या सैन्य वर्ग को प्रदान करो।

इन समस्त अश्वि-सूक्तों में अध्यात्म तथा ईश्वरोपासनापरक रहस्यों को विस्तार भय से नहीं दर्शाया है। उनको कहीं कहीं दिखाये संकेतों से ही जान लेना चाहिये॥ इत्येकविंशो वर्गः॥

[१२०]

औशिजपुत्र कक्षीवानृषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। २ भुरिग्गायत्री। १० गायत्री। ११ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री। ३ स्वराट् ककुबुष्णिक्। ५ आर्च्युष्णिक्। ६ निचृदुष्णिक्। ८ भुरिगुष्णिक्। ४ आर्च्यनुष्टुप्। ७ स्वराडार्च्यनुष्टुप्। ९ निचृदनुष्टुप्॥

द्वादशर्चं सूक्तम्॥

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः।
कथा विधात्यप्रचेताः॥१॥

भा०—हे पति पत्नी भाव से रहने वाले स्त्री पुरुषो! दोनों के परस्पर प्रेम व्यवहार में तुम दोनों मे से कौन है जो अपने को सब प्रकार से समर्पण करती हुई कार्य सिद्ध करती है? और कौन है जो सर्वात्मना स्वीकार करने वाला होकर कार्य साधता है? अथवा कौन स्त्री और कौन पुरुष प्रदान और आदान के कार्यों को करता और करती है। इस बात का खूब ज्ञान सम्पादन करो। क्योंकि तुम दोनो मे से कोई भी ज्ञान-रहित मूढ़ होकर किस प्रकार से परस्पर का गृहस्थ कार्य करने मे समर्थ हो सकता है? इसलिये गृहस्थ के दोनो अंगों को अपने अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये।

हे युद्ध विद्या मे निपुण वीर नायको! या सेनापति और सैन्य वर्गों! आप दोनो में से कौन तो शत्रुबल को वश करने मे समर्थ होता है? और तुम दोनों में से परस्पर मिल कर करने योग्य राज-सेवा के कार्य मे कौन प्रमुख होकर शत्रुओ को वश करने में समर्थ है? युद्ध विद्या और सेना सञ्चालन के कार्यों से अनभिज्ञ मूढ पुरुष दोनो ही कार्यों को विना जाने किस प्रकार उक्त-कार्य खूबी से कर सकता है?

हे आत्मन्! कौन सी वेदवाणी तुम दोनो का आराधन करती है। जब दोनों का परस्पर प्रेम है तो तुम दोनो मे से कौन किस को प्राप्त होना है? अज्ञानी किस प्रकार से इस तत्व का वर्णन कर सकता है?

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥

भा०—अविद्वान्, विद्याहीन या शुद्र भृत्य विद्वान्, जानकार स्त्री पुरुषों या मालिक मालिकनी से जा कर जिस प्रकार बड़े महल के दरवाज़े पूछता है उसी प्रकार नाजानकार, मूर्ख पुरुष विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन से ही इस देहब- या संसार बन्धन से मुक्त होने के द्वारों को पूछे, इसी प्रकार सेनाध्यक्षों से ही नाजानकार, नवसिखुआ

दुर्ग और व्यूहों के द्वारों को या शत्रु के वारण करने के उपायों को पूछे। इस प्रकार से जो पर या उत्कृष्ट नहीं, वह जीव पर अर्थात् उत्कृष्ट परमेश्वर की अपेक्षा अपर है। और आत्मा की अपेक्षा अपर देहादि भी चेतना और ज्ञान से रहित है। ठीक इसी प्रकार क्रिया मे अकुशल पुरुष-समूह मे भी समझना चाहिये कि क्रिया का जानने वाला पुरुष विद्वान् और अकुशल अविद्वान् होता है।

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

भा०—हम उन दोनों विद्वान् पुरुषों को आदरपूर्वक स्वीकार करें अर्थात् उनका सत्संग करें और वे आप दोनों ही आज, अब, नित्य हमें मनन करने योग्य ज्ञान का उपदेश करें। तुम दोनों का सच्चा प्रिय पुरुष या सबको विद्योपदेश से मिलाने हारा, उपदेष्टा पुरुष सब पर दयालु होकर तुम दोनों का सत्कार करे।

वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

भा०—हे दुःखों के विनाश करने हारे! आप दोनों परिपक्व विज्ञान वालों मे ही मैं इस अद्भुत, आश्चर्यकारी वषट्कार, यज्ञ-आहुति या आदान प्रतिदान, सृष्टिगत सर्ग और प्रलय के विषय में, अन्य विद्वानों के समान विविध प्रश्न पूछता हूँ। आप दोनों सहनशील, शत्रु पराजयकारी और अति वेगवान्, शीघ्रकारी हम सबकी हमेशा रक्षा करो।

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम्।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—भृगु अर्थात् इन्द्रियों के धारण और दमन करने वाले, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के तुल्य आचरण करने वाले, सर्व पापनाशक वेद जो अति उत्तम प्रभुवाक्य रूप से विद्यमान सर्वोपरि

मान्य है उससे मैं भी सुशोभित होऊ। और जिस वाणी से हे विद्वान् पुरुष! उत्तम ज्ञानो और माहात्म्य परमपद के प्राप्त करने में कुशल, बाण चलाने में सिद्धहस्त, लक्ष्यवेध मे चतुर पुरुष के समान अपने उद्देश्य तक पहुंचने वाला विद्वान् आप दोनों का सत्संग करता है उससे भी मैं खूब सुशोभित होऊ। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

श्रुतं गा॑यत्रं तक॑वानस्या॒हं चि॒द्धि रि॒रेभा॑श्विना वाम्।
आ॒क्षी शु॑भस्पती॒ दन् ॥ ६ ॥

भा०—हे शोभाकारी और तेजस्वी, उत्तम ज्ञान के पालक, जल के पालक मेघ के समान ज्ञानवर्षक, प्रमुख विद्वान् स्त्री पुरुषो! ज्ञानवान्, विद्यावान् पुरुष का श्रवण करने योग्य गायन करने वाले की नित्य अज्ञानपूर्वक कुपथ में पड़ जाने से रक्षा करने हारे, आंखों के समान मार्ग दिखाने वाले, मैं भी आप दोनों के ज्ञान को प्राप्त करूं।

यु॒वं ह्यास्तं॑ म॒हो रन्यु॒वं वा॒ यन्नि॒रत॑तंसतम्।
ता नो॑ वसू सुगो॒पा स्या॑तं पा॒तं नो॒ वृका॑दघा॒योः ॥ ७ ॥

भा०—हे राष्ट्र को बसाने और घर को बसाने वाले नायको और स्त्री पुरुषो! विद्वानो! निश्चय से आप दोनो बड़े भारी पूजनीय ज्ञान और रक्षा और ऐश्वर्य के देने वाले होवो। और जो आप दोनों हमें सब प्रकार से विद्या आदि शुभगुणो और वस्त्र आभूषणादि से भी अलंकृत करते हो वे आप दोनो हमारे उत्तम रक्षक और उत्तम वेदवाणियों और इन्द्रियों और गवादि पशुओं और भूमियों के पालक और रक्षक होवो। और हमें हम पर पापाचार, हत्या आदि अपराध करने वाले भेड़िये के समान छल से आक्रमण करने वाले, दुष्ट पुरुष से रक्षा करो।

मा कस्मै॑ धातम॒भ्य॑मि॒त्रिणे॑ नो माकु॒त्रा॑ नो गृ॒हेभ्यो॑ धे॒नवो॑ गुः।
स्त॒ना॒भुजो॒ अशि॑श्वीः ॥ ८ ॥

भा०—हे राज्यकर्त्ता पुरुषो! विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप लोग हमे

किसी भी मित्र जनों से रहित, सबके शत्रु, स्नेह-शून्य, अकारण वैरी पुरुष के स्वार्थ के लिये कभी न धरें या उसको हमारा पता न दें। हमारे घरों से दुधार गौवें अन्यत्र कहीं, संकट के स्थान में न जावें। और स्तनों द्वारा बच्छों और बच्चों के पालने वाली गौवें और माताएं शिशु रहित न हों।

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! एवं नायको! अध्यक्ष जनो! दुःखों को दूर करने और सुखों के प्राप्त करने के लिये और स्नेही, मित्र जनों के पालन करने के लिये ये सब गौएं, भूमियें और माताएं अपना दूध, अन्न और स्नेह हमें प्रदान करती हैं। आप दोनों भी हमें हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि और अन्नादि देने वाली भूमि को प्राप्त और सदुपयोग करने के लिये विशेष ज्ञान का उपदेश करें और गौओं से पूर्ण अन्न समृद्धि प्राप्त करने के लिये सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहें।

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

भा०—शिल्प विद्याओं में कुशल तथा बलवती, वेगवती क्रिया के उत्पन्न करने में कुशल शिल्पियों के बनाये बिना अश्व के चलने वाले रथ, विमान, मोटर गाडी आदि रमण करने योग्य आनन्दप्रद यानों को मैं राजा और प्रजावर्ग प्राप्त करूं और उस यान आदि ऐश्वर्य से मैं बहुत [illegible] तेजस्वी होऊं।

अध्यात्म में—इस देह में प्राण और अपान ये दो 'अश्वी' हैं जो [illegible] अर्थात् अन्न शक्ति के स्वामी होने से वाजिनीवान् हैं। उनके इस देह रूप अश्वरहित रथ का मैं आत्मा भोग करता हूं और उससे बहुत कामनाएं पूर्ण करता हूं।

इसी प्रकार मुख्य राजा अपने अधीन सभा और सेना के दो अध्यक्षों के हाथ शक्ति देकर उनके विना 'अनश्व' अर्थात् विना भोक्ता के रथ अर्थात् उत्तम व्यवस्थित राष्ट्र का भोग स्वतः करे और उससे खूब तेजस्वी हो।

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

भा०—हे आदर सत्कार से युक्त विद्वन्! यह सुखदायक, रमण करने, आनन्द विहार करने योग्य और वेग से जाने वाला रथ है। वह अन्य जनों तक भी पहुंचाया जाता है। अर्थात् उसमें बैठ कर अन्यों तक पहुंचा जाता है। अथवा उसमें विराजे पति पत्नी या वर वधू अन्य जनों तक पहुंचाए जाते हैं। ऐसा ही एक रथ जिससे ऐश्वर्य का, सुखप्रद रसपान के समान उपभोग हो सके मुझे भी बना दे।

भक्त ईश्वर को कहता है—हे महान् शक्ति वाले प्रभो! यह देह रमण करने से 'रथ' है। अथवा यह आत्मा रस स्वरूप होने से 'रथ' है। यह सुखप्रद हो, इसमें 'ख' अर्थात् इन्द्रियें सुख, शान्तिजनक हों, वे दुःखदायी न हों। इससे परमैश्वर्य, ब्रह्मानन्दरूप रस का पान करने के साथ साथ दोनों उपास्य और उपासक इस आत्मा में उत्पन्न होने वाले आनन्दों को लक्ष्य करके ही धारण किये जाते हैं। वैसा ही यह सुखप्रद देह या आत्मा मेरा भी कर दे।

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः।
उभा ता वस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

भा०—और मैं निद्रा, आलस्य करने वाले आलसी तथा स्वयं ऐश्वर्य का भोग और अन्यों का पालन न करने वाले धनवान् पुरुष इन दोनों से उदासीन हूं, दोनों को निरुपयोगी निकम्मा समझता हूं, क्योंकि वे दोनों शीघ्र ही या सुखनाशक होने से स्वयं नष्ट हो जाते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः।

इति सप्तदशोनुवाकः।

[१२१]

औशिज कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पङ्क्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कदि॒त्था नॄँः पात्रं॑ देवय॒तां श्र॑व॒द् गिरो॒ अङ्गि॑रसां तुर॒ण्यन् ।
प्र यदान॒ड् विश॒ आ ह॒र्म्यस्यो॒रु क्रं॑सते अध्व॒रे यज॑त्रः ॥ १ ॥

भा०—समस्त मनुष्यों और नागरों का पालक या सत्कार योग्य राजा त्वरावान् उत्सुक होकर उत्तम राजा को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी विद्वान् पुरुषों की वाणियों और उपदेशों को इस प्रकार से कब श्रवण करे ? [उत्तर] जब सत्सग करने या राष्ट्ररूपी यज्ञ की रक्षा करने वाला स्वामी बड़े महल या अन्तःपुर के समान प्रजाओं के पालन रूप उत्तम कार्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करे और बहुत अधिक ऊंचे पद पर कदम बढ़ावें। प्रायः ऊंचे राज्यादि पद को पाकर, पुरुष गर्वी होकर विद्वानों का वचन नहीं सुनता, परन्तु उसी अवसर पर उसे विद्वानों का वचन उत्सुक होकर श्रवण करना चाहिये ।

अध्यात्म में—परमेश्वर से मेल करने वाला मुमुक्षु जब अपने प्रवेश योग्य प्राणों पर वश प्राप्त कर ले और महल के ऊंचे अग्रण्डर रक्षा स्थान के समान उस अविनाशी, पालक, परमेश्वर तक पहुंचता है तब भी प्राणों का पालक जितेन्द्रिय तथा सब मनुष्यों का पूजाश्रय होकर वह ज्ञानवान ईश्वरभक्तों की वाणियों का बार बार श्रवण किया करे।

स्तम्भी॒द्ध द्यां स ध॒रुणं॑ प्रुषाय॒दृभु॒र्वाजा॑य॒ द्रवि॑णं॒ नरो॒ गोः ।
अनु॑ स्व॒जां म॑हि॒षश्च॑क्षत॒ व्रां मेना॒मश्व॑स्य॒ परि॑ मा॒तरं॒ गाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार बहुत अधिक तेजस्वी सूर्य आकाशस्थ पिण्डों को आकर्षण बल से थामता है और पृथिवी के ऊपर अन्न की उत्पत्ति के लिये ऐश्वर्य रूप से सब प्राणियों के जीवन धारक जल को मेघ द्वारा

बरसाता है उसी प्रकार तेजस्वी, सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से चमकने वाला पुरुष ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुषों की राजसभा को वश करे। ऐश्वर्य की वृद्धि और संग्रामों के विजय के लिये धन को मेघ के समान भृत्यों पर बरसा दे, अथवा द्रुत गति से जाने वाले अपने सैन्य को या शस्त्रास्त्र को शत्रु पर बरसा दे। महान् शक्ति वाला सूर्य जिस प्रकार अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली वरण करने योग्य कन्या के समान अपने प्रकाशों से जगत् को ढक देने वाली उषा को प्रकाशित करता है और उसके बाद स्वयं भी प्रकट होता है, इसी प्रकार पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने वाला अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को अपने अनुकूल देखे, उस पर अनुग्रह करे और जिस प्रकार सूर्य के व्यापक प्रकाश के नाश करने वाली भूमि की माता के समान पालन करने वाली और अन्धकारमय गोद में लेने वाली रात्रि को अपने पीछे छोड़ जाता है उसी प्रकार राजा भी समृद्ध राष्ट्र और राष्ट्रपति के मुख्य वाणी या शासन को या शत्रुनाशक सेना या मान्य करने योग्य व्यवस्था को समस्त पृथ्वी के ऊपर माता के समान राष्ट्र के पालन और रक्षा करने वाले को नियत करता है।

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।

अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार पूर्व दिशा में प्रकट होने वाले देने योग्य प्रकाश को देता और प्रकाशमान् उषाओं को व्यापता है उसी प्रकार जो तेजस्वी पुरुष पूर्व के विद्वानों से दिये और उपदेश किये गये देने और आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य न्याय और ज्ञान को प्रकट करता और सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीतियों को वर्त्तता है और जो अति शीघ्रकारी, वायु के समान वेग से शत्रु पर जाने वाला सब दिनों बड़े प्रबल वज्र या अशनि प्रपात के समान सदा स्थिर और दृढ़ शस्त्रास्त्र बल को तीक्ष्ण करके शत्रु पर प्रहार करता है. और चौपाये

पशुओं के तथा साधारण मनुष्यों के बीच नायकों के और दोपाये भृत्य आदि सेवक जनों के हित के लिये सूर्य के प्रकाश के समान न्याय और विद्या के प्रकाश तथा राजसभा और विद्वत्सभा को स्थापित करता है वही तेजस्वी अग्नियों के बीच सूर्य के समान विद्वान्, तेजस्वी और वीर पुरुषों में और प्रजागण राजा अर्थात् सम्राट् बनने योग्य है।

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अन्धकार से आवृत तेजोमय, तापदायक रश्मियों के समूह को प्रकाश और वृष्टि जल के प्रयोजन से भूमि पर फैलाता है उसी प्रकार राष्ट्रपति इस प्रजाजन के हर्ष के लिये या इस प्रजाजन के आनन्द या दमन और शासन के निमित्त और सत्य न्याय के प्रकाश, ऐश्वर्य और अन्नादि समृद्धि की वृद्धि के लिये सुखों से युक्त या अन्यों से अज्ञात शासन वाणियों के उपदेशप्रद, समूह को और सुरक्षित, उत्तम वेग से जाने वाली सेनाओं के शत्रुओं के तापदायी सैन्य बल को राष्ट्र को प्रदान करता है, प्रकट करता है। और जिस प्रकार तीनों लोकों में श्रेष्ठ, सर्वोच्च सूर्य अपने उत्तम प्रकाश को प्रगट करके अन्धकार को दूर करता है और जिस प्रकार माता, पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान्, आचार्य अपने उत्कृष्ट सर्ग, विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है उसी प्रकार जो पुरुष निश्चय से अपने उत्तम राष्ट्र के बनाने के कार्य में या युद्धादि में शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में सर्वश्रेष्ठ होकर अथवा प्रजा, [illegible] और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर राष्ट्रवासी मनुष्यों के द्रोहकारी [illegible] पुरुषों को दूर करता है वही राष्ट्र, नगर तथा सुख समृद्धि के नाना [illegible] को घर के द्वारों के समान खोल देता है।

तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार भरण पोषण करने वाले माता पिता जल्दी मचाने वाले, अधीर बालक के लिये उत्तम वीर्योत्पादक दूध और धन प्राप्त कराते हैं, अथवा माता पिता जिस प्रकार बालक को उत्तम जल और पुष्टिकारक अन्न और धन प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे राजन्! राष्ट्र के पालक मां बाप के समान राजा-प्रजावर्ग या सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष राष्ट्र के और तेरे भरण पोषण करने में समर्थ होकर अति क्षिप्रकारी और शत्रुओं के नाश करने मे समर्थ तुझ राजा की पुष्टि के लिये उत्तम जल से युक्त पुष्टिकारक अन्न और वीर्यवर्धक दुग्ध और धनैश्वर्य प्राप्त करावें। और जिस प्रकार गो पालक या विद्वान् जन सब पोषक, दूध देने वाली गौ के शुद्ध, पवित्र दूध को सब तरफ़ से ले लेते हैं और उससे यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार वे विद्वान् जन समस्त प्रजा को समान रूप से भरण पोषण करने वाले, अन्न को दोहन करने वाली मातृभूमि के पुष्टिकारक अन्न के समान शुद्ध ईमानदारी से प्राप्त धन को तेरे हित के लिये स्वीकार करें, प्राप्त करें, तुझे प्रदान करें। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम॥ ६॥

भा०—उषा के समीप सूर्य जिस प्रकार अति अधिक प्रकाश के सहित प्रकाशित होता है उसी प्रकार राजा इस शत्रु को सन्ताप देने वाली सेना तथा कमनीय गुणों से युक्त प्रजा और भूसम्पत्ति के योग से सब दुःखों से स्वय पार होने और अन्यों को पार करने हारा होकर विद्वान् पुरुष और तेजस्वी राजा उत्तम रीति से प्रसिद्ध हो और खूब प्रसन्न और तृप्त हो और अच्छी प्रकार प्रकाशित और सर्वप्रिय हो। वह ऐश्वर्यवान् होकर जिन अपने तेजः सामर्थ्यों को देने वाले सहयोगियों के राज्यैश्वर्य का भोग करता है उन्हीं के बल से स्रुवा से अभिषेक को प्राप्त होता हुआ राष्ट्र को धारण करने वाले तेज और बल, राज्यैश्वर्य का भी भोग करे और स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करे। अथवा उन ऐश्वर्यप्रद सह-

योगियों के द्वारा ही स्रवणशील जल आदि से इस राष्ट्रभूमि को कृषि आदि के लिये सींचता हुआ लोकोपकारक स्तुत्य कर्मों को करे और उत्तम ऐश्वर्यों का सदा भोग करे।

स्त्रिध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य उत्तम दीप्ति वाला और सेवन करने योग्य वृष्टि-जलों को धारण करने में समर्थ होकर अन्तरिक्ष में सब ओर रश्मि-समूह का निरोधन अथवा पृथ्वी के स्तम्भन आदि कार्य करता है और जिस प्रकार विद्वान् उत्तम तेजस्वी होकर भजन या सेवन करने योग्य एकमात्र प्रभु को ही अपने हृदय में धारण करता हुआ इन्द्रियगण के नाना प्रकार के निरोध अर्थात् संयम के कार्यों को अच्छी प्रकार करता है। उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा भी उत्तम दीप्ति युक्त अग्नि के समान सुतीक्ष्ण और वन अर्थात् सेवन करने योग्य भोग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होकर भूमि के हिंसा रहित धर्म कार्य और प्रजा पालन के कार्य में संयम करने के उपायों को अच्छी प्रकार अनुष्ठान करे। और जिस प्रकार सूर्य दिन प्रतिदिन, निरन्तर उत्तम अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाश के किरणों से चमकता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष! आप भी प्रतिदिन अपने कर्त्तव्य कर्मों के अनुरूप ही अच्छी प्रकार प्रकाशित हो और गाड़ी आदि से नगर में प्रवेश करने वाले, पशुओं को चाहने वाले और वेग से यानादि से जाने वाले के लिये भी अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। अर्थात् इनकी वृद्धि कर।

स्त्रा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार महान् आकाश या प्रकाश का भोक्ता या व्यापक सूर्य जल बरसाने वाले मेघ के साथ युद्ध करता हुआ अपने आकर्षण और प्रकाश या प्रकाश और ताप दोनों को अपने वश रखता है उसी प्रकार हे राजन्! तू बड़े भारी तेज, विद्वत्सभा या विजयशालिनी

सेना का भोक्ता, वीर सभापति और सेनापति इस राष्ट्र में या संग्राम में ऊपर उठते हुए, ऐश्वर्य को विजय करते हुए शत्रु के मुकाबले पर युद्ध करता हुआ रथ के दोनों अश्वों को अपने वश कर। और जिस प्रकार याज्ञिक लोग प्राण के बल से प्राप्त करने योग्य, थका देने वाले, तृप्ति करने वाले, हरे सोमोषधि रस को गौ के दूध से मिश्रित करके प्रस्तरों से कूटकर रस प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे सेनापते! राजन्! तेरी वृद्धि के लिये वे वीर गण अति प्रसन्न करने वाले वेगवान् वायु वेग से प्राप्त होने वाले, अति शीघ्रगामी, सेनापति की आज्ञा पर ही वेग से जाने वाले वेगवान् अश्वबल को मेघों के समान शस्त्रास्त्रवर्षी पुरुषों द्वारा अथवा न दीर्ण होने वाले, दृढ़, अभेद्य पर्वतों के समान अचल महारथियों द्वारा दोहते हैं, उनको पूर्ण करते हैं।

त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गोर्दि॒वो अश्मा॑न॒मुप॑नीतमृ॒भ्वा ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्वञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! जिस प्रकार सूर्य आकाश और पृथिवी पर व्यापने वाले, अपने समीप आये मेघ को बहुत अधिक प्रकाश या वेगवान् वायु से खूब चलाता है उसी प्रकार तू भी विज्ञानवान् शिल्पी से प्राप्त कराये हुए शिला के समान अभेद्य और लोह के बने शस्त्रास्त्र को भूमि और आकाश के बीच चला। अर्थात् भूमि और विजयलक्ष्मी के लाभ कराने वाले फौलाद के बने शस्त्रास्त्र समूह को शत्रुओं के प्रति रण-भूमि में चला। हे बहुत जनों से ललकारे जाने वाले! अथवा बहुत सी प्रजाओं द्वारा रक्षार्थ बुलाये जाने वाले सेनापते! जल-वृष्टि के लिये जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी पर के जल को सुखा देने वाले ताप को धारण करता हुआ असंख्य किरणों से प्रकाशित होता है। उसी प्रकार हे सेना-पते! तू काट गिरा देने योग्य शत्रुओं से काटी जाने वाली प्रजा की रक्षा के लिये शत्रु के शोषणकारी बल को धारण करता हुआ या शोषणकारी

शत्रु को विनाश करता हुआ अनन्त, असीम, असंख्य सखों और वीर भटों के साथ प्रयाण कर।

आचार्य के पक्ष में—हे बहुत सी प्रजाओं तथा शिष्यों से आदर पाने योग्य विद्वन्! सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले, आचार्य द्वारा उपनयन किये गये वेदवाणी और तेज ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले एवं चट्टान के समान दृढ़, सहिष्णु, फौलाद के समान बलवान् पुरुष को गृहस्थाश्रम के प्रति समावर्त्तन कर जिस ब्रह्मचारी पर या जहां तू बुरी आदतों के तोड़ने के लिये या बल वीर्य के प्राप्त करने के लिये या वेद सूक्तों को पढ़ने वाले शिष्यों के हित के लिये बल को धारण करता हुआ अनन्त प्रकारों के ताड़ना आदि उपायों से प्राप्त होता है।

कुत्सः—इत्येतत् कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति कर्त्ता स्तोमानामि-त्यौपमन्यवः॥

पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य। शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः॥ १०॥ २५॥

भा०—जिस प्रकार अन्धकार का नाश कर देने से सूर्य मेघ को भी सर्व प्रकार से छिन्न-भिन्न करता है और मेघ का जो ओज आकाश या सूर्य पर ढकता है बँध कर उसे ढांप लेता है उसको भी तू छिन्न-भिन्न करता है इसी प्रकार हे पर्वतों से युक्त भूमि के स्वामिन्! अथवा मेघ के समान शस्त्रास्त्रवर्षी वीर! महारथी पुरुषों के नायक! और पर्वत के समान अचल, दुर्भेद्य सैन्यबल से युक्त एवं वज्र के धारक! राजन्! सेनापते! तू पहले के समान ही विद्वान्, समस्त सैन्य का सञ्चालक होकर प्रजा को कष्टदायी, नाशकारी इस शत्रु दल के उस फाड़ेवाले शस्त्र को छिन्न-भिन्न कर और प्रजा के शोषणकारी शत्रु का जो भूमि पर फैला हुआ तेज, पराक्रम अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित हो उसको भी सब प्रकार से छिन्न-भिन्न कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

अनु॑ त्वा म॒ही पाज॑सी अच॒क्रे द्यावा॒क्षामा॑ मदतामिन्द्र॒ कर्म॑न् ।
त्वं वृ॒त्रमा॒शया॑नं सि॒रासु॑ म॒हो वज्रे॑ण सिष्वपो व॒राहु॑म् ॥११॥

भा०—जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी दोनो विशाल बलवती और स्थिर, स्वतः कार्य करने में असमर्थ होते हुए भी सूर्य के प्रकाशरूपी कार्य में प्रसन्न और तृप्त हो जाते है उसी प्रकार हे वीर राजन्! तेजस्वी राजवर्ग और भूमि के समान आश्रय रूप प्रजावर्ग। दोनो आदरणीय और बड़े बलवान् और चरणो के समान आश्रय स्वरूप, चक्ररहित रथ के समान शिथिल, एव स्वतः अपनी शक्ति से रहित अथवा स्वतः इच्छा रहित होकर भी राज्यपालन और शत्रु उच्छेद के काम मे तेरे साथ प्रसन्नतापूर्वक सहयोग दें। हे राजन्! तू जिस प्रकार चारो तरफ़ फैले हुए और अपने को घेरनेवाले मेघ को सूर्य बडे भारी अन्धकारवारक प्रकाश या विद्युत् से नदी धाराओं मे सुला देता है अर्थात् जल रूप से बरसा देता है उसी प्रकार हे राजन्! तू अपने राष्ट्र के चारो ओर घेरा डाले हुए और बढ़ते हुए श्रेष्ठ, धार्मिक व्यवहारो और जनो के नाशकारी शत्रुदल को शरीर को मर्म नाडियो का आघात करने वाले बड़े प्रबल अपने शस्त्रास्त्र से सुलादे अर्थात् उसे मार गिरा।

त्वमि॑न्द्र॒ नर्यो॒ याँ अवो॒ नॄन्तिष्ठा॒ वात॑स्य सु॒युजो॒ वहि॑ष्ठान् ।
यं ते॑ का॒व्य उ॒शना॑ म॒न्दिनं॒ दाद्वृ॑त्र॒हणं॒ पार्यं॑ ततक्ष॒ वज्र॑म् ॥१२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान्! जिस प्रकार सूर्य शरीर सचालक प्राणों की रक्षा करता और शरीर को वहन या धारण करने वाले वायु के साथ उत्तम रीति से संयुक्त हुए प्राणों को पर वश करता है। उसी प्रकार हे राजन्! समस्त नायकों और प्रजा वासी पुरुषों का हितकारी, उनमे सर्वश्रेष्ठ होकर जिन नायक पुरुषो को सुरक्षित रखता है। तू उन ही राष्ट्र-कार्यों का अच्छी प्रकार वहन करने वाले वायु या प्राण के उत्तम गुणों को धारण करने वाले, उनके उत्तम साथियो और वेगवान् अश्वों के समान राष्ट्र के राज्यरूप रथ के संचालक पुरुषो पर, अश्वों पर सारथी या महारथी के समान विराज, उन पर शासन कर। और सब के हर्ष-

दायक शत्रुनाशक संग्राम मे पालन करने वाले और इससे पार उतारने वाले शत्रु के वर्जन या धारण करने मे समर्थ जिस शस्त्रास्त्र या सैन्य बल को मेधावी पुरुषो द्वारा शिक्षित पुत्र व शिष्य सर्व वशीकार मे समर्थ, वशी पुरुष तुझको प्रदान करता है, उपदेश करता है। तू उसको सदा तीक्ष्ण कर, उसको सदा तैयार रख।

आधिभौतिक पक्ष मे—ये 'काव्य उशना' अर्थात् गर्जनकारी मेघ से सम्पन्न कान्तिमान् विद्युत् ही जिस मेघछेदक बल को प्रदान करे उसको सूर्य ही अपने तेज से तीक्ष्ण करता है। अर्थात् विद्युत् की अग्नि भी सूर्य की ही रूपान्तरित अग्नि है।

त्वं सूरो हरितो रामयो नृन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को फेंकता और उनके द्वारा समस्त दिशाओं को रमण कराता, सुखी और हर्षित करता है और हरे वृक्ष लता आदि को रमणीय अर्थात् हरा भरा बना देता है, उसी प्रकार हे राजन्! तू भी सबका प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी होकर वेगवान् अश्वों को, ज्ञानवान् विद्वानों को, दिशावासी प्रजाओं को और तीव्र वेगवान वायु के समान आक्रमणकारी वीर नायकों और वीर भटो को सञ्चालित कर, प्रसन्न कर, युद्ध क्रीडा करा। हे ऐश्वर्यवन! सूर्य जिस प्रकार चक्र अर्थात् समस्त ज्योतिश्चक्र या ग्रहचक्र को धारण करता, सञ्चालित करता और व्यापता है और वेगवान, बलवान् अश्व जिस प्रकार रथ के चक्र या चक्रवान् रथ को धारता और ले जाता है उसी प्रकार यह राजा राष्ट्र-रूपी चक्र के कार्य कर्तृगण को पालित पोषित और सञ्चालित करे और द्वादश राजचक्र को अपने शौर्य, वीर्य और नीति द्वारा धारण करे और सञ्चालित करे। हे ऐश्वर्यवन्! जिस प्रकार सूर्य मनुष्य जीवन के ९० वर्ष रूपी नाव से पार करने योग्य बड़ी नदियों के पार मनुष्यों को डाल देता है और उनको यज्ञ करने या वीर्य दान करने मे असमर्थ या वृद्धा-

वस्था से अशक्त कर देता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू शत्रुओ को नाव से पार करने योग्य बड़ी बडी ९० नदियो के भी पार मार भगा ।

अथवा नाव से तरने योग्य नदियो के पार नौका को अच्छी प्रकार चलवा । अथवा प्रेरणा करने योग्य सेनाओ के पालन करने मे समर्थ उत्तम आज्ञापक पुरुप को उत्तम पद पर स्थापित कर । इसी प्रकार स्तुति योग्य विद्वान् पुरुषो के पालक अति स्तुत्य पुरुप को स्थापित कर और जिस प्रकार विद्युत् जल न देने वाले मेघो को काट काट कर या गढ़े में नीचे जल बना कर गिरा देता है । उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी अदान-शील, कर आदि न देने वाले तथा सन्धि द्वारा मेल न रखने वाले शत्रुओं का कूए या गहरे गढ़ो मे रख । अथवा काट काट कर उनको विनाश कर ।

'नवति नाव्यानाम्'—णु स्तुतौ इत्यतो डौ प्रत्य औणादिकः । नौः । तस्मात् अतिरौणादिको नवतिः । नौति स्तौति, उपदशति, प्रेरयति, स्तूयते, उपदिश्यते, प्रेयते वा इति नौः, नवतिश्च । तेषु साधुः नाव्यस्तेषाम् नाव्यानाम् । अथवा नावा तार्या नाव्या नद्यः, तासाम् ।

त्वं नो॑ अ॒स्या इ॑न्द्र दु॒र्हणा॑याः पा॒हि व॑ज्रिवो दुरि॒ताद॒भीके॑ ।
प्र नो॒ वाजा॑न्र॒थ्यो॒ ३ अश्व॑बुध्यानि॒षे य॑न्धि॒ श्रव॑से सू॒नृता॑यै ॥१४॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे वीर्यवन् ! उत्तम शत्रुवारक नीति और साम आदि उपायों के स्वामिन् ! राजन् ! प्रभो ! परमेश्वर ! तू हमे इस संग्राम या ससार रूपी संग्राम मे भी दु.ख से या कठिनता से नाश करने योग्य, दुःसाध्य शत्रुसेना से या दारिद्रय आदि विपत्ति से और दुष्टाचार और दुर्गति से बचा और रथारोहियों मे सवसे कुशल, महारथी होकर तू हमारे सूर्य के आश्रय पर होने वाले अन्नों को मेघ के समान अश्व सैन्य के आश्रय पर प्राप्त होने वाले ऐश्वर्यों तथा सग्रामों को कीर्ति और ऐश्वर्य और उत्तम अन्नादि समृद्धि, वेदवाणी तथा धन प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार प्रदान कर ।

मेघ के पक्ष मे—जलों को देने से मेघ 'इन्द्र' है । विद्युत् युक्त होने

से वह 'वज्रवान्' है। वह दुःख से नाश न होने वाली दुष्काल, दारिद्र्य आदि जनपीड़ा से हमें बचावे। वह रस या जलमय होने से 'रथ्य' है। सूर्य अश्व है उसके आश्रय पर होने वाले अन्न आदि पदार्थ 'अश्वबुध्न्य वाज' हैं। उनको अन्न और जल की वृद्धि के लिये प्रदान करे।

अथवा हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! हमें तू विद्युत् आदि वेग वाले पदार्थों के जानने वाले विद्वान् प्राप्त करा।

मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त। आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५॥२६॥८॥१॥

भा०—वह तेरी कृपा से प्राप्त हुई शुभ, उत्तम पूजनीय, ज्ञानमय मति हमसे कभी न विनष्ट हो। हे अन्नों और ऐश्वर्यों की उत्तम कोटि को देने वाले तथा विज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से पूजने योग्य ऐश्वर्यवन् राजन्! और परमेश्वर! हमारी समस्त कामनाएं और इष्ट प्रजाएं भी तुझे एकत्र होकर वरण करें। हे ऐश्वर्यवन्! तू सबका स्वामी है। तू हमें भूमियों, उत्तम वाणियों तथा इन्द्रियगणों के आश्रय पर उत्तम उत्तम सुख प्रदान कर। तेरी कृपा से हम सब अति दानशील और वृद्धिशील होकर एक साथ मिल कर आनन्द सुख से रहने और अन्नादि से तृप्त होने वाले होवें। इति षड्विंशो वर्गः।

इत्यष्टमोऽध्यायः।

इति प्रथमोऽष्टकः

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्म-विरचिते, ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये प्रथमोऽष्टकः समाप्तः।

'नम्र निवेदन'

हमने ग्रन्थ की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान दिया है, पुनरपि यदि ग्रन्थ में कुछ अशुद्धियां रह गई हों तो उसे विज्ञपाठक सुधार लें।— ग्रन्थकार